देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तकमाला—६



मआसिरुल् उमरा

(मुग़ल दरबार के हिन्दू सरदारों की जीवनियाँ)

अनुवादक

ब्रजरत्न दास, बी. ए., एल-एल. बी.

प्रकाशक

काशी नागरी-प्रचारिणी सभा

सं० १९८८ वि०

देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तकमाला—६

प्रकाशक—

काशी नागरी-प्रचारिणी सभा

प्रथम संस्करण

~~मूल्य ४)~~

५।।)

नाम पृष्ठ-संख्या

विषय-सूची

नाम | पृष्ठ-संख्या

परिचय (जिसे मीर गुलाम अली आज़ाद ने लिखा था) दिया है तथा चार जीवन-वृत्तांत (जो मीर आज़ाद ने लिखे थे) ग्रंथ में जोड़ दिए गए हैं।

संपादन कार्य में निम्नलिखित पुस्तकों से सहायता ली गई थी —

१. अकबर नामा	शेख़ अबुल्फ़ज़ल मुबारक।
२. तबक़ाते-अकबरी	ख़्वाजा निज़ामुद्दीन अहमद।
३. मुंतख़बुत्तवारीख़	शेख़ अब्दुलक़ादिर बदायूनी।
४. गुलशने इब्राहीमी या फ़रिश्ता	मुहम्मद क़ासिम।
५. आलम आरा	सिकंदर बेग, जो फ़ारस के बादशाह शाह अब्बास प्रथम का मुंशी था।
६. हफ़्त इक़लीम	अमीन अहमद राज़ी।
७. ज़ुब्दतुत्तवारीख़	नूरुल्हक़।
८. एक़बालनामा	मोतमिद ख़ाँ बख़्शी।
९. जहाँगीर नामा[1]	जहाँगीर ने अपने राज्यकाल के बारह वर्ष का वृत्तांत स्वयं लिखा था।

---

१. इस पुस्तक में जहाँगीर ने यहीं तक का हाल लिखा है जो अबदुल हई ख़ाँ ने देखा था। इस सूची में ग़ैरत ख़ाँ के जहाँगीर नामा अर्थात् कामगार हुसेनी का नाम नहीं लिखा गया है; पर ग़ैरत ख़ाँ के जीवन चरित्र में, जो इसी लेखक ने लिखा है, इस ग्रंथ का उल्लेख है।

इसका पुत्र अनूप अवस्था और समझ को पहुँचा, तब अपने कार्य्यों से अकबर के राज्य के अंत में सेवकों का सरदार (जिसे खवास भी कहते हैं) हो गया। जहाँगीर के समय में भी यह कुछ दिन यही काम करता रहा।

(जहाँगीर के जुलूसी) पाँचवें वर्ष में एक दिन बारी परगना में बादशाह तेंदुओं का अहेर खेल रहे थे। इसी बीच यह वनरखों[1] के एक झुंड को (जो अहेर के समय बादशाह के साथ रहते हैं) कुछ दूर पर पीछे साथ ला रहा था कि एक भारी शेर का समाचार सुनकर उस ओर चला गया। बनरखों की सहायता से उसे घेर कर एक मनुष्य को बादशाह के पास समाचार देने के लिये भेजा। यद्यपि दिन का अंत हो चला था और हाथी (जो इस भयानक पशु के शिकार के लिये आवश्यक हैं) भी नहीं थे, पर शेर के शिकार की प्रबल इच्छा रखने के कारण बादशाह घोड़े पर सवार होकर उधर चले। शेर को देखकर बादशाह घोड़े पर से उतर पड़े और दो बार उस पर गोली चलाई। चोटें घातक नहीं थीं, इससे वह नीची भूमि में जा बैठा। (सूर्य्य उतर

१. यहाँ फ़ारसी शब्द बारह है जिसके लिये मिस्टर एच० बेवरिज लिखते हैं कि मैं इस शब्द को नहीं जानता; पर मआसिर इसका अर्थ झुंड बतलाता है। किंतु इस शब्द के बहुत से अर्थ हैं; जैसे दुर्ग, दुर्ग की दीवार, तेज़ घोड़ा, नौबत, स्वत्व आदि। पर यहाँ यह शब्द बनरखों अर्थात् बनरक्षकों के लिये आया है जो शिकार का पता लगाते हैं और उसे घेर कर अहेरियों को समाचार देते हैं।

नाम		पृष्ठ-संख्या

आज्ञा-पत्र आने पर भी नहीं गया। परंतु दक्षिण से लौटते समय बादशाही सेना में पहुँच कर गुरु की चढ़ाई पर (जो सिक्खों का सरदार था) नियत हुआ। मुहम्मदशाह के समय (जब मुहम्मद खाँ बंगिश ने इस पर चढ़ाई कर कई बादशाही महालों पर बलपूर्वक अधिकार कर लिया और दूसरों को छोड़ दिया तब) छत्रसाल ने मराठों की सेना के, जो मालवे में थी, सहायतार्थ जाकर खाँ को गढ़ी में घेर लिया[1]। चार महीने बाद जब महामारी फैलने से मरहठे चले गए, तब स्वयं तीन महीने तक घेरे रहा। अंत में संधि हो गई। कहते हैं कि इन्हें बहुत संतानें थी। इनका एक पुत्र खानचंद निजामुलमुल्क आसफजाह के साथ दक्षिण में था और उसे बरार प्रांत में शेरपुर परगना जागीर में मिला था।

---

१ इलि० डाउ०, भा० ८, पृ० ४६-४८।

नाम

४६—राजा भारामल[1]

ये पृथ्वीराज कछवाहा के पुत्र थे। इस जाति के दो विभाग हैं—राजावत और शेखावत। ये राजावत थे और आमेर की गद्दी पर विराजमान थे, जो अजमेर के पास मारवाड़ के पश्चिम में है। यद्यपि यह राज्य लंबाई और चौड़ाई में उसके बराबर नहीं है, तिस पर भी उपजाऊपन में उससे बढ़कर है। राजपूतों में ये प्रथम राजा थे जिन्होंने अकबर की अधीनता स्वीकृत की थी। हुमायूँ की मृत्यु पर (जब चारों ओर अशांति फैली हुई थी तब) शेर शाह के एक दास हाजी खाँ ने विद्रोह करके नारनौल को (जो मजनूँ खाँ क़ाक़शाल की जागीर में था) घेर लिया। राजा ने उस समय उसका (मजनूँ खाँ का) साथ दिया। सुविचार से मध्यस्थ बनकर शांति से दुर्ग पर अधिकार कर लिया और मजनूँ ख़ाँ को प्रतिष्ठा के साथ विदा किया। इसके अनंतर

१. उर्दू अक्षरों में जिस प्रकार यह नाम लिखा जाता है, उससे इसे बिहारा मल, बहारामल, भारामल आदि कई प्रकार से पढ़ा जा सकता है। और आज़ाद ने तो 'दरबारे अकबरी' में भाड़ामल तक लिख डाला है। मुझे बिहारीमल नाम ही ठीक जान पड़ता है और टॉड साहब ने भी अपनी पुस्तक राजस्थान में यही लिखा है। पर राजस्थान के निवासी इतिहासज्ञ विद्वान् मुं० देवीप्रसाद तथा पं० चंद्रधर शर्मा गुलेरी बी० ए० के अनुसार भारामल ही उच्चारण ठीक है।



ओड़छा-नरेश वीरसिंह देव

इस ग्रंथ के अनुवाद तथा संपादन में सहायता देनेवाली पुस्तकों की सूची

फ़ारसी

१. मआसिरुल्उमरा भाग १–३.—समसामुद्दौला शाहनवाज़ खाँ कृत।

२ इक़बालनामा जहाँगीरी या जहाँगीरनामा—सम्राट् जहाँगीर का लिखा हुआ आत्मचरित जिसमें उसके राज्य-काल के प्रथम बारह वर्षों का वृत्तांत है। हस्तलिखित प्राचीन प्रति है।

३. रियाज़ुस्सलातीन—ग़ुलाम हुसेन सलीम कृत। इसमें बंगाल का इतिहास दिया गया है। बंगाल एशाटिक सोसाइटी द्वारा प्रकाशित।

४. मुंतख़बुत्तवारीख, अब्दुलक़ादिर बदायूनी कृत। भारत पर मुसलमानी आक्रमण से अकबर के राज्य-काल के प्रायः अंत तक का वर्णन है।

५. तबक़ाते अकबरी, ख्वाजा निजामुद्दीन अहमद रचित। बंगाल एशाटिक सोसाइटी द्वारा प्रकाशित।

६. तारीख़ गुजरात, शाह अबू तुराब वली कृत। अकबर की चढ़ाइयों का वृत्तांत विशेष रूप से दिया है। बं० एशा० सो० द्वारा प्रकाशित।

७. इंशाए-माधोराम—इसमें फारसी के बहुत से पत्र संगृहीत हैं जिनसे इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। हस्तलिखित प्रति।

८. दस्तूरुस्सयाक़—प्राचीन हस्तलिखित अपूर्ण प्रति। १४७ पृ० की पुस्तक है। यह दस मुक़द्दमों में विभाजित है, जिनमें से प्रत्येक बाबों तथा फसलों में पुनर्विभाजित है। पहाड़े से आरंभ होता है। खेतों की नाप, जमाबंदी आदि का पूरा वर्णन है। स्यात् इसी पुस्तक के कुछ अंश को प्रो० सर्कार ने दस्तूरुल्अमल नाम दिया है जिसमें दीवानी तथा फौजदारी के सरिश्ते का बयान है।

९. जमअ मुमालिक—(मुग़ल बादशाहों के सूबों की तुलनात्मक आय) यह भी अपूर्ण हस्तलिखित प्रति दस्तूरुस्सयाक़ के साथ एक जिल्द में बँधी हुई एक मित्र से प्राप्त हुई है। इसमें अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ, औरंगज़ेब तथा मुहम्मद शाह के समयों के प्रत्येक प्रांत तथा सर्कार की आय दामों तथा रुपयों में दी गई है।

१०. नादिरशाह नामा, मीर कृत। गद्य पद्य में भारत पर नादिर शाह की चढ़ाई का वर्णन है। इसका अनुवाद ना० प्र० सभा की पत्रिका भा० ५ सं० १९८१ में दिया जा चुका है। हस्तलिखित प्रति।

११. पत्र-संग्रह—इसमें प्रायः पाँच सौ पत्र संगृहीत हैं।

म

हिंदी

१. हुमायूँनामा, गुलबदन बेगम कृत। ना० प्र० सभा द्वारा प्रकाशित।

२. मआसिरे-आलमगीरी, मुहम्मद साक़ी मुस्तैद ख़ाँ कृत। मुं० देवीप्रसाद कृत हिंदी अनुवाद।

३. बुंदेलों का इतिहास, ब्रजरत्नदास द्वारा लिखित।

४. छत्र प्रकाश, गोरेलाल कृत। इसमें बुंदेलों का तथा विशेषतः पन्ना राज्य के संस्थापक महाराज छत्रसाल का चरित्र वर्णित है।

५. वीरसिंह देव चरित, महाकवि केशवदास कृत। ओड़छा-नरेश महाराज वीरसिंह देव का चरित्र वर्णित है।

६. राज-विलास, मान कवि कृत। इसमें महाराणा राज-सिंह के विवाह आदि तथा सन् १८७९-८१ ई० के युद्ध का वर्णन है।

७. प्राचीन राजवंश भा० ३, विश्वेश्वरनाथ रेऊ कृत। राठौड़ वंशी राजाओं का विवरण दिया है।

८. मूता नैणसी की ख्यात, अनु० रामनारायण दूगड। काशी ना० प्र० सभा द्वारा प्रकाशित।

९ आनंदांबुनिधि, (भागवत) रीवाँ नरेश महाराज रघु-राजसिंह कृत। बघेला राजवंश का आरंभ में वर्णन है।

१०. सुजान चरित, सूदन कृत। इसमें भरतपुर के जाट नरेश महाराज सूरजमल का जीवन-वृत्तांत दिया गया है।

११. भूषण-ग्रंथावली।

उर्दू

१. तवारीखे-बुंदेलखंड, श्यामलाल कृत। यह एक बृहत् इतिहास है। किंवदंतियाँ भी विशेष भरी हैं, पर इसमें सनदों का जो संग्रह दिया है, वह इसकी एक विशेषता है।

२. तारीख फिरिश्ता, मुहम्मद बिन कासिम कृत। नवल-किशोर प्रेस द्वारा प्रकाशित। यह अकबर के समय तक का बृहत् इतिहास है। उस समय तक के अन्य भारतीय मुसलमान राज-वंशों का भी वर्णन अलग अलग दिया है।

३. सवानिहाते सलातीने अवध, सय्यद कमालुद्दीन हैदर कृत। इसमें अवध की नवाबी का विस्तृत इतिहास दिया है।

४. सियारुल् मुताख़िरीन, ग़ुलाम हुसेन ख़ाँ कृत। पहिला भाग मुख़्तसिरुत्तवारीख तथा ख़ुलासतुत्तवारीख़ के आधार पर लिखा गया है और दूसरा भाग स्वतंत्र है जिसमें सन् १७०० ई० से १७८६ ई० तक का इतिहास है। उर्दू अनुवाद।

अंग्रेज़ी

१. मआसिरुल्उमरा, बेवरिज कृत अनुवाद। यह अनुवाद पूरा नहीं हुआ। इसकी केवल ३ संख्याएँ अर्थात् ६०० पृष्ठ प्रका-

शित हुए हैं। अंतिम जीवनी का शीर्षक हैदर कुली खाँ मुईजुद्दौला है जो अपूर्ण रह गया है।

२. इलिअट एंड डाउसन कृत 'हिस्टरी औव् इंडिया ऐज़ टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरिअन्स' (अर्थात् भारतीय इतिहासज्ञों द्वारा कथित भारत का इतिहास) भा० ४—८। फारसी इतिहासों के उद्धरण दे देकर इतिहास का क्रम बैठाया गया है।

३. आईन अकबरी, ब्लॉकमैन कृत अनुवाद । इसके परिशिष्ट में अकबर के समय के दरबारियों, सरदारों तथा राजाओं के जीवन-वृत्तांत दिए गए हैं। इसके लिखने में मआसिरुल् उमरा से विशेष सहायता ली गई है ।

४. मराठों का इतिहास, किनकेड तथा पारसनीस कृत, भाग १—३। इसमें मराठों के उत्कर्ष के पहिले दक्षिण का इतिहास संक्षेप में तथा मराठा साम्राज्य का इतिहास विस्तारपूर्वक दिया गया है।

५. सरकार कृत 'शिवाजो'। छत्रपति महाराज शिवाजी का विस्तृत जीवन चरित्र।

६. सरकार कृत 'औरंगजेब' भाग १—५। इसमें शाहजहाँ के राज्य-काल के अंतिम भाग, राज्य के लिये भाइयों में युद्ध तथा औरंगजेब के राज्य का विशद इतिहास दिया गया है।

७. हुमायूँनामा, जौहर आफ़ाबची कृत, अनुवादक स्टूअर्ट साहब।

८. हिस्टरी ऑव द फ्रेंच इन इंडिया, मैलेसन कृत। इसमें भारत में फ्रेंच जाति के आगमन, भारत साम्राज्य के लिये देशीय तथा यूरोपीय जातियों से युद्ध आदि का अच्छा विवरण दिया है।

९. 'ए कॉम्प्रिहेंसिव हिस्ट्री ऑव इंडिया' भा० १—३, एडवोकेट बेवरिज कृत, सन् १८६७ ई० की प्रकाशित। यह माधुरी आदि पत्रिकाओं के साइज़ का ढाई सहस्र पृष्ठों से अधिक का बृहत् इतिहास है जिसमें मुग़लों का संक्षिप्त और अंग्रेजों के समय का बड़े बलवे तक का विस्तारपूर्वक इतिहास है। इसमें कई सौ चित्र तथा मानचित्र दिए हैं।

१०. टॉड कृत 'राजस्थान' भा० १—२। राजपूताने के अनेक राजवंशों का प्रसिद्ध विस्तृत इतिहास।

११. कीन कृत 'भारत का इतिहास'।

१२. बुंदेलों का इतिहास, सिलूबेराड कृत। यह मजबूत-सिंह लिखित हिंदी में एक इतिहास का प्रायः अनुवाद है और एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल भाग ७१, सन् १९०२ ई० में प्रकाशित हुआ है।

१३. इंपीरियल गजेटियर भा० १—१४।

१४. कनिंगहम कृत 'सिक्खों का इतिहास'।

१५. शिवाजी, रॉलिन्सन कृत।

१६. मराठा शक्ति का उत्कर्ष, जस्टिस रानडे कृत।

१७. बर्नियर की यात्रा, अनु० ऑल्डेनबर्ग।

१८. 'मेमॉयर्स ऑव दिह्ली एंड फ़ैज़ाबाद' भा० १—२। डाक्टर होई द्वारा फ़ैज़बख्श कृत तारीख फरहबख्श का अनुवाद है। पहिले भाग में मुग़ल सम्राटों का और दूसरे भाग में अवध के नवाबों का वर्णन है।

१९. 'अर्ली ट्रैवेल्स इन इंडिया', संकलनकर्ता फॉस्टर। इसमें टेरी, मिल्डनहॉल आदि सात अंग्रेज़ यात्रियों की जीवनी तथा उनका भ्रमण-वृत्तांत संकलित है। ये सब अकबर के समय या पहिले आए थे।

२०. 'इंडिया एट द डेथ ऑव् अकबर' मौरलैंड कृत। इसमें अकबर के राज्य के अंत के समय का विस्तृत वर्णन दिया हुआ है।

भूमिका

प्रत्येक जाति का यह सर्वदा ध्येय रहता है कि वह अपने को सजीव बनाए रखने तथा उन्नति पथ पर दृढ़ता से सर्वदा अग्रसर होने का प्रयत्न करती रहे। इसका एक प्रधान साधन उसके पूर्व गौरव की स्मृति है, जो सदा संजीवनी शक्ति का संचार करती हुई उसको अपने लक्ष्य की ओर बढ़ने के लिये उत्साहित करती रहती है। इस स्मृति की रक्षा उस जाति के साहित्य-भांडार में उसे सुरक्षित रखने ही से हो सकती है; और इसको सुरक्षित न रखना अपने ध्येय को नष्ट करना है। साथ ही जिस साहित्य भांडार में इतिहास तथा जीवनचरित्र रूपी रत्न संचित न किए गए हों, वे कभी पूर्ण नहीं माने जा सकते। हमें अपनी प्रिय जन्मभूमि भारत माता के प्राचीन इतिवृत्त को बड़े यत्न से सुरक्षित रखना होगा। हम भारतवासियों के लिये यह पूर्व गौरव की स्मृति अभी तक अत्यधिक आवश्यक है; क्योंकि उसके न रहने पर संसार की जाति-प्रदर्शिनी में हमें स्यात् कोई स्थान मिलना असंभव हो जायगा। प्रकृति ने जगती-तल के एक अंश, हमारे इस प्यारे भारत पर ऐसी कृपादृष्टि बना रखी है कि यहाँ सभी प्रकार के जलवायु, नदी, निर्झर, अन्न, फल, फूल, पशु आदि वर्तमान हैं और यहाँ के रहनेवालों को जीवन की किसी आवश्यक वस्तु के लिये परमुखापेक्षी नहीं होना पड़ता। इसी

कृपादृष्टि के कारण उस जगन्नियंत्रिणी प्रकृति ने इसे सुरक्षित बनाने को उच्चाति उच्च पर्वत-मालाओं तथा उत्ताल सागर-तरंगों से घेर रखा है। पर अन्य देशवासियों ने, स्यात् इसी बात के द्वेष के कारण, इन पर्वत-मालाओं को भेदकर तथा समुद्र के वक्ष-स्थल को चीरकर इस भारत पर चढ़ाई कर इसे युद्ध-क्रीड़ा का क्षेत्र बना डाला। इस मृत्युलोक के संसार-विजयी कहलाने-वाले अदम्य उत्साहपूर्ण शूर वीर इस देश पर प्राचीन काल से अपनी कृपादृष्टि का चिह्न छोड़ते गये हैं। इस देश पर शताब्दियों से इन आक्रमणकारियों की दुर्द्धर्ष वाहिनियों को रोकने के लिये यहाँ के वीरों के प्रयत्न से रणचंडी के जो नृत्य होते रहे हैं, उनसे यह देश बराबर पद-दलित होता रहा है। भारत के ऐतिहासिक काल के आरंभ होने के बहुत पहिले से इस देश में संहार घोर रव सुनाई पड़ता रहा है। ऐसी अवस्था में भारत के शृंखला-बद्ध इतिहास का मिलना कहाँ तक संभव है, यह नहीं कहा जा सकता। फिर भी जो सामग्री उपलब्ध है या प्रयत्न द्वारा उपलब्ध की जा सकती है, उसके चार विभाग किए जा सकते हैं— (१) देशीय विद्वानों द्वारा लिखी गई प्राचीन पुस्तकें; (२) प्राचीन शिलालेख तथा दानपत्र; (३) सिक्के, मुद्रा तथा शिल्प; और (४) विदेशियों के लिखे हुए यात्रा-विवरण तथा इतिहास।

(१) प्रथम प्रकार की सामग्री में संस्कृत, प्राकृत आदि प्राचीन भाषाओं तथा उन्हीं से उत्पन्न आधुनिक देशी भाषाओं की पुस्तकें हैं। भारतवर्ष सरीखे विशाल देश में इन कई सहस्र

वर्षों में अनेक स्वतंत्र राज्य स्थापित तथा अंतर्हित हुए होंगे और कितने प्रसिद्ध राजवंश उदित तथा अस्तमित हुए होंगे; पर उन सब का कोई सिलसिलेवार इतिहास उपलब्ध नहीं है। यह तो निर्विवादतः सिद्ध है कि ऐसे शृंखलाबद्ध इतिहास संक्षेप में काव्यादि के रूप में अवश्य लिखे जाते थे। इन राजाओं की वंशावलियों तथा ऐतिहासिक घटनाओं के उल्लेख अब भी प्राप्त पुराणादि ग्रंथों में मिलते हैं। सूर्य, चन्द्र, मौर्य, शुंग आदि राजवंशों की नामावली तथा उनके राजत्व काल इन्हीं विशद ग्रंथों में दिए हुए हैं। संस्कृत के आदि कवि वाल्मीकि जी ने रामायण में रघु-वंश का विस्तृत इतिहास लिखा है। महाभारत भी कुरु वंश का विशुद्ध इतिहास है। राजतरंगिणी में काश्मीर के अनेक राजवंशों का शृंखलाबद्ध इतिहास दिया गया है। हर्ष-चरित, नवसाहसांक चरित, गौड़वहो, पृथ्वीराज विजय आदि बीसों काव्य हैं, जिनमें इतिहास का प्रचुर साधन प्राप्त है। इन ऐतिहासिक ग्रंथों के सिवा अन्य विषयों के ग्रंथों में प्रसंगवश या अपने आश्रयदाताओं के यश-वर्णन के संबंध में बहुत से ऐतिहासिक वृत्त दिए हुए मिलते हैं, जिनसे इतिहास पर विशेष प्रकाश पड़ता है। पाश्चात्य तथा देशीय इतिहासवेत्ता विद्वानों ने प्राचीन भाषाओं के ग्रंथों का परिशीलन कर इतिहास पर जितना प्रकाश डाला है, उतना परिश्रम आधुनिक भाषाओं के ग्रंथों पर नहीं किया गया है। अर्वाचीन तथा आधुनिक इतिहास अधिकतर फ़ारसी तथा उसी के आधार पर लिखे गए अंग्रेज़ी

इतिहासों से तैयार किया गया है। देशी भाषाओं की पुस्तकों से भी, जो वास्तव में अधिक नहीं हैं, इस इतिहास के प्रस्तुत करने में सहायता मिल सकती है; पर उसका उपयोग नहीं किया गया है।

हिन्दी के साहित्य-भांडार की प्राचीन ऐतिहासिक पुस्तकों में पृथ्वीराज रासो, खुम्माण रासो, राना रासो, रामपाल रासो, हम्मीर रासो, बीसलदेव रासो आदि ग्रंथ प्रसिद्ध हैं। इन ग्रंथों के अनंतर अर्वाचीन समय में भी बहुत से ग्रंथ प्रस्तुत किए गए हैं, जिनमें कवियों ने अपने आश्रयदाता नरेशों के चरित्र वर्णन किए हैं। इन चरित्रों, रासों तथा विरुदावलियों में कोरे इतिवृत्त ही नहीं दिए गए हैं, प्रत्युत् उन्हें कवियों ने अलंकारादि से खूब सजाकर पाठकों के सन्मुख रखा है। इन सब के होते हुए भी ऐतिहासिक विवरण शुद्ध रूप में ही पाया जाता है; अर्थात् पक्ष-पात करके ये कविगण सत्यभ्रष्ट होना उचित नहीं समझते। महाकवि केशवदास कृत वीरसिंह देव चरित तथा रतबावनी और गोरेलाल कृत छत्रसाल में बुँदेले नरेशों का इतिहास संक्षिप्त रूप में तथा चरितनायकों का विशद रूप में वर्णित है। राजविलास में प्रसिद्ध महाराणा राजसिंह और सुजानचरित्र में भरतपुर-नरेश सूरजमल जाट का चरित्र दिया गया है। जंगनामा, हिम्मत बहादुर-विरुदावली आदि में ऐतिहासिक घटनाओं का विवरण दिया गया है। गुजराती भाषा के कान्हड़दे प्रबन्ध, बिमल प्रबंध आदि और तामिल के विक्रमशोलनुला, राजराजनुला आदि

भी इतिहास के साधन हैं। इनके सिवा राजपूताने के अनेक राजवंशों की ख्यातें भी मिलती हैं, जिनकी संख्या कम नहीं है और जो भारत के इतिहास के मध्य युग के लिये बहुत उपयोगी हैं। रॉयल एशाटिक सोसाइटी ने स्यात् ऐसी ख्यातों की एक वर्णनात्मक सूची भी निकाली है। मराठी इतिहास के साधन स्वरूप बहुत से बखर, शकावली आदि प्राप्त हैं जिनसे भी बहुत कुछ सहायता मिलती है। सभासद कृत "शिवछत्रपति यांचे चरित्र" सबसे प्राचीन है। जेधेशकावली आदि कई पुस्तिकाएँ इतिहास की छोटी छोटी घटनाएँ भी समय आदि सहित ठीक ठीक बतला रही हैं। पर्णाल ग्रहण आख्यानं, शिवभारत आदि संस्कृत में लिखे ग्रंथ भी मराठी इतिहास पर प्रकाश डालने में सहायक हैं। इस प्रकार के अनेक बखरों तथा ऐतिहासिक पत्रों के संग्रह दक्षिण में इतिहास के साधन रूप में कई भागों में निकल चुके हैं।

(२) भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास के निर्माण में सबसे अधिक उपयोगी तथा सत्य इतिवृत्त बतलानेवाले शिलालेख और दानपत्र ही हैं। शिलालेख प्रायः शिलाओं पर खुदे हुए मिलते हैं, जो गुफाओं, देव-मन्दिरों, मठों, बौद्ध स्तूपों, तालावों आदि में लगे हुए होते हैं। शिलाओं के अतिरिक्त स्तंभों पर भी लेख खुदे हुए मिलते हैं। कभी कभी ऐसे शिलालेख मूर्तियों के आसनों तथा पीठों पर खुदे मिलते हैं या स्तूप आदि के भीतर रखे हुए प्रस्तर-निर्मित पात्रों पर खुदे हुए रहते हैं। ग्रामों आदि में कभी कभी ऐसे शिला-

लेख गड़े हुए भी मिल जाते हैं। ये शिलालेख समग्र भारत में मिलते हैं, पर दक्षिणापथ में प्राचीन ग्रंथों के समान इनका कुछ आधिक्य है। कारण यही है कि उत्तरापथ से उधर विदेशियों का अत्याचार कम हुआ है। इन शिलालेखों की भाषा संस्कृत, विशेष कर प्राकृत तथा हिन्दी, कनाडी आदि होती है और ये गद्य तथा पद्य दोनों ही में रचे हुए मिलते हैं, जिनमें कभी कभी मनोहर कवित्व शक्ति की छटा दिखलाई पड़ती है। इनमें राजाओं, रानियों तथा उनके आश्रित अनेक वंशों का संक्षिप्त परिचय मिलता है। इनसे तत्कालीन समाज तथा धर्म-विषयक अनेक बातों का भी पता मिलता रहता है। कभी कभी बड़े बड़े लेखों में नाटिका, काव्य आदि पूरे के पूरे लिखे हुए मिल जाते हैं, जिनसे साहित्य भांडार की शोभा बढ़ जाती है। भोज रचित कूर्मशतक, बीसल देव रचित हर-केलि नाटक, राजप्रशस्ति महाकाव्य आदि इसी प्रकार मिले हैं। इस प्रकार अब तक सहस्रों शिलालेखों के मिलने से भारत का प्राचीन इतिहास तैयार करने में बहुत सहायता पहुँची है।

इन शिलालेखों के सिवा ताम्रपत्र पर खुदे हुए दानपत्र भी मिलते हैं, जो राजाओं तथा धनाढ्य सामंतों की ओर से मंदिरों, मठों, ब्राह्मणों आदि को धर्मार्थ दिए हुए ग्रामों या निर्मित किए हुए कूएँ आदि की सनदों के रूप में दिए गए हैं। ऐसे दानपत्र एक ही बड़े या छोटे ताम्रपत्र पर मिलते हैं या कई पत्रों पर खुदे रहते हैं। जब ऐसे दानपत्र कई पत्रों में रहते हैं, तब बीच के पत्र तो दोनों ओर, पर पहिले और अंतिम केवल भीतर की ओर खुदे रहते

हैं। ऐसे कई पत्रों के होने पर वे एक या कभी दो कड़ियों से जुड़े मिलते हैं। इन दानपत्रों की भाषा तथा शैली शिलालेखों की भाषा आदि सी रहती है और ये भी प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। इन में भी समय, राजवंश, स्ववंश तथा आश्रयदाताओं का विवरण दिया रहता है, जिस से ये भी प्राचीन इतिहास के लिये बड़े उपकारी होते हैं। इनके सिवा उस समय के अनेक दानियों, धर्माचार्यों, मंत्रियों आदि का भी इनसे परिचय मिल जाता है।

(३) भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास के लिपिबद्ध न मिलने के कारण शिलालेखों तथा पत्रों के समान प्राचीन सिक्के भी लुप्त इतिहास का उद्धार करने के एक प्रधान कारण होते हैं। प्राचीनतम काल के वस्तु-विनिमय में सुभीता करने के लिये मानव समाज ने सिक्कों का आविष्कार कर विनिमय का स्थायी साधन खोज निकाला। पहिले ये सिक्के गोली की आकृति के होते थे, जिन पर ठप्पे से कुछ भद्दी शक्ल उठा दी जाती थी। ईरान आदि पश्चिम के ये सिक्के धातु के टुकड़े मात्र होते थे, जो बड़े भद्दे होते थे। भारत ही में सर्व प्रथम चिपटे, चौकोर या गोल सुंदर सिक्के बने थे, जो कार्षापण कहलाते थे। ये सिक्के पहिले चाँदी के और तब सोने के बनने लगे। विक्रमाब्द के पूर्व की चौथी पाँचवीं शताब्दी के लेखयुक्त सिक्के मिलते हैं। प्राचीन शिलालेखों में जिन राजवंशों की नामावली नहीं मिलती या अधूरी रह जाती है, वह कभी कभी इन सिक्कों

पर के लेखों से मिल जाती है या पूरी हो जाती है। पंजाब के यूनानी राजाओं के नाम विशेषतः सिक्कों ही से प्राप्त हुए हैं, जो सोने, चाँदी, ताँबे तथा निकल के हैं। इनमें से केवल एक अंतिअल्किद (Antialkida) का शिलालेख मिला है और सिक्के अट्ठाइस राजाओं के मिल चुके हैं। गुप्त वंश के सिक्कों पर कविताबद्ध लेख अंकित किए जाते थे। यूनानी सिक्कों पर एक ओर ग्रीक भाषा में तथा दूसरी ओर वही बात खरोष्ठी लिपि में प्राकृत भाषा में रहती थी। पर कुछ सिक्के ऐसे भी मिलते हैं जो पुराने कार्षापण के ढंग पर बने हुए हैं और उन पर एक ओर यूनानी तथा दूसरी ओर ब्राह्मी लिपि में राजा का नाम तथा पदवी दी हुई है। जितने राजवंशों, जातियों तथा स्थानों के सिक्के मिल चुके हैं, उन सब का उल्लेख करने के लिये यहाँ अवकाश नहीं है और वे मुद्रातत्व के अंतर्गत आ जाते हैं।

राजमुद्रा अर्थात् मुहर लगाना भी प्राचीन काल से भारत में प्रचलित है। पकाए हुए मिट्टी के गोलों पर मुहर बनी हुई मिलती है। ताम्रपत्रों तथा उनकी कड़ियों पर ऐसी राजमुद्राएँ लगी हुई दिखलाई पड़ती हैं। अँगूठी तथा अकीक पत्थर पर बनी हुई मुहरें भी मिली हैं। ये सब भी इतिहास में कभी कभी अच्छी सहायता दे जाती हैं। गुप्त तथा कन्नौज के राजवंशों की बहुत सी मुद्राएँ मिली हैं, जिनसे प्राचीन इतिहास में महत्वपूर्ण सहायता पहुँची है। इस प्रकार की बहुत सी राजमुद्राएँ मिल चुकी हैं।

प्राचीन शिल्पविद्या की उत्तमता का परिचय देनेवाली मूर्तियों, गुफाओं, विशाल मंदिरों, पुराने स्तंभों आदि से भी प्राचीन इतिहास में सहायता पहुँचती है। प्राचीन चित्रों से भारतीय प्राचीन चित्र कला के ज्ञान के साथ साथ तत्कालीन वस्त्राच्छादन और सामाजिक तथा धार्मिक रीति-व्यवहारों का भी ज्ञान संपादन किया जा रहा है। अजंता आदि गुफाओं के रंगीन चित्र अभी तक दर्शकों को मुग्ध कर देते हैं।

(४) इतिहास की इस सामग्री के दो प्रधान विभाग किए जा सकते हैं। एक तो वह जो शुद्ध यात्राविवरण हैं; पर उनसे भी इतिहास की बहुत कुछ सामग्री प्राप्त होती है। कोरी घटनावाली के सिवा इनमें यात्रियों के आँखों देखे वर्णन से स्थान स्थान की रीति-रस्म, भाषा, धर्म आदि सभी विषयों पर प्रकाश पड़ता है। अन्य देशीय विद्वान हम लोगों के व्यवहार आदि पर क्या विचार प्रकट करते हैं, इन सब का इनमें खासा वर्णन मिलता है। दूसरे विभाग में विदेशियों द्वारा लिखे हुए इतिहास ग्रंथ हैं जो इसी दृष्टि से लिखे गए हैं। इनमें विदेशीय भाषाओं में लिखे हुए वे काव्य आदि अन्य विषयक ग्रंथ भी आ जाते हैं, जिनसे ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त होती है। जैसे अमीर खुसरो के काव्यों में बहुत कुछ ऐतिहासिक तथ्य भरा पड़ा है।

जिन विदेशियों ने अपनी भारत-यात्रा का विवरण या देश का कुछ वृत्तान्त लिखा है, उनमें यूनानी लोग सबसे प्राचीन हैं। हेरोडोटस 'इतिहास का पिता' कहलाता था और ईसवी सन् के

पहिले की पाँचवीं शताब्दी में वर्तमान था। इसने भी भारत के विषय में कुछ लिखा है। मेगास्थिनीज शाम देश के राजा सिल्यूकस द्वारा चंद्रगुप्त मौर्य के दरबार में भेजा हुआ राजदूत था। इसने वि० पू० तीसरी शताब्दी के भारत का अच्छा वर्णन किया है। डायोडोरस सिकुलस ई० पू० प्रथम शताब्दी में वर्तमान था और इसने संसार का इतिहास लिखा है। प्लुटार्क बीटिया का रहनेवाला था तथा ई० सन् की प्रथम शताब्दी में वर्तमान था। यह जीवनचरित्र लेखन में सिद्धहस्त था और इसने पचासों जीवनियाँ लिखी हैं। रूफ़स क्विंटस कर्टिअस ई० सन् की पहिली या दूसरी शताब्दी में था और इसने सिकंदर की जीवनी दस भागों में लिखी थी। इसके सिवा केसिअस, टालेमी आदि कई विद्वानों ने भी भारत के विषय में लिखा है, जो स्वतंत्र ग्रंथों में या अन्यत्र उद्धृत होकर प्राप्त हुआ है।

यूनानियों के अनंतर चीनवालों का नंबर आता है। यद्यपि अशोक के प्रयत्न से चीनवालों में बौद्ध धर्म की ख्याति फैल गई थी और वह दिनों दिन उन्नति कर रहा था, पर सन् ६७ ई० में जब चीन के सम्राट् मिंगटी ने दूत भेजकर बौद्ध आचार्यों को बुलवाया, तब से वहाँ इस धर्म का प्रचार बहुत बढ़ने लगा। इसी के अनंतर भिक्षु-संघटन होने पर धर्म-ग्रंथों की खोज में ये चीनी भारत आने लगे। सबसे पहिला यात्री फाहियान था, जो सन् ३९९ ई० में चीन से चला और पंद्रह वर्ष यहाँ रहकर सन् ४१४ ई० में स्वदेश लौटा था। इसके बाद तावयुंग, तोयिंग तथा सुगयुन

आया। सन् ५१७ ई० में सुंगयुन हुईसंग के साथ आया था और तीन वर्ष वाद लौट गया। इसके उपरांत सुयेनच्वांग या हुयेन्सांग ने सन ६२९ ई० में भारत-यात्रा आरंभ की और यहाँ पंद्रह सोलह वर्ष रहकर चीन लौटा था। इसका यात्राविवरण वहुत विशद है, जिसके दूसरे भाग में इसकी जीवनी भी दी है। सन् ६७१ ई० में इत्सिंग भारत आया था। इनके अतिरिक्त हुइनि, सुयेनचिङ, सुयेनताई, सिपिन आदि अनेक अन्य चीनी यात्री आए और अपनी यात्राओं का विवरण आदि लिख गए।

तिब्बत तथा लंकावाले बौद्धों से भी भारत का संपर्क प्राचीन है और इन देशों के साहित्य भांडार में भी भारत विषयक इतिहास की सामग्री मिलती है।

भारत तथा उसके पश्चिम के देशों से प्राचीन समय से व्यापार होता चला आ रहा है, जिसका प्रधान मार्ग फारस, रूम आदि देशों से होकर युरोप तक गया था। उन देशों के भी कई यात्री भारत आए और उन लोगों में से कई ने अति विशद वर्णन भी दिया है। इन भ्रमण वृत्तान्तों में तत्कालीन भारत के ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक तथा विद्या संवंधी ज्ञान की पूरी सामग्री है। इन यात्रियों में से कई ने अपना सारा जीवन ही इस कार्य में विता दिया था। सबसे पहिला मुसलमान यात्री सुलेमान सौदागर था, जिसकी यात्राओं का विवरण सन् ८५१ ई० में लेखबद्ध किया गया था। इसके अनंतर अबूजैद हसन सीराफी ने भी सन् ९१६ ई० में भारत के विषय में कुछ वृत्तान्त लिखा था। इन दोनों की इस

सामग्री को मिला कर अरबी भाषा में एक ग्रंथ प्रस्तुत हुआ जिसका नाम 'सिलसिलातुत्तवारीख़' रखा गया। इसका प्रथम भाग अर्थात् सुलेमान सौदागर का यात्रा-विवरण इसी माला में निकल चुका है। इसके बाद मुहम्मद इब्न हौकल का नाम आता है, जिसकी मृत्यु ९७६ ई० में हुई थी। इसका जन्म बग़दाद में हुआ था और यह भूगोलवेत्ता तथा यात्री था। यह अपनी पुस्तक 'अल्-मसालिक वल्ममालिक' (मार्गों तथा देशों का वर्णन) के लिये तीस वर्ष तक अटलांटिक महासागर से सिंधु नदी तक यात्रा करता रहा था। अबुल् हसन अली मसऊदी सन् ९०० ई० में बग़दाद में पैदा हुआ था और सन् ९५७ ई० में मरा था। इसने अपना सारा जीवन भारत, चीन तथा अन्य पूर्वीय स्थानों में भ्रमण करने में व्यतीत किया था। इसने 'सोने के खेत' तथा 'किताबुल् तंबीह' दो पुस्तकें लिखी थीं। इसके बाद सुप्रसिद्ध यात्री तथा विद्वान अबूरैहाँ मुहम्मद इब्न अहमद अलबेरूनी हुआ, जिसका जन्म सन् ९७३ ई० में खीवा में हुआ था। महमूद ग़ज़नवी सन् १०१७ ई० में खीवा विजय कर इसे गज़नी लाया। यह राजनीतिक क़ैदी होने के कारण महमूद के भारतीय आक्रमणों में बराबर साथ था और हिंदुओं की विद्याओं का महत्व देख कर इसने संस्कृत का अच्छा अध्ययन किया। इसने भारतीय विषय लेकर अरबी में लगभग बीस पुस्तकें लिखी हैं और कई पुस्तकें संस्कृत में भी लिखी हैं। यह गणित तथा ज्योतिर्विद्या का प्रकांड पंडित था। इसकी मृत्यु सन १०४८ ई० में हुई। इसका यात्रा-विवरण विशद

है और उसमें ऐतिहासिक तथा भौगोलिक सामग्री के सिवा उस समय तक ज्ञात संस्कृत आदि भाषाओं के साहित्य का भी बहुत सा ज्ञान संचित है। यह यात्राविवरण 'अलबेरूनी का भारत' नाम से हिंदी में प्रकाशित भी हो चुका है। अबू अब्दुल्ला मुहम्मद इब्नबतूता का जन्म अफ़्रीका के मोरोक्को प्रांत के टैंजिअर नगर में सन् १३०४ ई० में हुआ था और यह सन् १३७७ ई० में मरा था। इसने एशिया के दक्षिण भाग में तीस वर्ष तक पर्यटन किया था। यह दिल्ली में भी कुछ दिन रहा था। इसका यात्रा-विवरण भी विशद है।

अरबी भाषा में लिखे हुए इन यात्राविवरणों के सिवा बहुत से इतिहास ग्रंथ लिखे गए हैं, जिनसे भारत के इतिहास के मुसलमान काल का विस्तृत विवरण मिलता है। इनमें दो प्रकार के इतिहास हैं जिनमें विशेषतः वे हैं जो बादशाहों तथा सुलतानों की आज्ञा से लिखे गए हैं; और कुछ ऐसे भी हैं जो सरदारों के आश्रय में या 'स्वांतः सुखाय' लिखे गए हैं। कुछ ऐसे ग्रंथ भी लिखे गए हैं जिनमें प्रांत, ज़िले आदि के विवरण, उन स्थानों की तहसील, स्थानिक अफ़सरों के कार्य आदि भी विस्तार से दिए हुए हैं। देश के धर्म आदि पर भी पुस्तकें लिखी गई हैं। इस काल के पत्र हजारों की संख्या में मिले हैं, जिनसे ऐतिहासिक खोज में बहुत सहायता मिलती है। ऐसे पत्रों के अनेक संग्रह भी मिलते हैं, जो इंशाए माधोराम, बहारे सखुन, इंशाए निगारनामा, रुक़्क़आते आलमगीरी आदि नाम से प्राप्त हैं।

मुसलमानों के आरम्भिक आक्रमणों के समय के या उसके पहिले के इतिहास के लिये विशेष सहायक न होने पर भी उस समय का कुछ वृत्तान्त अर्ग़ून नामा, चच नामा, अजायबुल् बुल्दान, बेगला नामा, कामिलुत्तवारीख़ आदि पुस्तकों से मिल जाता है। ऐनुल् अख़बार, जामेउल् हिकायात, तवारीख़ अल-सुबुक्तगीं, ख़ुलासतुत्तवारीख़, खुलासतुल् अख़बार, तबक़ाते नासिरी, मीराते मसऊदी और ताजुल् मआसिर से पठान सुलतान कहे जानेवाले कई राजवंशों का पूर्ण ऐतिहासिक वृत्त मिलता है। फारसी के सर्वश्रेष्ठ भारतीय कवि अमीर खुसरो की मसनवियों तथा तारीख़े अलाई में भी ऐतिहासिक सामग्री मौजूद है। इनके सिवा और भी बहुत सी पुस्तकें उस समय की मिलती हैं, जिनका उल्लेख करना यहाँ आवश्यक नहीं है।

तारीखे मुबारकशाही के लेखक यहिया बिन अहमद सरहिंदी का काल पन्द्रहवीं शताब्दी का मध्य है। यह सैयद सुल-तानों के समय की एक मात्र पुस्तक है, जिससे तबक़ाते अकबरी, बदायूनी तथा फिरिश्ता आदि ने अपने ग्रंथ में सहायता ली है। प्रथम ग्रंथ ने तो उससे बड़े बड़े उद्धरण ही उठा कर अपना लिए हैं। कमालुद्दीन अब्दुर्रज्जाक़ कृत मतलउस्सादैन व मजमउल् बहरैन भी एक अच्छा ग्रंथ है, जिसमें तैमूर की चढ़ाई का संक्षिप्त वर्णन करने के बाद ग्रंथकर्त्ता की विजयनगर की यात्रा तथा वहाँ के विशद वर्णन से पन्द्रहवीं शताब्दी के भारत का अच्छा वृत्तान्त मिल जाता है। रौज़तुस्सफ़ा के लेखक मीर खोंद के पुत्र खोंदामीर

के खुलासतुल् अख़बार, दस्तूरुल् वज़रा और हबीबुस्सियर में अन्तिम पुस्तक कुछ महत्व की है। इसमें ग़ज़नवी वंश का वृत्तान्त दिया गया है। यह पुस्तक सन् १५२१ ई० में आरम्भ हुई थी। मुग़ल साम्राज्य के संस्थापक बाबर के समय के इतिहास का ज्ञान प्राप्त करने के लिये उसी बादशाह का लिखा आत्मचरित्र प्रधान साधन है। यह एक सहृदय, उदार-चेता तथा प्रसन्न-चित्त वीर सम्राट् की रचना है और इसमें इतिहास, यात्रा के समय स्थानों के सूक्ष्म निरीक्षण के फल तथा हार्दिक भावों के निदर्शन बड़ी सुन्दरता से व्यक्त किए गए हैं। इस ग्रन्थ का नाम तुज़ुके बाबरी या वाक़ेआते बाबरी है। यह तुर्की भाषा में लिखा गया है और इसका फारसी अनुवाद नवाब अब्दुर्रहीम ख़ाँ ख़ानख़ानाँ ने किया है। इसके एक से अधिक अँग्रेज़ी अनुवाद भी हो चुके हैं, पर दुःख है कि वह हिन्दी में अप्राप्य हैं। इसी की पुत्री गुलबदन बेगम ने याददाश्त से एक हुमायूँनामा लिखा था, जिसकी केवल एक हस्तलिखित प्रति अपूर्ण ही मिली है। इसमें भी बाबर तथा उसके पुत्र हुमायूँ का वृत्तान्त दिया गया है। इसका हिन्दी अनुवाद इसी ग्रन्थ-माला में प्रकाशित हो चुका है। हुमायूँ तथा शेरशाही सुलतानों के इतिहास के लिये जौहर आफ़ताबची का तज़किरतुल् वाक़ेआत, खोंदामीर का हुमायूँनामा, हैदर मिर्ज़ा दोग़लात की तारीख़े रशीदी, अब्बास ख़ाँ शेरवानी कृत तारीख़े शेरशाही और अहमद यादगार की तारीख़े सलातीने अफ़ग़ाना में पूरा मसाला है। निज़ामुद्दीन

अहमद बख़्शी के तबक़ाते अकबरी, अबुल्क़ादिर बदायूनी की मुंतख़िबुत्तवारीख़ तथा अबुल् फ़ज़ल के अकबरनामा तथा आईने अकबरी से भी इस काल के इतिहास में सहायता मिलती है। ये ग्रन्थ अकबर के राजत्व काल के इतिहास के लिये प्रधान साधन हैं। तारीख़े फ़रिश्ता, जिसका लेखक मुहम्मद क़ासिम हिन्दूशाह फ़रिश्ता था, एक विशद इतिहास है, जिसमें भारत के मुसलमानी राज्य के आरम्भ से लेकर अकबर के राज्य के प्रायः अन्त तक का इतिहास समाविष्ट है। इसकी विशेषता यह भी है कि इसमें दिल्लीश्वरों के सिवा अन्य प्रांतिक मुसलमानी राजवंशों का भी शृंखलाबद्ध इतिहास दिया गया है, जिससे इसका विशेष महत्व है। जहाँगीर ने स्वयं द्वाज़दः सालः जहाँगीरी लिखा है और इसके समय के इतिहास पर मोतमिद ख़ाँ का इक़बालनामः, कामगार ख़ाँ का मआसिरे जहाँगीरी तथा मुहम्मद हाजी कृत तत्तमए वाक़ेआते जहाँगीरी आदि लिखे गये हैं। अब्दुल हामिद लाहौरी तथा मुहम्मद वारिस कृत बादशाहनामों, इनायत ख़ाँ के शाहजहाँ नामा और मुहम्मद सालह कंबो के अमले सालह में शाहजहाँ के राजत्व काल का विस्तृत वर्णन दिया हुआ है। मुहम्मद काज़िम का आलमगीरनामा, मुहम्मद साक़ी मुस्तैद ख़ाँ का मआसिरे-आलमगीरी तथा ख़फ़ी ख़ाँ का मुंतख़िबुल्लुबाब औरंगज़ेब की बादशाहत के प्रधान इतिहास हैं। अंतिम पुस्तक में बाबर के भारत पर आक्रमण से लेकर मुहम्मद शाह के राजत्व के चौदहवें वर्ष तक का वृत्तांत दिया है। औरंगज़ेब ने इतिहास

लिखने की मनाही कर दी थी; और इस ग्रन्थ में उसके पूरे जीवन का वृत्तांत दिया गया है, इससे इसका विशेष महत्व है। इसके अनंतर मुग़ल साम्राज्य की अवनति होने से प्रांतिक सूबेदारों तथा नवाबों के आश्रय में बहुत सी पुस्तकें लिखी गईं, जिनमें मआसिरुल् उमरा, सियारुल् मुताखिरीन आदि महत्व की हैं।

मुसलमानों के राजत्व काल में यूरोपीय यात्री तथा व्यापारी भी बराबर भारत में आते रहते थे और इन लोगों ने भी अपने अनुभव से बहुत कुछ उपयोगी बातें लिखी हैं। इनमें से कितनों ने तो बड़े भारी भारी पोथे तैयार कर डाले हैं, जिनसे तत्कालीन भारतीय व्यापार, यहाँ की धार्मिक संस्थाओं पर उनके विचार, ईसाई धर्म के भारत में प्रवेश आदि का अच्छा वर्णन मिलता है। राजनीतिक क्षेत्र में इन लोगों ने कुछ सत्य घटनाएँ भी लिखी हैं और कुछ सुनी सुनाई बाजारू गप्पें भी भर दी हैं। पीट्रो डलावाल, निकोलाओ मैनूसी, मार्को पोलो, वर्निअर, टैवर्निअर, फ्रायर, सर टामस रो, टेरी आदि अनेक फ्रेंच तथा अँग्रेज जाति के यात्री भारत में आए और अपने अपने भ्रमण वृत्तांत लिख गए, जिनसे उनके समय के इतिहास पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है। वर्तमान युग अर्थात् अँग्रेजी राज्य के आरम्भ से आज तक के इतिहास के लिये प्रचुर साधन हैं और इन सब के वर्णन के लिये यह स्थान उपयुक्त नहीं है।

यहाँ तक भारतेतिहास के जिन साधनों का उल्लेख किया जा चुका है, उनका नवीन ग्रंथों के लिखने में बराबर प्रयोग

हो रहा है; और ज्यों ज्यों इस प्रकार के नए साधन खोज से मिलते जायँगे, त्यों त्यों हमारे देश के इतिहास पर विशेष प्रकाश पड़ता जायगा। पर एक प्रकार से इस कुल सामग्री का शतांश भी हमारी मातृ-भाषा तथा भारत की राष्ट्र-भाषा हिंदी में प्राप्त नहीं हैं। यह सब सामग्री तथा इन पर विद्वानों ने जो कुछ मनन कर विचार प्रकट किये हैं, वे सब अंग्रेजी में प्रस्तुत हैं। नई खोजों तथा अन्वेषणों के फल भी प्रायः अंग्रेजी ही में प्रकाशित होते हैं। इतिहास की ओर अभी तक हिंदी-प्रेमियों तथा पाठकों की बहुत कम रुचि है; और यही कारण है कि हिंदी साहित्य में यह विभाग प्रायः खाली है। हिंदी इस विषय में अंग्रेजी भाषा की क्या समानता कर सकती है! वह उसके आगे नहीं सी है। अंग्रेजी में तो प्रायः समस्त संसार के देशों, जातियों, स्थानों आदि के बड़े से बड़े तथा छोटे से छोटे इतिहास ही नहीं, प्रत्युत उन्हें तैयार करने के साधन आदि तक प्राप्त हैं। यहाँ हिन्दी में अपने देश ही के इतिहास के लिये केवल दुःख प्रकट करना या कभी सम्मेलनादि में प्रस्ताव कर देना ही रह गया है। ये संस्थाएँ ऐसे प्रस्ताव पास कर फ़ाइल में यह कह कर बन्द कर देती हैं कि यह बहुत बड़ा काम है। सत्य ही आलस्यप्रिय भारत के दुर्भाग्य से यह बहाना इतने दिन बीतने पर भी इसके मस्तिष्क से नहीं निकल रहा है। "दो दिल यक शवद बिशकुनद कोहरा" (दो हृदय यदि एक हो जायँ तो वे पहाड़ को तोड़ डालें) वाले मसले का यहाँ कम आदर है। भारत का पूरा इतिहास मत लिखिए, पर उसका जो साधन अँग्रेज़ी

आदि अन्य भाषाओं में हमारे भाषाभाषियों के लिये बंद सा पड़ा है, उसे तो अपनाइए। एक साथ सर्वांगपूर्ण बृहत् इतिहास न तैयार कर सकें तो कम से कम ऐसी मालाएँ तो निकालिए जिनमें एक एक प्रांत, एक एक राजवंश, एक एक जाति पर स्वतंत्र ग्रंथ प्रकाशित हों। ऐसी मालाएँ ही बृहत्तम इतिहास का काम दे जायँगी। भारत का इतिहास चाहे कितना ही बड़ा लिखा जाय, पर उसमें प्रांतिक, स्थानीय, जातीय, सामाजिक, धार्मिक आदि कितनी ही बातों का उतना समावेश न हो सकेगा, जितना उन पर अलग अलग ग्रंथ लिखने से हो सकेगा। बंगाल, गुजरात, विजयनगर आदि के जो अलग अलग इतिहास लिखे जायँगे उनमें उन प्रांतों के जितने विशद वर्णन हो सकेंगे, उतने कभी भारत के इतिहास में न दिए जा सकेंगे। इसी प्रकार भारतीय वीरों, सम्राटों तथा भारत ही के विदेशीय बादशाहों, आक्रमणकारियों तथा गवर्नर जेनरलों के सच्चे इतिहास यदि एक माला के रूप में निकाले जायँ तो वे भी मिलकर एक बड़े इतिहास का काम अवश्य दे सकेंगे।

ग्रंथ-परिचय

ऊपर इतिहास-साधन के जो चार विभाग किए गए हैं, उनमें चौथा विभाग वह सामग्री है जो प्रायः अरबी या फ़ारसी भाषा में प्राप्त है। इसी विभाग की एक पुस्तक के कुछ अंश का यह अनुवाद आज हिंदी के पाठकों के सन्मुख उपस्थित किया जाता है। यह

ग्रंथ अब्दुर्रज्ज़ाक़ ने लिखा है, जिनकी पदवी नवाब शाह-नवाज खाँ समसामुद्दौला थी। इनकी जीवनी आगे ग्रंथ में दी गई है, जिसे उन्हीं के एक मित्र मीर गुलाम अली आज़ाद ने लिखा है। उस जीवनी के देखने से ज्ञात होता है कि ये नवाब साहब राजनीतिक क्षेत्र में कितने व्यस्त रहते थे; पर इतना होते हुए भी वे इतिहास ज्ञान के ऐसे प्रेमी थे कि थोड़े ही समय में उन्होंने इतना बड़ा ग्रंथ तैयार कर डाला था। सन् १७४२ ई० में निज़ाम आसफ़जाह के विरुद्ध उनके पुत्र नासिरजंग का साथ देने के कारण इन्हें दंड स्वरूप अपना पद त्याग कर एकांत वास करना पड़ा था; और पाँच वर्ष के अनंतर निज़ाम साहब ने पुनः इन पर कृपा कर इन्हें बरार की दीवानी दी थी। इसी पाँच वर्ष में इन्होंने इस बड़े ग्रंथ की रचना की थी। इसके अनंतर मृत्यु काल तक इन्होंने द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ निज़ाम के समयों में उस राज्य के उच्चतम पद को सुशोभित किया था और दक्षिण के तत्कालीन राजनीतिक क्षेत्र के जटिल षड़यंत्रों में योग देते हुए उसी में अपने प्राण तक विसर्जित कर दिए थे। इस प्रकार की अशांति में मृत्यु होने से इस पुस्तक की पांडुलिपि कई टुकड़ों में बँटकर भिन्न भिन्न स्थानों में पहुँच गई, जिन्हें ग्रंथकर्ता के मित्र मीर गुलाम अली आज़ाद ने बड़े परिश्रम से एकत्र किया और ग्रंथकर्ता के पुत्र ने उसका संपादन किया। इस एकत्रीकरण, संपादन, चरित्र-लेखन, संपादन-सामग्री आदि का इन दोनों सज्जनों ने स्व-लिखित भूमिकाओं में विस्तार से वर्णन किया है। ग्रंथकर्ता के पुत्र

अबुलहई खाँ को भी इस ग्रंथ का रचयिता कहना संपादक कहने से विशेष उपयुक्त होगा, क्योंकि इस ग्रंथ का अर्धांश इनका रचित है। बंगाल एशाटिक सोसाइटी ने इस विशद ग्रथ को प्रायः आठ आठ सौ पृष्ठों के तीन भागों में प्रकाशित किया है; और मिस्टर बेवरिज द्वारा इसका अंग्रेजी अनुवाद भी प्रकाशित हो रहा है, जिसके छः सौ पृष्ठ प्रकाशित हो चुके हैं। इस समग्र ग्रथ में ७२६ जीवनियाँ संगृहीत हैं, जिनमें से ३४१ जीवनियाँ अब्दुलहई ख़ाँ लिखित हैं। इस अनुवाद ग्रंथ के ९१ जीवनचरित्रों में से ६९ चरित्र ग्रंथकर्ता के इन्हीं पुत्र के लिखे हुए हैं, जिससे इस ग्रंथ के मुखपृष्ठ पर पिता पुत्र दोनों ही का नाम देना उचित है।

इस ग्रंथ में सम्राट् अकबर के राज्यारंभ से लेकर मुहम्मद शाह बादशाह तक के मुग़ल दरबार के प्रायः सभी हिंदू तथा मुसलमान प्रसिद्ध वीर सरदारों, राजाओं आदि के चरित्र समाविष्ट हैं, जिससे यह ग्रंथ मुग़ल साम्राज्य के लगभग ढाई सौ वर्षों का भारी इतिहास बन गया है। इसी कारण भारतीय इतिहास के प्रेमियों के लिये यह एक अलभ्य वस्तु हो गई है। इसके चरित्र लिखने में ग्रंथकारों ने बड़ी योग्यता, अध्ययनशीलता तथा अध्यवसाय से काम लिया है और इस ग्रंथ में ऐतिहासिक घटनाओं को उनके महत्व के अनुरूप ही विस्तार या संक्षेप से लिखा है। एक ही घटना में योग देनेवाले कई सरदारों की जीवनी लिखते समय उस घटना का जब एक में विस्तृत वर्णन दे दिया है, तब अन्य में उसका उल्लेख मात्र करते चले गए हैं। तात्पर्य यह कि ग्रंथ बढ़ाने

का प्रयास न करने पर भी यह ग्रंथ इतना बृहत् हो गया है। इस ग्रंथ को पढ़ने पर यह भी स्पष्ट ज्ञात होता है कि ग्रंथकारों ने अपने समय के सरदारों की जीवनी तथा घटना का वर्णन करने के लिये अच्छी तरह जाँच पड़ताल की है। इनमें पक्षपात की बहुत कमी थी और धार्मिक द्वेष तथा कट्टरपन भी नहीं था। वास्तव में ये उदाराशय नवाब थे और अपने उच्च वंश के योग्य ही इन्होंने किसी के गुण-वर्णन में कमी नहीं की।

इस ग्रंथ की गद्य-लेखन-शैली भी बड़ी ही सरल तथा प्रसाद गुण पूर्ण है। छोटे छोटे वाक्यों में जीवन की राजनीतिक घटनावली का वर्णन किया गया है और फ़ारसी की वह इंशापर्दाज़ी नहीं दिखलाई गई है, जिसमें एक एक वाक्य कहीं कहीं कई कई पृष्ठों तक चला गया है। यह इतिहास लिखते थे और इन्होंने इतिहास ही के उपयुक्त भाषा का उपयोग किया है। 'तहज़ीब व अदब क़ायदे के पुतले' प्रायः सभी फ़ारसी इतिहास-लेखक अपने हृदय की धार्मिक दुर्बलता तथा लोभ के प्रभूत उदाहरण अपनी अपनी रचनाओं में छोड़ गए हैं, पर इनकी रचना में ऐसा कहीं नहीं हुआ है। प्रत्युत् जहाँ कहीं इन्होंने हिंदू धर्म की बातों का उल्लेख भी किया है, वहाँ द्वेष का लेश भी नहीं प्रकट होता।

इसी विशद ग्रंथ का केवल अष्टमांश इस अनुवाद पुस्तक के रूप में आ सका है। इसका कारण यह नहीं है कि ग्रंथकार ने केवल इतने ही हिंदू सरदारों की जीवनी दी है और पुस्तक के सात भाग मुसलमान सरदारों ही के लिये रक्षित रख छोड़े थे।

वास्तव में मुग़ल सम्राटों में एक अकबर ही ऐसा हो गया है जिसने दोनों धर्मवालों को समान दृष्टि से देखा था और जिसमें धर्मान्धता नहीं थी। जहाँगीर तथा शाहजहाँ के समय में धर्मान्धता चढ़ती गई और औरंगजेब के समय तो इसका दौरदौरा ही था। मुग़ल सम्राटों के अवनति काल में भी यही हाल था। इन कारणों से मुग़ल दरबार में हिंदू सरदारों की कमी थी। इन सरदारों में भी अधिकतर वे ही राजा हैं, जिन्होंने मुग़ल साम्राज्य की अधीनता स्वीकृत कर ली थी और इस कारण उसके दरबारी कहलाए थे। वास्तव में वे इस साम्राज्य ही के बनाए हुए उन सरदारों में से नहीं थे, जिनका सब कुछ इसी दरबार का दिया हुआ था। उदाहरणार्थ देखिए कि जयपुर, जोधपुर आदि के राजवंश मुग़ल साम्राज्य के पहिले के थे और वे मुग़ल वाहिनी का सामना न कर सकने पर इस दरबार के अधीनस्थ मांडलिक हो गए थे। आज भी वे उसी प्रकार बने हुए हैं। इसके विपरीत जहाँगीर के प्रधान मंत्री एतमादुद्दौला ग़ियास बेग, उनके पुत्र वजीर आज़म आसफ़ ख़ाँ तथा उनके पुत्र अमीरुल्उमरा शायस्ता ख़ाँ कौन थे? ग़ियास बेग जिस समय फारस से भारत आए थे, उस समय उनकी वह अवस्था थी कि वह अपनी नवजात कन्या मेहरुन्निसा का पोषण करने में असमर्थ थे और उसे रेगिस्तान में त्याग देने को उद्यत थे। भारत में इस समय सबसे बड़े तथा समृद्धिशाली देशी राज्य के संस्थापक नवाब आसफ़ जाह के पितामह कुलीज ख़ाँ तथा पिता मीर शहाबुद्दीन ख़ाँ तूरानी भारत आकर बहुत ही साधारण

सेवा में नियुक्त हुए थे। इस प्रकार देखा जाता है कि इस अनुवाद ग्रंथ में प्रायः अधिकतर उन्हीं हिंदू नरेश गण की जीवनियाँ संकलित हैं जो मुग़ल साम्राज्य की उन्नति के समय उनके अधीन हो गए थे। राजा टोडरमल, राजा विक्रमाजीत आदि ऐसे भी कुछ सरदार हुए, जो इसी साम्राज्य के बनाए हुए थे और उसी की सेवा में उनका अंत हो गया।

इस अनुवाद ग्रंथ में कई भारतीय राजवंशों की पाँच पाँच और सात सात पीढ़ियों तक का वर्णन आया है, जिससे उन राज्यों के प्रायः दो सौ वर्ष के इतिहास पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। यद्यपि यह सब सामग्री फारसी के अनेक ग्रंथों में मिल सकती है, पर उनका मनन करने के लिए काफी अवकाश चाहिए। इसमें उक्त साधन के साथ सामयिक मौखिक अन्वेषण का भी उपयोग सम्मिलित है, जिससे इसका महत्व बहुत बढ़ जाता है। स्थान स्थान पर इस प्रकार की पूछ ताछ तथा अध्ययन का आभास मिलता रहता है। जयपुर राजवंश ही के भारामल, भगवंतदास, मानसिंह, बहादुरसिंह (भाऊसिंह), महासिंह, जयसिंह मिरज़ा राजा, रामसिंह और जयसिंह सवाई नौ राजाओं की जीवनियाँ इस ग्रंथ में दी गई हैं। भारामल की जीवनी उसके अकबर की अधीनता स्वीकार करने से आरंभ की गई है, जो अकबर के राजत्व काल से आरंभ होती है। सवाई जयसिंह की मृत्यु सन् १७४३ ई० में हुई थी। अर्थात सन् १५५६ ई० से लेकर सन् १७४३ ई० तक के प्रायः दो सौ वर्ष का इतिहास दिया गया है। अंतिम

जीवनी के अंत में दो तीन पीढ़ी बाद तक का कुछ परिचय भी दे दिया गया है। इनके सिवा छः अन्य कछवाहे सरदारों का भी वृत्तांत दिया गया है, जिनसे इस इतिहास पर और भी प्रकाश पड़ता है। इसी प्रकार उदयपुर, जोधपुर, बीकानेर, बूँदी, ओड़छा आदि राज्यों के इतिहास का यह ग्रंथ एक सच्चा साधन कहा जा सकता है।

जैसा कि लिखा जा चुका है, यह अनुवाद मूल ग्रंथ के प्रायः आठवें भाग मात्र का है और मुग़ल काल के भारतीय इतिहास का विशिष्ट वर्णन अधिकतर मुसल्मान प्रधान मंत्रियों, अमीरुल्उमराओं (प्रधान सेनापतियों) तथा सरदारों की जीवनियों में दिया गया है, जिससे इस पुस्तक में संकलित हिंदू सरदारों की जीवनियों में उल्लिखित घटनाएँ बहुत संक्षेप में हैं और वे कहीं कहीं बेसिलसिले सी जान पड़ती हैं। इन कारणों से भूमिका में मुग़ल साम्राज्य के संस्थापक बाबर से पानीपत के अंतिम युद्ध तक का अति संक्षिप्त शृंखलाबद्ध इतिहास यहाँ दे दिया जाता है, जिससे पाठकों को बहुत कुछ सुभीता हो जायगा।

मुग़ल बादशाहों का संक्षिप्त इतिहास

ज़हीरुद्दीन मुहम्मद बाबर तैमूर लंग से छठी पीढ़ी में था। यह अपने पिता उमर शेख मिरज़ा की मृत्यु पर ग्यारह वर्ष की अवस्था में मध्य एशिया के फर्ग़ानः या खोखंद राज्य की राजधानी अंदीजान में सन् १४९४ ई० में गद्दी पर बैठा। इसको अपना

यौवन काल अपने राज्य की रक्षा के विफल प्रयत्न में व्यतीत करना पड़ा। अंत में अट्ठाईस वर्ष की अवस्था तक पहुँचते ही वह अपने पैतृक राज्य से निकाल बाहर हुआ। इसी बीच में इसने दो बार समरकंद विजय किया और खो दिया था। सन् १५०४ ई० ही में बाबर ने काबुल विजय कर वहाँ अपना राज्य स्थापित कर लिया था, इससे यह वहीं चला गया और मध्य एशिया में सफलता मिलने की आशा न देखकर इसने भारत की ओर दृष्टि फेरी।

सन् १५०५ ई० में बाबर ने ग़ज़नी पर अधिकार कर लिया और सिंध नदी के तट तक आकर वह लौट गया। सन १५१९ ई० में सिंध नदी पार कर उसने पंजाब के कुछ भाग पर अधिकार कर लिया। इस चढ़ाई में बाबर यूरोपियन आग्नेयास्त्र काम में लाया था, जो उस समय पूर्व में एक नई चीज़ थी। सन् १५२४ ई० में पंजाब के सूबेदार दौलत खाँ और इब्राहीम लोदी के चाचा आलम खाँ के सहायता माँगने पर बाबर लाहौर तथा दीपालपुर आया और उसने दोनों स्थानों को लूटा। दौलत खाँ के साथ न देने पर बाबर पंजाब में अपना सूबेदार नियत कर सेना एकत्र करने लौट गया।

सन् १५२६ ई० में बाबर बारह सहस्र सैनिक और सात सौ तोपें लेकर पानीपत के मैदान में इब्राहीम लोदी की सेना के सामने पहुँचा, जो संख्या में एक लाख के लगभग थी। २१ अप्रैल को

युद्ध हुआ, जिसमें इब्राहीम पंद्रह सहस्र सैनिकों के साथ मारा गया। बाबर ने दिल्ली और आगरे पर अधिकार कर लिया और २७ अप्रैल को दोनों स्थानों पर अपने बादशाह होने का घोषणा-पत्र निकाला। बाबर ने जो कुछ लूट में पाया था, उसमें से उसने काबुल आदि तक के निवासियों के लिये पुरस्कार भेजा था। बाबर के सैनिकों ने भी यद्यपि बहुत लूट प्राप्त की थी, परन्तु वे देश को लौटने के लिये बड़े उत्सुक हो रहे थे। पर बाबर के बहुत कहने पर वे रुक गए।

बाबर के जीवन के जो थोड़े दिन बच गए थे, वे भारत में राज्य की जड़ जमाने में ही बीत गए और नैतिक प्रबंध करने का उसे समय नहीं मिला, बाबर के सब से बड़े शत्रु महाराणा संग्राम सिंह थे, जो मेवाड़ के राजा और राजपूताने के राजाओं के प्रधान थे। यह राणा साँगा के नाम से अधिक प्रसिद्ध हैं और इन्होंने मालवा-नरेश महमूद खिलजी को परास्त कर भिलसा, सारंगपुर, चँदेरी और रणथंभौर छीन लिया था। इब्राहीम लोदी से इनसे दो बार युद्ध हुआ और दोनों ही बार परास्त होकर लोदी को लौट जाना पड़ा था। मृत्यु के समय इनके शरीर पर अस्सी घावों के चिह्न थे और एक आँख, एक हाथ और एक पाँव युद्ध में खो चुके थे। बाबर ने बड़ी तैयारी के साथ राणा पर चढ़ाई की और १६ मार्च सन् १५२७ ई० को सीकरी के पास कन्हवा के मैदान में दोनों सेनाओं का सामना हुआ। घोर युद्ध के अनंतर राणा परास्त होकर लौट गए। सन् १५२८ ई० में चँदेरी का दुर्ग टूटा

और राजपूत लोग बड़ी वीरता से खेत रहे। इसी वर्ष राणा ने रणथंभौर दुर्ग विजय किया था।

सन् १५२९ ई० में सुलतान इब्राहीम लोदी के भाई महमूद ने बिहार और बंगाल के अफ़ग़ान सरदारों को उभाड़ कर सेना सहित पूर्व की ओर से चढ़ाई की। बाबर भी युद्धार्थ ससैन्य आगे बढ़ा और घाघरा तथा गंगा जी के संगम पर मई महीने में युद्ध हुआ। इस बार भी बाबर की विजय हुइ। इस ने बंगाल के स्वतंत्र सुलतान नसरत शाह से संधि कर ली, जिससे बिहार दिल्ली साम्राज्य में मिल गया। सन् १५३० ई० में अड़तालीस वर्ष की अवस्था में बाबर की आगरे में मृत्यु हो गई।

बाबर के चारों पुत्रों में सब से बड़ा पुत्र हुमायूँ गद्दी पर बैठा। उसके साम्राज्य का विस्तार नाम मात्र के लिये कर्मनाशा नदी से वंक्षु (औक्सस) नदी तक और हिमालय पर्वत से नर्मदा नदी तक फैला हुआ था। गद्दी पर बैठते ही उसने पिता के इच्छानुसार कामराँ को काबुल और पंजाब दे दिया, जिसका वह स्वतंत्र स्वामी बन बैठा। अब हुमायूँ को नई सेना भरती करने में कठिनाई पड़ने लगी, क्योंकि वह अफ़ग़ानिस्तान से नए रंगरूट नहीं बुला सकता था। गुजरात के सूबेदार बहादुर शाह के विद्रोह करने पर हुमायूँ ने उस पर चढ़ाई कर उसे परास्त किया; परन्तु इधर बिहार के सूबेदार शेर शाह के बलवा करने पर वह वहाँ से लौट आया, जिससे फिर बहादुर स्वतंत्र बन बैठा। शेरखाँ ने बिहार में अपना राज्य जमा लिया था। वह हुमायूँ को पहिली बार कर्मनाशा और

गंगा के संगम के पास चौसा में सन् १५३९ ई० में और दूसरी वार दूसरे वर्ष कन्नौज में परास्त कर शेर शाह के नाम से दिल्ली की गद्दी पर बैठा। सूर जाति का अफ़ग़ान होने से इसका वंश सूरी वंश कहलाया।

हुमायूँ ने कामराँ से सहायता माँगी परंतु वह पंजाब भी शेर शाह के लिये छोड़ कर काबुल चला गया। इसके अनंतर हुमायूँ ने सिंध के सरदारों और मारवाड़-नरेश मालदेव से सहायता माँगी, पर वह कहीं सफल-प्रयत्न नहीं हुआ। इस प्रकार घूमता हुआ जब वह अमरकोट दुर्ग में पहुँचा, जो सिंध में है, तब वहाँ २३ नवम्बर सन् १५४२ ई० को जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर का जन्म हुआ। यहाँ से हुमायूँ कंधार होता हुआ फ़ारस के शाह तहमास्प के यहाँ पहुँचा। कंधार का सूबेदार कामराँ के अधीन उसी का भाई अस्करी था, जिसने अकबर को वहीं क़ैद कर लिया; और वह बहुत दिनों तक माता पिता से अलग उसी के पास रहा।

शेर शाह का अधिकार विहार, बंगाल और संयुक्त प्रांत पर हो चुका था और सन् १५४५ ई० में इसने मालवा भी विजय किया। उसी वर्ष जब यह बुंदेलखंड में कालिंजर दुर्ग घेरे हुए था, तभी बारूद में आग लग जाने से इसकी मृत्यु हो गई। शेर शाह का उत्तराधिकारी उसका द्वितीय पुत्र इसलाम शाह सूरी था, जिसने योग्यता के साथ सात वर्ष तक राज्य किया। इसकी मृत्यु पर इसके अल्पवयस्क पुत्र को मारकर उसका मामा मुबारिज़ खाँ मुहम्मद शाह आदिल के नाम से गद्दी पर बैठा। परन्तु

आदिल (न्यायी) होने के प्रतिकूल यह बड़ा विषयी था और इसने राज्य का कुल भार हेमूँ नामक बक्काल के हाथ में छोड़ दिया, जिससे चारों ओर विद्रोह हो गया। इब्राहीम सूरी ने दिल्ली और आगरा तथा अहमद खाँ ने सिकंदर शाह सूरी के नाम से पंजाब विजय कर लिया।

सन् १५५५ ई० में हुमायूँ उपयुक्त अवसर देखकर ससैन्य सिंध पार कर हिन्दुस्थान में आया। इस सेना का योग्य सेनापति बैराम खाँ खानखानाँ था। जूलाई में दिल्ली पर फिर से हुमायूँ का अधिकार हो गया, पर वह बहुत दिनों तक गद्दी का सुख नहीं भोग सका। सन् १५५६ ई० के जनवरी महीने में वह एक दिन संध्या समय सीढ़ी पर से गिरकर परलोक सिधारा।

हुमायूँ की मृत्यु के अनंतर सन् १५५६ ई० में उसका प्रसिद्ध पुत्र अबुल् मुज़फ्फ़र जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर चौदह वर्ष की अवस्था में बादशाह हुआ। बैराम ख़ाँ खान बाबा की पदवी के साथ अकबर का अभिभावक नियत हुआ। हुमायूँ की मृत्यु के समय यह पंजाब में सिकंदर शाह सूरी से लड़ रहा था। उसी समय बदख़्शाँ के बादशाह सुलेमान शाह ने काबुल पर अधिकार कर लिया और इधर पूर्व में मुहम्मद शाह आदिल के सरदार हेमूँ ने आगरा ले लिया तथा मुगलों को पराजित कर दिल्ली पर भी अधिकार कर लिया।

सन् १५५६ ई० में पानीपत के मैदान में बैराम ख़ाँ तथा हेमूँ के बीच घोर युद्ध हुआ। खानेज़माँ ने हेमूँ की कुल तोपों पर

अधिकार कर लिया। हेमूँ भी आँख में तीर लगने से मूर्च्छित हो गया और पकड़ कर अकबर के सामने लाया गया। बैरामखाँ ने उसे स्वयं मार डाला और दूसरे दिन दिल्ली पर अधिकार कर लिया। तीन वर्ष के अंदर सूरी वंश का अंत हो गया और अजमेर, ग्वालियर तथा जौनपुर पर भी अधिकार हो गया। सिकंदर सूर के फिर सैना सहित पहाड़ों से निकलने का वृत्तान्त सुनकर वह पंजाब गया। सिकंदर हार कर मानकोट में जा बैठा, जो आठ महीने के घेरे पर टूटा और वह भाग कर बंगाल चला गया।

बैरामखाँ जाति का तुर्क था। वह हुमायूँ के साथ फारस तक गया और उसी के साथ लौटा था। हुमायूँ ने उसे अकबर का शिक्षक नियत किया था। पहिला कार्य, जिससे अकबर का मन इसकी ओर से फिरा, यह था कि इसने एक तुर्की सरदार तर्दी बेग को केवल दिल्ली शीघ्र छोड़ देने के कारण बिना पूछे मरवा डाला था। पानीपत की विजय पर इसे और भी गर्व हो गया और अकबर को यह तुच्छ समझने लगा। सन् १५६० ई० में अकबर आगरे से दिल्ली चला गया और यह आज्ञा देता गया कि राज्य का कुल प्रबंध मैंने अपने हाथ में ले लिया। यह सुनकर बैरामखाँ खिसिया कर विद्रोही हो गया, परंतु पराजित होने पर अकबर की शरण में चला आया। अकबर ने इसका अपराध क्षमा करके इसके लिये मक्का जाने का प्रबंध कर दिया; पर रास्ते ही में पाटन के पास गुजरात में एक पठान ने इसे मार

डाला। इसी का पुत्र अब्दुर्रहीमखाँ खानखानाँ संस्कृत और हिंदी का पंडित तथा कवि हुआ है।

सन् १५६१ ई० में सेनापति अदहम खाँ ने मालवा पर, जो उस समय बाज़बहादुर के अधीन था, अधिकार कर लिया। इसके अंनतर पीरमुहम्मद खाँ वहाँ का सूबेदार हुआ। बाज़बहादुर के फिर चढ़ाई करने पर इसने उसे पराजित किया, परन्तु अधिकार में आए हुए दो नगरों पर ऐसा कठोर अत्याचार किया कि अब्दुल कादिर बदायूनी ऐसे कट्टर मनुष्य का भी हृदय दहल गया। बाज़बहादुर ने मालवा के ज़मींदारों की सहायता से फिर चढ़ाई की, जिसमें पीरमुहम्मद पराजित हो भागते समय नर्मदा में डूब गया और मालवा फिर अधिकार से निकल गया। उसी वर्ष अब्दुल्लाखाँ उज़बेग ने मालवा पर फिर से अधिकार कर लिया और बाज़बहादुर के शरण आने पर अकबर ने उसे अपना मुसाहिब बना लिया।

सन् १५६७-६८ ई० में अकबर ने चित्तौड़ दुर्ग घेर लिया। राणा उदयसिंह पहाड़ों में चले गए, किन्तु उनके प्रसिद्ध सामंतों साहीदास, प्रताप और जयमल ने क्रमशः बड़ी वीरता से दुर्ग की रक्षा की। चार महीने के निरंतर घेरे के बाद फरवरी सन् १५६७ ई० में एक दिन अकबर ने अपनी बंदूक से अंतिम दुर्गाध्यक्ष जयमल को गोली मारी, जिसकी मृत्यु पर राजपूतों ने जौहर व्रत किया; अर्थात् उनकी स्त्रियाँ अग्नि में जल मरीं और बचे हुए राजपूत युद्ध कर वीरगति को प्राप्त हुए। अकबर ने

रणथम्भौर और कालिंजर दुर्ग पर भी दो वर्ष में अधिकार कर लिया।

सन् १५६४ ई० में मालवा के उज़वेग सूबेदार अब्दुल्ला खाँ ने विद्रोह किया और पराजित होकर गुजरात की ओर भाग गया। सन् १५६५ ई० में कई उज़वेग सरदारों ने जौनपुर के सूबेदार को मिलाकर विद्रोह का झंडा खड़ा किया। यद्यपि छपरे के पास युद्ध में शाही सेना पराजित हुई, परंतु अकबर ने विद्रोहियों को पहले ही क्षमा कर दिया था, इससे कुल सरदार उसके पास चले आए। सन् १५६६ ई० में अकबर के भाई मिरज़ा हकीम ने, जो काबुल का सूबेदार था, पंजाब पर चढ़ाई की। यह सुनकर अकबर आगरे से दिल्ली होता हुआ लाहौर गया और अपने सेनापति को विद्रोहियों के पीछे भेजा, जो सिंध पार भगा दिए गए। यह अवसर पाकर उजवेग सरदारों ने फिर विद्रोह किया, परन्तु अकबर फुर्ती से चलकर मानिकपुर पहुँचा और उन्हें पराजित किया, जिसमें कई विद्रोही सरदार मारे गए।

सन् १५७२ ई० में गुजरात पर चढ़ाई की तैयारी करके अकबर अक्तूबर में अजमेर पहुँचा। गुजरात का सुलतान मुज़फ्फ़र शाह नाम मात्र को वहाँ का राजा था और उसके सभी सरदार स्वतंत्र बन बैठे थे, जिस कारण वहाँ सर्वदा आपस में युद्ध हुआ करता था। अकबर को इस प्रांत के लेने में अधिक युद्ध नहीं करना पड़ा। मुज़फ्फ़र शाह पकड़ा गया और अकबर ने अहमदाबाद को राजधानी बनाकर उस पर सूबेदार नियत कर

दिया। इसके अनन्तर उसने भड़ौच और बड़ोदा विजय किया और डेढ़ महीने के घेरे में सूरत दुर्ग भी ले लिया। इस प्रकार नौ महीने गुजरात में रहकर सन् १५७३ ई० के जून में अकबर आगरे पहुँचा। परन्तु कुछ ही दिनों में फिर वहाँ बलवा होने पर ११ दिन में ४०० कोस की दूरी तै कर वह वहाँ पहुँचा। दो युद्धों में विद्रोहियों को पराजित कर शांति स्थापित करके वह लौट आया। सन् १५८१ ई० में मुज़फ्फ़र शाह भाग कर गुजरात पहुँचा और उसने वहाँ विद्रोह आरंभ किया, जो बारह वर्ष तक चलता रहा। अब्दुर्रहीम ख़ाँ ख़ानख़ानाँ सेना सहित भेजे गए। कई युद्ध हुए, जिनमें बादशाह को बराबर विजय होती थी, पर सन् १५९३ ई० में मुज़फ्फ़र शाह के पकड़े जाकर आत्मघात कर लेने पर वहाँ शान्ति स्थापित हुई।

बंगाल और बिहार के अफ़ग़ान बादशाह सुलेमान ने अकबर की अधीनता केवल काग़ज़ पर स्वीकृत कर ली थी। उसकी मृत्यु पर उसके पुत्र दाऊद ख़ाँ ने इस नाम मात्र की अधीनता को भी नहीं स्वीकार किया। दाऊद के एक लोदी सरदार ने रोहिताश्वगढ़ में विद्रोह का झंडा खड़ा किया था, पर संधि होने पर दाऊद ने विश्वासघात करके उसे पकड़वा कर मरवा डाला। इस पर जौनपुर के सूबेदार मुनइम ख़ाँ ने, जिसे अकबर ने पहिले ही आज्ञा दे रखी थी, सन् १५७४ ई० में उस पर चढ़ाई की। अकबर स्वयं पटने पहुँचा, जहाँ दाऊद ख़ाँ सेना सहित ठहरा हुआ था। अकबर के पहुँचने पर वह पराजित होकर भाग गया।

मुग़ल सेना ने पीछा कर पटने पर अधिकार कर लिया। दाऊद उड़ीसा चला गया और अकबर विहार को सूबा बनाकर और सूबेदार नियत करके फ़तहपुर सीकरी लौट आया। उसके सेनापति राजा टोडरमल ने बंगाल पर भी अधिकार कर लिया। मुनइम खाँ सूबेदार की लखनौती में मृत्यु होने पर सन् १५७७ ई० में दाऊदखाँ ने फिर बखेड़ा मचाया, परन्तु युद्ध में पकड़े जाने पर वह मार डाला गया, जिससे उस समय शांति हो गई। कतलूखाँ नामक एक अफ़ग़ान ने जब फिर विद्रोह किया, तब राजा मानसिंह सूबेदार बनाकर वहाँ भेजे गए। युद्ध में उनके पुत्र जगतसिंह पराजित होकर पकड़े गए, पर उसी वर्ष कतलू की मृत्यु हो जाने से विद्रोहियों को उड़ीसा देकर शांति स्थापित की गई। दो वर्ष के अनंतर सन् १५९२ ई० में उसके पुत्रों को पराजित कर मानसिंह ने उड़ीसा पर भी पूर्ण अधिकार कर लिया।

महाराणा उदयसिंह की मृत्यु पर सन् १५७२ ई० में महाराणा प्रतापसिंह मेवाड़ की गद्दी पर बैठे। इनके पास न राजधानी थी और न कोष ही था, परन्तु बड़े धैर्य्य से इन्होंने राज्य सँभाला और सेना इत्यादि की तैयारी करने लगे। मानसिंह का तिरस्कार करने के कारण अकबर की आज्ञा से मानसिंह और महाबतखाँ ने बड़ी सेना लेकर इनपर चढ़ाई की। सन १५७६ ई० में गोगूँदा अर्थात् प्रसिद्ध हल्दी घाटी की लड़ाई हुई, जिसमें राणा पराजित हुए। इनकी स्वतंत्रता छीनने के लिये अकबर ने मेवाड़ में पचास

थाने नियत किए और स्वयं वहाँ प्रबंध करने के लिये गया, परन्तु मेवाड़ में उसका कभी पूर्ण अधिकार नहीं हुआ।

अकबर के सौतेले भाई मिरज़ा मुहम्मद हकीम का सन् १५५४ ई० में जन्म हुआ था और वह उसी समय से काबुल का शासक नियत हुआ था। सन् १५८२ ई० में वह भारत पर चढ़ आया था, पर परास्त होकर लौट गया था। सन् १५८५ ई० में उसकी मृत्यु हो गई, जिससे वहाँ अशांति फैल गई। अकबर वहाँ शांति स्थापित करने के लिये लाहौर आया और वहाँ सन् १५९८ ई० तक रहा। काश्मीर, काबुल, बलोचिस्तान और सीमांत प्रांत पर सेनाएँ भेजीं। अंतिम स्थान की चढ़ाई पर पहिले बादशाही सेना का पराभव हुआ और राजा बीरबल मारे गए; पर पुनः राजा टोडर-मल तथा राजा मानसिंह ने दो ओर से धावा कर यूसुफजइओं को परास्त कर दिया। राजा मानसिंह काबुल के सूबेदार हुए। बलूचियों ने अधीनता स्वीकृत कर ली।

सन् १३३४ ई० में काश्मीर के हिंदू राज्य के समाप्त होने पर वहाँ मुसलमानी राज्य स्थापित हुआ। सन् १५४१ ई० में बाबर का चचेरा भाई मिरज़ा हैदर दोगलात नाजुक शाह के नाम से गद्दी पर बैठा और दस वर्ष राज्य करने पर सन् १५५१ ई० में उसकी मृत्यु हुई। इसने तारीखे-रशीदी नामक एक ऐतिहासिक ग्रंथ लिखा था। सन् १५८६ ई० में राजा भगवानदास ने काश्मीर पर चढ़ाई की, परन्तु वे विजय प्राप्त नहीं कर सके। सन् १५८७ ई० में काश्मीर में विद्रोह होने के कारण मुग़ल सेना का बिना युद्ध के ही

उस पर अधिकार हो गया और तब से वह बराबर दिल्ली साम्राज्य के अंतर्गत बना रहा। सन् १५९३ ई० में वहाँ विद्रोह मचा था, परन्तु शीघ्र ही शांत हो गया। वहाँ के शाह को पाँच हज़ारी मन्सब दिया गया।

सुमेर राजपूतों के अनंतर साम्त्र राजपूतों ने सिंध में राज्य स्थापित किया था। बाबर द्वारा कंधार से निकाले गए शाहबेग अग़ून ने उस पर चढ़ाई की और उस पर अधिकार करके अपना राज्य स्थापित किया था। इसी वंश के राजत्व काल में अकबर ने उस पर चढ़ाई करके उसे अधिकृत कर लिया; परन्तु दो वर्ष में शान्ति स्थापित हुई। अग़ून की ओर से पोर्तुगीज़ और तिलंगे भी युद्ध में आए हुए थे। सन् १५९४ ई० में बिना युद्ध ही के कंधार पर अकबर का अधिकार हो गया।

अहमदनगर के मुर्तज़ा निज़ाम शाह के भाई बुरहान शाह ने सन् १५८६ ई० में अकबर से सहायता माँगी थी और वह सेना जो मालवे से भेजी गई थी, पराजित होकर लौट आई थी। सन् १५९२ ई० में बुरहान निज़ाम शाह सुलतान हुआ। उसकी मृत्यु पर उसके राज्य के सरदारों के चार दल हो गए जिनमें से एक ने अकबर की सहायता चाही। शाहज़ादा मुराद और मिरज़ा अब्दुर्रहीमखाँ ख़ानख़ानाँ की अधीनता में सेना भेजी गई, जिसने अहमदनगर घेर लिया। चाँद सुलताना ने, जो बहादुर निज़ाम की चाची थी, सबको अपनी ओर मिलाकर बड़ी वीरता से दुर्ग की रक्षा की और बरार देकर अंत में संधि कर ली।

ख़ानदेश ने मुग़ल सम्राट् की अधीनता मान ली थी। एक वर्ष के अनंतर गोदावरी के किनारे आशटी के क्षेत्र में दो दिन तक घोर युद्ध हुआ, जिसमें एक ओर अहमदनगर, बीजापुर और गोलकुंडा की सेनाएँ सुहेलखाँ की अधीनता में थीं और दूसरी ओर खानखानाँ के अधीन मुग़लों और ख़ानदेश की सेनाएँ थीं। उस युद्ध में खानखानाँ ही विजयी हुआ, पर ऐसी विजय पर भी जब दक्षिण का कार्य्य नहीं सुलझा, तब अकबर ने अबुल्-फ़ज़ल को वहाँ भेजा। उसकी सम्मति से अकबर स्वयं भी सन् १५९८ ई० में लाहौर से दक्षिण को गया। अहमदनगर में पहिले से भी अधिक गड़बड़ी मची हुई थी। सैनिक बलवे में चाँद सुलताना मारी जा चुकी थी। शाहज़ादा दानियाल और अब्दुर्रहीमखाँ खानखानाँ ने आज्ञा पाकर अहमदनगर घेर लिया और थोड़े ही समय में उस पर अधिकार कर लिया। बहादुर निज़ाम शाह पकड़ा जाकर ग्वालियर दुर्ग में कैद हुआ। परन्तु केवल राजधानी पर अधिकार होकर रह गया और इस राज्य का अन्त सन् १६३७ ई० में अकबर के पौत्र शाहजहाँ के समय में हुआ।

अहमदनगर के घेरने के पहिले ही खानदेश से कुछ अनबन हो गई थी, जिस पर अकबर ने उस राज्य पर भी अधिकार कर लिया। राजनगर असीरगढ़ ग्यारह महीने के घेरे पर टूटा। बादशाह ने खानदेश और बरार का एक सूबा बनाकर शाहज़ादा दानियाल को सूबेदार और अब्दुर्रहीमखाँ ख़ानख़ानाँ को वज़ीर

नियत किया। बीजापुर और गोलकुंडा के सुल्तानों ने अपने अपने एलची और उपहार भेजे तथा बीजापुर की शाहज़ादी से दानियाल का विवाह भी हुआ। इसके अनन्तर अहमदनगर का कार्य पूरा करने के लिये अबुलफ़ज़ल् को वहीं छोड़कर अकबर स्वयं आगरे लौट गया।

अकबर यह वृत्तांन्त सुनकर ही कि सलीम ने विद्रोह किया है, आगरे लौटा था। बादशाह दक्षिण जाते समत सलीम को अजमेर का सूबेदार नियत करके महाराणा मेवाड़ से युद्ध करने के लिये उसे आज्ञा दे गया था। उसके साथ राजा मानसिंह भी नियुक्त थे, परन्तु उनकी सूबेदारी बंगाल में विद्रोह होने के कारण उनके वहाँ चले जाने पर सलीम इलाहाबाद, अवध और बंगाल पर अधिकार कर वहाँ का बादशाह बन बैठा। अकबर के पत्र लिखने पर उत्तर में बड़ी नम्रता दिखलाई और अन्त में सलीमा सुलताना बेगम के मध्यस्थ होने पर सलीम ने अकबर से भेंट की और फिर अपनी स्वतंत्र सूबेदारी इलाहाबाद को लौट गया। इसी समय अबुल्फ़ज़ल, जो थोड़े सिपाहियों के साथ दक्षिण से लौट रहा था, रास्ते में सलीम के इच्छानुसार ओड़छा के राजा वीरसिंह देव बुँदेला के हाथ से मार डाला गया। अकबर को यह सुनकर बड़ा दुःख हुआ और उस ने ओड़छा विजय कर उसे लुटवा लिया।

दो पुत्रों तथा कई मित्रों को मृत्यु होने के कारण यह कुछ दिनों से बराबर अस्वस्थ बना रहता था। सन् १६०५ ई० के

सितम्बर में ६३ वर्ष की अवस्था में इसने इस आसर संसार को त्याग दिया।

महाराणा अमरसिंह ने सन् १६०८ ई० में ख़ानख़ानाँ के भाई को देवीर युद्ध में और सन् १६१० ई० में अब्दुल्ला खाँ को रानापुर के युद्ध में पराजित किया। सन् १६११ ई० में शाहज़ादा पर्वेज़ की अधीनस्थ सेना को खमनीर घाटी में परास्त किया। तब जहाँगीर ने पर्वेज़ को लाहौर बुला लिया। यद्यपि राणा ने विजयों पर विजय प्राप्त की थीं, पर उनकी सेना बराबर घटती जाती थी और उन्हें इतना भी अवकाश नहीं मिलता था कि वह अपने छोटे राज्य से उस घटी की पूर्ति कर सकें। सन १६१३ ई० में २० सहस्र सैनिकों को लेकर शाहज़ादा खुर्रम ने चढ़ाई की, जिस के साथ अज़ीमखाँ कोका १२ सहस्र घुड़सवारों के सहित आया था। अंत में सन् १६१४ ई० में राणा ने पराजित होकर संधि कर ली।

अकबर के अहमदनगर विजय कर लेने के अनंतर उस राज्य का प्रबंध मलिक अंबर नामक एक हब्शी के हाथ में आया। इस ने उस स्थान पर एक नई राजधानी बसाई, जिस स्थान पर अब औरंगाबाद है। अकबर की मृत्यु पर उसने अहमदनगर पर फिर से अधिकार कर लिया। राजा टोडरमल के प्रथानुसार कर उगाहने का प्रबंध चलाया। सन १६०७ ई० में जहाँगीर ने अब्दुर्रहीम खाँ ख़ानख़ानाँ और शाहज़ादा पर्वेज़ को सेना सहित अहमदनगर पर भेजा। ख़ानख़ानाँ और दूसरे सेनानियों में वैमनस्य होने के

कारण अंबर ने मुग़ल सेना को परास्त कर दिया, जिस पर जहाँगीर ने ख़ानख़ानाँ को बुला लिया और उन के स्थान पर ख़ानेजहाँ को भेजा। गुजरात से अबदुल्लाखाँ को और बुरहानपुर से राजा मानसिंह को पर्वेज़ की सहायता करने के लिये भेजा। अब्दुल्ला ने दूसरी सेनाओं के आने के पहिले ही आक्रमण कर दिया और पराजित हो बहुत हानि उठाकर सन् १६१२ ई० में वह गुजरात भाग गया। तब जहाँगीर स्वयं माँडू गया और वहाँ से शाहजहाँ को युद्ध करने के लिये भेजा, जिसने बीजापूर को मिला लिया। अंबर ने घरेलू झगड़ों से निर्बल होने के कारण राज्य का कुछ अंश देकर संधि कर ली। एक बार उसने फिर युद्ध छेड़ा, परन्तु शाहजहाँ ने उसे पुनः परास्त किया।

फ़ारस के तेहरान नगर के एक उच्चपदस्थ अधिकारी का पुत्र मिरज़ा ग़यास दरिद्र हो जाने के कारण अपनी स्त्री, दो पुत्रों और एक पुत्री के साथ भारत आया। जब वह कंधार पहुँचा तब वहीं दूसरी पुत्री पैदा हुई, जिसका नाम मेहरुन्निसा रखा गया और जिसे साथ के एक सौदागर ने पाला था। इसी के आश्रय से इन लोगों की पहुँच अकबर के दरबार में हो गई। मेहरुन्निसा बड़ी होने पर माँ के साथ महल में आने जाने लगी, जहाँ शाहज़ादा सलीम उसे देख कर उसके प्रेमपाश में बँध गया। अकबर ने यह वृत्तान्त जानकर उसका विवाह शेर अफ़ग़न से कर दिया, जिसे फ़ारस से आए थोड़े ही दिन हुए थे। उसे बर्दवान में जागीर देकर बंगाल भेज दिया।

जहाँगीर उस सौंदर्य को भूला नहीं था। गद्दी पर बैठते ही उसने अपने धाय-भाई कुतुबुद्दीन को बंगाल का सूबेदार बनाकर और नूरजहाँ को किसी प्रकार दिल्ली भेजने की आज्ञा देकर वहाँ भेजा। शेर अफगन ने उसको बातों से क्रुद्ध होकर उसे मार डाला और उसी झगड़े में वह स्वयं भी मारा गया। मेहरुन्निसा दिल्ली भेजी गई और कई वर्ष के अनंतर सन १६११ ई० में बड़े समा-रोह से जहाँगीर के साथ उसका विवाह हो गया। पहिले उसको नूरमहल और फिर नूरजहाँ की पदवी मिली। उसके पिता प्रधान मंत्री नियत हुए और भाई आसफ खाँ को अमीरुल् उमरा का उच्च पद मिला। राज्य का कुल प्रबंध इसके हाथ आ गया, जिसे यह योग्यतापूर्वक पिता और भाई की सम्मति से करती रही। इसका नाम तक सिक्कों पर रहने लगा। यह सन् १६४५ ई० में पंचतत्व में मिल गई और लाहौर में जहाँगीर के पास गाड़ी गई।

जहाँगीर सन् १६२१ ई० में क्षय रोग से अधिक पीड़ित हो गया और उसी समय खुसरो की ज्वर से एकाएक मृत्यु हो गई, जो दक्षिण में शाहजहाँ की क़ैद में था। नूरजहाँ के भाई आसफ़ खाँ की पुत्री मुमताज़ महल शाहजहाँ से व्याही गई थी, जिस कारण वह इसकी सहायता करती थी। परंतु जब अपनी पुत्री का, जो शेर अफगन से हुई थी, विवाह शाहज़ादा शहरयार से कर दिया, तब उसका पक्ष लेने लगी। इस पर शाहजहाँ ने, जिसे काबुल जाने की आज्ञा हुई थी, विद्रोह आरम्भ कर दिया। जहाँगीर लाहौर से आगरे होता हुआ सन् १६२३ ई० में बिलूचपुर पहुँचा

और शाहजहाँ के दक्षिण भागने पर पर्वेज़ तथा महावत खाँ को ससैन्य उसके पीछे भेजकर स्वयं अजमेर चला गया। तेलिंगाना और मुसलीपट्टम होता हुआ शाहजहाँ सन् १६२४ ई० में बंगाल पहुँचा और उस पर अधिकार कर लिया, परन्तु शाही सेना से पराजित होने पर फिर दक्षिण भाग गया। सन् १६२५ ई० में पिता से क्षमा माँगकर अपने दो पुत्रों–दारा और औरंगजेब–को दिल्ली भेज दिया।

इसी वर्ष नूरजहाँ की कोपाग्नि से अपनी रक्षा करने के लिये महावत खाँ ने भी विद्रोह किया और सन् १६२६ ई० में जहाँगीर को काबुल जाते समय पाँच सहस्र राजपूतों की सहायता से कैद कर लिया। नूरजहाँ पहिले लड़ी, पर कुछ न कर सकने पर बादशाह के पास चली गई। दूसरे वर्ष बड़ी बुद्धिमत्ता से उसने अपने को और बादशाह को स्वतंत्र कर लिया और महावत खाँ भागकर शाहजहाँ से जा मिला।

जहाँगीर लाहौर होता हुआ काश्मीर गया, जहाँ से लौटते समय २८ अक्तूबर सन् १६२७ ई० को वह ६० वर्ष की अवस्था में परलोक सिधारा। जहाँगीर अधिक व्यसनी, हठी और निर्दय था; परन्तु बड़े होने पर ये सब दुर्गुण कुछ कम हो गए थे। वह सहनशील, न्यायी और क्षमाशील था, पर क्रुद्ध होने पर वह क्रूरता का व्यवहार भी कर बैठता था।

जहाँगीर के सबसे बड़े पुत्र खुसरो और द्वितीय पर्वेज की मृत्यु हो चुकी थी। अब केवल शाहजहाँ और सबसे छोटे पुत्र

शहरयार बच गए थे। आसफ खाँ दिखलाने को खुसरो के पुत्र दावर बख्श अर्थात् बुलाकी को बादशाह बनाकर और नूरजहाँ को कारारुद्ध कर लाहौर आया और शहरयार को दानियाल के दो पुत्रों सहित पराजित कर क़ैद कर लिया। शाहजहाँ सूरत से उदयपुर आया, पहिला दरबार यहीं किया और जनवरी सन् १६२८ ई० में आगरे पहुँचकर और उन कैदियों को समाप्त कर गद्दी पर बैठा।

काबुल पर उज़बेगों ने आक्रमण किया था, पर वे परास्त होकर लौट गए। जुझारसिंह बुँदेला ने विद्रोह किया, जो कई महीने के युद्ध पर दमन हुआ। सन् १६२९ ई० में ख़ानेजहाँ लोदी ने, जो दक्षिण का सूबेदार था, विद्रोह किया और वहाँ के सुलतानों के सहायता देने का वचन देने पर शाहजहाँ को स्वयं दक्षिण जाना पड़ा। ख़ानेजहाँ परास्त होकर काबुल जाने के विचार से उत्तर की ओर चला, पर रास्ते ही में बुंदेलखंड के राजपूतों के हाथ मारा गया।

खानेजहाँ के विद्रोह के कारण शाहजहाँ स्वयं दक्षिण गया और बुरहानपुर से तीन सेनाएँ तीन ओर से अहमदनगर पर भेजीं। सुल्तान मुर्तज़ा शाह दौलताबाद के पास युद्ध में पराजित हो दुर्ग में जा बैठा, जो घेर लिया गया। दो वर्ष वर्षा न होने से दक्षिण में अकाल पड़ा हुआ था; और इधर बीजापुर ने भी अहमदनगर की सहायता देने के विचार से युद्ध छेड़ दिया। अहमदनगर के सुलतान मुर्तज़ा को मारकर उसके वज़ीर फतह खाँ ने

एक छोटे बच्चे को गद्दी पर बैठाकर संधि कर ली। बीजापुर के सुल्तान भी परास्त होकर दुर्ग में घिर गए थे, पर अकाल के कारण मुग़लों को घेरा भी उठा लेना पड़ा। सन् १६३२ ई० में महावत खाँ को दक्षिण का सूबेदार नियुक्त कर शाहजहाँ दिल्ली लौट गए। इससे पराजित होकर फतह खाँ ने दूसरे वर्ष मुगलों की नौकरी स्वीकार कर ली और अहमदनगर के निजाम ग्वालियर दुर्ग में भेज दिए गए। बीजापुर से युद्ध चलता रहा। अहमदनगर में शाह जी भोंसला ने एक नए निजाम को गद्दी पर बैठा कर युद्ध आरम्भ कर दिया। सन् १६३५ ई० में शाहजहाँ फिर दक्षिण आया और बीजापुर के घेरे जाने पर वहाँ के सुल्तान ने कर देना स्वीकार कर लिया। सन् १६३७ ई० में शाहजी ने भी हारकर बीजापुर के यहाँ नौकरी कर ली और अहमदनगर राज्य का अंत हो गया। गोलकुंडा के सुल्तान ने भी डर से कर देना स्वीकार कर संधि कर ली और उसी वर्ष शाहजहाँ दिल्ली को लौट गया।

सन् १६३७ ई० में फारस के सूबेदार अली मर्दाँ खाँ ने शाह सफ़ी के अत्याचार के डर से दुर्ग कंधार शाहजहाँ को सौंप कर उसका दासत्व स्वीकार कर लिया। वह बदख्शाँ पर भेजा गया, जिसे लूट पाटकर वह जाड़े के पहिले ही लौट आया। दूसरे वर्ष राजा जगतसिंह भेजे गए, जो उज़बेगों और बरफ के अंधड़ों को कुछ न समझकर उस पर अधिकार जमाए रहे। सन् १६४५ ई० में शाहजहाँ स्वयं काबुल गया और सुलतान मुराद तथा

अलीमर्दां ख़ाँ के अधीन वहाँ सेना भेजकर पूर्ण अधिकार कर लिया। सन् १६४७ ई० में नज्र मुहम्मद ख़ाँ को बदख़्शाँ देकर शाहजहाँ ने अपनी सेना लौटा ली। सन् १६४९ ई० में जब फारस का कंधार पर फिर अधिकार हो गया, तब उसी वर्ष और सन् १६५२ ई० में दो बार औरंगजेब ने और सन् १६५३ ई० में दारा शिकोह ने उसे लेने का बड़ा प्रयत्न किया, पर सब निष्फल गया।

शाहजहाँ के चार पुत्र थे, जिनका नाम अवस्थानुसार क्रमशः दाराशिकोह, शुजाअ, औरंगजेब और मुराद था। प्रथम को यौवराज्य और बाक़ी को क्रमशः बंगाल, दक्षिण तथा गुजरात की सूबेदारी मिली थी। सन् १६५७ ई० में शाहजहाँ के अधिक बीमार होने पर सभी पुत्रों ने उसकी मृत्यु निश्चित समझकर साम्राज्य पर अधिकार करने की तैयारी की। धूर्तराट् औरंगजेब ने मुराद को बादशाह बनाने का लोभ देकर मिला लिया। सन् १७५८ ई० में धर्मतपुर तथा सामूगढ़ के दो युद्धों में दारा को परास्त कर औरंगजेब ने आगरे तथा दिल्ली पर अधिकार कर लिया। औरंगजेब ने धूर्तता से आगरा दुर्ग को शाहजहाँ के लिये कारागार रूप में परिणत कर दिया, जहाँ उसे केवल बड़ी पुत्री जहाँआरा का आश्रय था। इसके एक मास अनंतर मथुरा में २३ जून को मुराद को अति मद्यपान कराकर धोखे से पकड़वा ग्वालियर दुर्ग में भेज दिया। २१ जूलाई सन् १६५८ ई० को औरंगजेब दिल्ली के राजसिंहासन पर बैठा।

दारा दूसरी सेना एकत्र करके अजमेर आया, पर वहीं से १३ मार्च सन् १६५९ ई० को परास्त होकर भागा। पीछा करते करते अंत में वह कच्छ में पकड़ा जाकर दिल्ली लाया गया। ३० अगस्त को एक दुबले पतले हाथी पर बैठाकर और बाज़ार में घुमवाकर औरंगजेब ने उसे मरवा डाला। इन पर स्वधर्म छोड़ने का दोष लगाकर प्राण-दंड की आज्ञा दी गई थी। २६ दिसम्बर को ग्वालियर में मुराद और सुलेमान शिकोह भी मारे गए। शुजाअ ने एक बार और प्रयत्न करने के विचार से ससैन्य चढ़ाई की; परन्तु खजवा में ५ जनवरी को पूर्णतया परास्त होने पर वह भी भाग गया। मीर जुमला ने पीछा कर बंगाल पर अधिकार कर लिया और शुजाअ सपरिवार अराकान चला गया, जहाँ सब नष्ट हो गए। औरंगजेब का साम्राज्य अब निष्कंटक हो गया।

सात वर्ष आगरा दुर्ग में कैद रहकर ८८ वर्ष की अवस्था में शाहजहाँ की २२ जनवरी सन् १६६६ ई० को मृत्यु हो गई। वह ताजमहल में अपनी स्त्री के पास गाड़ा गया।

सम्राट् आलमगीर सन् १६५९ ई० के मई मास में औरंगजेब आलमगीर की पदवी के साथ बादशाह बन चुका था, पर सन १६६६ ई० में उसने बड़े समारोह से द्वितीय बार अड़तालीस वर्ष की अवस्था में राजगद्दी का उत्सव मनाया था। इसी के राजत्व में मुगल साम्राज्य अपनी पूर्ण सीमा को प्राप्त हुआ। इसके राज्य-काल का इतिहास वास्तव में मुगल साम्राज्य के ह्रास का और एक बड़े साम्राज्य का, जिसमें मुख्य कर हिंदू ही बसते थे, म्लेच्छ-

धर्मानुसार शासन करने के प्रयत्न की विफलता का इतिहास है। इसने भी अकबर की तरह उंचास वर्ष राज्य किया था।

बंगाल के सूबेदार और योग्य सेनाध्यक्ष मीर जुमला ने कूच बिहार और आसाम पर आक्रमण करके सन् १६६१ ई० और सन् १६६२ ई० में वहाँ की राजधानियों पर अधिकार कर लिया; पर महामारी के कारण सेना नष्ट हो गई और यह भी स्वयं माँदा हो ३१ मार्च सन् १६६२ ई० को ढाका पहुँचने के पहिले ही मर गया। इसके उपरांत इसके उत्तराधिकारी शाइस्ता खाँ ने पुर्तगीज़ और बर्मी समुद्री डाकुओं से सन् १६६६ ई० में चटगाँव छीन लिया और बंगाल की खाड़ी में सोन द्वीप पर अधिकार कर लिया। सन् १६६५ ई० में काश्मीर से तिब्बत पर सेना भेजी गई और दलाई लामा ने भी अधीनता स्वीकृत कर ली।

सन् १६७३ ई० से १६७५ ई० तक पश्चिम में सिंध नदी के उस पार अफ़ग़ानों का उपद्रव बना हुआ था और स्वयं औरंगज़ेब अपने सेनापतियों के कार्य की देख भाल करता था। दक्षिण में बीजापुर और गोलकुंडा से बराबर युद्ध चल रहा था। इस प्रकार उत्तरी भारत में औरंगज़ेब के राजत्व के प्रथम बीस वर्ष में बराबर शांति विराजती रही और सीमांत युद्धों से भारत में किसी प्रकार की अशांति नहीं फैलने पाई।

सन् १६६९ ई० से औरंगज़ेब की धार्मिक नीति बिगड़ने लगी, क्योंकि उसका राज्य अब दृढ़तापूर्वक जम चुका था। उसने प्रांतों

के सूबेदारों को आज्ञाएँ भेज दीं कि स्वतंत्रता के साथ हिन्दुओं के मंदिरों और संस्कृत पाठशालाओं का नाश करो और शिक्षा तथा मूर्तिपूजन को रोको। शाहजहाँ के स्वामिभक्त सरदार मारवाड़-नरेश महाराज यशवंतसिंह की काबुल में मृत्यु हो गई थी; और मृत्यु के अनंतर पैदा हुए उनके पुत्र अजीतसिंह को मुसल्मानी धर्म में दीक्षित करने के लिये औरंगज़ेब ने दिल्ली में उसे रोक रखना चाहा था। पर उसका स्वामिभक्त सरदार दुर्गादास बड़ी वीरता से अजीतसिंह को बचाकर मारवाड़ चला गया। इस घटना से राजपूताने भर में विद्रोह फैल गया और मेवाड़ तथा मारवाड़ में सन्धि हो गई। जयपुर अब तक मुगल सम्राट् का भक्त बना रहा। औरंगज़ेब ने मारवाड़ पर सेनाएँ भेजीं, स्वयं गया और कुछ समय के लिये उस पर उसका अधिकार भी हो गया। सम्राट् के चौथे पुत्र अकबर ने, जो मारवाड़ पर भेजा गया था, राठौड़ों से मिलकर बादशाहत लेने के विचार से विद्रोह किया; परन्तु उसके पिता की कूट नीति ऐसी सफल हुई कि उसकी सेना भाग गई और उसे स्वयं दक्षिण भाग जाना पड़ा। वहाँ से वह फारस गया, जहाँ सन् १७०६ ई० में उसकी मृत्यु हो गई।

जब औरंगज़ेब दक्षिण का सूबेदार था, तभी से वह बीजापुर और गोलकुंडा के सुलतानों से बराबर युद्ध करता रहा; और वह सफल प्रयत्न होने ही को था, जब सन् १६५७ ई० में उसे झटपट संधि करके दिल्ली के तख्त के लिये उत्तर जाना पड़ा। सम्राट् होने पर भी वह दक्षिण के सूबेदारों को बराबर इन सुलतानों से युद्ध

करने की आज्ञा भेजता रहा ; पर उनके सफल न होने पर अंत में स्वयं दक्षिण की ओर यात्रा की। इसी बीच में वहाँ एक नया शत्रु पैदा हो रहा था, जिसे इसने पहिले तुच्छ समझा था; पर कुछ समय में उसका बल यहाँ तक बढ़ा कि औरंगज़ेब अपनी प्रचंड मुगल वाहिनी से भी उसका नाश करने में विफल हुआ और अंत में उसी प्रयत्न में उसका भी अंत हो गया।

औरंगज़ेब के दक्षिण पर चढ़ाई करने का वृत्तान्त देने के पूर्व इस नए मराठा राज्य के उत्थान और उसके स्थापक शिवाजी का कुछ इतिहास देना आवश्यक है। वार्धा नदी के पश्चिम और सतपुड़ा पहाड़ी के दक्षिण गोआ तक जो पश्चिमी घाट का प्रांत है, उसी को महाराष्ट्र देश कहते हैं और यहीं के रहनेवाले मराठा कहलाते हैं। ये छोटे, दृढ़, परिश्रमी, धीर और कार्यकुशल होते हैं। ये जिस काम में लग जाते हैं, उसे सब सुख आदि छोड़कर किसी प्रकार से पूरा कर ही के छोड़ते हैं। महाराष्ट्र ब्राह्मण बड़े मेधावी, नीतिज्ञ और विद्वान् होते हैं।

अहमदनगर के जागीरदार शाहजी, उस राज्य का अंत हो जाने पर, बीजापुर के अधीनस्थ पूना के सूबेदार नियत हुए। इन्हीं के पुत्र प्रसिद्ध शिवाजी हुए। १९ वर्ष की अवस्था ही से शिवाजी ने आसपास के दुर्गों पर अधिकार करना आरंभ कर दिया और दस बारह वर्ष में पूना के दक्षिण में बहुत बड़े प्रांत के स्वामी बन गए। बीजापुर के सुलतान ने सन् १६५९ ई० में एक बड़ी सेना अफ़ज़ल खाँ के सेनापतित्व में इनका दमन करने

के लिये भेजो, जिस पर शिवा जी ने बड़ी नम्रता दिखलाई और दोनों ने एक खेमे में भेंट की। अफजल खाँ मारा गया और उसकी सेना नष्ट हो गई। तीन वर्ष के अनंतर बीजापुर ने इनसे संधि कर ली और जो प्रांत यह अधिकृत कर चुके थे, वह इन्हीं के अधिकार में रह गया।

शिवाजी ने मुग़ल साम्राज्य में भी लूट पाट मचाना आरंभ कर दिया और सन् १६६२ ई० में सूरत नगर को लूट लिया, जिस पर औरंगज़ेब ने अपने मामा शाइस्ता खाँ को दक्षिण का सूबेदार बनाकर भेजा। उसने पूना पर अधिकार कर लिया, जहाँ शिवाजी एकाएक थोड़े से सैनिकों के साथ गुप्त रूप से पहुँचे और रात्रि में उसके महल पर धावा किया, जिसमें उसके प्राण किसी तरह बच गए और वह बंगाल भेजा गया। शाहज़ादा मुअज्जम कई सेनापतियों के साथ भेजा गया, पर कुछ लाभ न हुआ। तब सन् १६६५ ई० में जयपुर-नरेश राजा जयसिंह भेजे गए जिन्होंने इन्हें परास्त करके दिल्ली जाने के लिये बाध्य किया। औरंगज़ेब ने मूर्खता-वश इनके योग्यतानुसार इनकी प्रतिष्ठा करने के बदले इन्हें कैद करना चाहा; पर यह वहाँ से कौशल से निकल भागे और दक्षिण पहुँचते ही फिर युद्ध आरंभ कर दिया। सन् १६६७ ई० में मुग़ल सेनानियों को इन्हें राजा मानने के लिये बाध्य होना पड़ा।

सन् १६७४ ई० में बड़े समारोह के साथ शिवाजी राजगद्दी पर बैठे। यह अभिषेकोत्सव रायगढ़ में संपन्न हुआ, जो नए राज्य

को राजधानी थी। शिवा जी ने उत्तर में नर्मदा नदी तक मुग़ल राज्य में चौथ लेना आरम्भ कर दिया था; और जो यह कर देते थे, उनकी लूट मार से रक्षा हो जाती थी। उन्होंने दक्षिण में कर्णाटक पर चढ़ाई करके, जहाँ इनके पिता और भाई की जागीर थी, दुर्ग वेलोर और जिंजी पर अधिकार कर लिया। बीजापुर के सुलतान ने भी मुग़लों के विरुद्ध सहायता करने के कारण इन्हें बहुत सी भूमि दी। सन् १६८० ई० में ५३ वर्ष की अवस्था में शिवा जी ने इस नश्वर शरीर को छोड़ दिया।

शिवा जी की मृत्यु के एक वर्ष अनंतर सन् १६८१ ई० में औरंगज़ेब ने दक्षिण की सेना का आधिपत्य स्वयं ग्रहण किया; और गोलकुंडा तथा बीजापुर के राज्यों का नाश करके और मराठों का दमन करके कुल दक्षिण पर मुग़ल साम्राज्य स्थापित करने की इच्छा से इन पर चढ़ाई की। दक्षिण में पहुँचते ही वहाँ भी जज़िया कर बड़ी कठोरता से उगाहने लगा। यह भी आज्ञा दी कि कोई हिन्दू बिना आज्ञा प्राप्त किए पालकी या अरबी घोड़े पर सवार नहीं हो सकता। इस प्रकार की आज्ञाएँ देकर औरंगज़ेब ने हिन्दू मात्र को अपना शत्रु बना लिया।

सन् १६७२ ई० में अबुल्हसन क़ुतुब शाह गोलकुंडा की गद्दी पर बैठा और स्वयं विषय-सुख आदि में लिप्त होकर उसने राज्य के कुल कार्य अपने मंत्रियों के हाथ में छोड़ दिए, जिनमें मदन्ना पंडित तथा मुग़ल सम्राट् का एलची प्रधान थे। औरंगज़ेब ने अपने पुत्र शाहज़ादा मुअज्ज़म को गोलकुंडा में शान्ति स्थापित

करने के लिये भेजा। शाहज़ादे ने कुछ दिन यों ही व्यतीत कर हैदराबाद नगर पर चढ़ाई की, जिसे मुग़ल सेना ने बिना आज्ञा ही खूब लूटा। अबुलहसन गोलकुंडा दुर्ग में चला गया। सन् १६८५ ई० में शाहज़ादा मुअज्ज़म ने इससे सन्धि कर ली, जिससे औरंगज़ेब ने कुछ खफ़ा होकर उसे बुला लिया।

सन् १६७२ ई० में सिकन्दर आदिल शाह छोटी अवस्था में बीजापुर की गद्दी पर बैठा था। औरंगज़ेब ने कुछ समय के लिये गोलकुंडा का विचार त्याग कर दूसरे पुत्र शाहज़ादा आज़म को बीजापुर पर भेजा। इसके सफल-प्रयत्न न होने पर स्वयं वहाँ गया और एक वर्ष से अधिक समय तक घेरा रहने पर सन् १६८६ ई० के सितम्बर महीने में वह बीजापुर पर अधिकार कर सका। तीन वर्ष कैद में रहने पर सिकंदर की भी मृत्यु हो गई। बीजापुर का विशाल वैभव-सम्पन्न नगर उजाड़ हो गया, जो आज तक प्रायः उसी प्रकार है।

औरंगज़ेब ने अब गोलकुंडा राज्य का भी अन्त कर देने की इच्छा से अबुलहसन पर काफिर मराठों को सहायता देने और उनसे मित्रता रखने का दोष लगाया। अबुलहसन ने भी अपने राज्य का अन्त समय आता देखकर युद्ध की पूरी तैयारी की। सन् १६८७ ई० के आरम्भ में मुग़ल सेना ने हैदराबाद घेरा। मराठी सेना मुग़लों की रसद आदि लूटने लगी, जिससे घेरने वालों को यहाँ तक कष्ट पहुँचा कि उनकी घेरा उठाने की इच्छा होने लगी। परन्तु एक विश्वासघातक ने मुग़ल सेना को दुर्ग के

भीतर बुला लिया और सन् १६८७ ई० के सितम्बर महीने में दुर्ग विजय हो गया। अबुलहसन सन् १७०० ई० में दौलताबाद दुर्ग में मरा, जहाँ वह कैद था। सन १६९१ ई० में मुग़ल सेना ने तंजौर और त्रिचनापल्ली पर अधिकार कर लिया, जो मुग़ल साम्राज्य की अन्तिम सीमा थी।

दक्षिण के सुलतानों का नाश हो जाने से अब केवल मराठों का दमन करना ही औरंगज़ेब के लिये एक मात्र कार्य बच गया था, परन्तु उसके अन्तिम बीस वर्ष इसी प्रयत्न में व्यर्थ बीत गए। मराठों ही की चढ़ाइयों और युद्धों से ये दोनों अन्तिम राज्य ऐसे निर्बल हो गए थे कि बादशाह उन्हें सहज में नष्ट कर सके थे। अब मराठों का भी केवल एक ही शत्रु मुग़ल बादशाह बच गया था। ये कभी जम कर युद्ध करते ही नहीं थे। सामान या रसद लूटना, आते जाते झुंडों का नाश करना और कैंप को दूर ही से हानि पहुँचाना इनका ध्येय था। छोटे छोटे घोड़ों पर अपना सब सामान लिए दिए वे अपना काम पूरा करके ऐसा चल देते थे कि मुग़ल सेना पीछा करके भी उनका कुछ नहीं कर सकती थी। इधर मुग़ल कैम्प चलता फिरता शहर सा था और मुग़ल सेनाध्यक्ष बड़े आराम-तलब और अयोग्य थे, जिससे वे वास्तविक प्रयत्न भी नहीं कर सकते थे।

आरम्भ में औरंगज़ेब की विजय होती गई। सन् १६८९ ई० में शिवा जी के पुत्र शम्भा जी पकड़े जाकर बड़ी कठोरता से मरवा डाले गए। उसी वर्ष रायगढ़ पर भी अधिकार हो गया

तथा शम्भा जी के अल्पवयस्क पुत्र साहू कैद कर लिए गए, जो बादशाह की मृत्यु पर छूटे। सन् १७०८ ई० में यह गद्दी पर बैठे थे। बादशाह ने इस बीच में बहुत से दुर्ग विजय कर लिए थे और सन् १७०१ ई० में मराठों का बल बहुत कुछ टूट गया था; परन्तु शिवा जी के दूसरे पुत्र राजाराम की विधवा स्त्री तारा बाई ने मराठों को उत्साह दिलाकर फिर से युद्ध छेड़ा और मुग़ल साम्राज्य में लूट मार करने की सम्मति दी। यह कार्य इतने उत्साह से होने लगा कि बादशाह एक प्रकार से अपने ही कैम्प में कैद हो गए और उनके देखते देखते सारा कोष लुट गया।

मराठों की सहायता अकाल और महामारी भी कर रही थी, जिससे मुग़ल सेना का ह्रास होने लगा। तब अन्त में निरुपाय होकर सन् १७०६ ई० में औरंगज़ेब अहमदनगर लौट गया। यहीं ८८ वर्ष की अवस्था में अपने राजत्व के पचासवें वर्ष में सन् १७०७ ई० के मार्च महीने के आरम्भ में इसकी मृत्यु हो गई। इसका मक़बरा दौलताबाद के पास रौज़ा या खुल्दाबाद ग्राम में है। अन्त समय पर औरंगज़ेब को अपने कर्मों पर पश्चात्ताप हुआ था, जो उन पत्रों से ज्ञात होता है जो मृत्यु के पहिले उसने अपने पुत्रों को लिखे थे।

औरंगज़ेब के पाँच पुत्र थे—मुहम्मद सुलतान, शाहज़ादा मुअज़्ज़म, आज़म, अकबर और कामबख़्श। मुहम्मद सुलतान तथा विद्रोही अकबर की मृत्यु हो चुकी थी और अब तीन शाहज़ादे राज्य लेने का बराबर स्वत्व रखते थे। औरंगज़ेब ने वसीयत

के तौर पर राज्य के तीन भाग कर दिए थे; परन्तु कोई शाहज़ादा कुल साम्राज्य से कम लेने की इच्छा नहीं रखता था। सब से बड़े मुअज़्ज़म ने काबुल में और उससे छोटे आज़म ने दक्षिण के कैम्प में अपने मुग़ल सम्राट् होने का घोषणापत्र निकाल दिया। दोनों सेनाएँ एकत्र कर युद्ध को चले और आगरे के दक्षिण जाजऊ में जून सन् १७०७ ई० में युद्ध हुआ, जिसमें आज़म दो पुत्रों के साथ मारा गया। मुअज़्ज़म ने आगरे पर अधिकार कर लिया और राजकोष से ख़ूब रुपए बाँट कर सैनिकों को उत्साह दिलाया। सन् १७०८ ई० की फरवरी में शाहज़ादा कामबख़्श दक्षिण में परास्त हुआ और युद्ध में इतना घायल हुआ कि कुछ दिनों बाद मर गया। मुअज़्ज़म अब बहादुर शाह या शाह आलम प्रथम की पदवी के साथ बादशाह हुआ।

इसने राजा साहू को कैद से छोड़ कर मराठों से सन्धि कर ली और राजपूतों से भी मेल हो गया। इसके समय की मुख्य घटना सिक्खों के साथ युद्ध और उनका दमन है। सिक्खों के उत्थान का कुछ वृत्तान्त देना यहाँ आवश्यक है।

नानक के चलाए हुए मत को सत्रहवीं शताब्दी के आरम्भ तक बादशाही अफ़सरों से किसी प्रकार का काम नहीं पड़ा था; परन्तु जहाँगीर के समय ख़ुसरो की सहायता करने के कारण सिक्ख गुरु तेग़ बहादुर दिल्ली लाए जाकर मारे गए थे। उस समय से उसके पुत्र हरगोविन्द की अधीनता में सिक्खों ने शस्त्र चलाना सीखा और वे दिल्ली सम्राट् के शत्रु बन गए। हरगोविन्द

के पोते गुरु गोविन्दसिंह ने कड़े नियम बनाकर सिक्खों को दूसरी प्रजाओं से अलग कर लिया और उनका एक खालसा (राजनीतिक समूह) नियत किया। कई दुर्ग विजय किए, पर शाही सेना से परास्त होकर औरंगजेब की मृत्यु तक वे छिपे रहे। सन् १७०८ ई० में अंतिम गुरु की मृत्यु हो गई। इनके एक शिष्य बन्दा ने लूट मार आरम्भ की और सरहिंद विजय किया। सिक्खों को परास्त करने के लिये बहादुर शाह लाहौर आया, जहाँ सन् १७१२ ई० के फरवरी महीने में उसकी मृत्यु हो गई। यह सज्जन और दानी था, पर समयानुकूल बादशाह होने के गुण उसमें नहीं थे।

बहादुर शाह के चारों पुत्रों में से तीन आपस में मिल गए और सबसे योग्य द्वितीय पुत्र अज़ीमुश्शान को युद्ध में परास्त कर मार डाला। छोटे दोनों शाहज़ादे भी एक एक करके मार डाले गए और अंत में अयोग्य तथा विषयी जहाँदार शाह बादशाह हुआ। जुल्फिकार खाँ नसरत जंग, जिसने बराबर जहाँदार शाह का साथ दिया था, वज़ीर बनाया गया।

कुछ ही महीनों के अनंतर अज़ीमुश्शान का पुत्र फ़र्रुख़सियर, जो पिता के मारे जाने पर बंगाल भाग गया था, दो सैयद भ्राताओं की सहायता से, जो बिहार और इलाहाबाद के सूबेदार थे, जहाँदार शाह पर चढ़ आया और उसे परास्त कर सन् १७१३ ई० की जनवरी में गद्दी पर बैठा। बड़ा भाई अब्दुल्ला खाँ वज़ीर के और छोटा भाई हुसेन अली खाँ अमीरुल्उमरा के पद पर

नियत हुआ। कुछ समय तक ये दोनों जिसे चाहते थे, उसे गद्दी पर बैठाते थे और जब चाहते थे, उतार देते थे।

फर्रुख़सियर के समय की मुख्य घटनाओं में सिक्खों को वह हार थी, जिसमें सरदार बंदा एक सहस्र साथियों सहित पकड़ा जाकर कठोरतापूर्वक मारा गया था। इससे सिक्ख कुछ दिनों के लिये शांत हो गए। फ़र्रुख़सियर ने अंग्रेज़ डाक्टर हैमिल्टन की दवा पर प्रसन्न होकर कंपनी को कुछ स्वत्व दिए थे। सन् १७१९ ई० में सैयदों के प्रतिकूल षड्यंत्र रचने के कारण यह मारा गया।

सैयदों ने रफ़ीउद्दर्जात् और रफ़ीउद्दौलात् को क्रमशः गद्दी पर बैठाया, पर वे कुछ ही महीनों में मर गए। तब उन दोनों ने सन् १७१९ ई० के अक्तूबर में मुहम्मद शाह को गद्दी पर बैठाया, जिसने तीस वर्ष राज्य किया। इसके समय में साम्राज्य नाम मात्र को रह गया और कई सूबेदारों ने स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिए। मुहम्मद शाह ने कई सरदारों की सहायता से सैयदों का दमन किया, जिसमें हुसैन अली मारा गया और अब्दुल्ला क़ैद हुआ।

चिंकिलीच ख़ाँ नामक एक तुर्की सरदार, जो आसफ़जाह निजामुल्मुल्क के नाम से अधिक प्रसिद्ध है, सैयदों की शत्रुता के कारण अपनी सूबेदारी दक्षिण को चला गया और वहाँ उसने सैयदों की दो सेनाओं को परास्त किया। सैयदों के मारे जाने पर कुछ दिनों के लिये वह वज़ीर भी हुआ था, पर सन् १७२३ में वह इस पद को त्याग कर दक्षिण लौट गया। उस समय से वह प्रायः स्वतंत्र सा हो गया।

सआदत ख़ाँ नैशापुरी, जो सैयदों की कृपा से उन्नति कर रहा था, उन्हीं के विरुद्ध उनके शत्रुओं से मिल गया। वह अवध का सूबेदार नियत हुआ और उसी ने वहाँ अपना राज्य स्थापित कर लिया। वह केवल नवाब था, पर उसका उत्तराधिकारी और दामाद सफ़दर जंग वज़ीर होने के कारण नवाब-वज़ीर कहलाने लगा। अंग्रेज़ों ने उनके वंशधरों को बादशाही की पदवी दी थी।

बंगाल, बिहार और उड़ीसा तीनों प्रांतों के निज़ाम और दीवान सरफ़राज़ ख़ाँ को मारकर अलीवर्दी ख़ाँ ने सन् १७४० ई० में उन पर अधिकार कर लिया। यह नाम मात्र के लिये दिल्ली साम्राज्य के अधीन समझा जाता था और पीछे से उस प्रांत की तहसील भेजना भी इसने बंद कर दिया था। यह सन् १७५६ ई० में मर गया।

गंगा जी के उत्तर की उपजाऊ ज़मीन में, जिसे आज कल रुहेलखंड कहते है, रुहेला जाति के अफ़ग़ानों ने विद्रोह किया और स्वतंत्र हो गए। इस प्रकार सभी प्रांतों में विद्रोह होने लगे और मुग़ल साम्राज्य तुग़लक साम्राज्य के समान नाम मात्र को रह गया।

शिवा जी के वंश में तारा बाई ही तक प्रसिद्धि रही। साहू जो बहुत वर्षों तक मुग़ल क़ैद में रहा था, अतः उसमें मुग़लों के बहुत से व्यसन आदि आ गए थे और वह पूरा मराठा नहीं रह गया था। वह महल में विषय भोग करने लगा और राज्य के सब कार्य उसने अपने ब्राह्मण मंत्री पर छोड़ दिए, जो पेशवा कहलाता था।

सन् १७१४ ई० में बाला जी विश्वनाथ इस पद पर नियुक्त किए गए, जिनका अधिकार इतना बढ़ा कि मराठे राजे एक प्रकार उन्हीं के अधीन हो गए। सन् १७१८ ई० में प्रथम पेशवा ससैन्य सैयदों की सहायता करने को दिल्ली गए। उन्होंने सन् १७२० ई० में दक्षिण में चौथ उगाहने की सनद प्राप्त की और पूना तथा सितारा के चारों ओर उनका राज्य भी मुग़ल सम्राट् द्वारा मान लिया गया।

सन् १७२० ई० में बाला जी विश्वनाथ की मृत्यु हो गई और उनके बड़े पुत्र बाजीराव प्रथम कुछ महीनों के अनंतर उस पद पर नियत हो गए, जिससे पेशवा की पदवी इस वंश में परंपरा के लिये निश्चित हो गई। सन् १७२७ ई० में साहू ने पेशवा को मराठा राज्य का पूर्ण अधिकार दे दिया; और यद्यपि वह सन् १७४८ ई० तक जीवित रहा, पर पेशवा ही मराठा साम्राज्य के सच्चे स्वामी थे। सन् १७३६ ई० में मालवा और नर्मदा नदी के उत्तर चंबल नदी तक का प्रांत मुग़लों से ले लिया गया। सन् १७३९ ई० में पुर्तगालियों ने बसीन विजय किया। बाजीराव योग्य सेनापति और सरदार थे, परन्तु नैतिक विभाग में कम योग्यता रखते थे। उन्होंने मराठा राज्य का विस्तार बहुत बढ़ाया और मुग़ल साम्राज्य पर अपना पूरा प्रभाव जमा लिया।

सन् १७४० ई० में बाजीराव की मृत्यु पर उनका पुत्र बालाजी बाजीराव पेशवा हुआ। पेशवाओं के राजवंश का आरंभ सन् १७२७ ई० से ही समझना चाहिए, जब राजा साहू ने अपना

अधिकार त्याग कर उसे बाजीराव को सौंप दिया था। इस वंश का अंत मारकिस ऑव हेस्टिंग्ज़ के समय सन् १८१८ ई० में हुआ। बालाजी ने निज़ाम हैदराबाद को दो बार परास्त कर उस राज्य का बहुत सा अंश ले लिया। बालाजी के एक सेनापति रघुजी भोंसला ने बंगाल पर चढ़ाई की और अंत में अलीवर्दी खाँ ने उड़ीसा प्रांत और चौथ देना स्वीकार करके उससे अपना पीछा छुड़ाया। उत्तर में मराठों ने पंजाब तक अपना अधिकार जमा लिया था।

इसी समय उत्तरी भारत पर आक्रमण करनेवाले मराठे सरदारों ने नए अधिकृत प्रांतों में राज्य स्थापित किया, जिनमें बड़ौदा के गायकवाड़, इंदौर के होलकर और ग्वालियर के सेंधिया प्रसिद्ध हुए। ये सरदार उच्च जाति के नहीं थे और पेशवा बाजी-राव की अधीनता में कार्य करके इन लोगों ने धीरे धीरे ख्याति प्राप्ति की थी। सन् १८१८ ई० में इन तीनों राजवंशों को सौभाग्य से संधि द्वारा उनके राज्य मिल गए। इसी वर्ष नागपुर-वाले भोंसला महाराज के स्वातंत्र्य का और सन् १८५३ ई० में लार्ड डलहौजी द्वारा राज्य का भी अंत हो गया।

सन् १७३६ ई० के आरम्भ में तहमास्प कुली खाँ नामक एक योग्य सेनापति ने सफ़वी वंश का अंत कर दिया और नादिर शाह की पदवी धारण कर फ़ारस की गद्दी पर अधिकार कर लिया। सन् १७३९ ई० में इसने भारत पर चढ़ाई की और बिना किसी रुकावट के ग़ज़नी, काबुल और लाहौर होता हुआ दिल्ली से

पचास कोस पर कर्नाल के पास आ पहुँचा। वहाँ बादशाही सेना से युद्ध हुआ, परन्तु परास्त होने पर मुहम्मद शाह ने अधीनता स्वीकृत कर ली और दोनों साथ ही दिल्ली आए। दूसरे दिन इस झूठी गप्प के उड़ने पर कि नादिर शाह मर गया, दिल्ली की प्रजा नें बलवा कर दिया और उसके कई सौ सैनिकों को मार डाला। इस पर नादिर शाह ने २०००० सैनिकों को नगर में लूट मार करने की आज्ञा दे दी, जो ९ घंटे तक जारी रही। इसके अनंतर मार काट बंद करके लूट का माल समेटना आरंभ किया और जब राजकोष के रत्नों और मोरवाले तख़्त से उसका मन नहीं भरा, तब प्रत्येक प्रजा से, चाहे अमीर या हो दरिद्र, उसकी संपत्ति का अधिकांश भाग ले लिया। मुहम्मद शाह को गद्दी पर बैठाकर और सिंध नदी के उधर का प्रांत अपने अधिकार में रखकर लूट का सारा माल लिए हुए अट्ठावन दिन के बाद वह लौट गया।

सन् १७४७ ई० में नादिर शाह के मारे जाने पर उसका एक अफ़ग़ान सेनापति अहमद शाह दुर्रानी या अब्दाली अफ़ग़ानिस्तान का स्वतंत्र शाह बन बैठा। दूसरे वर्ष उसने पंजाब पर चढ़ाई की, परन्तु सरहिंद के पास शाही सेना से परास्त होकर भागा, जो शाहज़ादा अहमद शाह और वज़ीर क़मरुद्दीन ख़ाँ के अधीन थी। इस युद्ध में वज़ीर मारा गया।

इसी वर्ष के अप्रैल में युद्ध के बाद ही मुहम्मद शाह की मृत्यु हो गई और अहमद शाह बादशाह हुआ। वजीर की मृत्यु के कारण अहमद शाह ने नवाब सफदर जंग को अपना वज़ीर

बनाया, परन्तु सरदार लोग आपस में बराबर लड़ा करते थे। इसी समय अहमद शाह दुर्रानी ने पंजाब पर अधिकार कर लिया। जब अमीरों के षड्यंत्र से सफ़दर जंग अपना पद त्याग कर अवध चला गया, तब आसफ़जाह निज़ामुल्मुल्क का बड़ा पुत्र ग़ाज़ीउद्दीन वज़ीर हुआ। उसने अहमद शाह को अंधा कर दिया और जहाँदार शाह के एक पुत्र को आलमगीर द्वितीय की पदवी देकर गद्दी पर बैठाया।

सन् १७५६ ई० में अहमद शाह दिल्ली पर चढ़ आया और सत्रह वर्ष के बाद फिर से नादिर शाही आरंभ की। मथुरा में भी बहुत लूट मार की और सन् १७५७ ई० की गरमी में अपने देश को लौट गया। जब ग़ाज़ीउद्दीन के पुत्र ने अपने प्रतिद्वंद्वियों के प्रतिकूल मराठों से सहायता माँगी, तब सन् १७५८ ई० में बाजीराव प्रथम के छोटे पुत्र रघुनाथ राव या राघोबा ने दिल्ली और पंजाब पर अधिकार कर लिया। उस समय मराठा साम्राज्य का भारत में पूर्ण विस्तार हो चुका था, जिससे मुसलमान नवाब आदि उनका दमन करने के प्रयत्न में लगे।

यह समाचार सुनकर दुर्रानी बहुत बड़ी सेना के साथ भारत आया और पंजाब पर अधिकार करता हुआ पानीपत के मैदान में पहुँचा। रुहेलों और नवाब अवध आदि की सेनाओं ने भी सम्मिलित होकर उसका बल बहुत बढ़ा दिया। सदाशिव राव भाऊ, जो बाजीराव पेशवा का भतीजा था, १३ जनवरी सन् १७६१ ई० को मराठी सेना सहित पानीपत में दुर्रानी की सेना

के सामने पहुँचा। जाट और राजपूत सेनाओं ने कुछ भी सहायता नहीं दी और युद्ध में देर हो जाने के कारण मराठी सेना में अन्न का बड़ा कष्ट होने लगा, जिससे भाऊ को युद्ध करने के लिये बाध्य होना पड़ा। युद्ध में वह परास्त हुआ और कई सरदारों के साथ मारा गया। इस पराजय का समाचार सुनने के बाद ही पेशवा की भी मृत्यु हो गई, जिसके साथ पेशवाओं के साम्राज्य का एक प्रकार से अंत हो गया।

इस युद्ध के अंनतर अहमद शाह दुर्रानी लूट सहित अपने देश को लौट गया। सन् १७६७ ई० में वह सिखों को कई युद्धों में परास्त करता हुआ ५०००० सवारों सहित पानीपत तक आया, पर वहाँ से स्वदेश लौट गया और फिर भारत में नहीं आया।

नम्र निवेदन

इतिहास, मुख्यतः मातृभूमि भारत के इतिहास से मुझे बाल्या-वस्था ही से प्रेम है और आशा है कि वह अंत तक बना रहेगा। इसी प्रेम के कारण बाल्य काल में जो कुछ उर्दू-फारसी की शिक्षा मिली थी, उसका ज्ञान आगे चलकर स्व-प्रयत्न से बढ़ाता रहा। भारतेतिहास के मध्य काल के ज्ञाता के लिये फारसी का ज्ञान अनिवार्य है, क्योंकि तत्कालीन इतिहास के प्रधान साधन प्रायः इसी भाषा में मिलते हैं। अंग्रेजी का ज्ञान तो आजकल प्रायः सभी सुशिक्षितों के लिये आवश्यक हो रहा है, और जैसा पहिले लिखा जा चुका है, इतिहास के लिये वह परमावश्यक है। अंग्रेजी तथा

हिन्दी दोनों भाषाओं के प्रकांड पंडितगण आजकल प्रायः उत्तरी भारत के सभी विश्वविद्यालयों से निकलते चले आ रहे हैं और आशा है कि आगे इन लोगों से मातृभाषा को बहुत सहायता मिलेगी। परन्तु फ़ारसी भाषा के अच्छे ज्ञाता होते हुए हिन्दी की सेवा करनेवाले बहुत कम दिखाई पड़ते हैं। फ़ारसी के विद्वान मौलवी लोग हिन्दी जानते भी नहीं; और हिन्दी के विद्वान गण उर्दू के ज्ञाता तो अवश्य मिलते हैं, पर फ़ारसी को भी अच्छी तरह जाननेवाले बहुत ही कम मिलते हैं। भारत के इतिहास का बहुत सा साधन फ़ारसी के ग्रंथों में सुरक्षित है, जिनमें से बहुतों का अंग्रेज़ी में अनुवाद हो चुका है। कुछ ही ऐसे अभागे ग्रंथ स्यात् भूल से बच रहे हैं जो अनूदित नहीं हो सके हैं। हिन्दी में ऐसे ग्रंथों के अनुवाद की ओर स्व० मुं० देवीप्रसाद जी ने बहुत परिश्रम किया है और फ़ारसी भाषा के कई ग्रंथों को अनूदित कर हिन्दी के इतिहास-प्रेमियों के लिये पठन योग्य बना दिया है।

अभी इस प्रकार के अनेक विद्वानों को इस ओर ध्यान देकर ऐसे ग्रंथों के सुगम सटिप्पण अनुवाद तैयार करने होंगे, जिनसे हमारी मातृभूमि के इतिहास की यह समग्र सामग्री हमारी मातृ भाषा में संचित हो जाय। जब तक ऐसे विद्वान इस ओर नहीं कृपा करते, तब तक मैं अपने अपरिपक्क फ़ारसी भाषा-ज्ञान की सहायता से ऐसी सामग्री हिंदी प्रेमियों के लिये उपलब्ध करने की चेष्टा अवश्य करूँगा। इस ग्रंथ के प्रकाशक द्वारा गुलबदन बेगम कृत 'हुमायूँ नामा' छः वर्ष हुए कि छप चुका है। उसी 'देवी-

प्रसाद ऐतिहासिक माला ' में यह दूसरा ग्रंथ मआसिरुल् उमरा (मुग़ल दरबार के हिंदू सरदार) प्रकाशित हो रहा है।

इस ग्रंथ के अनुवाद में प्रायः दस वर्ष हुए कि हाथ लगाया गया था। उस समय कुछ ऐसा उत्साह था कि समग्र ग्रंथ के भाषांतर के विचार से सभी हिन्दू तथा मुसलमान सरदारों की जीवनी लिखना आरंभ कर दिया था। इसके प्रकाशन के लिये, क्योंकि यह महत्वपूर्ण विशद ग्रंथ था, काशी नागरी प्रचारिणी सभा से लिखा पढ़ी हुई और एक जीवनी का अंश मुं० देवीप्रसादजी के पास भेजा गया था। उन्होंने उसका उत्तर अपनी सम्मति के साथ मुझे भी लिखा था, जो सुरक्षित रखा हुआ है। बाद को सभा ने समग्र ग्रंथ छापने में अपनी असमर्थता प्रकट की और केवल हिंदू सरदारों ही की जीवनियों को प्रकाशित करना निश्चय किया। अस्तु, मैंने भी उसी के मंतव्यानुसार अनुवाद करना उचित समझा, क्योंकि एक तो यह इतिहास का ग्रंथ और दूसरे इतना विशद। ऐसी आशा नहीं थी कि कोई प्रकाशक इसे पूरा छाप कर दूसरी पुस्तकों द्वारा अपना शीघ्र होनेवाला लाभ छोड़ देगा। न यह आज़ादों की कथा थी और न समाज के नग्न चित्र ही इसमें खिंचे थे। धीरे धीरे अनुवाद तैयार हो गया और टिप्पणी आदि भी यथाशक्ति देकर ऐतिहासिक ग्रंथियों को सुलझाने का प्रयत्न भी पूरा हो गया। इतने पर भी अनेक प्रकार की विघ्न-बाधाओं के कारण इसका प्रकाशन रुका रहा; पर अब ईश्वर की कृपा से यह प्रकाशित हो रहा है।

मूल ग्रंथ तथा उसके रचयिता को जीवनी पढ़ने से ज्ञात होता है कि जिस प्रकार उसके संपादक को वह ग्रंथ प्रकाशित करने में अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ा था, उसी प्रकार इस अनुवाद ग्रंथ के लिये भी अनुवादक के मार्ग में रोड़े आ पड़े थे; पर जगन्नियंता के नियंत्रण से वे आप ही आप हट गए। इस प्रकार अब यह ग्रंथ प्रकाशित होकर पाठकों के सम्मुख उपस्थित हो रहा है। आशा है कि वे इसे अपना कर अनुवादक तथा प्रकाशक दोनों ही को अनुगृहीत करेंगे।

दोलोत्सव,
सं० १९८६ वि०

विनीत—
व्रजरत्नदास।

———

मआसिरुल् उमरा

ईश्वर के नाम पर जो दयालु और कृपालु है[1]

असीम प्रशंसा और अगणित स्तुति उसी राजाधिराज के योग्य है जिसकी सर्वव्यापी शक्ति और पूर्णेच्छा प्रसिद्ध सम्राटों और कार्यशाली सामंतों के चरित्र का कारण है। उसी के आज्ञा-रूपी बंधन में कुल संसार बँधा हुआ है। तुच्छ कण भी उसकी बृहत् शक्ति के विना हिल नहीं सकता और चल वस्तु स्थिर नहीं हो सकती। वही उच्चवंशीय राजेश्वरों से बड़े बड़े सिंहासनों को सुशोभित कर प्रजा को सुख और शांति देने का प्रबंध करता है और हृदय से शारीरिक अवयवों के संबंधानुसार योग्य मंडलेश्वरों को सम्राटों का सहकारी बना कर उनके द्वारा प्रजारंजन करता है। उसकी आज्ञा होते ही एक शब्द 'कुन' ('हो' कहते ही) से कुल साँसारिक वस्तुएँ निमेष मात्र में प्रकट हो जाती हैं और जिसने संसार की उन विचित्र वस्तुओं को, जिनका बुद्धिमान बड़ी नम्रता से ज्ञान संपादन करते हैं, उत्पन्न किया है। लिखा है—

---

१. यह भूमिका मूल ग्रंथकार के पुत्र अब्दुल हई खाँ की लिखी हुई है। मूल ग्रं मंथ इसका स्थान सब के पहले है; इसलिए अनुवाद में भी उसे पहले रखा गया है।

शैर (का अर्थ)

हे ईश्वर ! तेरी ही आज्ञा से विश्व के बीच, पृथ्वी अचल और आकाश चल है। जिन्न और मनुष्य को तू ही बड़प्पन देता है और तू ही संसार का सम्राट् है॥

अनंत प्रणाम उस सरदार को भी है जिसने दैवी आज्ञाओं के प्रचार में मित्रों की कमी और शत्रुओं की अधिकता का कुछ भी विचार न करके सत्य मार्ग से भटके और भूले हुओं को लूट मार कर और लगातार पराजित कर उन्हें उनके कर्म का फल दिया। यहाँ तक कि उनका दृढ़ धर्म सारे संसार में फैल गया और चारों ओर उसका प्रचार हो गया। लिखा है—

शैर (का अर्थ)

संसार और धर्म के राजा मुहम्मद साहब हैं, जिनकी तलवार ने कपट को जड़ से उखाड़ डाला। रसूल जाति की सरदारी का मुकुट उन्हीं के सिर पर है और उन्हीं से सरदारी का अंत है[1]॥

उनकी संतानों और उच्च वंशस्थ साथियों को भी धन्यवाद है जो उनके अधिकार रूपी महल के दृढ़ स्तंभ और ज्ञान रूपी बस्ती के द्वार हैं।

---

१. दूसरे शैर के दूसरे मिसरं 'कि ख़त्म सरी चूँ नबूत बरोस्त।' का अर्थ मिस्टर बेवरिज ने यह किया है—'उन पर शक्ति और पैग़ंबरी की मुहर है'। यह अर्थ अशुद्ध है। सरी-नबूत का अर्थ पैग़ंबरों की सरदारी है जिसका अंत इन्हीं पर माना भी गया है। मुसलमानी धर्मशास्त्र मुहम्मद ही को अंतिम पैग़ंबर मानते हैं।

इस उपदेशपूर्ण खेल के दर्शकों और इस दृश्य के देखनेवालों से यह छिपा नहीं रह सकता कि इन पंक्तियों के लेखक के पिता मीर अब्दुर्रज्जाक, जो समसामुद्दौला के नाम से प्रसिद्ध हुए, इतिहास के ऐसे ज्ञाता थे कि तैमूरी वंश के बादशाहों और सरदारों का वृत्तान्त उनकी जिह्वा पर था और वंशावली में वह ऐसा ज्ञान रखते थे कि बहुतेरे मनुष्य उनसे अपने पूर्वजों का वृत्तान्त पूछने आते थे। औरंगाबाद के मुहल्ला कुतुबपुरा में एकांतवास करते समय उन्होंने इस ग्रंथ की रचना (जिसमें पूर्वोक्त सम्राटों के समय के सरदारों का वृत्तांत है) आरम्भ कर दी। बहुत से जीवन वृत्तांत लिखे जा चुके थे और कुछ तैयार हो रहे थे कि इसी समय नवाब आसफ़जाह[1] ने कृपा कर इन्हें बुलाया और अपने राज्य में किसी काम पर नियुक्त कर दिया। फिर नवाब निजामुद्दौला शहीद[2] ने अपने राज्य की दीवानी सौंप कर इन्हें सम्मानित किया। तब से इस ग्रंथ की पूर्ति रुक गई थी। इन शब्दों के लेखक ने एक दिन उनसे कहा कि यदि इस अच्छे ग्रंथ की भूमिका लिख दी जाती तो यह समाप्त हो जाता। उन्होंने उत्तर दिया कि तुम्हीं अपने इच्छानुसार इसकी पूर्ति करो। इसके

---

१. हैदराबाद राज्य के संस्थापक प्रथम निज़ाम चिनक़िलीच ख़ाँ को मुग़ल दरबार से निज़ामुल्मुल्क आसफ़जाह की पदवी मिली थी, जो इनके वंश में अब तक प्रतिष्ठापूर्वक धारण की जाती है।

२. यह नवाब आसफ़जाह के द्वितीय पुत्र और द्वितीय निज़ाम नासिरजंग थे। यह युद्ध में मारे गए थे, इसलिए शहीद कहलाए।

अनंतर वे नवाब सलाबतजंग[1] के वकील अर्थात् प्रधान मंत्री नियत हुए और उसी कार्य में मारे गए। घर लुट गया और इस ग्रंथ के सब पन्ने लुटेरों के हाथ लगे; पर कुछ वर्ष के बाद थोड़े पन्ने हाथ आए। मीर गुलाम अली आज़ाद[2] ने (जिनसे पिताजी से बड़ी मित्रता थी) उन पन्नों को इकट्ठा कर भूमिका और उन मृत ग्रंथकार का परिचय लिखा। इसके अनंतर कुछ अंश और भी मिले। उन पूज्य की आज्ञा इस लेखक को सदा खटकती थी, इसलिए मैंने इस कार्य को सन् ११८२ हि०[3] में आरंभ किया और अन्य इतिहासों से बचे हुए सरदारों का भी जीवन वृत्तान्त लिखकर इस ग्रंथ को पूर्ण किया। आरंभ में स्वलिखित प्रस्तावना, भूमिका (पिताजी की लिखी हुई, जिसे इस प्रस्तावना-लेखक ने किसी पुस्तक पर उतार लिया था) और ग्रंथकार-

---

१. यह नवाब आसफ़जाह के तृतीय पुत्र और निज़ाम थे।

२. मीर गुलाम अली बिलग्रामी उपनाम आज़ाद—यह मीर अब्दुलजलील के पौत्र थे और इनका जन्म १११६ हि० (१६०४ ई०) में हुआ था। यह सुकवि और अच्छे गद्य-लेखक थे। इनके ग्रंथों का नाम क़लायदअज़ा, सबहातुल्‌मिर्ज़ान्, ख़ज़ानएआमरः और तज़किरः सर्वेआज़ाद है। यह सन् १२०० हि० (१७८६ ई०) में मरे और खुल्दाबाद या रौज़ा में गाड़े गए। इस भूमिका के लिखने के समय यह जीवित थे, क्योंकि अब्दुल हई इनके चार वर्ष पहले सन् १७८२ ई० में मर चुके थे। देखो बील की ओरिएंटल बायोग्रैफ़िकल डिक्शनरी और हेग कृत हिस्टोरिक लैंडमार्क्स ऑव द डेकन, पृ० ५८।

३. सन् १७६८-६६ ई०; सं० १८२५ वि०।

१०. ज़ख़ीरतुल् ख़वानीन[1]	शेख़ फ़रीद भक्करी।
११. मजमउल्-अफ़ग़ानी[2]	किसी ने ख़ानेजहाँ लोदी के लिये लिखा था।
१२. बादशाह नामा	मुल्ला अब्दुलहामिद लाहौरी और मुहम्मद वारिस।
१३. अमल सालेह	मुहम्मद सालेह कंबू।
१४. वकायः कंधार[3]	
१५. आलमगीरनामा	मुहम्मद काज़िम मुंशी।
१६. मिरातुल् आलम	बख़्तावर ख़ाँ ख़्वाजासरा।
१७. तारीख़े आशाम[4]	
१८. ख़ुलासतुत्तवारीख़	आलमगीर के समय किसी हिंदू[5] ने लिखा।

१. शायद यह वही ग्रंथ है जिसका उल्लेख ग्रंथकर्त्ता ने अपनी भूमिका में शेख़ मारूफ़ भक्करी कृत मान कर किया है।

२. नेअमतुल्ला कृत मख़ज़ने अफ़ग़ानी हो सकता है। रयू १.२१०, २१२ और इलि० जि० डाउ० ५, पृ० ३७।

३. लतायफ़ुल् अख़बार हो सकता है जिसमें कंधार पर दारा की निष्फल चढ़ाई का वर्णन है। रयू १.२६४ बी।

४. इसे फ़तहे-इबरतिया भी कहते हैं और यह शहाबुद्दीन तालिश की रचना है। रयू १.२६६ ए।

५. सुभानराय खत्री नाम था और पटियाले का रहनेवाला था। यह पुस्तक सन् १६९५-६ में लिखी गई थी। इलि० जि० ८, पृ० ५। प्रो० सरकार ने इसका नाम सुजानराय लिखा है, जो ठीक है।

१९. तारीख़े दिलकुशा	हिंदू[1] कृत जिसमें औरंगज़ेब के समय की कुछ घटनाओं का वर्णन है।
२०. मआसिरे-आलमगीरी	मुस्तैद खाँ मुहम्मद शाफ़ी[2]।
२१. बहादुरशाह नामा	नेअमत अली खाँ।
२२. लुब्बलुबाब	ख़वाफ़ी खाँ।
२३. तारीखे-मुहम्मद शाही[3]	
२४ फ़तह	यूसुफ़ मुहम्मद खाँ[4]।
२५ तज़किरा मजमउल् नफ़ायस[5]	सिराजुद्दीन अली खाँ उपनाम 'आर्ज़ू'।

१. भीमसेन बुरहानपुरी जो दलपत राव बुँदेला का काम करता था। रयू १,२७१। जोनाथन स्कॉट ने अंग्रेजी में इसका अनुवाद 'ए जर्नल केप्ट बाई ए बुंदेला आफिसर' के नाम से किया है। दक्षिण का हाल इसमें विस्तृत रूप से लिखा गया है।

२. साक़ी होना चाहिए। रयू १; २७०। हिंदी में मुं० देवी-प्रसाद ने इसका अनुवाद आलमगीरनामा के नाम से किया है।

३. खुशहाल चंद कृत नादिरुज्ज़मानी हो सकता है। रयू १;१२८, इलि० जि० ८, पृ० २०। पर यूसुफ़ मुहम्मद खाँ कृत 'तारीखे-मुहम्मद शाही' होना अधिक संभव मालूम होता है। इलि० जि० ८, पृ० १०३।

४. यह वही ग्रन्थकार हो सकता है, जिसका इलि० जि० ८, पृ० १०३ में उल्लेख है। या यह दूसरी पुस्तक जिनानुल्-फ़िर्दौस हो (इलि० जि० ८, पृ० ४१३)। रयू० १३८ ए और ३;१०८१ ए देखिए।

५. स्प्रेंजर्स अवध कैटलग १'१३२ देखिए। इसका नाम तज़-

२६ मीराते वार्दात्[1] — मुहम्मद शफ़ी उपनाम 'वारिद'।

२७ जहाँ कुशा, तारीख़े नादिरशाह[2]

२८–२९ तज़किरः सर्वे आज़ाद और ख़ज़ानए आमरः — मीर गुलाम अली 'आज़ाद'।

३० मीरातुस्सफ़ा[3] — मीर मुहम्मद अली बुरहानपुरी।

३१ तारीख़े बंगाल[4]

इस ग्रंथ के पाठकों से आशा है कि यदि वे भ्रम या अशुद्धि पावेंगे तो उसे शुद्ध करने और दोषों को छिपाने का प्रयत्न करेंगे।

यह समझ लेना चाहिए कि पूज्य मृत ग्रन्थकर्ता ने यह नियम बनाया था कि जीवन-चरित्रों का, जो इस ग्रन्थ में संगृहीत हैं, सिलसिला उनके मृत्यु-समय तक रखा जाय; पर जिनका

किरए आर्ज़ू भी है, जिसमें फ़ारसी और उर्दू के कवियों के चरित्र दिए गए हैं। आर्ज़ू उर्दू तथा फारसी के प्रसिद्ध कवि और लेखक थे, आगरे के रहनेवाले थे और इन्होंने पन्द्रह से अधिक पुस्तकें लिखी हैं। सन् १७५६ ई० में इनकी लखनऊ में मृत्यु हुई।

१. र्यू० १·२७५ और इलि० जि० ८, पृ० २१ देखिए।

२. सर विलिअम जोन्स ने इसका फ्रेंच भाषा में अनुवाद किया है।

३. र्यू० १. १२६। इलि० जि० ८, पृ० २५ का मुहम्मद अली कृत बुर्हानुल् फ़ुतूह हो सकता है।

४. र्यू० १. ३१२ बी। इस सूची में इनायत ख़ाँ के शाहजहाँनामा का नाम नहीं दिया गया है, यद्यपि ग्रन्थ में इसका उल्लेख मिलता है।

मृत्युकाल नहीं ज्ञात हो सका, उनके वृत्तान्त का जिस वर्ष तक का पता चला, उसी को मृत्यु के वर्ष के बदले में मान लिया गया है।

ईश्वर को धन्यवाद है कि यह मनोहर ग्रन्थ सन ११९४ हि० (सन् १७८० ई०) में पूर्ण हो गया। इसकी तारीख यों है—

शैरों का अर्थ

लेखनी ने लेख रूपी वर्षा ऋतु से इस बाग़ को ऐसा सजाया कि वह विद्वानों को भला और बुद्धिमानों को सुखद हुआ ॥ १ ॥

लेखक ने लेखनी और स्याही से इस ग्रन्थ को पैदा कर अरम[1] का गर्व और स्वर्ग की स्पृहा तोड़ दी ॥ २ ॥

ग्रन्थ-पूर्ति का वर्ष[2] बुद्धिमानों ने यों लिखा है—'ज़हे अदीब मुसाहिब मआसिरुल् उमरा' (वाह मआसिरुल् उमरा के भाषा-विज्ञ मित्र अर्थात् लेखक) ॥ ३ ॥

---

१. पृथ्वी पर का स्वर्ग जो अरब देश का एक कल्पित बाग़ है।

२. ७+५+१०+१+४+१०+२+४०+६०+१+८+२+४०+१+५००+२००+१+२०+१+४०+२००+१= सन् ११९४ हि० = सन् १७८० ई० = सं० १८३७ वि० ।

भूमिका जो ग्रंथकर्ता ने स्वयं आरंभ में लिखी थी

समझने की अवस्था को पहुँचने पर मुझे पठन-पाठन के अतिरिक्त इतिहास और जीवनचरित्र का पढ़ना ही अच्छा लगता था। जब कभी समय मिलता था, तब मैं प्राचीन राजाओं के शिक्षाप्रद चरित्र पढ़ता और उच्चपदस्थ सरदारों की जीवनियों से शिक्षा प्राप्त करता था। कभी विद्वानों और महात्माओं के उपदेशों से मेरी आँखें खुल जाती थीं और कभी अच्छी कविता सुनकर मेरा चित्त प्रसन्न हो जाता था। यहाँ तक कि लज्जास्पद संसार के पल, मास और वर्ष (जिनसे अवस्था बदलती है) दासत्व में बीत चले और जीविकोपार्जन में मेरे दिन बीतने लगे। इसके अनन्तर ऐश्वर्य और सुख में पड़ कर मैं अन्य कामों में लग गया और पुस्तकों के प्रति मेरा प्रेम[1] नहीं रह गया। पर कभी कभी लिखने का विचार उठता था कि एक नई भेंट वर्तमान संसार को दूँ; पर समय कह रहा था—

---

१. इस प्रति में 'मसास' और अन्य दो प्रतियों में 'शिनास' है। दोनों का तात्पर्य एक ही है।

विचार आकाश पर इतने ऊँचे चला गया है और हृदय सौन्दर्य[1] के पाँव के नीचे पड़ा है। क्या कहें, विचार कहाँ और हृदय कहाँ !

एकाएक भाग्यचक्र और समय के अनोखेपन से मैं सन् ११५५ हि० (१७४२ ई०, सं० १७९९ वि०) में एकान्तवासी हो गया। प्रकट में सहस्रों शोक और संताप पैदा हो गए, पर मेरा हृदय सन्तोष और शान्ति से पूर्ण था, इसलिए मैंने इस अनीप्सित छुट्टी को लाभ ही समझा। वही पुरानी इच्छा फिर हृदय में प्रवल हो उठी और प्राचीन विचार में नए फूल आने लगे। उस विचार को दुहराने पर ग्रन्थ-रचना से मन हट गया; क्योंकि हर एक शैली और ढंग पर (जो समझ में आता है) अग्रगामियों ने पुस्तकें लिखी थीं। अन्य विषयों पर विचारशील महात्माओं और प्रसिद्ध विद्वानों ने मौलिक या अनुवाद रूप में और संक्षेपतः या विस्तार-

---

१. फ़ारसी लिपि में मेह्रवुताँ और मुह्रबुताँ एक ही प्रकार से लिखा जाता है। पहिले का अर्थ सुन्दरियों की कृपा है। दूसरा वही दक्षिणी सिक्का है जिसपर बुत अर्थात् देवता या मन्दिर बना रहता है। इसे बुत अशर्फ़ी भी कहते हैं। इससे तात्पर्य यही है कि 'मैं धन-लिप्सा में पड़ा हुआ हूँ'। सैयद इंशाअल्लाह ख़ाँ 'इंशा' भी एक शैर में कुछ ऐसा ही भाव लाए हैं, जो इस प्रकार है—

तसौव्वर अर्श पर है और सर है पाए साक़ी पर।
ग़रज़ कुछ ज़ोरे धुन में इस घड़ी-मैख़्वार बैठे हैं।

पूर्वक लिखा ही था, इस कारण मेरा हृदय उधर नहीं झुका और मैंने उन्हें साधारण कार्य समझ लिया। एकाएक मेरे मन में यह विचार उठा कि यदि अकबर बादशाह के राज्यारम्भ से (जो वर्ष 'नसरते अकबर' से निकलता है) वर्तमान समय तक के बड़े सरदारों और वैभवशाली राजाओं के जीवनचरित्र (जिनमें से कुछ ने अपने अच्छे समय में कर्मबल और सुनीति से शुभ और बड़े कार्य करके सुप्रसिद्धि पाई थी और कुछ ने ऐश्वर्य, धन और प्रभुता के घमंड में द्रोह करके दुःख और कष्ट उठाया था) वर्णानुक्रम से लिखे जायँ तो अत्युत्तम हो। इन चरित्रों में अपूर्व वृत्तान्त, आश्चर्यजनक आख्यायिकाओं, अच्छे बड़े कार्यों, कौशलपूर्ण चढ़ाइयों तथा साहस और वीरता के उदाहरणों का वर्णन दिया जाय। इसमें हिन्दुस्तान के तैमूरी वंश के प्रसिद्ध बादशाहों के दो सौ वर्ष के बीच की घटनाओं का वृत्तांत और अन्य प्राचीन वंशों का वर्णन रहेगा, जिससे यह हर प्रकार से नए ढंग पर तैयार होगी और दूसरों की पुस्तकों से अधिक सम्मान पावेगी। नवेच्छुक हृदय को इस विचित्र क्रम से बहुत संतोष हुआ और इच्छा का मुख प्रफुल्लित हो गया।

इसी समय शेख़ मारूफ़ भक्करी कृत ज़ख़ीरतुल् ख़वानीन[1] नामक पुस्तक मेरे देखने में आई उसमें भी सरदारों के वर्णन थे और इस ग्रंथ में उसका भी आशय ले लिया गया है; पर वह

---

१. अन्य प्रति में ख़वाकीन भी है। अब्दुलहई ख़ाँ की पुस्तक-सूची में इसकी संख्या दस है।

सुनी-सुनाई बातों के आधार पर लिखी गई है जो इस विषय के विद्वानों के विचार के विरुद्ध है। यह ग्रंथ विश्वसनीय पुस्तकों के आधार पर बना है, जिसकी मौलिकता और उत्तमता प्रकट है। अकबर बादशाह के समय (जब मन्सबों की सीमा पाँच-हज़ारी तक थी और राज्य के अंत में केवल दो तीन सरदारों को सात-हज़ारी मन्सब मिला था) बादशाही नौकरी बड़ी प्रतिष्ठा की समझी जाती थी और मन्सब विश्वास के होते थे; इसलिए बहुत से छोटे छोटे मन्सबवाले भी ऐश्वर्य और प्रभाव रखते थे, जिस कारण उस समय के पाँच सदी तक के सरदारों का वर्णन इस ग्रंथ में आया है। शाहजहाँ और औरंगज़ेब के राज्य के मध्य काल तक (जब कि मन्सब और पदवियाँ बहुत बढ़ गई थीं) के तीन हज़ारी और झंडा तथा डंका प्राप्त सरदारों ही का वृत्तान्त इस पुस्तक में संकलित किया गया है। इसके अनंतर दक्षिण की घटनापूर्ण चढ़ाइयों के कारण नौकरी के बढ़ने और देश की आय घटने से वह बात नहीं रह गई और धीरे धीरे इस (गड़बड़ी) का विस्तार बढ़ता ही गया, इसलिए उस अशुभ और अशांत समय के (जब कि बहुत से सात-हज़ारी समय बिगड़ने से मारे मारे फिर रहे थे और हर एक ओर बहुत से छःहज़ारी और पाँच-हज़ारी थप्पड़ खानेवाले छः पाँच के फेर में पड़े हुए थे) पाँच और सात ही सरदारों पर संतोष किया गया। बहुत से पूर्वज (जो अज्ञात रह गए थे) अपनी प्रसिद्ध संतानों की ख्याति से सदा के लिये अमर हो गए और बहुतेरे पुत्र तथा पौत्र गण (जो

अयोग्यता के कारण ऊँचे पद तक नहीं पहुँचे) अपने उच्चपदस्थ पूर्वजों के वर्णन से विख्यात हुए। योग्य मन्सब का बिना विचार किए हुए बहुतों का चरित्र उनके अच्छे गुणों के कारण भी दिया गया है। बहुत से चरित्रों का संग्रह होने के कारण ही इस ग्रंथ का नाम मआसिरुल् उमरा[1] रखा गया है।

तैमूरी सुलतानों के वंश में प्रत्येक स्वर्गवासी पिता और शुद्ध माता के लिये पदवियाँ नियुक्त की जाती थीं (जैसे साहिब क़िराँ[2] से अमीर तैमूर अर्थ निकलता है; फ़िर्दौस-मकानी[3] से ज़हीरुद्दीन मुहम्मद बाबर बादशाह; जिन्नत आशियानी[4] से नसीरुद्दीन मुहम्मद हुमायूँ; भारी पदवी अर्श-आशियानी[5] से जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर; जन्नत-मकानी से नूरुद्दीन मुहम्मद जहाँगीर; फ़िर्दौस-आशियानी और आला हज़रत से शहाबुद्दीन मुहम्मद साहबकिराने सानी शाहजहाँ; खुल्दमकाँ[6] से मुहीउद्दीन

---

१. मआसिरुल् उमरा—[अ० मआसिर=अच्छे कार्य + उमरा= सरदार गण] सरदारों के चरित्र।

२. क़िराँ का अर्थ संयोग है और जन्म के समय मुश्तरी और ज़ुहल नामक ग्रहों का संयोग होने से यह नामकरण होता है।

३. फ़िर्दौस [अ०]=स्वर्ग। मकानी=जिसका घर है, घर वाला।

४. जिन्नत [अ०]=स्वर्ग। आशियानी [फ़ा०]=घोंसला है जिसका; अर्थात् स्वर्गवासी।

५. खुदा के बैठने के सिंहासन को अर्श कहते हैं।

६. खुल्द [अ०]=स्वर्ग। मकाँ [अ०]=स्थान, घर।

मुहम्मद औरंगजेब आलमगीर ग़ाज़ी ; खुल्दमंज़िल[1] से क़ुतुबुद्दीन मुहम्मद मुअज्जम शाहे आलम, प्रसिद्ध नाम बहादुर शाह ; मरियम-मकानी से अकबर की माता हमीदःबानू बेगम ; मुमताज़-महल[2] से औरंगज़ेब की माता अर्जुमंद बानू बेगम और बेगम साहिबः से उन्हीं की बड़ी बहिन जहाँआरा बेगम समझी जाती हैं। इसलिये इस ग्रंथ में आवश्यकता पड़ने पर इन्हीं संक्षिप्त पदवियों से काम लिया गया है। अन्य बादशाहों के नाम ही लिखे गए हैं; पर कहीं कहीं मुहम्मद शाह बादशाह को फ़िर्दौस आरामगाह[3] की पदवी से भी लिखा गया है।

मीर ग़ुलामअली आज़ाद लिखित भूमिका

(जिसे उन्होंने आरंभ में कुछ अंशों के मिलने पर लिखा था)

इस लेख के ज्ञात हो जाने और इसमें मृत ग्रंथकार (शाह-नवाज़ खाँ) की जीवनी भी सम्मिलित रहने से इन पंक्तियों के लेखक (ग्रंथकार के पुत्र अब्दुलहई) ने इसे इस ग्रंथ के साथ रहने दिया[4] ।

सम्राटों के उस सम्राट् की स्तुति करना है जिसने राज्यसिंहा-

---

१. मंज़िल [अ०]=स्थान, पड़ाव, घर।

२. मुमताज़ [अ०]=प्रतिष्ठित, सम्मानित। महल[अ०]=राजाओं का वासस्थान; बड़ा घर।

३. आरामगाह [फा०]=सुख करने का घर या स्थान।

४. द्वितीय संस्करण के संपादक अब्दुलहई की सूचना।

सनासोनों को संसार-पालन का उच्च पद दिया है और जिसने सिंहासन को शोभा बढ़ानेवाले सरदारों को इस प्रभावशाली समूह की सहायता करने का कार्य देने की कृपा की है। प्रशंसा और प्रणाम उस संसाररक्षक को है, जिसने उम्मत[1] के कार्य का बहुत अच्छा प्रबन्ध किया है और जिसने ईश्वरी कृपा से प्राप्त पैगंबरी के कारण मनुष्यों तथा जिन्नों के संसारों पर अधिकार कर लिया है। मुहम्मद साहब के अच्छे स्वभाववाले वंशधरों को, जो प्रतिष्ठित व्यक्ति[2] हैं, और उस पवित्र वंश के साथियों को, जो अच्छे मंत्री हैं, अनेक प्रणाम हैं।

इसके अनंतर यह कहना उचित है कि यह ग्रंथ सम्मान के योग्य और अद्वितीय है। ईश्वरी कृपाओं के पात्र, मानुषिक गुणों के आकर और अद्वितीय सरदार नवाब समसामुद्दौला शाहनवाज़ खाँ—ईश्वर सदा उन पर कृपा रखे—की यह रचना है, जिन्होंने इसे अपनी मायाविनी लेखनी से लिखा था और पाँच वर्ष तक इस कार्य में अपना मस्तिष्क लगाया था। इतिहास और पुरातत्व के जाननेवाले ही समझ सकते हैं कि ग्रन्थकर्ता ने इसके लिये

---

१. एक ही मत के माननेवालों के समूह को उम्मत कहते हैं और मतप्रवर्त्तक को पैग़ंबर कहते हैं।

२. यहाँ उन खलीफाओं से तात्पर्य है जो मुहम्मद की मृत्यु के बाद मुसलमानी धर्म के प्रधान हुए थे। इनमें कई उन्हीं के वंशज थे और कई उनके मित्रों में से चुने गए थे। इसी विवाद को लेकर मुसलमान गण दो प्रधान जत्थों में विभक्त हुए, जो सुन्नी और शीआ कहलाए।

कितना परिश्रम किया होगा और सत्य की खोज में इन्हें कितना प्रयत्न करना पड़ा होगा।

पर इसकी लिखित प्रति बारह वर्ष तक भूल के आले पर पड़ी रही और यह सुन्दर मोर पिंजड़े रूपी कुंज में नाचता रहा। समय न मिला कि अंधकार से निकल कर यह ग्रंथ प्रकाशित होता और जाड़े की बड़ी रात्रि को संसार प्रकाशमान करनेवाला उषा-काल प्राप्त होता। यहाँ तक हुआ कि ग्रंथकर्त्ता मारे गए, उनकी सुबुद्धि के फल अनाथ हो गए, उनका घर लुट गया और सारा पुस्त-कालय एक ही बार में नष्ट भ्रष्ट हो गया। फ़क़ीर गुलाम अली उपनाम आज़ाद हुसेनी बिलग्रामी (जिसकी ग्रंथकर्ता के साथ बड़ी मित्रता थी) ने इस अपूर्व ग्रन्थ के खो जाने पर बहुत दुःख उठाया और उसकी खोज में बहुत दिनों तक चारों ओर दौड़ता रहा, पर कुछ फल न निकला। उस समय तक यह भी ज्ञात न हो सका कि वह ग्रन्थ कहाँ गया और किस के हाथ में पड़ा।

पूज्य ग्रन्थकर्ता के मारे जाने के पूरे एक वर्ष बाद खोजते हुए हम ठीक स्थान पर पहुँच गए और खोए हुए यूसुफ़ का मुख दिखलाई दिया। बड़ी प्रसन्नता हुई और उसी समय क्रमानुसार लगाने और एकत्र करने के लिये आस्तीन चढ़ाई और उन बिखरे हुए पत्रों को ठीक किया। जब यह पुस्तक ग्रंथकर्ता के पुस्तकालय से हटाई जाकर दूसरे स्थान पर गई, तब कुप्रबंध से उसके सब अंश एक स्थान पर न रहे। उन पत्रों को पतझड़ के पत्तों के समान एकत्र किया। बहुत परिश्रम के अनंतर सब पत्रे एकत्र हुए;

पर मुहम्मद फ़र्रुख़सिअर बादशाह के वज़ीर कुतुबुल् मुल्क अब्दुल्ला खाँ का जीवनवृत्तांत (जो ग्रन्थकर्ता ने लिखा था) नहीं प्राप्त हुआ और पूर्वोक्त कुतुबुल् मुल्क के भाई अमीरुल् उमरा सैयद हुसेन अली खाँ बारहा का वृत्तांत भी आरम्भ से अधूरा मिला। नवाब आसफ़जाह[१] और उसके पुत्र नवाब निजामुद्दौला शहीद के चरित्र ग्रन्थकर्ता ने स्वयं नहीं लिखे थे, जिसके लिये दैव ने उन्हें समय ही नहीं दिया। इन चारों अमीरों का प्रभुत्व सूर्य के समान प्रकट है और इस बड़े ग्रंथ में इन चरित्रों का होना अत्यावश्यक है। दैवात् फ़क़ीर ने इन चारों चरित्रों को स्वरचित पुस्तक सर्वेआज़ाद में लिखा था। कुतुबुल्मुल्क, नवाब आसफजाह और नवाब निज़ामुद्दौला शहीद के चरित्रों को सर्वे-आज़ाद से ले लिया। अमीरुल् उमरा सैयद हुसेन अली के चरित्र का जो अंश हाथ आया था, वह वैसा ही देकर उसके आरंभ की पूर्ति सर्वेआज़ाद से कर दी। कुछ अन्य आवश्यक चरित्र भी इन पत्रों में नहीं थे, जैसे अकबरनामा के रचयिता शेख़ अबुलफ़ज़ल[२] की, जिनकी उत्तमता पर टीका करने की आवश्य-

---

१. नवाब आसफ़जाह के पुत्र ग़ाज़ीउद्दीन और उसके पुत्र इमादुद्दीन के चरित्र भी गुलाम अली कृत ज्ञात होते हैं; क्योंकि वे उसी रूप में ख़ज़ानए आमरः में पाए जाते हैं। यह भी हो सकता है कि गुलाम अली ही ने इस ग्रन्थ से अपनी पुस्तक में उन वृत्तांतों को ले लिया हो।

२. अबुलफ़ज़ल का जीवनचरित्र अब्दुलहई खाँ को मिल गया होगा; क्योंकि वह इस ग्रन्थ में दिया गया है और दोनों संपादकों में से

कता नहीं है और स्वयं ग्रन्थकर्ता ने जिसकी शैली का इस ग्रन्थ में अनुकरण किया है। शाहजहाँ के प्रधान मंत्री सादुल्ला खाँ की भी जीवनी इसमें नहीं है। ग्रन्थकर्ता ने कई स्थानों पर इन जीवनियों का उल्लेख किया है, पर वे मिली नहीं। मालूम होता है कि ग्रन्थ-कर्ता ने इन्हें लिखा था, पर घटना रूपी आँधी के झोंके में वे नष्ट हो गईं।

ग्रन्थकर्ता ने कई चरित्रों को अपूर्ण भी छोड़ दिया है। अस्तु, जो हो गया सो हो गया; और जो है वह है। अब किसमें इतनी मानसिक शक्ति है कि उन्हें तैयार कर पूरा करे। ग्रन्थकर्ता ने ग्रन्थ की भूमिका स्वयं लिखी थी, पर स्तुति और प्रशंसा रह गई थीं; इसलिये फ़क़ीर ने स्तुति के कुछ वाक्य आदि में लिख कर इसमें जोड़ दिए। अब पहले ग्रन्थकर्ता का चरित्र दिया जाता है जिसके अनंतर मूल ग्रन्थ का आरंभ होता है। शुभमस्तु।

किसी ने भी उसे अपनी कृति होना नहीं लिखा है। सादुल्ला खाँ का जीवन-चरित्र अब्दुलहई ने लिख कर इस ग्रन्थ में लगा दिया है।

नवाब समसामुद्दौला शाहनवाज़ खाँ शहीद ख़वाफ़ी औरंगाबादी

इनका असली नाम मीर अब्दुर्रज्ज़ाक़ था और यह ख़वाफ़[1] के सैयद सरदारों के वंश के थे। इनके पूर्वज मीर कमालुद्दीन[2] अकबर बादशाह के समय ख़वाफ़ से भारत आए और बादशाही अच्छी नौकरी पर नियुक्त हो गए। इनके पुत्र मीरक हुसेन जहाँगीर के समय अच्छे पद पर थे और पौत्र मीरक मुईनुद्दीन को भी अमानत ख़ाँ की पदवी के साथ अच्छा पद मिला था। औरंगज़ेब के समय यह लाहौर, मुलतान, काबुल और काश्मीर की दीवानी के पद पर नियत हुए थे और (जब शाहज़ादा शाह आलम मुलतान का सूबेदार हुआ तब) दीवानी के साथ ही नायब सूबेदारी भी अमानत ख़ाँ को मिली थी। उसने अपनी पदवी के नामानुसर बड़ी सचाई से कार्य किया।

---

१. मातृवंश के संबंध से।

२. आईने अकबरी में इस नाम के किसी पदाधिकारी का उल्लेख नहीं है, पर अकबरनामा के भाग ३ में कई कमालों का नाम आया है। मआसिरुल् उमरा में ग्रन्थकर्ता ने अमानत खाँ की जो जीवनी लिखी है, उससे ज्ञात होता है कि मीर कमालुद्दीन के पिता मीर हसन अपने पिता मीर

दीवानी के समय इनके नाम शाही आज्ञापत्र आया कि अमुक मनुष्य को दरबार में भेज दो। अमानत खाँ ने उसे बुलाकर उससे दरबार में जाने के लिये कहा। उसने कहा कि यदि आप मेरी प्रतिष्ठा के उत्तरदायी बनें तो मैं चला जाऊँ। अमानत खाँ ने उत्तर दिया कि मैं ऐसे मनुष्य पर, जिसने पिता और भाइयों के साथ ऐसा ऐसा बर्ताव किया है (अर्थात् औरंगजेब), विश्वास ही नहीं रखता, तब उत्तरदायी कैसे हो सकता हूँ ? जासूसों ने यह समाचार बादशाह तक पहुँचाया, जिससे बादशाह ने क्रुद्ध होकर उसका मन्सब, जागीर और खालसा की दीवानी सब छीन ली। अमानत खाँ बहुत दिनों तक बेकाम रहे, पर अन्त में बादशाह जब समझ गए कि यह मनुष्य ईश्वर से डरता है और मुझे कुछ नहीं समझता, तब इस गुण से इनपर प्रसन्न होकर औरंगजेब ने फिर कृपा की और इनका मन्सब, जागीर तथा दीवानी का पद बहाल कर दिया। वह इनके मनुष्यत्व को भी समझ गए थे कि हर प्रकार के कार्यों में इनका दृढ़ विश्वास किया जा सकता है। जब बादशाह हिंदुस्तान (अर्थात् उत्तरी भारत) में थे और दक्षिण की सूबेदारी पर खानेजहाँ बहादुर कोकल्ताश नियत

हुसेन से बिगड़ कर हिरात से खवाफ़ आकर बस गए थे और कमालुद्दीन अपने पुत्र मीरक हुसेन के साथ भारत आकर अपने मामा शम्सुद्दीन खवाफ़ी के यहाँ ठहरे थे, जिनका वर्णन आईन के पृ० ४४५ में दिया गया है. ग्रन्थकर्ता और आईने अकबरी मीर कमाल की नोकरी के बारे में कुछ नहीं कहते, पर गुलाम अली के कथन का मिस्टर ब्लोकमैन ने उसी पृष्ठ की पाद-टिप्पणी में समर्थन किया है।

थे, तब वहाँ की दीवानी, बख़्शीगीरी और वाकेआ-नवीसी अर्थात् घटना-लेखन का कार्य अमानत ख़ाँ को मिला था। इन्होंने दृढ़ता से दीवानी की और ख़ानेजहाँ बहुधा इनके गृह पर जाते थे। यह औरंगाबाद के नाज़िम भी नियुक्त किए गए थे।

इनके चार पुत्रों ने प्रसिद्धि प्राप्त की थी। पहले मीर अब्दुल् क़ादिर दिआनत ख़ाँ और दूसरे मीर हुसेन अमानत ख़ाँ थे, जिनमें से एक को दीवाने-तन और दूसरे को दीवाने-ख़ालसा का पद मिला था। अमानत ख़ाँ को सूरत बंदर की अध्यक्षता भी मिली थी, जिसकी मृत्यु पर वह पद दियानत ख़ाँ को दिया गया था। यह सूरत की अध्यक्षता पाने के पहिले दक्षिण की दीवानी पर नियुक्त हुए थे और उसके बाद फिर से दूसरी बार दक्षिण की दीवानी पर नियुक्त हुए। तीसरे मीर अब्दुर्रहमान वज़ारत ख़ाँ उपनाम गिरामी मालवा और बीजापुर के दीवान नियुक्त हुए थे। यह अच्छे शैर कहते थे, जो एक दीवान में संगृहीत हुए हैं। उनमें से कुछ उदाहरण स्वरूप यहाँ दिए जाते हैं—

शैरों का अर्थ

प्रेमोन्मत्त यात्रियों का मुखिया जब तक यात्रा की साइत निकलवाता है, तब तक हमारा दीवाना जंगल के किनारे पर (पहुँचकर) अपनी कमर बाँधता है।

कहाँ फूलों के फूलने का समय आ गया और कहाँ मैंने ऐसा अनुचित व्रत धारण कर लिया।

मैंने सुराही और प्याले पर कैसा अत्याचार किया ?

मैंने पहिले उद्दंडता के कारण अपने मित्रों का साथ नहीं दिया और अब अकेला ही प्रेम वन की सैर कर रहा हूँ, अफ़सोस !

चौथे पुत्र काज़िम ख़ाँ मुलतान के दीवान थे। इन्हीं के पुत्र मीर हसन अली नवाब समसामुद्दौला शाहनवाज़ ख़ाँ के पिता थे। माता की ओर से समसामुद्दौला मीर हुसेन अमानत ख़ाँ के वंशधर थे जिनका उल्लेख हो चुका है। समसामुद्दौला के पिता मीर हसन अली बीस[1] वर्ष की अवस्था में मर गए और वे प्रसिद्धि प्राप्त न कर सके।

यह नहीं छिपा है कि मीरक मुईनुद्दीन अमानत ख़ाँ के बहुत संतानें थीं और औरंगाबाद का एक बड़ा महल्ला (कुतुबपुरा) उसी वंशवालों से बसा हुआ है। दक्षिण की दीवानी और अन्य अच्छे पद इस वंश की संपत्ति से हो गए थे। बहुत लोगों को इस वंश से ख़ैरात मिलती रहती थी। मीर अब्दुलक़ादिर दिआनत ख़ाँ के बाद दक्षिण की दीवानी इनके पुत्र अलीनक़ी ख़ाँ को मिली थी और उनकी पदवी—दियानत ख़ाँ—भी इन्हें प्राप्त हुई थी। इनकी मृत्यु पर यह भारी पद इनके पुत्र मीरक मुहम्मद तक़ी को मिला जिन्होंने वज़ारत ख़ाँ की पदवी पाई। इनकी मृत्यु पर इनके भाई मीर मुहम्मद हुसेन ख़ाँ उस पद पर नियुक्त हुए। आसफजाह और उनके समय के बाद भी इन्होंने विश्वसनीय पदों पर ही जीवन

१. यह लाहौर में मरे थे और इनके पुत्र समसामुद्दौला का जन्म इनकी मृत्यु के अनंतर हुआ था। मआसिरुलूउमरा जि० ३, पृ० ७२१।

व्यतीत किया था तथा यमीनुद्दौला मन्सूर-जंग की पदवी पाई थी। यह और नवाब समसामुद्दौला एक ही दिन मारे गए थे।

अब नवाब समसामुद्दौला का वर्णन लिखा जाता है। इस अद्वितीय अमीर के गुण इतने थे कि लेखनी उन्हें लिख नहीं सकती। वस्तुतः न संसार ने इतने गुणों से संपन्न कोई अमीर देखा होगा और न वृद्ध आकाश ही ने ऐसे ऐश्वर्यशाली सरदार को अपने तेज रूपी तुला में तौला होगा। जन्म ही से इनके ललाट पर योग्यता चमक रही थी और भविष्य में प्रस्फुटित होनेवाले गुण भी इनके कार्यों से प्रकट होने लगे थे। इनका जन्म २९ रमज़ान[1] सन् ११११ हि० को लाहौर में हुआ था। इनके आपसवाले अधिकतर औरंगाबाद में रहते थे, इससे यह यौवन काल ही में वहाँ चले गए[2]। पहले पहल आसफजाह के दरबार में इन्हें मन्सब मिला और कुछ दिनों के अनंतर बरार प्रांत में बादशाह की ओर से दीवान बनाए गए। बहुत दिनों तक वह इस पद पर रहे और ऐसे अच्छे प्रकार से काम किया कि नवाब आसफ़-

---

१. २८ रमज़ान ६ मार्च सन् १७०० ई० को पिता की मृत्यु के पन्द्रह दिन बाद इनका जन्म हुआ था। मआ० जि० ३, पृ० ७२१।

२ मआ० जि० १, पृ० ६११ में लिखा है कि यह सन् ११२७ हि० (सन् १७१५ ई०) में लाहौर ही में थे, जहाँ इन्होंने हमीदुद्दीन को देखा था। उस समय इनकी अवस्था पन्द्रह वर्ष की थी और उसी वर्ष ये दक्षिण गए। मआसिरुल्उमरा जि० ३, पृ० ७२२ में लिखा है कि वह सैयद हुसेन अली बारहः के साथ दक्षिण गए थे, जो सन् १७१५ ई० की घटना है।

जाह ने एक बार कहा था कि मीर अब्दुर्रज्जाक का कार्य साफ़ होता है[1]। जब दिल्ली के सम्राट् मुहम्मद शाह ने सन् ११५० हि० में नवाब आसफ़जाह को अपने यहाँ बुलाया और वह अपने पुत्र निजामुद्दौला नासिरजंग को दक्षिण में अपने प्रतिनिधि स्वरूप छोड़कर दिल्ली चले गए, तब समसामुद्दौला पुत्र के साथ हो गए। नवाब निजामुद्दौला ने उन्हें अपनी सरकार की दीवानी और बादशाही दीवानी दोनों सौंप दी। इन्होंने भी दोनों पदों के कार्य बड़ी योग्यता और सफ़ाई से किए।

जब नवाब आसफ़जाह हिंदुस्तान से दक्षिण को लौटे, तब षड्यंत्रकारियों ने नवाब निजामुद्दौला को पूज्य पिता के विरुद्ध उभाड़ा, जिसमें समसामुद्दौला की सम्मति नहीं थी, प्रत्युत इन्होंने इसके प्रतिकूल उन्हें पिता से मिलने की राय दी। पर षड्यंत्र रचनेवालों के झुंड चारों ओर से ऐसे उमड़ पड़े थे कि इनकी कुछ न चली। पिता-पुत्र के युद्ध के दिन समसामुद्दौला उस हाथी पर बैठे थे, जो नवाब निजामुद्दौला के हाथी के पीछे था। जब नवाब निजामुद्दौला की सेना परास्त हो गई और उनके हाथी को आसफ़जाही सेना ने घेर लिया, तब सादुल्ला ख़ाँ वजीर के पुत्र

सन् १७३२ ई० में यह बरार के दीवान बनाए गए थे। उसी जिल्द के पृ० ७२८ में लिखा है कि इन्होंने छः वर्ष एकांतवास किया था। पृ० ७४० में लिखा है कि यह सन् १७२४ ई० में निजामुलमुल्क के साथ मुबारिज ख़ाँ की चढ़ाई पर गए थे।

१ मआ० जि० ३, पृ० ७२२।

हर्जुल्ला खाँ[1] ने (जो समसामुद्दौला के मित्र थे) इनसे कहा कि 'निजामुद्दौला तो अपने पिता के घर जा रहे हैं, पर तुम कहाँ जा रहे हो ? जहाँ तक चाहिए, वहाँ तक मित्रता निबाह चुके। अब इस गड़बड़ी से दूर होना चाहिए।' यह सुनकर नवाब समसामुद्दौला हाथी से उतर पड़े और उस झगड़े से अलग हो गए।

कुछ दिनों तक यह नवाब आसफ़जाह के कोपभाजन रहे और कुछ समय तक एकांत वास किया[2]। यही समय मआसिरुल् उमरा के लिखने में लगाया गया था। सन् १७६० ई० में आसफ़-जाह ने अपने राजत्व काल के अंत में इन्हें क्षमा करके पहिले की तरह इनको बरार का दीवान बना दिया। इसके बाद ही आसफ़-जाह की मृत्यु[3] हो गई और नवाब निज़ामुद्दौला गद्दी पर बैठे।

---

१ मआ० जि० २, पृ० ५२१। यह सादुल्ला खाँ शाहजहाँ के वजीर मालूम होते हैं।

२. मआ० उमरा जि० ३, पृ० १०८ में लिखा है कि यह उन दिनों मुतहौवर खाँ के गृह में जाकर रहते थे। वह सन् ११५६ हि० (सन् १७४३ ई०) में मरा। उसी जिल्द के पृ० ७७६ में इसकी जीवनी दी हुई है। पृ० ७६३ में लिखा है कि मुतहौवर खाँ के ही प्रयत्न से यह दक्षिण में रह गए थे, जिसका तात्पर्य यही मालूम होता है कि उसी के वंश में इन्होंने विवाह किया था। इसका समर्थन यों भी होता है कि पृ० ७२२ में यह लिखते भी हैं कि 'विवाह कर लिया था, इससे दक्षिण ही में रह गए'।

३. सन् ११६१ हि० २२ मई सन् १७४८ ई० को इनकी मृत्यु हुई। (बीलस् ओरिएंटल बायोग्रैफिकल डिक्शनरी)

इन्होंने नवाब समसामुद्दौला को बुलाकर पहिले की तरह अपना दीवान बनाया। उन्होंने भी दीवानी का कार्य (जो कि दक्षिण के छः सूबों का कार्य था) सफलतापूर्वक किया। जब निज़ामुद्दौला हिन्दुस्तान के बादशाह अहमदशाह के बुलाने पर दिल्ली चले, तब समसामुद्दौला को दक्षिण में अपना प्रतिनिधि बनाकर छोड़ गए और जाते समय अपनी अँगूठी देकर कहा था कि यह मुहर सुलेमानी है, इसे अपने पास रखो। पर नवाब नर्मदा नदी तक पहुँचे थे कि बादशाही आज्ञानुसार उन्हें फिर दक्षिण लौट जाना पड़ा। जब नवाब निज़ामुद्दौला की सेना अर्काट पहुँची और उसने मुज़फ़्फ़रजंग[1] पर विजय पाई, तब नवाब समसामुद्दौला ने निज़ामुद्दौला को बहुत समझाया कि अब इस प्रांत में ठहरना नीतिसंगत नहीं है और अनवरुद्दीन ख़ाँ शहामतजंग गोपामयी के पुत्र मुहम्मद अली खाँ[2] को अंग्रेज़ फिरंगियों के साथ यहाँ छोड़ना चाहिए, जिसमें वे फूलभेरी के फरासीसी ईसाइय को दंड दें। पर नवाब निज़ामुद्दौला ने इन बातों पर ध्यान नहीं दिया और

---

१. आसफ़जाह निज़ामुल्मुल्क के नाती और निज़ामुद्दौला के भांजे थे। इनका नाम हिदायतख़ाँ मुहीउद्दीन था। (विल्क्स) २६ रबीउल्अव्वल सन् ११६३ हि० (२४ मार्च १७५० ई०) को युद्ध हुआ था। (इलि० डाउ० जि० ८, पृ० ३९१)

२. नवाब अनवरुद्दीन खाँ मुज़फ़्फ़रजंग से युद्ध कर मारा गया था, जिसके अनन्तर निज़ामुद्दौला ने चढ़ाई कर मुज़फ़्फ़रजंग को परास्त किया। अंग्रेज़ों ने इसी के पुत्र मुहम्मद अली खाँ का पक्ष लिया था।

कुछ अदूरदर्शियों ने (जो अपने स्वार्थ के लिये वहाँ ठहरना चाहते थे और अपने लाभ के लिये राज्य-प्रबन्ध की ओर दृष्टि न डालते थे) नवाब को वहीं रहने पर बाध्य किया जिससे जो होना था, सो हुआ[१] ।

नवाब निज़ामुद्दौला के मारे जाने पर मुज़फ्फर जंग नवाब हुए और वहाँ से लौटे, पर कड़प्पा पहुँच कर वह भी मारे गए[२] । तब नवाब आसफ़जाह के पुत्र नवाब सलाबत जंग अमीरुल्मुमालिक को गद्दी मिली और वे कड़प्पा से कर्नोल आए। नवाब समसामुद्दौला यहाँ तक सेना के साथ थे, पर कर्नोल से अलग होकर जल्दी ही औरंगाबाद पहुँचे। इस जीवन-वृत्तांत का लेखक भी संयोग से नवाब समसामुद्दौला के साथ औरंगाबाद आया।

१. फ्रान्सीसियों ने कर्णाटक के हिम्मत खाँ आदि अफ़ग़ान सरदारों को, जो निजामुद्दौला की ओर के थे, मिला लिया और उनकी सहायता से १६ मुहर्रम ११६४ हि० (१६ नवम्बर सन् १७५० ई०) को रात्रि में निज़ामुद्दौला पर एकाएक आक्रमण कर दिया। (इलि० डा० जि० ८, पृ० ३९१) निज़ामुद्दौला को उसी के धोखेबाज़ पक्षपाती कड़प्पा के नवाब ने गोली से मार डाला। मैलेसन्स 'हिस्टरी ऑव द फ्रेंच इन इन्डिया,' पृ० २६६।

२. जिन अफ़ग़ानों की सहायता से मुज़फ़्फरजंग निज़ाम हुए थे, उनमें से कुछ के साथ वह पहले पाँडिचेरी गए और वहाँ के फ्रेंच गवर्नर डूपले से भेंट कर तथा कुछ फ्रेंच सेना साथ लेकर अर्काट होते हुए कड़प्पा पहुँचे। यहीं उन अफग़ानों से इनसे भी झगड़ा हो गया और अंत में युद्ध की तैयारी हुई। १७ रबीउल् अव्वल ११६४ हि० को हिम्मतखाँ आदि अफ़ग़ान मारे

समसामुद्दौला शहर में पहुँच कर कुछ दिन घर ही पर रहे और ९ रज्जब सन् ११६५ हि० को नवाब अमीरुल्मुमालिक से मिलने हैदराबाद गए और मिलने के अनन्तर उन्होंने हैदराबाद की सूबे-दारी पाई। कुछ समय के बाद सूबेदारी से अलग होकर औरंगा-बाद आए और एकांत में रहने लगे। जब नवाब अमीरुल्मुमालिक औरंगाबाद आए, तब १४ सफ़र सन् ११६८ हि० को उन्होंने नवाब समसामुद्दौला को प्रधान मंत्री का पद दिया और सात-हज़ारी, ७००० सवार का मन्सब तथा समसामुद्दौला की पदवी भी दी। चार वर्ष तक यह इस पद पर रहे और नीति तथा बुद्धि से प्रत्येक कार्य को उन्नति दी। बे-सामानी पर भी ऐसा कार्य किया कि बुद्धिमान भी चकित हो गए। उस समय (जब यह प्रधान मंत्री बनाए गए) नवाब अमीरुल्मुमालिक के राज्य की ऐसी बुरी हालत थी कि धन की कमी से घरेलू सामान तक बेचने को नौबत आ गई थी। नवाब समसामुद्दौला ने ऐसा प्रबन्ध किया कि जल फिर अपने रास्ते पर आ गया और गड़बड़ी मिट गई।

गए और मुज़फ़्फ़रजंग भी आँख में गोली लगने से मारा गया (अख़बारे मुहब्बत, इलि० डा० जि० ८, पृ० ३६२)। एक दूसरे इतिहासज्ञ का कथन है कि फरवरी सन् १७५१ ई० के आरम्भ में कड़प्पा के नवाब के राज्य में कर्नोल के नवाब ने इनके सिर पर भाला मारा, जिससे इन की मृत्यु हो गई (हिस्ट्री ऑव दी फ्रेंच इन इंडिया पृ० २७६)।

१. नवाब समसामुद्दौला फ्रेंच सेनापति बुसी के कहने से उस पद से हटाए गए थे और फिर उसी के प्रस्ताव करने पर नियुक्त किए गए थे।

विद्रोहियों ने अधीनता स्वीकृत कर ली और बदमाश भी सीधे हो गए। राज्य में ऐसी शांति स्थापित हो गई कि प्रजा बड़े संतोष से दिन व्यतीत करने लगी। चार वर्ष के मंत्रित्व में राज्य के आय व्यय को बराबर कर दिया; और (नवाब समसामुद्दौला) कहते थे कि अगले वर्ष में ईश्वर की कृपा से व्यय से आय बढ़ा दूँगा।

मंत्रित्व पद पर दृढ़ता से जम जाने पर नवाब अमी-रुलूमुमालिक की सेना को भी इन्होंने संचालित किया और बरार की ओर रघू जी भोंसला को दंड देने के लिये गए। उसे परास्त कर पाँच लाख रुपया कर लिया। बरार से निरमल[१] गए जहाँ के जमींदार सूर्यराव ने आसफ़जाह के समय से बलवा करके बराबर सरकारी सेना को परास्त किया था। समसामुद्दौला ने उपाय करके उसे कैद कर लिया और उसके राज्य पर अधिकार कर लिया। मंत्रित्व के पहले वर्ष में इन्होंने ये दो बड़े काम किए। हैदराबाद में वर्षा ऋतु व्यतीत कर दूसरे वर्ष सन् ११६८ हि० में नवाब अमीरुलूमुमालिक को मैसूर लिवा गए। वहाँ के राजा से पचास लाख रुपया भेंट लिया और वर्षा के पहले हैदराबाद लौट आए। इसी वर्ष दिल्ली के बादशाह आलमगीर द्वितीय ने नवाब समसामुद्दौला के लिये माही और मरातिब भेजा। एक मनुष्य ने

---

१. यह स्थान तेलिंगाना में है (जैरेट जि० २, पृ० २३७)। गोदावरी के तट पर नानदेर के पूर्व में वर्तमान हैदरावाद राज्य के अंतर्गत है।

एक मिसरा तारीख निकालने का[1] कहा जिसका अर्थ है—'शाहे हिंद से माही और मरातिव[2] भी आया।'

मंत्रित्व के तीसरे वर्ष सन् ११६९ हि० में वालाजीराव की सहायता की। वालाजी ने सानोर[3] के दुर्ग को घेर लिया था और वहाँ के अफ़ग़ान दुर्ग को दृढ़ कर वीरता से डटे हुए थे। कई बार दुर्ग से निकल कर मोर्चों के मनुष्यों को मारा। वाला जी ने घबरा कर समसामुद्दौला से सहायता माँगी। धन्य है ईश्वर कि राव बाला जी (जिसने दक्षिण और हिंद के प्रांतों पर अधिकार कर लिया था और दिल्ली के सम्राट् तथा सरदारों को हिला दिया था) समसामुद्दौला से सहायता माँगे। समसामुद्दौला नवाब अमीरुलूमुमालिक को सहायतार्थ लिवा गए और सेना भी सानोर पहुँच गई। मोर्चे लगाए गए और तोपख़ाने ने ऐसी ठीक आग बरसाई कि अफ़ग़ानों का रंग उड़ गया तथा उन्होंने संधि का

---

१. १+७+३००+१+५+५+५०+४+१+४०+४+४०+१+५+१०+६+४०+२००+१+४००+२+१+४०+४ = ११६८ हि०, सन् १७५५ ई०।

२. जिस डंके पर मछली का चिह्न रहता है, उसे माही कहते हैं। मरातिव का अर्थ पदवियाँ है।

३. सानोर यह सवानोर बंबई प्रांत के धारवाड़ ज़िले के अंतर्गत तुंगभद्रा नदी के पास है। इसका नाम बंकापुर भी मालूम होता है (विल्क्स जि० १, पृ० १६.)

प्रस्ताव किया। इसके अनंतर नवाब समसामुद्दौला ईसाइयों का नाश करने के विचार में पड़े[1]।

यह ज्ञात है कि जब नवाब निज़ामुद्दौला नासिर जंग मुजफ्फर-जंग का दमन करने के लिये अर्काट गए, तब उसने पौंडिचेरी के फ्रेंच ईसाइयों की सहायता से सामना किया था, पर परास्त हुआ। ईसाई पौंडिचेरी भागे और मुज़फ्फ़रजंग क़ैद हुआ। इसके अनंतर ईसाइयों ने अफ़ग़ानों से मिलकर फ़िर बलवा किया और नवाब निज़ामुद्दौला को मार कर मुज़फ़्फ़रजंग को निज़ाम बनाया। इसके पहले (जैसा कि इस चरित्र के लेखक ने सर्वे आज़ाद में विस्तार-पूर्वक लिखा है) ईसाई अपने बंदरों में ही रहते थे और अपनी सीमा से बाहर नहीं निकलते थे। निज़ामुद्दौला के मारे जाने पर उनका साहस बढ़ गया और उन्हें देश की विजय का चसका लग गया। अर्काट प्रांत के कुछ भाग पर फरांसीसी ईसाई अधिकार कर बैठे और कुछ भाग पर अंग्रेज़ ईसाई। अंग्रेजों का बंगाल पर भी अधिकार था और सूरत बंदर भी

---

१. निज़ाम हैदराबाद के राज्य के अंतर्गत कड़प्पा, सीर, कर्नोल तथा सवानोर के चार अफ़ग़ान नवाब थे। अंतिम नवाब पर सन् १७४७ ई० में चढ़ाई कर सदाशिव राव ने उसका आधा राज्य छीन लिया था। सन् १७५५ ई० में बाला जी बाजीराव के तोपखाने का सरदार मुजफ्फर खाँ भाग कर सवानोर के नवाब के यहाँ चला गया। बालाजी के उसे माँगने पर नवाब ने इन्कार कर दिया और अन्य अफ़ग़ान नवाबों तथा मराठा सरदार मुरारी राव घोरपदे से मेल कर युद्ध की तैयारी की। बाला जी ने निज़ाम से सहायता ली, और उसने प्रसन्नता से अधीनस्थ अफ़ग़ानों के उसकी आज्ञा

उन्होंने ले लिया था। इस प्रकार ईसाइयों के अधिकार का आरंभ हो गया था।

नवाब निज़ामुद्दौला के मारे जाने पर मुज़फ़्फ़रजंग ने फ्रेंचों को नौकर रखा और मित्र बनाया। उनके मारे जाने पर वे नवाब अमीरुलमुमालिक के नौकर हुए और सिकाकुल, राजमंदरी आदि मौज़ों को जागीर में ले लिया तथा प्रभावशाली हो गए। ईसाइयों के सरदार मोशे बुसी की पदवी सैफ़ुद्दौला उमदतुल्मुल्क प्रसिद्ध हुई और उनकी सरकार का प्रबंधकर्ता हैदरजंग हुआ। हैदरजंग के जन्म तथा वंश का हाल यों है कि इसका असली नाम अब्दु-र्रहमान था और इसके पिता ख़्वाजा क़लंदर ने बलख़ से आकर नवाब आसफ़जाह के समय विश्वास पैदा किया और मछली बंदर का फौजदार हुआ। वहाँ का हिसाब भी इसी के हाथ में था। मछली बंदर ही में कुछ ईसाइयों से इसकी जान पहचान हो गई। यहाँ से वह पौंडिचेरी गया और वहीं ईसाइयों की रक्षा

बिना लिए ही युद्ध की तैयारी करने के कारण सहायता देना स्वीकार कर लिया। बाला जी ने अफ़ग़ानों तथा मराठों को युद्ध में परास्त कर दिया, जिससे वे सवानोर दुर्ग में जा बैठे और सलावत जंग के ससैन्य आने पर दुर्ग घेर लिया गया। फरांसीसी तोपों से दुर्ग टूटा, मुरारीराव पेशवा के पास चला आया और सवानोर के नवाब ने ग्यारह लाख रुपए और ज़मीन आदि देकर प्राण-रक्षा की। (पारसनीस किनकेड कृत मराठों का इतिहास, भाग ३, पृ० ३५-३६)

आगे के एक पारा में ईसाइयों पर क्रुद्ध होने के कुछ कारण दिखलाए गए हैं।

में रहने लगा। हैदरजंग उस समय अल्पवयस्क था और कूरंदूर[1] नामक कप्तान अर्थात् पौंडिचेरी के अध्यक्ष का उस पर बड़ा स्नेह था। जब मुज़फ़्फ़रजंग नवाब हुआ, तब कूरंदूर ने मोशे बुसी की अधीनता में कुछ ईसाइयों को मुज़फ़्फ़रजंग के साथ भेजा[2] और अब्दुर्रहमान को (ईसाइयों और मुसलमानों के बीच दुभाषिए का काम करने को) बुसी के साथ कर दिया। अब्दुर्रहमान योग्य था, इसलिए उसने बहुत उन्नति की और फिरंगी सरकार का कुछ कार्य उसके हाथ में रहने लगा तथा उसे असदुल्ला हैदरजंग की पदवी मिली।

सानोर के अफ़ग़ानों का कार्य पूरा होने पर समसामुद्दौला ने ईसाइयों को निकालना चाहा और उनकी सम्मति से नवाब अमीरुलमुमालिक ने ईसाइयों को नौकरी से हटा दिया। वे हैदराबाद

---

१. उस समय पौंडिचेरी के गवर्नर जोसेफ़ फ्रैंकोयस डूपले थे जिनके नाम का कोई अंश कूरंदूर, गूरंदूर आदि के समान नहीं है। किसी अन्य गवर्नर के बारे में यह हो नहीं सकता, क्योंकि आगे के वाक्य में वही नाम फिर आया है, जिसने बुसी को हैदराबाद भेजा था। इसके लिये अधिक तर्क या कल्पना की आवश्यकता भी नहीं। गवर्नर का पोर्तुगीज़ रूप मिस्टर वेवरिज़ के अनुसार गोवरनदोर है, जो ठीक इसी प्रकार फारसी लिपि में लिखा जायगा। मात्रा और बिन्दी के हेर फेर से उसे अनेक प्रकार से पढ़ कर तर्क करना व्यर्थ है। फारसी की प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों में बहुधा काफ़ और गाफ़ दोनों पर एक ही मर्कज़ दिया हुआ मिलता है।

२. गुलाम अली और ओर्म के अनुसार मुज़फ़्फ़रजंग ने पहले पहल ईसाई सेना नौकर रखी थी।

चले गए और उस पर अधिकार कर दुर्ग में जा बैठे। नवाब अमीरुल्मुमालिक ने पीछा किया और पहुँच कर उसे घेर लिया। दो महीने तक यह घेरा रहा; युद्ध भी होता रहा और अंत में संधि होने पर उमदतुल्मुल्क और हैदरजंग ने आकर भेंट की[1]। घेरे के समय ईसाइयों की जागीर का प्रबंध ढीला हो गया था; इसलिये उमदतुल्मुल्क और हैदरजंग छुट्टी लेकर राजबंदरी और सिकाकुल चले गए और वहाँ का प्रबंध ठीक किया। समसामुद्दौला ने हैदराबाद में वर्षा व्यतीत की और मंत्रित्व के चौथे वर्ष, सन् ११७० हि० (१७५६-७) में बाहर निकले। बीदर प्रांत के अंतर्गत भालकी[2] आदि परगनों पर नवाब आसफ़जाह के समय से रामचंद्र मरहठा[3]

---

१. इस प्रकार बुसी को हटा कर समसामुद्दौला ने अंग्रेज़ों तथा पेशवा को फरासीसों को नष्ट करने के लिये बुलाया, पर किसी ने आना स्वीकार नहीं किया। बुसी नीज़ाम की सेना को भुलावा देकर हैदराबाद पहुँच गया और चारमहल में पड़ाव कर पौंडिचेरी से सहायता मँगवाई। प्रायः डेढ़ सहस्र सेना सहायतार्थ आई और कई युद्ध हुए। अंत में २० अगस्त सन् १७५६ ई० को संधि हो गई।

२. ग्रांट डफ के मानचित्र में बालकी लिखा है। बीदर के उत्तर-पश्चिम में मानजेरा तथा नारायनजा नदियों के बीच में स्थित है। निज़ाम राज्य का एक क़स्बा है।

३. ग्रांट डफ कृत 'मरहठों का इतिहास' जि० २, पृ० १०६-७। यह चंद्रसेन जादव का पुत्र रामचंद्र जादव था। इसने पौंडिचेरी से आती हुई सहायक सेना को नहीं रोका था, इसी लिये इस पर यह चढ़ाई हुई थी। इसने आगे चल कर सलाबतजंग की सहायता की थी। (पारस० किन० मराठों का इतिहास, भा० २, पृ० ३७-८.)

का अधिकार था, जिसकी आय लाखों रुपए थी। अयोग्यता और कुविचार के कारण वह सेवा कार्य ठीक नहीं कर सका, इसलिये समसामुद्दौला ने इसकी जागीर ले लेना चाहा। रामचंद्र ने युद्ध की तैयारी की, पर सफल-प्रयत्न न होने पर उसने अधीनता स्वीकृत कर ली और भालकी को छोड़ कर उसकी और सब जागीर ज़ब्त हो गई। वर्षा के आरंभ में समसामुद्दौला नवाब अमीरुल्मुमालिक के साथ औरंगाबाद लौट आए और उसी समय एक सेना भेज कर दौलताबाद दुर्ग को घेर लिया। बुखारी सैयदों से (जो औरंगज़ेब के समय से उस पर अधिकृत थे) वह दुर्ग ले लिया गया। इसके बाद कुचक्री आकाश ने दूसरा पृष्ठ उलटा और समसामुद्दौला के पराभव पर कमर बाँधी। इनकी बुद्धि भी गुम हो गई।

यह घटना इस प्रकार है कि सैनिकों का बहुत सा वेतन नहीं दिया गया था, जिन्हें कुचक्रियों ने बहकाया। सैनिकों ने वेतन के लिये शोर मचाया। यदि समसामुद्दौला चाहते तो दो लाख रुपया व्यय कर बलवा शांत कर देते, पर अवनति का समय आ गया था, इसलिये इन्होंने इसका कुछ प्रयत्न नहीं किया। ६ ज़ीउल्क़दः सन् ११७० हि० (सं० १८१४ वि०) को सिपाहियों ने नवाब आसफजाह के पुत्र नवाब शुजाउल्मुल्क बसालतजंग को उनके घर से लाकर नवाब अमीरुल्मुमालिक के सामने खड़ा किया और समसामुद्दौला से मंत्रित्व लेकर उस पद का ख़िलअत इन्हें दिलवाया। विद्रोह बढ़ गया और बलवाइयों तथा बाज़ारवालों ने

शोर मचाकर चाहा कि समसामुद्दौला का मकान लूट लें, पर कुछ कारणों से संध्या तक यह न हो सका। रात्रि होने से वलवाई तितिर बितिर हो गए। समसामुद्दौला ने यह विचार किया कि कल यदि आक्रमण होगा तो हम अपने मालिक का सामना न कर सकेंगे, इससे अच्छा होगा कि अलग हो जायँ। अर्द्ध रात्रि में आवश्यक सामान हाथियों पर लाद कर और लाखों की संपत्ति आदि वहीं छोड़ कर वह दौलतावाद दुर्ग की ओर अपने परिवार के साथ चले गए। लगभग पाँच सौ सवारों और पैदलों ने साथ दिया। मशाल जला कर ये लोग सशस्त्र घर से वाहर निकले और परकोटे के ज़फ़र फाटक को ओर चले। फाटक के रक्षक सामना न कर सके और भाग गए। ताला तोड़ कर ये लोग वाहर निकल गए। ८ ज़ीउल्क़ुद: सन् ११७० हि० (सन् १७५७ ई०) को यह दौलतावाद पहुँच गए। इनके जाने के वाद इनका कुछ सामान लुट गया और वाक़ी सरकार के अधिकार में चला गया। कुछ दिनों के अनंतर सेना नियुक्त हुई, जिसने दौलतावाद दुर्ग घेर लिया और युद्ध होने लगा।

समसामुद्दौला अनेक गुणों और सुस्वभाव से विभूषित थे; पर कभी कभी ऐसा होता है कि ईश्वर अपने सेवकों को संसार की दृष्टि से गिरा देता है और उन्हें संसार रूपी परीक्षा स्थान में अपना ठीक परिचय देने के लिये वाध्य करता है। समसामुद्दौला के साथ भी ऐसा ही हुआ। इतनी योग्यता रखते हुए भी अमीर, गरीव, दरवारी और वाज़ारी किसी ने भी उनका

साथ नहीं दिया। सिवा पकड़ने और मारने के कोई दूसरा शब्द न कहता था। यदि किसी ने सचाई बरती और मित्रता की याद रखी तो भी उसमें इतना साहस कहाँ कि जाँच पड़ताल करे। इसी दरिद्र ने अकेले उस गड़बड़ में बात उठाई और संसार की शत्रुता मान ली। नवाब शुजाउल्मुल्क से भेंट कर संधि की बात चलाई और संधि की बातें तै करने के लिये दो बार दुर्ग में भी गया। बातों के फेर में दुर्ग का घेरा भी कई दिनों के लिये रोका। अभी संधि की शर्तें ठीक नहीं हुई थीं कि बरार के सूबेदार नवाब निज़ामुद्दौला द्वितीय एलिचपुर से औरंगाबाद आए। नवाब अमीरुल्मुमालिक ने उन्हें अपना युवराज बनाया और निज़ामुल्मुल्क आसफ़जाह की पदवी दी। नवाब आसफ़जाह द्वितीय ने इस चरित्र के लेखक को बुलाकर समसामुद्दौला को समझाने के लिये नियत किया और उनके इच्छानुकूल संधिपत्र पर हस्ताक्षर करके मुझे दे दिया। मैं पत्र लेकर दुर्ग में गया और उन्हें दरबार में जाने के लिये उत्सुक कराया। नवाब आसफजाह ने सरदारों को स्वागतार्थ भेजा। समसामुद्दौला ने १ रबीउल् अव्वल सन् ११७१ हि० (१२ सितं० १७५७ ई०) को दुर्ग से निकल कर स्वागत के लिये आए हुए सरदारों से भेंट की और उसी दिन नवाब आसफजाह द्वितीय और नवाब अमीरुल्मुमालिक से भी भेंट की तथा कृपापात्र हुए।

इसी समय बालाजी राव युद्धार्थ औरंगाबाद के पास पहुँचे और अपने पुत्र विश्वासराव को अपना हरावल बनाया। राजा

रामचन्द्र को (जो नवाब अमीरुल् मुमालिक से भेंट करने को स्वदेश से आते हुए औरंगाबाद से तीस कोस पर सिंधखेड़[1] पहुँचा था) मरहठों ने वहीं घेर लिया। नवाब आसफजाह औरंगाबाद से कूच कर सिंधखेड़ पहुँचे और रामचन्द्र को मृत्यु-मुख से बचाया[2]। रास्ते में बहुत युद्ध हुआ और आसफजाह ने बड़ी वीरता और साहस दिखलाया। बहुत से शत्रु तलवार से मारे गए। समसामुद्दौला भी साथ थे। इसी समय समाचार मिला कि उमदतुल्मुल्क मोशे बुसी और हैदरजंग जागीरों का काम निपटा कर नवाब अमीरुल्मुमालिक से भेंट करने की इच्छा रखते हुए हैदराबाद पहुँच गए हैं। हैदरजंग ने समसामुद्दौला को ख़त पर ख़त लिखे और इतनी सफ़ाई दिखलाई कि अंत में इन्होंने उस पर अच्छी तरह विश्वास कर लिया तथा उसके धोखे और कपट का कुछ ध्यान न रखा। विजयी सेना सिंधखेड़ से लौट कर शाहगढ़ पहुँची थी कि हैदरजंग आ पहुँचे और कुछ सेना ने औरंगाबाद पहुँच कर नगर के उत्तर ओर पड़ाव डाला।

समसामुद्दौला ने अपना कुल प्रबन्ध हैदरजंग को सौंप दिया और उसने चापलूसी करके कपट का जाल बिछाया। मित्रों ने, जो उसके कपट को जानते थे, बातों में तथा प्रकाश्य रूप से समसामुद्दौला को उसके बारे में समझाया, पर उन्होंने ने उनका विश्वास नहीं किया। शत्रु की सत्यता पर विश्वास कर

१. औरंगाबाद के पूर्व में है।

२. अधिक वृत्तांत ग्रांट डफ जिल्द २, पृ० १०६ में देखिए।

मित्रों के बंधुत्व का विचार न किया। २६ रज्जब सन् ११७१ हि० (५ अप्रैल १७५८ ई०) को अमीरुलमुमालिक औरंगाबाद के बेगम बाग़ में गए थे[1] और वहीं हैदरजंग ने षड्यंत्र रचा। समसामुद्दौला और यमीनुद्दौला के, जिनका ऊपर ज़िक्र आ चुका है, आज्ञानुसार जब बेगम बाग़ में गए, तब उसने इन दोनों को क़ैद कर दिया। वहाँ से वे सेना में लाए जाकर अलग अलग ख़ेमों में रखे गए। समसामुद्दौला के पुत्र मीर अब्दुलहई ख़ाँ, मीर अब्दुस्सलाम ख़ाँ और मीर अब्दुन्नबी को भी बुलाकर उनके पिता के ख़ेमे में क़ैद किया, जिसके चारों ओर ईसाइयों के पहरे थे। दूसरी बार समसामुद्दौला के मकान में जो कुछ संचित हुआ था, वह भी लुट गया और सैयदों की स्त्रियाँ घर से निकाल दी गईं। समसामुद्दौला के संबंधियों और उनके विश्वासपात्रों को भी, जो योग्यता रखते थे, कड़ी क़ैद में रखा। उनका धन छीन लिया गया और सैयदों पर ऐसा अत्याचार हुआ कि कर्बला की घटना नई हो गई।

पर इन कार्यों का फल हैदरजंग के लिये शुभ नहीं हुआ। नवाब आसफ़जाह द्वितीय ने उसे मार डालने का विचार किया। इसका कारण[2] यह है कि हैदरजंग ने नवाब समसामुद्दौला को

---

१. अपने पिता के मक़बरे पर फ़ातिहा पढ़ने को गए थे जो औरंगाबाद से कुछ कोसों पर है। (विल्क्स जि० १, पृ० ३९०)

२. बालाजी बाजीराव तथा शाहनवाज़ ख़ाँ ने मिलकर फरांसीसों को हैदराबाद से निकालने का यह उपाय निकाला कि उत्तरी सरकार के विद्रोह

धोखा दिया था, इससे उसका विश्वास उठ गया था। दूसरा कारण यह था कि पहले हैदरजंग ने नवाब आसफ़जाह का बल तोड़ा था और अब उसने समसामुद्दौला को क़ैद कर लिया था। इसका विवरण यों है कि नवाब आसफ़जाह ने बरार से भारी सेना साथ लाकर राज्य का नैतिक और कोष का प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया था। हैदरजंग ने यह देखकर कि नवाब आसफ़जाह के कारण मेरा अधिकार नहीं चलेगा, उन्हें पराजित करने का षड़यंत्र रचा। अनेक उपायों से उसने नवाब को सेना से अलग किया और सैनिकों के वेतन का आठ लाख

दमन करने में लगे हुए बुसी के आने के पहिले सलाबतजंग को कैद कर उनके छोटे भाई निज़ाम अली को गद्दी पर बैठाया जाय। इन्हीं को निज़ामुल्मुल्क आसफ़जाह की पदवी मिली थी। सैनिकों के विद्रोह का बहाना कर शाहनवाज़ ख़ाँ ने दौलताबाद दुर्ग पर अधिकार कर लिया और बरार प्रान्त के अध्यक्ष निज़ाम अली ने इस विद्रोह के दमन के बहाने हैदराबाद आकर कुछ प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया। पेशवा ने तीन सेनाएँ भेजीं। जानोजी भोसले ने उत्तर से और विश्वासराव ने गोदावरी के किनारे से चढ़ाई की तथा माधवराव सिंधिया ने रामचन्द्रराव जादव को परास्त कर उसे सिंधखेड़ में घेर लिया। निज़ाम अली ने मराठों पर चढ़ाई की और पेशवा के आज्ञानुसार माधवराव परास्त हो कर सिंधखेड़ से हट गए। अब निज़ाम अली तथा बाला जी साथ साथ औरंगाबाद गए। पर इसी बीच बुसी उत्तरी सरकार से लौट आया और उसने दौलताबाद पर अधिकार कर लिया। शाहनवाज ख़ाँ क़ैद हुए और निज़ाम अली ने इसी से क्रुद्ध होकर धोखे से हैदरजंग का मार डाला था। (पारस० किन० मराठों का इतिहास, भा० ३, पृ० ३८-९)

रुपया अपने पास से दिया। इस प्रकार नवाब को अकेला किया और उसके अनन्तर समसामुद्दौला को क़ैद करके दोनों ओर से निश्चिन्त हो गया। उसने चाहा कि आसफ़जाह को हैदराबाद का सूबेदार बनाने का बहाना कर वहाँ भेज दें और गोलकुंडा के दुर्ग में क़ैद कर दें। ऐसा करके वह चाहता था कि अपने लिये मैदान खाली कर लें, पर नहीं जानता था कि 'कर्म कर्म पर हँसता है'।

३ रमज़ान सन् ११७१ हि० (११ मई १७५८ ई०) को दोपहर के समय हैदरजंग नवाब आसफ़जाह के खेमे में आया, जिन्होंने अपने साथियों को पहिले ही से उसे मार डालने के लिये ठीक कर लिया था। वहाँ के ख़ास रहनेवालों ने हैदरजंग को पकड़ कर मार डाला। आसफ़जाह घोड़े पर सवार होकर अकेले सेना से निकल गए[1]। फिरंगियों का तोपख़ाना आश्चर्य में पड़ा रह गया और साहस न कर सका, क्योंकि इस काम ने रुस्तम[2]

---

१. आसफजाह यहाँ से भाग कर बुरहानपुर चले गए। हैदरजंग छुरे से मारा गया था। सिअ़ारुल्मुताखिरीन के अनुवाद में लिखा है कि उसका गला काट कर मार डाला था; पर यह ठीक नहीं है। ओर्म (भा०,२; पृ० २४६; संस्करण १७७८) लिखता है कि इसे शाहनवाज़ ख़ाँ के मारे जाने का वृत्तान्त पीछे मिला और इसी से उसकी चाल में गड़बड़ हो गया। सर्वे आज़ाद में ग़ुलाम अली ने यह सब बातें दुहराई थीं।

२. रुस्तम फारस देश का एक बहुत ही प्रसिद्ध पहलवान, वीर और सैनिक था। इसके पिता का नाम ज़ाल और पितामह का नाम साम था। इसे फारस के बादशाहों से जागीर में सीस्तान मिला था। फ़िर्दौसी के शाहनामे में इसका पूरा चरित्र दिया है, जो दन्तकथाओं से पूर्ण है।

और अफ़रासियाव[1] के कामों को मात कर दिया था। हैदरजंग के मारे जाने से उमदतुलमुल्क मोशे बुसी और दूसरे सेनापतियों का होश उड़ गया। इसी गड़बड़ में कुछ वलवाइयों ने समसामुद्दौला, यमीनुद्दौला और समसामुद्दौला के छोटे पुत्र मीर अब्दुलग़नी को मार डाला। आश्चर्य यह कि हैदरजंग (जो वस्तुतः इन सैयदों का घातक था) इन सैयदों से चार घड़ी पहले ही मारा जा चुका था और समसामुद्दौला ने स्वयं उसके मारे जाने का वृत्तांत सुन लिया था; और यह कह कर कि 'अब हम लोग भी नहीं बच सकते' ईश्वर की याद में पश्चिम की ओर मुँह कर बैठ गए। ईसाइयों के लछमन नामक एक आदमी ने आकर इन्हें मार डाला। पिता और पुत्र अपने पूर्वजों के मक़बरे में (जो शहर के दक्षिण में शाहनूर[2] की दरगाह के पास है) गाड़े गए और यमीनुद्दौला भी अपने पूर्वजों के मक़बरे में (जो शाहनूर के गुंबद के नीचे की ओर है) गाड़े गए। लेखक ने तीनों सैयदों के मारे जाने की तारीख़ आयत (वजूह यूमैज़ मुस्फिरः)[3] में निकाली, जिसका अर्थ है–

१. अफरासियाब भी बहुत हो वलवान वीर था। यह तुर्किस्तान के राजवंश का था और रुस्तम के हाथ से मारा गया था। यदि आसफजाह का ऐसा अविश्वास का कार्य वीरता कहा जाय तो वह उपहासास्पद मात्र है।

२ इस नाम के एक फ़क़ीर हो गए हैं जो २ फरवरी सन् १६६३ ई० को मरे थे और औरंगाबाद में जिनका मक़बरा है। (बील की ओरिएंटल डिक्शनरी, पृ० ३६७)

३ यह ८० वें सूरः का ३८ वाँ शैर है। ६+३+६+५+१० +६+४०+१०+७००+४० + ६० + ८० + २००+५= ११७१ हि० (१७५८ ई०, सं० १८१५ वि०)

"उस दिन कुछ मुख उज्ज्वल होंगे।" समसामुद्दौला की मृत्यु की तारीख़ भी इस पद में कही है—

"पवित्र रमज़ान महीने की तीसरी को संसार से समसामुद्दौला चल बसे।"

उस सैयद (शाहनवाज ख़ाँ) ने स्वयं इस घटना का वर्ष यों कहा—'हम अब्दुर्रहमान के मारे हुए हैं'। (मा कुश्तए अब्दुर्रहमान)[1]।

उसी तारीख में यह पद भी कहा—

उच्चपदस्थ सरदार तथा विद्वान समसामुद्दौला।

व्यर्थ ही कपट की आड़ में मारे गए। शोक! दुःख, शोक! मीर गुलाम अली 'आज़ाद' तारीख़ कहता है, जिसे मित्रगण सुनें—

'नीचों ने सैयदों को मार डाला'। हम लोग ईश्वर के हैं[2]।

ज्ञात हो कि मीर अब्दुलहई ख़ाँ और मीर अब्दुस्सलाम ख़ाँ अपने पिता के मारे जाने के दिन बच गए थे, जिसका कारण यह था कि मीर अब्दुलहई ख़ाँ एक दिन पहले पिता से अलग किए जा चुके थे और मीर अब्दुस्सलाम ख़ाँ बीमारी के कारण उस

---

१ ४०+१+२०+३००+४००+५+७०+२+४+१+३०+२००+८+४० + ५०=११७१। अब्दुर्रहमान हैदरजंग का नाम था।

२ कुरान का सूरः २, पद १५१।

खेमे से हटाए जा कर एक दूसरे मकान में भेजे गए थे। वस्तुतः उनका जीवन अभी शेष था कि ईश्वर ने शत्रु के हृदय में यह बात उठाई कि उन्हें पिता से अलग कर दिया था। मीर अब्दुलहई ख़ाँ और मीर अब्दुस्सलाम ख़ाँ के बचने से लेखक के मन में आया कि नाम आकाश से उतरते हैं। हई और सलाम[1] नामों ने अपना काम कर के अपने नामवालों की रक्षा कर ली।

हैदरजंग के मारे जाने पर नवाब अमीरुल्मुमालिक, नवाब शुजाउल्मुल्क, उमदतुल्मुल्क मोशे बुसी और हैदरजंग का भाई जुल्फ़िकारजंग (जो उसके मारे जाने पर उसका स्थानापन्न हुआ था) हैदराबाद को चले और वहाँ पहुँचने पर जुल्फ़िक़ारजंग अपनी जागीर राजमंदरी और सिकाकुल को गया, जहाँ के जमींदार से युद्ध में पूरी तरह परास्त हुआ। कुल सेना नष्ट हो गई और जवाहिर-खाना, तोशा-खाना, हाथी और तोपें सब जमींदार के हाथ में पड़ीं। कुछ मनुष्यों के साथ अपने प्राण लेकर वह निकल गया। समसामुद्दौला को मारनेवाला लछमन[2] मारा गया और गार्दियों[3] के जमादार मुहम्मद हुसेन (जो अपने सैनिकों

---

१ ये दोनों शब्द ईश्वर के नाम हैं और पहले का अर्थ 'जीवन' तथा दूसरे का 'जिसे हानि न पहुँचे' है।

२ ग्रांट डफ़ जि० २, पृ० ११४। उनका कथन है कि लछमन कोंडोर के युद्ध में मारा गया, जो सन् १७५८ ई० में कर्नल फोर्ड के अधीन अंग्रेजी सेना और कौन्फ़्लैंस के अधीन फ्रेंच सेना में हुआ था।

३ फ्रेंचों के गार्ड शब्द से बना हुआ है।

के साथ समसामुद्दौला और उनके संबंधियों तथा मित्रों का रक्षक नियत था और उनसे बुरी तरह व्यवहार किया था) ने अंग्रेजों के बंदर चीना पट्टन को घेरा और दो बार धावा किया। अंत में अंग्रेज विजयी हुए और उमदतुल्मुल्क हारकर फूलझरी[1] भाग गया। कुछ ही महीनों में सैयदों का रक्त अंकुरित हुआ[2]। यों कहिए कि नवाब समसामुद्दौला अपना बदला (जो हैदरजंग के शरीर से था) अपने कानों से सुन कर गए थे।

नवाब समसामुद्दौला गुणों के आकर तथा विद्या-निधान थे। हर एक गुण के गूढ़ तत्व उनके मस्तिष्क में तैयार रहते थे। काव्यमर्मज्ञ एक ही थे। फ़ारसी भाषा के महावरों को ऐसा जानते थे कि परदेशी मिरज़ा लोग (जो उनसे मिलते थे) उनके महावरों के इस ज्ञान पर आश्चर्य करते थे। कहते थे कि मुझे दो बातों का गर्व है। एक न्याय का, कि घटनाओं की ग्रन्थियों को ऐसा सुलझा लेता हूँ कि झूठ और सच अलग हो जाता है; और दूसरे काव्य-मर्मज्ञता का। एक दिन इस लेखक से कहा कि फ़ैज़ी का यह मतलअ[3] प्रसिद्ध है—

---

१ यही स्थान पौंडिचरी कहलाता है जो फ्रेंचों की सब से प्राचीन कोठी है।

२ वैंडिवैाश के युद्ध में बुसी पकड़ा गया। सलावतजंग अमीरुल्-मुमालिक को उनके भाई निजाम अली ने क़ैद कर दिया और सन् १७६३ ई० में मरवा डाला। बील, विल्कूस १. ४७६ और ख़ज़ानए आमरा, पृ० ६१।

३ मिस्टर बेवरिज लिखते हैं 'यह शैर आईने अकबरी, ब्लोकमैन

प्रेम-मार्ग में हमें दो कठिनाइयाँ मिलीं—एक तो यह कि मेरी मृत्यु आ गई है और दूसरे प्रेमी घातक मिला।

प्रकट में यही अर्थ है कि एक कठिनाई मरणोन्मुख होना और दूसरी प्रेमी का घातक होना है; इसलिये वचना कठिन है। पर मेरे विचार में यह आता है कि पहली कठिनाई यह है कि प्रेमी तो मरणोन्मुख है, इसलिये प्रेमिका को छोड़कर कहीं कोई दूसरा उसे मार न डाले। दूसरी कठिनाई यह है कि प्रेमिका घातक है और कहीं वह प्रेमी को छोड़कर अन्य को न मार डाले (मार कर अपनी इच्छा पूरी न कर ले)। ये दोनों बातें प्रेमी के लिये अरुचिकर हैं।

यह गद्य के अद्वितीय लेखक थे। उनकी पत्र-लेखन की शैली भी निज की थी। दुःख है कि उनके पत्र इकट्ठे नहीं हुए। यदि वे होते तो पाठकों की आँखों में सुरमे का काम देते। इतिहास के ज्ञान में भी वे एक ही थे और हिंदुस्थान के तैमूरी बादशाहों और सरदारों का वृत्तांत विशेष रूप से जानते थे, क्योंकि उसी मंडल के वंश में थे। मआसिरुल् उमरा ही उसका नमूना है, जिसका गुण इस विद्या के जाननेवाले पहचानेंगे। अरबी और फारसी का

पृ० ५३५ में उद्धृत है; पर जो अर्थ वहाँ दिया गया है, वह अशुद्ध है।' सन् १८७३ ई० की प्रकाशित प्रति के पृ० ५५५ पर इसका यही अर्थ दिया है; पर 'ख़ूँगिरफ़्तः' शब्द का अर्थ ठीक न समझने से अशुद्धि हो गई है। मिस्टर बेवरिज ने भी इस शब्द का अर्थ अंग्रेज़ी शब्दों—डूम्ड और स्लेन—से किया है, जो आप ही समानार्थी नहीं हैं।

उन्होंने बहुत बड़ा पुस्तकालय एकत्र किया था और इन पुस्तकों को स्वयं बहुधा शुद्ध करते थे। इस गड़बड़ में वह पुस्तकालय भी नष्ट हो गया। उनके गुण अवर्णनीय हैं। जैसे उच्च स्वभाव के थे, वैसे ही विचारों की दृढ़ता मे अरस्तू को भो उसका शिष्य कह सकते हैं। गंभीरता, आत्माभिमान, मिलनसारी, दयालुता, न्याय, नम्रता, कृतज्ञता, सत्यता और सत्यनिष्ठा से वह पूर्ण थे और असत्यता से अप्रसन्न रहते तथा झूठों का कभी विश्वास न करते थे। जो कुछ धन उन्हें प्राप्त होता, उसका दशमांश वे दान के लिये निकाल देते थे; और उसके लिये अलग एक कोष था, जिसमें से योग्य पात्रों को दान दिया जाता था। इस सरदार को सरदारो शोभा देती थी। जिस समय मसनद पर बैठते थे, उस समय बिना सजावट ही के अमीरी को अपने प्रभाव से शोभायमान करते थे और इनके मुख ही पर अमीरी झलकती थी। सप्ताह में दो दिन शुक्र और मंगलवार न्याय के लिये नियत थे। वे दोषो और प्रार्थी दोनों को सामने बुलाकर ठोक बात की जाँच करते थे। राज्यप्रबंध के नियम हस्तामलक थे। दिन रात में कभी प्रबंध के लिये राय करने को एकांत नहीं मिलता था और न कोई इनका सम्मतिदाता ही था। समसामयिक विद्वान उनकी विचार-शक्ति तथा ज्ञान पर आश्चर्य करते थे। सुबह की नमाज़ पढ़कर काम पर बैठ जाते और दोपहर को उठते थे। तीसरे पहर की नमाज़ पढ़कर फिर काम में लग जाते और तब अर्द्ध रात्रि या अधिक समय तक राज्य तथा कोष संबंधो कार्य करते रहते थे।

प्रार्थियों और दोषियों की विना किसी मध्यस्थ के स्वयं जाँच करते थे। दीवान में वड़ी शान से वैठते थे; पर एकांत में नम्रता और प्रसन्नता से मिलते थे।

नवाव सालार जंग वहादुर कहते थे—"नवाव समसामुद्दौला दौलतावाद दुर्ग से आने पर मुझ से कहते थे कि मुझे जान पड़ता है कि यह ऊपरी वैभव (जो मेरे चारों ओर एकत्र हो गया है) स्थायी नहीं है।" मैंने पूछा—'कैसे मालूम हुआ?' उत्तर दिया—'किसी प्रकार मुझे पता लगा है।' उन्हीं नवाव ने यह भी कहा था—"एक दिन (जव उनसे मंत्रित्व का अधिकार ले लिया गया था और वड़ी गड़वड़ी मची हुई थी) मैं और वहुत से दूसरे मनुष्य उसी रात को नवाव समसामुद्दौला के घर ही पर सोए थे। सवको चिंता के कारण नींद नहीं आई। सुवह (जव मैं नवाव समसामुद्दौला से मिला तव) वह कहते थे—'आज ख़ूव नींद आई थी'। नवाव सालार जंग यह भी कहते थे कि नवाव समसामुद्दौला ने मुझसे कहा था कि दुर्ग में जाने के पहले जव फर्राशखाने का हिसाव लिया गया था, तव दो सौ से कुछ अधिक क़ालीन और ग़लीचे थे। पर (जिस दिन दुर्ग में गया) उस दिन एक भी न था। ऐसी हालत में भी उनके विचारों में कुछ फ़र्क न आया था। इस चरित्र का लेखक अपनी अनुभूत वात वर्णन करता है कि (जिस समय नवाव निज़ामुद्दौला अर्काट गए थे और मुज़फ्फ़रजंग पर विजय प्राप्त की थी) उस समय वहाँ के सव आमिल वुलाए गए थे। दीवानी कचहरी

की ओर से नवाब समसामुद्दौला के दरवाज़े के पास ख़ेमा खड़ा कर उन्हें स्थान दिया गया था। एक दिन समसामुद्दौला के खेमे से मैं निकला ही था कि एक मनुष्य दौड़ता हुआ आया और कहने लगा—"हाजी अब्दुल्शकूर, जो छुड़ाया हुआ आमिल है, कहता है कि मैं वसूल करनेवालों के हाथ में हूँ और यहाँ से हिल तक नहीं सकता। क्या यहाँ तक अत्याचार किया जाता है?" मैं उस आमिल को नहीं जानता था; पर वहाँ न जाना कठोरता होती, इससे चला गया। उसने उन अफसरों के हिसाब लेने तथा क़ैद करने की शिकायत की। उसी समय समसामुद्दौला के पास गया और कहा—'हाजी अब्दुलशकूर नामक आमिल आमिलों के झुंड में बाहर दरवाज़े पर खड़ा है। उसे सामने बुलाना चाहिए।' नवाब ने कहा—'ऐसा नियम नहीं है कि जिस आमिल का हिसाब जाँचा जा रहा हो, वह सामने बुलाया ज़ाय।' मैंने कहा—'मैं यह नहीं चाहता कि उसका हिसाब न जाँचा जाय, पर केवल इतनी आज्ञा हो कि वह एक बार आपके सामने उपस्थित हो सके।' नवाब अस्वीकार कर रहे थे, पर मैं भी हठ करता जा रहा था। अन्त में नवाब ने उसको बुलाकर उसकी हालत देखी। उन्होंने उसकी दशा देख कर कृपा करके कहा कि कल नवाब निज़ामुद्दौला के महल के द्वार पर आना। चोबदार से कह दिया था कि जिस समय अमुक मनुष्य आवे, उसी समय मुझे ख़बर देना। दूसरे दिन ज्योंही हाजी अब्दुलशकूर फाटक पर हाज़िर हुआ कि तुरन्त चोबदार ने समाचार पहुँचा

दिया। समसामुद्दौला ने नवाब निज़ामुद्दौला से कहा—हाज़ी अब्दुलशकूर नामक आमिल, जो जाँचे जानेवाले आमिलों में से है, बुलाया गया है। मीर गुलाम अली ने मुझसे कहा कि उसको एक बार सामने बुलावें। मैंने उनसे कहा—'जाँच किया जानेवाला आमिल सामने नहीं आने पाता।' मैंने उनसे बहुत कुछ कहा, पर उन्होंने हठ नहीं छोड़ा। तब अन्त में निरुपाय होकर मैंने उसे सामने बुलाया था। अब मैं भी हुजूर से यही प्रार्थना करता हूँ कि एक बार उस मनुष्य को आप अपने सामने हाजिर होने की आज्ञा दें।" नवाब निज़ामुद्दौला ने आज्ञा दे दी कि बुला लो। जब वह भीतर आया और नवाब निज़ामुद्दौला की आँखें उसपर पड़ीं तो क्या देखते हैं कि नब्बे वर्ष का एक वृद्ध कपड़े पहने, सिर पर हरी पगड़ी बाँधे और हाथ में छड़ी तथा सुमिरनी लिए खड़ा है। उसकी सूरत भली थी और वह दया का पात्र था। निज़ामुद्दौला ने उसे पास बुलाकर बैठाया और कुशल मंगल पूछा। उसके हिसाब की फर्द पर क्षमा का हस्ताक्षर कर दिया। उसके लिये रोज़ीना नियत कर और अपनी घुड़साल से सवारी देकर उसे विदा किया। यह गुणगान (जो नवाब समसामुद्दौला का किया गया है) बादलों की एक बूँद और सूर्य की एक किरण मात्र है। ईश्वर उन पर अपनी कृपा करे और स्वर्ग के अच्छे स्थान को उनसे शोभित करे।

नवाब समसामुद्दौला के मारे जाने पर जब निज़ाम की सेना हैदराबाद गई, तब मीर अब्दुलहई खाँ को साथ ले जाकर गोल-

कुंडा दुर्ग में क़ैद किया। मीर अब्दुस्सलाम ख़ाँ माँदगी के कारण औरंगाबाद ही में रह गए और दौलताबाद भेजे गए। हैदरजंग के मारे जाने पर आसफ़जाह द्वितीय बरार गए और सेना तथा सामान ठीक कर उन्होंने रघू भोंसला के पुत्र जानोजी को दंड देने की तैयारी की। उन्होंने सेना कम होने पर भी शत्रु की सेना पर विजय प्राप्त की और तब हैदराबाद आए। नवाब अमीरुल मुमालिक (जो प्रबंध के लिये मछलीबंदर गए थे) लौट आए और दोनों भाइयों की हैदराबाद के पास भेंट हुई। नवाब आसफ़-जाह पहले की तरह यौवराज्य की गद्दी पर बैठे और कुल प्रबंध अपने हाथ में ले लिया। १५ ज़ीकदः सन् ११७२ हि० (२९ जून १७५९ ई०) को मीर अब्दुलहई ख़ाँ को दुर्ग से निकलवा कर नया जीवन दिया। अब्दुलहई ख़ाँ की पुरानी पदवी शम्शुद्दौला दिलावर जंग थी; पर दुर्ग से आने पर पिता की पदवी (समसा-मुद्दौला समसाम जंग) और छः हज़ारी, ५००० सवार का मन्सब मिला। मीर अब्दुस्सलाम ख़ाँ भी आज्ञानुसार दौलताबाद से लौट आए और अपने परिवार से मिले। ईश्वर शुभ करे[1]।

उस दयालु और कृपालु ईश्वर के नाम पर।

---

१. इसके अनंतर जो कुछ लिखा गया है, वह मीर ग़ुलाम अली आज़ाद का धार्मिक उद्‌गार मात्र है, जो उसने अपने मित्र की जीवनी के अंत में शोक तथा उसके गुणों के चिन्तन पर प्रकट किया है। आज़ाद लिखित ग्रन्थकर्ता की इस जीवनी का बहुत कुछ अंश शाहनवाज़ ख़ाँ लिखित अपने वृत्तांत तथा अमानत ख़ाँ और मुहम्मद काज़िम ख़ाँ की जीवनियों से मिलान

ईश्वर स्तुत्य है और उसके माननेवाले को शांति मिले।

इसके बाद प्रार्थना करता है—

फ़क़ीर अब्दुर्रज़्ज़ाक अलहुसेनी अलख़्वारिज़्मी अलऔरंगाबादी—समझदारी आने के आरंभ से।

इति

लिया जा सकता है। क़िलेदार ख़ाँ की जीवनी लिखते समय ग्रन्थकर्ता ने लिखा है कि इनकी माता इसकी चार पुत्रियों में से एक थीं; तथा इनकी मातामही जमशेद बेग की लड़की थीं। मआसिरुल्‌उमरा फ़ारसी भा० ३, पृ० ६८० में इन्होंने लिखा है कि इतिहासज्ञ खफ़ी ख़ाँ से इनकी घनिष्ट मित्रता थी।

विषय-सूची की भूमिका

यह जानना चाहिए कि ग्रंथकार के लिखे हुए कुछ चरित्र सामग्री की अधिकता या रुकावटों से अपूर्ण मस्विदों के रूप में रह गए थे। मैंने यथाशक्ति उन्हें पूर्ण और शुद्ध करने का प्रयत्न किया। साथ में मैंने जीवनचरित्रों की एक सूची भी जोड़ दी है; और लाल रोशनाई से क़ाफ़[1] वर्ण उन नामों के आगे बना दिया है जिनके जीवन वृत्तांत पीछे से जोड़े गए हैं, जिसमें उस पूज्य के और मेरे लिखे हुए को लोग पहचान लें। इस बड़े संग्रह में सात सौ तीस चरित्र दिए गए हैं, जिनकी सूची नीचे दी गई है।

इस अनुवाद में केवल हिन्दू सरदारों की जीवनियाँ दी गई हैं, अतः मूल पुस्तक की सूची यहाँ नहीं दी गई। —अनुवादक

---

१. यह विषय-सूची तथा इसकी भूमिका ग्रंथकार के पुत्र अब्दुलहई ख़ाँ की लिखी हुई है। क़ाफ इलहाक़ का अंतिम वर्ण है, जिसका अर्थ 'मिलाना' है। अब्दुलहई ने संख्या ७३० लिखी है; पर वस्तुतः संख्या ७२६ ही है। परन्तु एक एक जीवनी में कभी कभी उस वंश की तीन तीन तथा चार चार पीढ़ियों का वर्णन दे दिया गया है, जिससे वास्तव में इसमें ७२६ से कहीं अधिक सरदारों और राजाओं के चरित्रों का समावेश हो गया है।

१—महाराज अजीतसिंह राठौर

यह महाराज जसवंतसिंह[१] के पुत्र थे। जब इनके पिता की जमरूद थानेदारी पर मृत्यु हुई थी, उस समय ये गर्भ ही में थे। लाहौर पहुँचने पर इनका जन्म हुआ[२]। औरंगजेब के आज्ञानुसार ये दरबार में लाए गए। बादशाह ने चाहा कि इन्हें अपने अधिकार में ले लें, पर राठौर (जो मृत राजा के पुराने सेवक थे) लड़ गए जिसमें कुछ मारे गए और कुछ उनको लेकर अपने देश चले गए[३]। इसके अनंतर बादशाह ने दो बार स्वयं अजमेर जा कर इस जाति का नाश करने का प्रयत्न किया और शाहज़ादा मुहम्मद अकबर को पीछा करने को भेजा; पर इन

---

१. इनका वृत्तांत इसी पुस्तक में अलग दिया हुआ है जिसे २५वें निबंध में देखिए।

२. वि० सं० १७३५ को चैत्र व० ४ को इनका जन्म हुआ था।

३. औरंगज़ेब ने इन लोगों पर कड़ा पहरा बैठा दिया था, इससे राठौर सरदार दुर्गादास ने अजीतसिंह को छिपा कर मारवाड़ भेज दिया, जहाँ सिरोही के कालिंद्री ग्राम में कुछ दिनों एक ब्राह्मण के यहाँ गुप्त रूप से इनका पालन हुआ। बादशाह ने यह समाचार पाते ही सेना भेजी जिससे खूब युद्ध कर बहुत से राठौर मारे गए और बचे हुए देश लौट गए। दोनों रानियाँ सती हो गईं।

लोगों के बहकाने से शाहज़ादे क़ी बुद्धि यहाँ तक फिर गई कि वह उन लोगों में सम्मिलित हो कर बादशाही सेना से डेढ़ कोस पर लड़ने के लिये आ पहुँचा। किसी कारण से ये लोग शाहज़ादे पर शंका कर उससे बिगड़ कर चले गए[1]। निरुपाय होकर शाहज़ादा भी भागा[2]। बादशाह ने जोधपुर में फौजदार नियत किया। बादशाह के जीवित रहने तक वे पहाड़ों में जीवन व्यतीत करते रहे। बादशाह की मृत्यु पर इन्होंने जोधपुर के फौजदार को अप्रतिष्ठित कर उस पर अधिकार कर लिया[3]। बहादुर शाह ने आज़म शाह के साथ युद्ध करने के समय इन्हें बुलाया था, पर यह नहीं गए; इससे उसने उस युद्ध से निपट कर जोधपुर पर चढ़ाई की और मुनइम ख़ाँ ख़ानख़ानाँ के पुत्र को उस पर चढ़ाई करने के लिये नियुक्त किया। पूर्वोक्त ख़ाँ के जोधपुर के पास

---

१. औरंगजेब ने धूर्तता से अकबर को एक पत्र लिख कर भेजा, जिससे यह ध्वनि निकलती थी कि अकबर अपने पिता ही के आदेश से राठौरों से मिल गया था और उसे उनके नाश के लिये षड़यंत्र रचने पर उसने उत्साह प्रदान किया है। साथ ही ऐसा प्रबंध किया था कि वह पत्र अकबर को न मिल कर उसके क्षत्रिय मित्रों को मिले। औरंगजेब की चाल न समझ कर राठौर बिगड़ गए और अकबर का साथ छोड़ कर लौट गए।

२. दुर्गादास अकबर को स्वयं महाराज शम्भू जी के पास दक्षिण पहुँचा आया था। यहाँ से वह फ़ारस चला गया जहाँ अपने पिता की मृत्यु के पहले ही मर गया।

३. औरंगजेब की मृत्यु पर अजीतसिंह ने जोधपुर के अध्यक्ष निज़ाम क़ुली ख़ाँ को भगा कर उस पर अधिकार कर लिया था।

पहुँचने पर यह उससे मिले और तसल्ली पाने पर सेवा में आए। क्षमा-प्राप्ति पर तीन-हज़ारी मन्सब से यह सम्मानित हुए।

(जब बादशाह कामबख्श का सामना करने को दक्षिण चले तब) ये रास्ते ही से राजा जयसिंह कछवाहा से मिलकर आवश्यक सामान साथ ले तथा खेमों को सेना ही में छोड़ कर देश चल दिए। दक्षिण से लौटने पर बादशाह ने इन्हें दंड देने का विचार किया, पर सिक्ख जाति के विद्रोह से (जो पंजाब में ज़ोरों पर था) उस कार्य में रुकावट पड़ गई। समय का विचार कर उनके किए न किए पर परदा डाल कर खानखानाँ के मध्यस्थ होने से यही निश्चय हुआ कि वे राजा जयसिंह के साथ खड़ी क— १. कुछ कर देश को लौट आवेंगे और वहाँ का संबंध ठीक खा था, इससे ार में आवेंगे। इसके बाद (कि संसार सर्वदा नया मौला ने वक्त स्वाँग लाता रहता है) बहादुर शाह की, लाहौर पहुँचने पर, मृत्यु हो गई और शाहज़ादों में युद्ध की तैयारी हुई। अंत में फ़र्रुख़सियर बादशाह हुआ[1]। उसकी बादशाहत के दूसरे वर्ष हुसेन अली ख़ाँ अमीरुल्‌उमरा अजीतसिंह को दमन करने के लिये नियुक्त किया गया। वे ख़ाँ से दब कर भेंट देना स्वीकृत करने

---

१. बहादुर शाह की मृत्यु पर उसके तीन पुत्रों—जहाँदारशाह, अजीमुश्शान तथा जहाँशाह में युद्ध हुआ, जिसमें सब से बड़ा जहाँदार शाह विजयी होकर बादशाह हुआ। अजीमुश्शान के पुत्र फर्रुख़सियर ने सैयदों की सहायता से इसे परास्त कर गद्दी पर अधिकार कर लिया।

पर क्षमा किए गए[1] । पुरानी प्रथानुसार अपनी पुत्री का फ़र्रुख़सियर से विवाह किया। इन्हें गुजरात की सूबेदारी मिली। इसके अनंतर सैयदों से मिल कर यह मुहम्मद फ़र्रुख़सियर के राज्य के अंत में आज्ञानुसार अहमदाबाद से दरबार आए और इन्होंने महाराज की पदवी पाई।

✓ पूर्वोक्त बादशाह को क़ैद करने में यह भी सैयदों के सम्मतिदाताओं में से थे[2]। इस कारण इनकी विशेष कुख्याति हुई और मुहम्मद शाह के राज्यारंभ में गुजरात की इनकी सूबेदारी भी छिन गई। इस पर इन्होंने बिगड़ कर अजमेर नगर को अधिकृत कर लिया। इसके अनंतर (जब सरदार लोग ससैन्य उन पर भेजे गए

---

१. सन् ११२४ हि० (सन् १७१२ ई०) में अमीरु[illegible] के पास अली खाँ महाराज अजीतसिंह का दमन करने के लिये भेजे [illegible] फ़र्रुख़सियर ने गुप्त रूप से हुसेन अली को परास्त कर [illegible] कर [illegible] के लिये लिखा था। इसी लिये दोनों ने झट संधि कर दरबार में अपनी शक्ति बढ़ाई।

२. सन् १७१८ ई० में फ़र्रुख़सियर ने इन्हें दिल्ली बुलवाया था, पर इन्होंने सैयदों का ही पक्ष लिया। फ़र्रुख़सियर और सैयद भ्राताओं में वैमनस्य बहुत बढ़ गया था और एक दूसरे का अंत करना चाहते थे। सैयदों से राजा के मिलने से बादशाह का पक्ष कमजोर पड़ गया जिससे कुछ समय के लिये फिर समझौता हो गया। परंतु अंत में एक वर्ष के भीतर ही फ़र्रुख़सियर मारा गया और इन्होंने उसकी रक्षा का कोई प्रबंध नहीं किया। कहा जाता है कि यह अपनी कन्या को, जो फ़र्रुख़सियर को व्याही थी, अपने साथ देश लौटा ले गए थे जो तैमूरी वंश के नियम के विरुद्ध था।

थे) यह स्वदेश चले गए[1]। पुतलीगढ़ में उनकी सेना थी जिसे बादशाही सेना ने घेर लिया। अंत में संधि हो गई और निश्चित हुआ कि बड़े पुत्र अभयसिंह पिता की ओर से दरबार जायँ। दरबार पहुँचने पर वहाँ के सरदारों के बहकाने से पितृ-ऋण को भुला कर अभयसिंह ने अपने छोटे भाई बख्तसिंह को लिखा और उसने अजीतसिंह को सुप्तावस्था में स्वर्ग भेज दिया[2]। तब अभय-

१. चौथे वर्ष में अशरफुद्दौला इरादतमंद ख़ाँ को बाइस सरदारों के साथ महाराज अजीतसिंह की चढ़ाई पर नियत किया था। पूर्वोक्त ख़ाँ ने अजमेर पहुँच कर थोड़े ही युद्ध के अनन्तर उसे अधीन कर लिया और दुर्ग हनसी को, जो महाराज के अधिकार में था, विजय कर उनके बड़े पुत्र अभयसिंह को अच्छी भेंट सहित पूर्वोक्त सरदारों के साथ दरबार में लाए। (तारीख मुजफ़्फ़री)

२. कुछ लोगों का कथन है कि महाराज अजीतसिंह ने विद्रोह मचा रखा था, इससे बादशाह और वजीर कमरुद्दीन खाँ वजीरुल्मुमालिक एतमादुद्दौला ने बख़्तसिंह को उसके पिता के कुल राज्य का अधिकार देने की प्रतिज्ञा करके पिता को मारने पर ठीक किया और उसने राज्यलिप्सा के कारण पिता को मार डाला। (तारीख मुजफ्फ़री)

यह घटना आषाढ़ शु० १३ सं० १७८१ को हुई थी (मा० रा० भाग ३, पृ० २२४)। फारसी के अन्य इतिहासों में इस घटना का कोई इसी प्रकार वर्णन करते हैं, कोई घटना का उल्लेख मात्र कर देते हैं और कोई, जैसे तजकिरतुस्सलातीन, यों लिखते हैं—'अजीतसिंह अपने पुत्र बख़्तसिंह की स्त्री पर आसक्त हो गया था जिससे अपमानित और दुःखित होकर बख़्तसिंह बदला लेने का अवसर ढूँढ़ने लगा। एक रात्रि में जब अजीतसिंह शराब पीकर सोया हुआ था, तब उसने उसका काम तमाम कर दिया। जो कुछ कारण रहा हो, बख़्तसिंह पितृहंता अवश्य थे और इस हत्या में बादशाह मुहम्मद शाह का हाथ भी अवश्य था।

सिंह महाराज की पदवी सहित सन् ११४० हि० (सं० १७८४) में सर बुलंद खाँ के स्थान पर गुजरात के सूबेदार हुए और स्वदेश जाकर एक वर्ष वहाँ का प्रबंध ठीक करने में लगा दिया। इस पर भी मुहम्मद शाह के ११ वें वर्ष में गुजरात जाकर इन्हें मराठों को चौथ देनी पड़ी; पर जब उनका उत्कर्ष दिनोंदिन बढ़ता देखा, तब १५ वें वर्ष में अपने राज्य में वापस चले आए और वह पूरा प्रांत मराठों के अधिकार में चला गया[1]।

महाराज अजीतसिंह के दो[2] पुत्र थे। पहले अभयसिंह थे

---

१. खंडेराव धावड़े नामक मराठा सरदार ने इस प्रांत में लूट मार आरंभ की थी, जिनकी मृत्यु पर उनके पुत्र त्र्यंबक राव तथा सहकारी पीलाजी गायकवाड़ उसी प्रांत में रह कर यह कार्य चलाते रहे। सन् १७२८ ई० के अंत में बाजीराव ने अपने भाई चिमना जी को ससैन्य गुजरात भेजा। सरबुलंद खाँ ने चौथ तथा सरदेशमुखी देने की प्रतिज्ञा कर संधि कर ली। सन् १७३१ ई० में त्र्यंबकराव धावदे के युद्ध में मारे जाने पर गायकवाड़ सरदार उन्नति करते चले गए। यद्यपि मुहम्मद शाह ने सरबुलंद खाँ की सहायता नहीं की थी, पर इस संधि से क्रुद्ध होकर उसे उस पद से हटा कर अभयसिंह को सूबेदार बनाया। इन्होंने पीला जी से बड़ौदा छीन लिया, पर इसके अनंतर यह कई युद्धों में परास्त हुए। सन् १७३२ ई० में अभयसिंह के एक दूत ने पीला जी को संधि की बातचीत करते समय मार डाला। इसके भाई महाद तथा पुत्र दामा जी ने चढ़ाई कर कुल प्रांत अधिकृत कर लिया और अभयसिंह जोधपुर भाग गए। यह पूरा प्रांत सन् १७३५ ई० में साम्राज्य से निकल कर मराठों के हाथ चला गया। पारस० किन० कृत मराठों का इतिहास, भा० ३, पृ० १८६–६१ तथा २१२–२०।

२. वस्तुतः इनके बाईस पुत्र थे।

जिनका वृत्तांत दिया जा चुका है; और दूसरे बख्तसिंह थे जो पिता को मृत्यु पर स्वदेश के अधिकारी हुए। उनके बाद उनके पुत्र विजयसिंह[१] ग्रन्थलेखन के समय राजा थे। ये प्रजा-पालन, निर्बलों को सहायता तथा सबलों का दमन करने के लिये प्रसिद्ध थे।

सुलतान मुहम्मद अकबर का वृत्तांत इस प्रकार है कि अजमेर के पास से भागने पर (कहीं शरण न पाने से) वह शंभाजी भोंसला के यहाँ चले गए। शंभा जी ने कुछ दिन सत्कार कर अपने यहाँ रखा। (जब औरंगज़ेब काफ़िरों को मारने के लिये दक्षिण को चला तब) ये जहाज़ पर सवार होकर ईरान को चले। जब जहाज़ मसक़त पहुँचा, तब वहाँ के अध्यक्ष ने इन्हें अपनी रक्षा में रखकर औरंगज़ेब को यह वृत्तांत लिख भेजा। इसी समय (इनके मसक़त आने का समाचार शाह सुलेमान सफ़वी ने भी सुना और सुलतान मुहम्मद अकबर ने पहले ही अपनी इस इच्छा की उसे सूचना दे दी थी, इससे) शाह ने मसक़त के अध्यक्ष को (जो ईरान के शाह का पक्षपाती था) ताकीद से लिख कर अकबर को बुलवाया और बड़े आदर से उसे अपने पास रखा। सुलतान ने सहायता चाही, पर शाह ने कहा कि अभी

---

१. अजीतसिंह की मृत्यु पर अभयसिंह जोधपुर के राजा हुए और नागौर की जागीर बख्तसिंह को मिली। अभयसिंह की मृत्यु पर उनके पुत्र रामसिंह राजा हुए। पर उन्हें गद्दी से हटा कर बख्तसिंह राजा हो गए, जिनके पुत्र विजयसिंह थे।

तुम्हारे पिता जीवित हैं, उसके अनंतर (जब भाइयों से ही निबटना रहेगा, तब) उपयुक्त तथा योग्य सहायता दी जायगी। सुलतान ने इससे दुःखित होकर कहा कि यहाँ का जलवायु हमारे उपयुक्त नहीं है, इससे यदि हमें विदा करें तो कंधार के पास गर्मसीर में रहें। शाह ने प्रार्थना के अनुसार विदा किया और व्यय के लिये वेतन नियत कर दिया। वहाँ पहुँचने पर सुलतान अकबर सन् १११५ हि० (सन् १७०३ ई०) में मर गए।

२—राजा अनिरुद्ध गौड़

यह राजा विट्ठलदास के सब से बड़े पुत्र थे। जब इनके पिता अजमेर के फौजदार नियत हुए, तब यह अपने पिता के प्रतिनिधि स्वरूप उस ताल्लुके में रहते थे। १९ वें वर्ष (सन् १६४५ ई०) में शाहजहाँ ने इनका मन्सब बढ़ाकर डेढ़ हजारी, १००० सवार का कर दिया। इन्हें २४ वें वर्ष में झंडा मिला और २५ वें वर्ष जब इनके पिता की मृत्यु हो गई, तब इनका मन्सब बढ़ा कर तीन हजारी, ३००० सवार दो और तीन घोड़ेवाला[1] कर दिया और राजा की पदवी, डंका, घोड़ा और हाथी देकर सम्मानित किया। पिता की मृत्यु पर रंतभँवर (रणथम्भौर) की दुर्गाध्यक्षता भी इन्हें मिली। इसके अनंतर शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब बहादुर के साथ (जो द्वितीय बार कंधार[2] की चढ़ाई पर गए थे) नियुक्त हुए। वहाँ से लौटने पर २६वें वर्ष यह अपनी जागीर पर गए। इसके अनंतर शाहजादा दाराशिकोह के साथ फिर कंधार की चढ़ाई पर

---

१. इनका वृत्तांत अलग ४६ वें शीर्षक में दिया गया है।

२. सन् १६४८ ई० में फ़ारस के कंधार पर अधिकार कर लेने पर उसी वर्ष और सन् १६५१ ई० में दो बार औरंगज़ेब ने तथा सन् १६५२ ई० में तीसरी बार दाराशिकोह ने उस दुर्ग को लेने का प्रयत्न किया था, पर तीनों चढ़ाइयों में वे विफल रहे।

गए। वहाँ पहुँचने पर रुस्तमखाँ बहादुर फ़ीरोज़जंग के साथ बुस्त गए। २८ वें वर्ष सादुल्ला खाँ के साथ चित्तौड़ को गिराने और राणा को दंड देने गए[1]। ३१ वें वर्ष (सन् १६५७ ई०) में जब सुलतान सुलेमान शिकोह मिरज़ा राजा जयसिंह की अभिभावकता में शुजाअ (जिसने बुरे कर्म किए थे) का दमन करने के लिये नियत हुआ, तब यह भी, मन्सब के बढ़कर साढ़े तीन हजारी, ३००० सवार दो और तीन घोड़ेवाज़े हो जाने पर, पूर्वोक्त सुलतान के साथ नियुक्त हुए। औरंगजेब के बादशाह होने पर पहले वर्ष सेना में पहुँचकर मुहम्मद सुलतान के साथ (जो शुजाअ की चढ़ाई पर नियत हुआ था) नियुक्त हुए। इसी समय माँदगी के कारण आगरे में ठहर कर बचे हुए लोगों के साथ जाने की इच्छा की थी; पर राजधानी से यात्रा करने पर सन् १०६९ हि० (वि० सं० १७१६) में मर गए।

---

१. महाराणा जगतसिंह ने संधि के विरुद्ध चित्तोड़ दुर्ग का जीर्णोद्धार कराना आरंभ कर दिया था जिसे सुनकर शाहजहाँ अप्रसन्न हो गया। पर ऐसे ही समय महाराणा का देहांत हो गया, इससे उसने कुछ नहीं किया। सं० १७०६ वि० में जगतसिंह के पुत्र महाराणा राजसिंह गद्दी पर बैठे और इन्होंने अपने पिता की आरम्भ की हुई मरम्मत जारी रखी, जिस पर बादशाह ने सं० १७११ वि० में सादुल्ला ख़ाँ के अधीन तीस सहस्र सेना भेज कर मरम्मत किए हुए अंशों को ढहवा दिया। महाराणा ने दाराशिकोह की मध्यस्थता में सन्धि कर ली।

३—राजा अनूपसिंह बड़गूजर

यह अनीराय सिंह-दलन के नाम से प्रसिद्ध है। बड़गूजर राजपूतों की एक जाति है। इसके पूर्वजगण कृषि से दिन व्यतीत करते थे। कहते हैं कि इसका दादा दरिद्रता के कारण हरिण का शिकार किया करता था और उसी के मांस से अपना जीवन व्यतीत करता था। दैवात् एक दिन जंगल में इसने शेर की शंका कर गोली चलाई, पर वह बादशाही तेंदुए (जिसे हरिण पर छोड़ा था और जो वन में छिपा फिर रहा था) को लगी। सोने की घंटी और पट्टे से वह समझ गया कि यह बादशाही है; इसलिये उसका साज उतार कर उसे कूएँ में डाल दिया। जो लोग उसकी खोज में घूम रहे थे, वे कूएँ पर पहुँच कर समझ गए कि यह काम उसी राजपूत का है जो यहाँ अहेर के लिये फिरा करता है। उन्हें उसके घर पर जाने से घंटी और पट्टा मिल गया और वे उसे बाँध कर बादशाह अकबर के सामने ले गए। जब बादशाह को कुल वृत्तांत से अवगत किया, तब बादशाह ने उसके साहस और निशानेबाजी से प्रसन्न होकर उसे नौकर रख लिया। उसके शौक (जो गोली चलाने का था) के कारण उसको उसी के उपयुक्त कार्य्य पर नियुक्त किया। उसके पुत्र वीरनारायण को भी मन्सब मिला और वह पिता से भी (पदोन्नति में) बढ़ गया था। जब

गया था और बादशाह शेर का शिकार करने पर तुले हुए थे; पर सिवा शाहज़ादा शाहजहाँ, राजा रामदास कछवाहा, अनूपसिंह, एतमादराय, हयातखाँ दारोगा जलघर, कमाल क़रावल तथा तीन चार खवासों के और कोई साथ नहीं था, तिस पर भी) वहाँ से कुछ क़दम आगे बढ़कर जहाँगीर ने गोली चलाई। दैवात् इस बार भी ऐसी चोट (कि उसे चोट करने से रोकती) नहीं पहुँची। शेर क्रोध और लज्जा के मारे गुर्राता और दहाड़ता हुआ बादशाह पर दौड़ा। पास के मनुष्य ऐसे घबराए कि उनकी पीठ और बगल के धक्कों से जहाँगीर दो एक पैर पीछे हटकर गिर पड़े। स्वयं कहते हैं कि घबराहट में दो तीन मनुष्य हमारी छाती पर पाँव रख कर चले गए थे। इसी समय शाहज़ादे ने तीर चलाया, पर कुछ फल नहीं हुआ। वह क्रुद्ध शेर अनूप के पास (जो बादशाही बंदूक लिए हुए बैठा था) पहुँचा। उसने वह लाठी, जो हाथ में लिए हुए था, उसके सिर पर मारी। शेर ने उसको पृथ्वी पर पटक दिया। उस समय (शेर का सिर बादशाह की ओर था, इसलिये) अनूपसिंह ने अपना एक हाथ शेर के मुँह में डाल दिया और दूसरा हाथ उसके कंधे पर डाल कर पकड़ लिया। शाहज़ादे ने बाईं ओर से तलवार खींच कर चाहा कि उस शेर के कंधे पर मारे, पर अनूपसिंह का हाथ वहाँ देखकर उसकी कमर पर मारी। रामदास ने भी तलवार चलाई और हयातखाँ ने भी कई लाठियाँ जड़ीं। शेर अनूप को छोड़ कर भागा। उसने (कि हाथ अँगूठियों के कारण चुटैल

नहीं हुआ था) भी लपककर शेर के पीछे ही पहुँच कर तलवार मारी। जब शेर इस पर घूम पड़ा, तब इसने दूसरी तलवार चेहरे पर ऐसी मारी कि भौंह का चमड़ा कट कर उसकी आँख पर पहुँच गया। इतने ही में सब ओर से आदमी आ गए और काम पूरा समझ कर शेर का अंत कर दिया। अनूप को अनीराय[1] सिंह-दलन की पदवी मिली और उसका मन्सब बढ़ाया गया। एक दिन जहाँगीर ने किसी कारण उसे कुछ कहा, तब उसने झट जमधर पेट में मार लिया। उस समय से उसका पद और विश्वास बढ़ता गया। कभी कभी सेना की अध्यक्षता भी मिलने लगी। शाहजहाँ के तीसरे वर्ष जब इसका पिता वीरनारायण (जिसका एक हज़ारी, ६०० सवार का मन्सब था) मर गया, तब अनूपसिंह को राजा की पदवी मिली। १०वें वर्ष (वि० सं० १६९३) में उसके जीवन का प्याला भर गया। तीन हज़ारी, १५०० सवार के मन्सब तक पहुँचा था। निबंध और पत्रोत्तर लिखने में योग्यता रखता था। उसका पुत्र जयराम था जिसका वर्णन अलग दिया हुआ है[2]।

---

१. तुजुक में इसका पूरा विवरण दिया है जिसका वृत्तांत संक्षेप में यहाँ दिया गया है। टेरी ने भी यह हाल अपने यात्रा विवरण में दिया है। तुजुक में जहाँगीर ने अनी का अर्थ सरदार दिया है, पर उसका ठीक अर्थ सेना है। स्यात् जहाँगीर ने अनीराय के अर्थ सेनापति या सरदार को ही अनी का अर्थ मान लिया है। सिंहदलन का अर्थ शेर को मारनेवाला ठीक लिखा है।

२. ३६ वें शीर्षक में इसका चरित्र दिया हुआ है।

४—राव अमरसिंह

यह राजा गजसिंह राठौर के सब से बड़े पुत्र[१] थे। आरंभ ही में अच्छा मन्सब मिला था जो शाहजहाँ के दूसरे वर्ष में बढ़कर दो-हज़ारी, १३०० सवार का हो गया। ८ वें वर्ष में इनका मन्सब बढ़कर ढाई हज़ारी, १५०० सवार का हो गया और झंडा और हाथी पाकर ये सम्मानित हुए। इसी वर्ष सैयद ख़ानेजहाँ बारहः के साथ जुझारसिंह बुँदेला का दमन करने के लिये नियत हुए। जब धामुनी दुर्ग पर अधिकार हो गया, तब ख़ानेदौराँ भीतर गए। अमरसिंह और दूसरे सरदार दुर्ग के बाहर खड़े हुए दिन होने की प्रतीक्षा कर रहे थे तथा लुटेरे लोग भीतर जाकर सामान की खोज में लगे हुए थे। उसी समय दैवात् मशाल का गुल बारूद के ढेर में (जो बुर्ज के नीचे था) गिर पड़ा और वह बुर्ज उड़ गया। पत्थर के टुकड़ों से (जो विशेषतः दुर्ग के बाहर

---

१. यद्यपि यह मारवाड़-नरेश गजसिंह के सबसे बड़े पुत्र थे, पर सं० १६९० वि० कृ० वैशाख मास में उन्होंने अपने छोटे पुत्र यशवंतसिंह जी को युवराज की पदवी और इन्हें देश-त्याग की आज्ञा दी थी। यह बादशाह शाहजहाँ के दरबार में गए जिसने इन्हें अच्छा मन्सब, राव की पदवी तथा नागौर की जागीर दी (टाड्स कृत राजस्थान, भा० २, पृष्ठ ८७०-१)

की ओर गिरे थे) इनके कई साथी मारे गए[1] । वहाँ से लौटने पर इनका मन्सब तीन हज़ारी, २५०० सवार का हो गया।

नवें वर्ष में जब बादशाह स्वयं साहजी भोंसला का दमन करने (जिसने निज़ामुलमुल्क के ग्वालियर में क़ैद हो जाने पर भी उसके एक संबंधी लड़के को लेकर विद्रोह आरंभ कर दिया था) के लिये दक्षिण चले और नर्मदा नदी पार करके दौलताबाद दुर्ग के पास पड़ाव डाला, तब तीन सरदारों को सेनापति बना कर सेना सहित भेजा और इन्हें ख़ानेदौराँ बहादुर के साथ किया। १०वें वर्ष में ख़ानेदौराँ के साथ यह बादशाह के पास आए। ११वें वर्ष में अली मर्दां ख़ाँ ने कंधार दुर्ग शाही सेवकों को सौंप दिया; और बादशाह ने इस आशंका से कि शाह सफ़ी स्वयं इस ओर न आवे, शाहजादा सुलतान शुजाअ को बड़ी सेना के साथ उस ओर भेजा। इन्हें भी ख़िलअत, चाँदी के ज़ीन सहित घोड़ा और डंका देकर शाहज़ादा के साथ कर दिया। इसके अनन्तर (जब इसी वर्ष इनके पिता मर गए और इनके छोटे भाई जसवंत-सिंह को राजा की पदवी और गद्दी कुछ कारणों से—जिनका वर्णन गजसिंह के चरित्र[2] के अंत में दिया गया है—मिली, तब) इन्हें ५०० सवार का मन्सब बढ़ाकर तीन हज़ारी, ३००० सवार का मन्सब और राव की पदवी मिली। १४वें वर्ष में जब सुलतान

---

१. इस युद्ध का विशेष विवरण जुझारसिंह की जीवनी में देखिए।

२. १२ वें शीर्षक की जीवनी देखिए।

मुराद द्वितीय बार काबुल भेजा गया, तब यह भी उसी के साथ नियुक्त हुए। इसके अनंतर राजा वासू के पुत्र राजा जगतसिंह को दंड देने के लिये आज्ञा मिली जो विद्रोही हो गया था। तब यह शाहज़ादे के साथ गए और १५ वें वर्ष में राजा के अधीनता स्वीकृत कर लेने पर (शाहज़ादा भी पिता के पास लौट आया था) इसका भी अच्छा स्वागत हुआ। इसी वर्ष जब फ़ारस के बादशाह का कंधार की ओर अग्रसर होना सुना गया, तब सुलतान दाराशिकोह उस ओर भेजे गए और यह भी एक हजारी मंसब बढ़ने से चार हजारी, ३००० सवार का मन्सब पाकर शाहज़ादे के साथ नियुक्त हुए। वहाँ से (कि दैव योग से फ़ारस के बादशाह की मृत्यु हो गई थी और शाहज़ादा आज्ञानुसार लौट आया था) १६ वें वर्ष में यह भी लौट आए। १७ वें वर्ष में जमादिउल्अव्वल सन् १०५४ हि० (२५ जूलाई सन् १६४४ ई०) को (कुछ दिन माँदे होने के कारण दरबार में नहीं आने के अनंतर) अच्छे होने पर दरबार में आए। कोर्निश करने के अनंतर एकाएक जमधर खींचकर सलाबतखाँ बख्शी को मार डाला[2]

---

१. डच पादरी वालब्यूस लिखता है कि उक्त घटना ४ अगस्त सन् १६४४ ई० को दोपहर के बाद हुई थी; और इसका कारण यह था कि सलाबत खाँ ने अमरसिंह से यह पूछ कर कि वह दरबार में इसके पहिले क्यों नहीं हाज़िर हुए, उन्हें क्रुद्ध कर दिया था।)

२. राव अमरसिंह और सलाबत ख़ाँ बख़्शी में बीकानेर की सीमा के विषय में कुछ मनोमालिन्य हो गया था। बीमार होने के कारण या जैसा

(जिसका विवरण अंतिम के वृत्तांत में दिया गया है)। इस घटना पर ख़लीलुल्ला ख़ाँ और राजा बिट्ठलदास गौड़ के पुत्र अर्जुन[1] ने उस पर आक्रमण किया और उसने दो एक बार अर्जुन पर भी जमधर चलाया। इसी समय ख़लीलुल्ला ख़ाँ ने अमरसिंह पर तलवार चलाई और अर्जुन ने भी तलवार की दो चोटें कीं। इसके साथ ही और लोगों ने पहुँच कर उसका काम तमाम किया[2]। बादशाह ने इस घटना के कारण की बहुत कुछ पूछ ताछ की, पर सिवाय इसके कि बराबर नशा खाने (इससे कुछ दिन बीमार भी थे) से ऐसा हुआ, और कुछ पता नहीं लगा। परन्तु इसके पहिले इसके मनुष्यों के (कि नागौर में जागीर थी)

कि अमरसिंह के कवि 'बनवारी' का कथन है, छुट्टी से अधिक दिन व्यतीत करने पर किए गए जुरमाने के रुपए न देने के कारण सलावत ख़ाँ बख़्शी ने दरबार में उसके ज़िये तक़ाज़ा किया, जिस पर इन्होंने रोष प्रकट किया। सलावत ख़ाँ ने इस पर इन्हें गँवार कहा जिससे क्रुद्ध होकर इन्होंने उसे मार डाला। दोहा यों है—

इत गँकार मुख तें कढ़ी उत निकसी जमधार।
वार कहन पायो नहीं कीन्हो जमधर पार॥

टाड कृत राजस्थान भाग २, पृ० ८७१ में भी प्रायः ऐसा ही कारण बतलाया गया है।

१. इनका विशेष वृतांत विट्ठलदास की जीवनी शीर्षक ४० में देखिए।

२. बैलब्यूस लिखता है—'अमरसिंह को गलीखाँ (खलीलुल्ला ख़ाँ) और राजा विट्ठलदास के पुत्र (अर्जुन) ने मार डाला। बादशाह ने अमर के शव को नदी में फेंक देने की आज्ञा दी जिससे राजपूत बहुत क्रुद्ध हुए।'

और बीकानेर के जागीरदार राव सूर भुरटिया के पुत्र राव कर्ण[1] (जो दक्षिण की चढ़ाई पर नियत था) के मनुष्यों के बीच सीमा के लिये कुछ झगड़ा[2] हुआ था, जिसमें इसके उगाहनेवाले आदमी मारे गए थे। इसने अपने आदमियों को लिख भेजा था कि फिर सेना एकत्र कर कर्ण के सवारों पर आक्रमण करो। कर्ण ने यह बात सलावत खाँ को लिख कर शाही अमीन के लिये प्रार्थना की। सलावत खाँ ने बादशाह से यह वृत्तांत कह कर अमीन नियत करा दिया। स्यात् इस घटना को पक्षपात समझ कर उसने ऐसा साहस किया होगा।

इस घटना के अनंतर अमरसिंह के शव को मीर तुज़ुक मीर खाँ और दौलतखानः ख़ास के मुंशी मुल्कचंद बादशाह की आज्ञा से दीवान ख़ास के बाहर लाए और उनके आदमियों को बुलवाया कि उसको घर ले जाकर अंत्येष्टि क्रिया करें। उसके पंद्रह सेवक यह सब वृत्तांत जान कर तलवार और जमधर हाथ में ले कर लड़ने को तैयार हुए। मुल्कचंद मारा गया और मीरख़ाँ घायल होकर दूसरे दिन मर गया। इतने में अहदियों आदि ने आकर उन लोगों को मार डाला। छः अहदी मारे गए और छः घायल हुए। इतने पर भी यह झगड़ा नहीं निपटा और कुछ मनुष्यों ने यह निश्चित किया कि अर्जुन के घर चल कर उसे

---

१. ७ वें शीर्षक में इनका वृत्तांत दिया हुआ है।

२. बादशाहनामा भाग २, पृ० ३८२।

मार डालें। बल्लून राठौर और भाऊसिंह राठौर[1] (जो पहिले अमरसिंह और उसके पिता के नौकर थे और जिन्होंने उसके अनंतर बादशाही नौकरी कर ली थी) भी इसमें सम्मिलित थे।

जब यह बात बादशाह से कही गई, तब इस झुंड की मूर्खता को क्षमा करके एक आदमी को आज्ञा दी कि जाकर उनको समझावे कि यदि वे चाहते हों तो बाल-बच्चों के साथ अपने देश लौट जायँ। क्यों वे अपने घर तथा सामान के नाश के कारण होते हैं? इसके अनंतर (जब उनका हठ मालूम हो गया, तब) सैयद खानेजहाँ बारहः को शरीररक्षकों और रशीदखाँ अन्सारी (जो उस समय द्वार-रक्षक था) के साथ उस झुंड को मारने काटने भेजा। इन सब ने भी सामना किया और जब तक शरीर

---

१. बादशाहनामा भा० २, पृ० ३८० और टाड कृत राजस्थान भा० २, पृ० ८७१ में इस घटना का विवरण दिया हुआ है। बल्लू चंपावत तथा भाऊ कंपावत राठौरों ने अमरसिंह का उनके देश-त्याग के समय साथ दिया था; पर इन लोगों ने बादशाह से अलग जागीरें भी पाई थीं। अमरसिंह की मृत्यु पर उनका शव, जो शाही आज्ञानुसार दुर्ग के मैदान में फेंक दिया गया था, लाने के लिये ये दोनों वीर अमरसिंह की रानी हाड़ी की आज्ञा से चुने हुए कुछ सैनिक लेकर किले में घुस गए और लड़ते हुए शव को लेकर चले; आए तथा रानी के सती होते होते ये दोनों वीर भी मारे गए।

में साँस रही, तब तक लड़े और अंत में मारे गए। बादशाही मनुष्यों में सैयद अब्दुर्रशीद बारहः (जो वीर युवक था), उसके भाई सैयद मुहीउद्दीन का पुत्र गुलाम महम्मद और अन्य पाँच संबंधी मारे गए। १८ वें वर्ष में अमरसिंह का पुत्र रायसिंह[1] दरबार में आया और एक हज़ारी, ७०० सवार का मन्सब पाकर प्रतिष्ठित हुआ। १९ वें वर्ष में सुलतान मुराद के साथ बलख़ और बदख़शाँ के काम पर नियत हुआ और २५ वें वर्ष में डेढ़ हज़ारी, ८०० सवार का मन्सब पाकर सुलान औरंगजेब बहादुर के साथ कंधार की दूसरी चढ़ाई पर गया। २६ वें वर्ष में यह दारा शिकोह के साथ फिर वहीं गया और २८ वें वर्ष में सादुल्ला ख़ाँ के साथ चित्तौड़ को नष्ट करने पर नियुक्त हुआ। ३० वें वर्ष में २०० सवार इसके मन्सब में और बढ़े।

जब औरंगजेब बादशाह हुए और विजयी सेना मथुरा पहुँची, तब रायसिंह ने आकर अधीनता स्वीकृत की और खलीलुल्ला ख़ाँ के साथ दारा शिकोह का पीछा करने पर नियत हुआ। सुलतान शुजाअ के युद्ध में भी यह बादशाह के साथ था। अजमेर लौटने पर महाराज जसवंतसिंह को चिढ़ाने के लिये इसे राजा की पदवी, ख़िलअत, एक जोड़ा हाथी, जड़ाऊ तलवार, डंका, एक लाख रुपया पुरस्कार और चार हज़ारी, ४००० सवार का मन्सब देकर राठौर जाति का सरदार और जोधपुर का राजा

१. बादशाह शाहजहाँ ने पिता के औद्धत्य का विचार न कर पुत्र रामसिंह को नागौर की जागीर पर बहाल रखा।

बनाया[1]। दारा शिकोह के साथ दूसरे युद्ध में यह सेना के मध्य में था। इसके अनंतर यह दक्षिण की चढ़ाई पर जानेवाली सेना में नियत हुआ, जहाँ मिरज़ा राजा जयसिंह के साथ शिवा जी भोंसला के राज्य पर धावा करने और आदिलख़ानी राज्य के लूटने में अच्छा काम किया। १६ वें वर्ष में (जब ख़ानेज़हाँ बहादुर कोकल्ताश दक्षिण का सूबेदार हुआ) यह ख़ाँ के हरावल में नियत हुआ। १८ वें वर्ष में अब्दुलकरीम मिआनः (जो सेना सजाए था) के साथ युद्ध की तैयारी करते समय माँदा होकर मर गया। औरंगाबाद नगर के बाहर राव रायपुरा इसी के नाम पर बसा है। इसके अनंतर इसके पुत्र इंद्रसिंह को योग्य मन्सब मिला और उसने अपने देश की सरदारी पाई। २२ वें वर्ष में महाराज जसवंतसिंह की मृत्यु पर इसे राजा[2] की पदवी, खिलअत,

१. शुजाअ के साथ सं० १७१६ वि० में जो खजवा युद्ध हुआ था, उसमें महाराज यशवंतसिंह ने शुजाअ से मिलकर औरंगजेब को धोखा देने का जो प्रयत्न किया था, उससे चिढ़ कर औरंगजेब ने दिल्ली लौटने पर एक सेना उनका दमन करने को भेजी थी। इस सेना के साथ रामसिंह को जोधपुर का राजा नियुक्त करके भेजा था; पर जब दारा के सैन्य एकत्र करने के समाचार के साथ यह सुना कि यशवंतसिंह भी उसकी सहायता करने को अपनी सेना ठीक कर रहे हैं, तब इस चढ़ाई को नीतिविरुद्ध समझ कर रोक दिया और महाराज जयसिंह के द्वारा पत्र व्यवहार कर उन्हें पुनः अपनी ओर मिला लिया।

२. जब सं० १७३५ वि० में महाराज यशवंतसिंह की मृत्यु हो गई, तब औरंगजेब ने मारवाड़ पर अधिकार करने के इस सुअवसर को नहीं

जड़ाऊ तलवार, सोने के साज़ सहित घोड़ा, हाथी, झंडा, तोग़ और डंका मिला। २४ वें वर्ष में सुलतान मुअज्जम के साथ सुलतान मुहम्मद अकबर का पीछा करने गया था[1]। इसके अनंतर बहुत दिनों तक फीरोज़ जंग[2] के साथ काम करता रहा और ४८ वें वर्ष में तीन हज़ारी, २००० सवार का मन्सब पाया। औरंगजेब की मृत्यु पर आज़म शाह के पास जाकर पाँच-हज़ारी हो गया[3]। जुल्फ़िकार खाँ के साथ सुल्तान बेदार बख्त (जो

जाने देना चाहा। उस समय तक महाराज निस्संतान ही थे, क्योंकि तीन मास बाद उनकी गर्भवती रानी से महाराज अजीतसिंह का जन्म हुआ था। बादशाह ने मारवाड़ पर अधिकार करने को सेना भेज दी और छत्तीस लाख रुपए नजराने के लेकर इंद्रसिंह को मारवाड़ का अधीश नियुक्त किया। जब राठौरों ने स्वतंत्रता के लिये लड़ाई आरंभ की, तब बादशाह स्वयं अजमेर आया। यहीं इसका पुत्र अकबर विद्रोही हो गया, पर औरंगजेब के कौशल के आगे सभी परास्त हुए। इतने पर भी शांति स्थापित न होती देख सं० १७३८ में इंद्रसिंह से मारवाड़ लेकर उन्हें नागौर लौटा दिया। इसके अनंतर अकबर के मराठों के आश्रय में पहुँच जाने पर संधि कर बादशाह दक्षिण चले गए।

१. मारवाड़ युद्ध की एक घटना है जिसमें मुअज्जम के साथ यह तथा अन्य राजे दुर्गादास तथा अकबर पर भेजे गए थे, पर जालौर के पास राठौरों ने इन लोगों का सामान लूट लिया था।

२. दक्षिण के युद्ध में बादशाह के साथ बहुत दिनों तक वहीं रहा।

३. औरंगजेब के तीन पुत्र मुअज्जम, आजम और कामबख्श में राज्य के लिये युद्ध हुआ था। आजम और कामबख्श को मार कर मुअज्जम बहादुर शाह के नाम से बादशाह हुआ। इंद्रसिंह ने आजम का पक्ष लिया था, इसलिये देश को लौट गया।

पिता के इच्छानुसार अहमदाबाद से उज्जैन आ पहुँचा था, पर जिसके पास कुछ सेना न थी) के यहाँ जाने के लिये नियुक्त हुआ, पर रास्ते से साथ छोड़ कर अपने देश चला गया। इसके एक पौत्र हरनाथ सिंह को इसके पहिले दक्षिण आने पर बरार प्रांत के एक महाल में जागीर मिली थी। ११९० हि० (सन् १७७६ ई०) में यह वहीं मर गया। इंद्रसिंह का पौत्र मानसिंह[1] (जो बहुत दिन दक्षिण में रह कर देश को लौटा था) रास्ते में भीलों के हाथ मारा गया।



१. टाड कृत राजस्थान की एक पाद-टिप्पणी में रामसिंह की वंश-परंपरा यों दी हुई है—रामसिंह के पुत्र हाथीसिंह, उनके अनूपसिंह, उनके इंद्रसिंह तथा उनके मोकमसिंह थे।

५—राजा इन्द्रमणि धँदेरा

राजपूतों में धँदेरा एक जाति है। इनमें तथा बुँदेलों और पँवारों में सम्बन्ध[१] होता है। इनका देश मालवा के अंतर्गत सरकार सांरगपुर[२] सहरा में एक गाँव है जो दफ़तर में सहार बावा हाजी लिखा जाता है। अकबर के समय में राजा जगमणि धँदेरा सेवा में आया। शाहजहाँ के समय धँदेरा प्रांत राजा विट्ठलदास गौर के भतीजे शिवराम को मिला। उसने कुछ सेना के साथ जाकर बलात् राजा इंद्रमणि को वहाँ से (जो उस समय वहाँ का जमींदार था) निकाल दिया। इस पर इंद्रमणि ने सेना एकत्र कर विजय प्राप्त करके उस प्रांत पर पुनः अधिकार कर लिया। तब १०वें

---

१. बुँदेले गहिरवार राजपूतों के वंशज हैं। परन्तु राजपूताना, मालवा, बघेलखंड आदि के राजपूत इनके साथ विवाह आदि का संबंध नहीं करते थे। मुग़लों के समय बुंदेलों के बड़े बड़े राज्य थे, पर उस समय भी ऐसे संबंध नहीं हुए और न स्यात् अभी तक होते हैं। पँवार और धँधेरे अपने को चौहान क्षत्रिय बतलाते हैं, पर इनका भी अन्य राजपूतों से वैवाहिक संबन्ध नहीं होता। बुँदेलों से इन दोनों का संबन्ध बराबर होता आया है।

२. यह देवास राज्य के अंतर्गत कालीसिंध नदी के दाहिने तट पर बसा हुआ है। इंदौर और गूना के बीच की सड़क पर पड़ता है और प्रायः दोनों के मध्य में है।

वर्ष में उसी बादशाह के सरदार मोतमिदख़ाँ और राजा विट्ठलदास शिक्षित सेना के साथ उसे दंड देने के लिये नियुक्त हुए और जाकर दुर्ग सहरा को घेर लिया। पूर्वोक्त राजा (इन्द्रमणि) क्षमा माँगकर उनके साथ दरबार में गया और आज्ञानुसार दुर्ग जूनेर में क़ैद हुआ। उस वर्ष (जब औरंगज़ेब ने अपने पिता की माँदगी देखने के लिये हिन्दुस्थान की ओर जाने का विचार किया, तब) इनका मन्सब तीनहज़ारी, २००० सवार तक बढ़ाकर शाहज़ादा मुहम्मद सुलतान के साथ आगे आगे उत्तरी भारत को भेजा। महाराज जसवंतसिंह के साथ युद्ध[1] होने के अनंतर यह झंडा और डंका पाकर सम्मानित हुआ। शाहज़ादा मुहम्मद शुजाअ के साथ की लड़ाई के अनंतर बंगाल में इसकी नियुक्ति हुई जहाँ अपनी मृत्यु तक बादशाही कामों में लगा रहा।

—

१. औरंगजेब तथा यशवंतसिंह के बीच धर्मत ग्राम के पास सन् १६५८ ई० में युद्ध हुआ था और औरंगजेब तथा शुजाअ के मध्य खजवा का युद्ध उसी वर्ष के अंत में हुआ था।

६—ऊदाजीराम

यह दक्षिणी ब्राह्मण था। अपनी बुद्धिमानी से यह प्रसिद्ध हुआ और माहोर से मेहकर तक की भूमि पर इसने अधिकार कर लिया। सौभाग्य, चालाकी तथा कार्य-शक्ति से मलिक अंबर का विश्वासपात्र होकर यह ऐश्वर्यशाली भी हो गया। जहाँगीर के समय में बादशाही नौकरी पाने पर इसे चार हजारी, ४००० सवार का मन्सब मिला और यह दक्षिण की सहायक सेना में नियत हुआ। धूर्त्तता की भी इसमें कमी नहीं थी, इससे दक्षिण के सूबेदारों में भी इसकी अच्छी प्रतिष्ठा थी। जब विजयी सेना दक्षिणी बालाघाट में पहुँची, तब यह, उस प्रांत का अधिक हाल जानने के कारण, अच्छे कामों पर नियुक्त हुआ। इसने प्रजा का काम ऐसा मन लगा कर किया कि उनमें इसके प्रति बहुत अधिक विश्वास हो गया। जहाँगीर के १७वें वर्ष में युवराज शाहजहाँ बंगाल जाने का साहस कर बुरहानपुर से माहोर आया। दक्षिण के सरदारों के साथ इसकी केवल दिखावट की मित्रता न थी, इससे वहाँ से विदा होते समय काम से जो कुछ अधिक सामान था, उसको हाथियों सहित ऊदाजी राम की रक्षा में माहोर के दुर्ग में छोड़ा था। इसने बादशाही कामों में

भी अच्छा प्रयत्न किया था, इससे महाबतख़ाँ ने इसकी प्रतिष्ठा और बढ़ाई[1]।

१९वें वर्ष में बादशाही सरदारों को आदिलशाहियों को सहायक सेना से संयुक्त होकर मलिक अंबर के साथ अहमदनगर से पाँच कोस पर मौज़ा आतुरी में युद्ध[2] करने का अवसर पड़ गया। बीजापुरी सेना के अध्यक्ष मुल्ला मुहम्मद बारी के मारे जाने से उस सेना का प्रबंध बिगड़ गया तथा जादोराव और ऊदाजी राम भाग गए। इन कारणों से बादशाही सेना को भारी पराजय मिली। लश्करख़ाँ, अबुलहसन, मिर्ज़ाख़ाँ मनोचहर,[3] दक्षिण का बख्शी अक़ीदतख़ाँ—अपने पुत्र रशीदा सहित—और बयालिस अन्य मन्सबदार मलिक अंबर के हाथ पकड़े गए। इस पराजय की यही बड़ी अप्रतिष्ठा थी। जादवराव कानसटियः अच्छा सरदार था। ऊदाजी राम ने लौट कर भागने का दोष सैनिकों पर मढ़ा, पर विश्वास कम हो जाने के कारण वह प्रतिष्ठा

---

१. जिस समय महावत ख़ाँ मुल्ला मुहम्मद बारी से मिलने शोलापुर गया, उस समय बुरहानपुर में सरबुलंद राय, जादो राम तथा ऊदाजी राम ही को उस नगर की रक्षा तथा समय पर सहायता करने के लिये छोड़ गया था। जादोराय के पुत्र तथा ऊदाजी राम के भाई को विश्वास के लिये साथ लिवाता गया था।

२. यह युद्ध सन् १६२४ ई० के आरंभ में हुआ था। इसका पूरा विवरण इक़बाल-नामए जहाँगीरी में दिया हुआ है। इलि० डाउ० जि० ६, पृ० ४१४-४१६ देखिए।

३. पाठान्तर मिरजा जान मनोचर।

न रही। तीसरे वर्ष जब शाहजहाँ बुरहानपुर में आए और सेना ख़ानेजहाँ लोदी का दमन करने पर नियत हुई, तब ऊदाजीराम को चालीस हज़ार रुपया नगद मिला और हज़ारी, १००० सवार का मन्सब बढ़ाया जाने पर उसने पाँच हज़ारी, ५००० सवार का मन्सब पाकर फिर से प्रतिष्ठा प्राप्त की। छठे वर्ष सन् १०४२ हि० (सं० १६८२ वि०) में खानेख़ानाँ महावत ख़ाँ के साथ दुर्ग दौलताबाद के घेरने[1] के समय जीर्ण रोग के कारण मर गया।

यद्यपि ऊदाजीराम ने धूर्तता ही से प्रसिद्धि पाई थी, पर वह साहस तथा दान के लिये भी प्रसिद्ध था और मनुष्यों को आराम देने में उसने कभी कमी नहीं की। इसी से वह दक्षिण के सरदारों का मुखिया था। वृद्धावस्था के कारण निर्बल होने पर भी उसमें काम-वासना बनी हुई थी। उसकी एक स्त्री राय बाघिन नाम की थी जो उसके बाद ज़मींदारी का काम ठीक तौर पर करती थी। उसके मनुष्य कार्य-दक्ष थे, इससे उसकी मृत्यु पर सेनाध्यक्ष[2] ने उचित समय के बीत जाने पर (क्योंकि उसके मनुष्यों में किसी प्रकार का मत-भेद न था) उसके पुत्र जगजीवन के छोटे होने पर भी तीन हज़ारी, २००० सवार क मन्सब के लिए चुन कर

१. इस घेरे का पूरा वर्णन बादशाह नामा के छठे वर्ष के वृत्तांत में 'दौलताबाद विजय' शीर्षक से दिया हुआ है। यह घेरा सन् १६३२ ई० में हुआ था। (इलि. डाउ, जि० ७, पृ० ३८–४२)

२. यहाँ महावत ख़ाँ ख़ानख़ानाँ बादशाही सेनापति से तात्पर्य है।

ऊदा जी राम नाम रखा। वह जब बड़ा हुआ, तब फारसी के गद्य, पद्य और पत्र-लेखन में प्रवीणता प्राप्त की। दक्षिण की चाल छोड़ कर उसने उत्तरी भारत के सरदारों का रहन-सहन रखा और प्रतिष्ठा के साथ माहोर को जागीर से अपना जीवन व्यतीत किया। इसके अनंतर जो कोई क्रम से उसका स्थानापन्न होता, वही अपने को ऊदा जी राम के नाम से प्रसिद्ध करता था। एक आश्चर्य यह है कि ये सभी निस्संतान रहे। दत्तक ही लेने से काम चलता रहता था। जगजीवन भी दत्तक ही में गिना जाता है। उसके बाद वेंकटराव था, पर उसका वह मन्सब, ऐश्वर्य आदि न था। वह देशमुखी से अपना काम चलाता था। इसके अनंतर उसके दो दत्तक पुत्र माधवराव और शंकरराव ने छोटा मन्सब पाकर सरकार माहोर और बासम के महालों को आपस में बाँट लिया। धीरे धीरे उनके वृद्ध होने पर देशमुखी का कार्य भी छिन गया। यदि किसी मकान में उनका प्रतिनिधि अधिकृत रहता तो वह इनके लौटने पर उन्हें ही न रखता था। इसी समय पहला (पुत्र माधवराव) मन्सब और जागीर छिन जाने पर मर गया। दूसरा उस समय पना बासम[1] पर अधिकारी था और कर उगाहता था।

---

१. माहोर वर्तमान हैदराबाद राज्य की उत्तरी सीमा पर पेन गंगा के दाहिने तट पर बसा है। मेहकर उसी नदी के बाएँ तट पर बरार में ६० मील पश्चिम की ओर है। इन दोनों के बीच में बासिम प्रांत है, जिस नाम की बस्ती मेहकर से ठीक ३८ मील पूर्व है।

७. राव कर्ण भुरटिया

यह राव सूर का पुत्र था[१]। पिता की मृत्यु पर शाहजहाँ के चौथे वर्ष में इसने दो हज़ारी, १००० सवार का मन्सब, राव की पदवी और जागीर में बीकानेर पाया। ५वें वर्ष के आरम्भ में देश से आकर दरबार में हाज़िर हुआ और वज़ीर खाँ के साथ दौलताबाद दुर्ग को विजय करने पर नियुक्त हुआ। जब आज्ञानुसार खाँ रास्ते से लौट आया, तब यह भी चला आया। फिर दक्षिण में नियुक्ति होने पर दौलताबाद लेने में अच्छा प्रयत्न किया और दुर्ग परेंदः लेने में भी अच्छा कार्य किया[२]। महाबत खाँ की मृत्यु पर खानेदौराँ बुरहानपुर का सूबेदार नियुक्त हुआ। ८वें वर्ष (जब बादशाह दक्षिण गए और सैयद खाँनेजहाँ बारहः बीजापुर पर चढ़ाई करने के लिये नियत हुआ, तब) यह पूर्वोक्त

---

१. राव सूरसिंह जी के तीन पुत्र थे—कर्णसिंह, शत्रुसाल और अर्जुनसिंह।

२. सन् १६३१ ई० अर्थात् सं० १६८८ की कार्तिक व० १३ को यह राजगद्दी पर बैठे थे। उस समय इनकी अवस्था पचीस वर्ष की थी।

खाँ के साथवालों में नियुक्त हुआ[1]। २२वें वर्ष [2]सआदतखाँ के स्थान पर यह दौलताबाद का दुर्गाध्यक्ष हुआ और पाँच सौ सवार बढ़ने पर इसका दो हज़ारी, २००० सवार का मन्सब[3] हो गया २३ वें वर्ष पाँच सदी बढ़ने से इसका मन्सब ढाई हज़ारी, २००० सवार का हो गया। २६वें वर्ष इसका मन्सब बढ़ कर तीन हज़ारी, २००० सवार का हुआ। इसके अनंतर (जब दौलताबाद सुलतान औरंगज़ेब बहादुर को मिल गया, तब) पाँच सदी, ४०० सवार (दौलताबाद की दुर्गाध्यक्षता के साथ) उसके मन्सब से कम

---

१. छठे वर्ष में (सन् १६३२ ई०) महाबत खाँ के सेनापतित्व में दौलताबाद दुर्ग विजय हुआ था। इसके दूसरे वर्ष शाहज़ादा शुजाअ, महाबत खाँ आदि ने परेंदः दुर्ग घेरा, पर उसे न ले सके।

२. नवें वर्ष के आरंभ में शाहजहाँ दक्षिण आया। शाह जी भोंसले का उपद्रव दमन करने के लिये तीन सेनाएँ भेजी गईं, पर बीजापुर के आदिलशाह के निजामशाहियों के सहायता करने का समाचार पाकर शाहजहाँ ने दस सहस्र सेना सैयद खानेजहाँ की अधीनता में सहायतार्थ भेजी। (बादशाह नामा, इलि० डा०, जि० ७ पृ० ५५-६१) खानेजहाँ ने सराधून धेरास्यू, कांति तथा देवगाँव ले लिया तथा रनदूलह खाँ पर विजय प्राप्त की। इसके अनंतर ये लौट पड़े और धरूर में आकर ठहरे। इन सब में राव कर्णसिंह जी बराबर साथ थे।

३. बीच के प्रायः बारह वर्षों का वृत्तांत नहीं दिया गया है। इस बीच स्यात् यह अपने राज्य में रहे जिससे बादशाही दफ्तर तथा फारसी तवारीखों से इस ग्रंथ के लेखक को इस समय का हाल नहीं मिला। ये अपने देश में आकर पूँगल के राव भाटी सुंदरसेन तथा जोहियों से कुछ दिन युद्ध करके उनका दमन करने में लगे थे। सन् १६४८ ई०में २२वाँ वर्ष आरम्भ होता है।

हो गया। औरंगाबाद सूबे के अंतर्गत सरकार जवार[1] (जिसके उत्तर में बगलाना, दक्षिण में कोंकण, पश्चिम में कोंकण के मौज़े और पूर्व में नासिक है और इसी में जेवल बंदर भी है। यहाँ का भूम्याधिकारी श्रीपति विद्रोही हो रहा था, इसलिए इसका) का लेना निश्चित हो चुका था। इस कारण पूर्वोक्त शाहज़ादे की सम्मति पर इनका पहिला मन्सब बहाल रखा जाकर और सरकार जवार का वेतन, जिसकी तहसील ५० लाख दाम थी, मन्सब की बढ़ती में नियत हुआ। शाहज़ादे की नियुक्ति पर यह उस प्रांत में गया। जब यह जवार की सीमा पर पहुँचा, तब पूर्वोक्त ज़मींदार सामना न कर सकने पर सेवा में आया और धन भेंट में देकर उस महाल की तहसील उगाहना अपने ज़िम्मे ले लिया और अपने पुत्र को ज़मानत में साथ कर दिया। इसके अनंतर यह वहाँ से लौट कर शाहज़ादे के पास आया।

जब शाहजहाँ की बीमारी में दाराशिकोह का पूरा अधिकार हो गया था, तब सरदार लोग (जो बीजापुर के विजयार्थ सुलतान औरंगज़ेब के साथ नियुक्त थे) उसके आज्ञानुसार दरबार को चल दिए। यह भी शाहज़ादे से बिना छुट्टी लिए दक्षिण से देश

---

१. यह राज्य अभी तक वर्तमान है, जो बंबई प्रांत के थाना की पोलिटिकल एजेंसी के अंतर्गत है। वर्तमान काल में इसका घेरा ५३४ वर्ग मील है। इस का राजा कोली जाति का है और यह राज्य छः सौ वर्ष प्राचीन कहा जाता है। शिवा जी ने इस राज्य पर अधिकार कर लिया था, पर उसी वंश के राजा को करद बना कर छोड़ दिया था।

चला गया[1]। इस कारण आलमगीर के राज्य के तीसरे वर्ष में अमीर खाँ खवाफ़ी बीकानेर की सीमा पर नियुक्त हुआ। उसके सीमा पर पहुँचने पर यह क्षमा-प्रार्थी होकर पूर्वोक्त ख़ाँ के साथ दरबार गया और अनूपसिंह तथा पद्मसिंह नामक पुत्रों के साथ बादशाह के यहाँ हाज़िर हुआ। तीन हज़ारी, २००० सवार के मन्सब सहित यह पहिले की तरह दक्षिण में नियुक्त हुआ। नवें वर्ष दिलेरख़ाँ दाऊदजई के साथ चाँदा के जमींदार को दंड देने जाकर कुछ अपराध करने से स्वयं दंडित हुआ[2]। इसको जाति की सरदारी और देश का राज्य इसके पुत्र अनूपसिंह को मिला

१. शाहजहाँ के चारों पुत्रों में राज्य के लिये जो युद्ध हुआ था, उसमें इन्होंने योग नहीं दिया था।

२. यह सन् १६६७ ई० की घटना है। बीकानेर की तवारीख में इस अपराध का यह कारण दिया है कि इन्होंने स्पष्टतः औरंगजेब के इस प्रस्ताव का विरोध किया कि सब राजे मुसल्मान हो जायँ। उसमें इन्हें मरवा डालने के लिये दिल्ली बुलवाना तथा उसके पुत्र केसरीसिंह के साथ रहने से, जिसने युद्ध में औरंगजेब की प्राण-रक्षा की थी, न मारना आदि वृत्तांत विशेष विश्वास योग्य नहीं ज्ञात होते। जो हो, यह राज्यच्युत होकर दूसरे वर्ष मर गए। भारत के प्रा० राजवंश भा० ३, पृ० ३४ में वि० सं० १७२६ आषाढ़ सु० ४ को इनकी मृत्यु लिखी है। दिलकुशा नामक फारसी इतिहास पृ० ६६८ में लिखा है कि इनके पुत्र अनूपसिंह ने बीकानेर राज्य को पिता की जीवितावस्था ही में अपने नाम कराना चाहा था, जिस वृत्तांत को सुनकर यह अपने कार्य से उदासीन हो गए। दिलेर ख़ाँ शिकार के बहाने इन्हें क़ैद करना चाहता था, पर भाऊसिंह हाड़ा की सहायता से यह बच गए। (सरकार कृत शिवाजी, पृ० १८१-२)

और उसे ढाई हज़ारी, २००० सवार का मन्सव दिया गया। यह जागीर की आय बन्द हो जाने से बुरे हाल में औरंगाबाद में आ बैठा जहाँ सन् १०७७ हि० में इसकी मृत्यु हो गई। औरंगाबाद नगर के घेरे के बाहर उत्तर और पश्चिम की ओर एक पुरा इसके नाम पर बसा हुआ है। इसके चार पुत्र थे—अनूपसिंह, पद्मसिंह, केसरसिंह[1] और मोहनसिंह। अंतिम तीन निस्संतान मर गए।

कहते हैं कि मोहनसिंह पर सुलतान मुहम्मद मुअज्जम कृपा रखते थे जिससे वह बादशाही नौकरों के द्वेष का पात्र हो गया था। शाहज़ादा के मीर तुज़क मुहम्मद शाह ने (जिसका हिरन भागकर मोहनसिंह के घेरे में चला गया था) दरबार में उससे तक़ाजा करके झगड़ा किया और एक दूसरे पर शस्त्र चलाने लगे[2]। दूसरे आदमियों ने इकट्ठे होकर मोहनसिंह को घायल किया। पद्मसिंह यद्यपि भाई से मित्रता नहीं रखता था, पर यह घटना सुनकर ठीक समय पर उसने पहुँच कर मुहम्मद शाह का अंत कर दिया और मोहनसिंह को पालकी में डालकर उसके

---

१. दूसरी प्रति में केशवसिंह लिखा है, पर बीकानेर के इतिहासों में केसरीसिंह नाम दिया है। इसके अन्य चार पुत्र थे जिनके नाम देवीसिंह, मदनसिंह, अजयसिंह और अमरसिंह दिए हुए हैं।

२ भारत के प्रा० रा०, भा० ३, पृ० ३३४ में लिखा है कि मोहनसिंह के हिरन को कोतवाल ने पकड़ लिया था जिससे दोनों ने दरबार में झगड़ कर अपने अपने प्राण गँवाए थे। पद्मसिंह ने भाई का पक्ष लेकर कोतवाल को मारा था। यह स्वयं दक्षिण के एक युद्ध में जादोराय से लड़कर सन् १७३६ में मारे गए।

घर ले चला, पर रास्ते ही से उसका काम तमाम हो गया। अनूप-सिंह आरंभ ही से दक्षिण में नियुक्त होकर बहादुर खाँ कोका के युद्ध में अब्दुलकरीम मियानः के साथ बाईं ओर था। १८ वें वर्ष पूर्वोक्त खाँ के कहने पर उसे राजा की पदवी मिल गई। १९वें वर्ष (जब दिलेर खाँ दाऊदजई के सेनापतित्व में दक्खिनियों से युद्ध की तैयारी हुई, तब) यह चंदावल में था। २१वें वर्ष में इसको वह औरंगाबाद की अध्यक्षता पर छोड़ गया था। उसी वर्ष शिवाजी भोंसला ने इस नगर के चारों ओर गड़बड़ मचा रखी थी। अनूपसिंह साथ की सेना सहित बाहर निकलकर पास ही ठहरे। उसी समय खानेजहाँ बहादुर (जो उस समय दक्षिण का सूबेदार था) मौके पर पहुँच गया और विद्रोही भाग गए। ३० वें वर्ष नसरताबाद सकर का दुर्गाध्यक्ष और ३३ वें वर्ष राव दलपत बुन्देला के स्थान पर गढ़ अदोनी का अध्यक्ष नियत हुआ। ३५ वें वर्ष यह उस पद से हटाया गया। ४१ वें वर्ष में इसकी मृत्यु हुई[१]। इसके अनंतर इसके राज्य की सरदारी इसके पुत्र सरूपसिंह को (जिसका हजारी, ५०० सवार मन्सब था) मिली। जुल्फिकार खाँ बहादुर के साथ काम

---

१. सन् १७४४ वि० में इनकी मृत्यु हुई। सन् १७३५ में इन्होंने अनूपगढ़ बनवाया था। इनके पिता के दासी-पुत्र वनमालीदास ने आधा बीकानेर बादशाह को भेंट देकर उसे अपने लिये प्राप्त कर लिया था और उस पर अधिकार करने के लिये बादशाही सेना के साथ आए थे; पर इन्होंने धोखे से उसे मरवा डाला। इनके चार पुत्र स्वरूपसिंह, सुजानसिंह, रुद्रसिंह और आनन्दसिंह थे।

करता रहा। उसके अनंतर उसका पुत्र आनन्दसिंह[1] और पौत्र जोरावरसिंह राजा हुए। लिखने के समय जोरावरसिंह का धर्म पुत्र गजसिंह, जो उसी वंश का था, उस पद पर था।

---

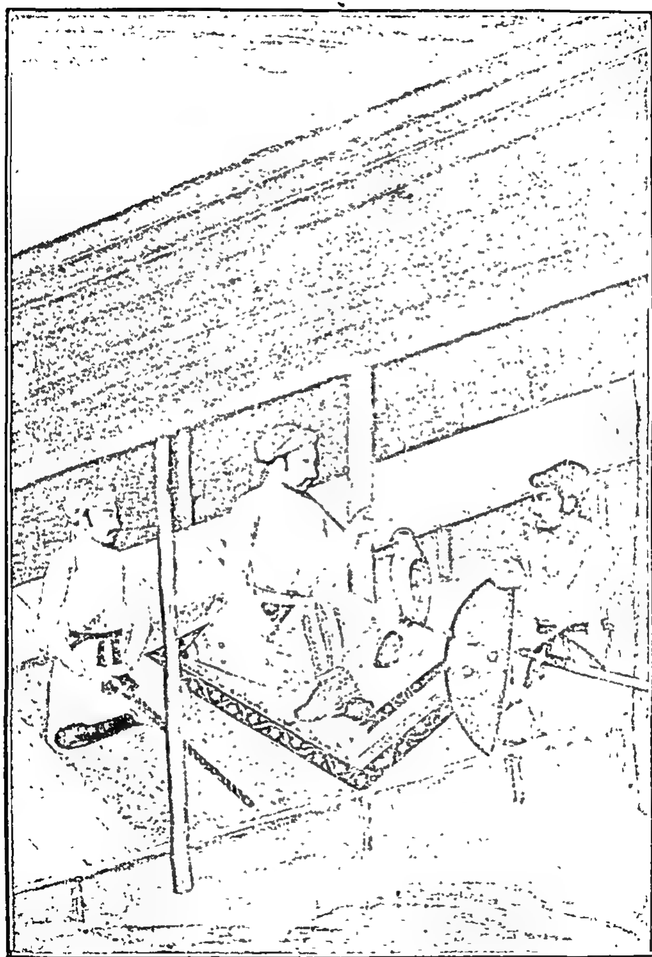
१. यह राज्य पाने के दो वर्ष के भीतर ही मर गए; तब इनके छोटे भाई सुजानसिंह गद्दी पर बैठे। इन्होंने ३५ वर्ष राज्य कर सं० १७९२ में परलोक का मार्ग पकड़ा। इन्हीं सुजानसिंह के बड़े पुत्र जोरावरसिंह ने इसके बाद ११ वर्ष राज्य किया। ये निस्संतान मरे थे, इससे अनूपसिंह के पुत्र आनन्दसिंह के द्वितीय पुत्र गजसिंह को सं० १८०२ में बीकानेर की गद्दी मिली।

८—राणा कर्ण[1]

यह मेवाड़ के राजा राणा साँगा के पुत्र, उदयसिंह के प्रपौत्र, राणा प्रताप उपनाम कीका के पौत्र और राणा अमर के पुत्र थे। यह देश अजमेर प्रांत की चित्तौड़ सरकार के अंतर्गत है। इसमें दस सहस्र गाँव हैं। यह चालीस कोस लंबा और ३३ कोस चौड़ा है। इसमें तीन भारी दुर्ग हैं—राजधानी चित्तौड़, कुम्भलमेर और मांडल। यहाँ के सरदार को पहिले रावल कहते थे; फिर कुछ दिनों के अनंतर वे राणा कहलाने लगे। इनकी जाति गुहिलौत है। ये सिसोद ग्राम के रहनेवाले थे, इससे सिसोदिए कहलाए। ये लोग अपने को न्यायी नौशेरवाँ के वंश का बतलाते हैं। इनके पूर्वज संसार के हेर-फेर से जंगलों में चले गए और नरनालः की अध्यक्षता पाई; पर जब शत्रु ने वहाँ भी अधिकार कर लिया, तब

---

१. इस छोटे से निबंध में भारतवर्ष के एक अत्यन्त प्राचीन तथा प्रतिष्ठित राजवंश की आठ पीढ़ियों का वृत्तांत आ गया है जिसमें प्रातःस्मरणीय राणा साँगा, राणा प्रतापसिंह तथा राणा राजसिंह के परिचय भी आ गए हैं। इनमें एक-एक के यश-वर्णन के लिये एक एक ग्रन्थ चाहिए। छोटी छोटी टिप्पणियाँ देकर इस निबन्ध को उनके इतिवृत्त से पाठकों को पूर्णतया परिचित कराना असंभव समझ कर विशेष नहीं लिखा गया है। इस निबन्ध को उनके इतिहास का एक छोटा आधार मात्र समझना चाहिए।



महाराणा अमर-सिंह, राजा भीम और राणा कर्ण

बाप्पा नामक एक छोटे लड़के को उसकी माता उस स्थान से लेकर मेवाड़ पहुँची और भील राजा मंडलीक की शरण ली। जब यह युवा हुआ, तब तीर चलाने में नाम पैदा किया और राजा का विश्वासी हो गया। राजा की मृत्यु पर उसकी गद्दी पर बैठा। राणा साँगा उसी का वंशधर है, जो सन् ९३३ हि० (सन् १५२७ ई०) में दूसरे राजाओं के साथ एक लाख सवार एकत्र करके बाबर से युद्ध कर पराजित हुआ था। सन् ९३६ हि० (सन् १५३० ई०) में उसकी मृत्यु हुई और राणा उदयसिंह गद्दी पर बैठे।

१२ वें वर्ष में अकबर सुलतान मुहम्मद मिरजा के पुत्रों को दंड देने के लिये (जिन्होंने मालवा में विद्रोह मचा रखा था) उधर चला; पर जब धौलपुर पहुँचने पर यह ज्ञात हुआ कि मालवा के विद्रोही अब शांत हो गए हैं, तब बादशाह ने कहा कि हिन्दुस्थान के बहुत से राजे सेवा में आए, पर राणा अभी तक नहीं आया, इसलिये अब उस पर चढ़ाई कर निपट लेना चाहिए। राणा उदयसिंह के पुत्र शक्तिसिंह पर (जो बादशाह की सेवा में आ चुका था) कृपाएँ करके कहा कि तुम से इस युद्ध में अच्छा कार्य होना चाहिए। यद्यपि उसने प्रकट में मान लिया था, पर सशंकित होकर वह भाग गया। उसके भागने से राणा का दमन करना निश्चित हो गया। पहिले दुर्ग सीवी, सूपर और कोठगाँव में थाने बैठाए गए और दुर्ग मांडल और रामपुर विजय किया गया। बादशाही सेना उदयपुर के आसपास की भूमि पर

अधिकृत हुई और बहुत दिन के घेरे पर दुर्ग चित्तौड़ विजय हुआ। राणा पहाड़ियों में जा छिपा और कुछ दिनों के अनंतर वहाँ राणा उदयसिंह की मृत्यु हो गई। राणा प्रताप उसके स्थान (गद्दी) पर बैठा। अबुलफ़ज़ल अकबरनामे में लिखता है कि जब १८ वें वर्ष (सं० १६३०, वि०) में कुँअर मानसिंह डूँगरपुर के राजा का दमन करके उदयपुर के पास पहुँचा, तब राणा ने स्वागत करके बादशाही ख़िलअत प्रतिष्ठा के साथ लिया और कुँअर से तपाक के साथ मिलकर सेवा में न आने के बारे में उज्र किया। उसी वर्ष राणा ने अपने बड़े पुत्र अमर को राजा भगवंतदास के साथ (जो ईडर से आते हुए उधर आ पहुँचा था) किया और बहुत चापलूसी करके कहा कि मैं भी दोषों के क्षमा होने पर आऊँगा। राजा टोडरमल से (जो गुजरात से आता था) भी मिल कर बहुत नम्रता प्रकट की। दरबार में पहुँचने पर अमर सेवकों में नियत हुआ। २१ वें वर्ष कुँअर मानसिंह राणा प्रताप को दंड देने पर नियुक्त होकर मांडलगढ़ पहुँचा। सेना एकत्र करने पर वह गोघँदा गया। शत्रुओं का सामना होने पर घोर युद्ध हुआ और राणा की सेना परास्त होकर भाग गई। उसी वर्ष बादशाह ने वहाँ स्वयं पहुँचकर राणा के पहाड़ियों में भागने पर उसका पीछा करने के लिये सेना नियत की। ४१ वें वर्ष राणा की मृत्यु हुई और अमरसिंह गद्दी पर बैठे। जहाँगीर के बादशाह होने पर सुलतान पर्वेज़ दूसरे सरदारों के साथ इन पर चढ़ाई करने के लिये नियत हुआ जिसमें

वह अपने बड़े पुत्र कर्ण के साथ सेवा में आवे। उस समय (कि खुसरो का विद्रोह मच रहा था) छोटे पुत्र बाघ को शाहज़ादे के साथ कर दिया। इसके अनंतर अब्दुल्ला ख़ाँ फ़ीरोज़ जंग और दूसरी बार महाबत ख़ाँ इन्हें दमन करने पर नियत हुए, पर कुछ न कर सके। यहाँ तक कि नवें वर्ष सुलतान खुर्रम औरों के साथ इस कार्य पर नियुक्त हुआ। शाहज़ादे ने पहुँच कर उनके थाने उठा कर और बादशाही थाने बैठा कर ऐसी कड़ाई की कि निरुपाय होकर नम्रता के साथ उन्होंने आकर शाहज़ादे से भेंट की और अपने बड़े पुत्र कर्ण को शाहज़ादे के साथ भेज दिया। कुँअर कर्ण ने बादशाह से भेंट करने पर खिलअत और जड़ाऊ तलवार पाई। उसका डर मिटाने के लिये प्रति दिन रंगा-रंग की हर प्रकार की कृपाएँ होती रहीं। १० वें वर्ष में उसे पाँच हज़ारी, ५००० सवार का मन्सब मिला और देश जाने की छुट्टी भी मिल गई। कुँअर कर्ण के पुत्र जगतसिंह ने दरबार में आकर खिलअत पहिना और फिर हरदास झाला के साथ देश लौट गया। ११ वें वर्ष कुँअर कर्ण फिर दरबार में आया और पुनः अपने राज्य पर नियुक्त हुआ।

जब सुलतान खुर्रम दक्षिण की चढ़ाई पर नियत हुआ, तब राणा अमरसिंह और कुँअर कर्ण ने बादशाहज़ादे से भेंट कर अपने पौत्र को डेढ़ हज़ार सवारों के सहित साथ कर दिया। १३ वें वर्ष (सं० १६७४ वि०, सन् १६१८ ई०) में जब जहाँगीर गुजरात से आगरे की ओर जाते समय राणा के राज्य के पास

पहुँचा, तव कुँअर कर्ण ने उससे भेंट की। १४ वें वर्ष राणा अमर-सिंह की मृत्यु हो गई। जहाँगीर ने कुँअर कर्ण को राणा को पदवी, खिलअत, घोड़ा और हाथी भेजा। १८ वें वर्ष राणा कर्ण का पुत्र जगतसिंह दरबार में आया और इसके अनंतर उसने अपने राज्य को लौट जाने को छुट्टी पाई। उस समय (कि जब शाह-जहाँ पिता की मृत्यु पर जुनेर से आगरे जाते समय इसके राज्य के पास पहुँचा) राणा कर्ण ने भेंट करके कृपाएँ पाईं और उस राज्य पर बहाल रहे। शाहजहाँ के प्रथम वर्ष सन् १०३८ हि० (सं० १६८४ वि०) में राणा कर्ण की मृत्यु हुई। उसके पुत्र जगतसिंह को राणा की पदवी, पाँच-हज़ारी, ५००० सवार का मन्सब और उसी का राज्य (जो उसके पूर्वजों का था) जागीर में मिला। खानेजहाँ लोदी की चढ़ाई में (जब बादशाह दक्षिण की ओर चले) राणा जगतसिंह के चाचा अर्जुन की अधीनता में पाँच सौ सवार साथ थे। कभी कभी उसके उत्तरा-धिकारी राजकुमार भी जाते थे। निश्चित हुआ था कि उसके पाँच सौ सवार किसी विश्वासपात्र को अधीनता में बराबर दक्षिण में रहा करें। दरबार से रत्न, खिलअत, हाथी और घोड़े उसे मिला करते थे। २६ वें वर्ष में मृत्यु हुई और राजकुमार को राणा राजसिंह की पदवी, पाँच-हज़ारी, ५००० सवार का मन्सब और जागीर में उन्हीं का राज्य मिला।

राणा जगतसिंह के जीवन में बादशाह को समाचार मिला (कि उसने चित्तौड़ दुर्ग की मरम्मत करना आरंभ किया है,

यद्यपि पहले यह निश्चित हो चुका था कि पूर्वोक्त दुर्ग की कुछ भी मरम्मत नहीं की जायगी) तब इसका पता लगाने को एक मनुष्य नियत किया गया। उससे पता लगने पर कि सात फाटकों में से, जो नष्ट हो गए थे, दो एक को दृढ़ कराया है, २८ वें वर्ष में सादुल्ला ख़ाँ पूर्वोक्त दुर्ग को ढहाने और उसके अधीनस्थ भूमि पर अधिकार करने के लिये नियत हुआ और कुछ परगनों में बादशाही थाने बैठ गए। राणा राजसिंह ने सुलतान दारा शिकोह से भेंट कर प्रार्थना की। अपने टीकाई राजकुमार को भेजने और चित्तौड़ दुर्ग में जो कुछ मरम्मत हुई थी, उसे गिरा देने की बादशाही आज्ञा मान कर प्रार्थना की कि मेरा राज्य बादशाही सेना से खाली करा दिया जाय। तब सादुल्ला ख़ाँ दुर्ग चित्तौड़ छोड़ कर लौट गया। राणा ने अपने बड़े पुत्र को, जो छः वर्ष का था, विश्वासपात्रों के साथ भेंट सहित दरबार (जो उस समय अजमेर में था) में भेजा। बादशाह ने सेवा में आने पर ख़िलअत, रत्न, हाथी और घोड़ा दिया और ज्ञात होने पर (कि राणा ने अभी उसका नाम नहीं रखा है) सुभागसिंह[1] नाम रखा। विदा करते समय कहला दिया कि अपने पुत्र को पाँच सौ सवारों के साथ दक्षिण भेजे।

जब औरंगज़ेब बादशाह हुआ, तब राणा ख़िलअत पाकर सम्मानित हुआ। २२ वें वर्ष (जब बादशाह अजमेर में थे)

---

१. दूसरी प्रति में सुहागसिंह है।

राणा राजसिंह ने अपने पुत्र कुअर जयसिंह को कुशल प्रश्न के लिये भेजा। कुछ दिनों के अनंतर खिलअत, जड़ाऊ सिरपेंच, घोड़ा और हाथी पाकर उसे देश जाने की छुट्टी मिली। उसी वर्ष जब बादशाह का जज़िया लेने का विचार हुआ, तब राजपूतों ने बुरा मान कर और शंका से विद्रोह किया। २३ वें वर्ष राणा का दमन करने के लिये बादशाह अजमेर से उदयपुर चले। जब राणा उदयपुर को खाली करके भाग गए, तब हुसेन अली खां[1] उनका पीछा करने के लिये नियत हुआ। इसके अनंतर मुहम्मद आज़म शाह और सुलतान बेदार बख्त नियत किए गए। इसके अनंतर (कि राणा के राज्य पर विजयी सेना का अधिकार हो गया था) वह अपने राज्य से निकल कर इधर उधर मारे फिरते थे। २४ वें वर्ष शाहज़ादे से प्रार्थना करके राणा ने मांडल और बिदनौर परगने ज़ज़िया के बदले बादशाह को दे दिए। प्रार्थना मान ली जाने पर राजसमुद्र तालाब पर शाहज़ादे से भेंट की और राणा की पदवी और पाँच-हज़ारी, ५००० सवार का मन्सब बहाल रहा। उसी वर्ष इनकी मृत्यु हुई। बादशाह ने शोक का खिलअत राणा जयसिंह को भेजा था।

---

१. ठीक नाम हसन अली खाँ था।

१—किशुनसिंह राठौर[1]

यह प्रसिद्ध राजा सूरजसिंह राठौर का सगा भाई और शाहजहाँ की माता का सौतेला भाई था। इस संबंध के कारण जहाँगीर के समय अच्छे पद पर नियुक्त था और अपने बड़े भाई से (जो साम्राज्य का स्तंभ और सेना तथा वैभव से युक्त था) शत्रुता तथा द्वेष रखता था। दैवयोग से गोविंददास भाटी ने (जो राजा सूरजसिंह का प्रधान मंत्री तथा उसका राज्य-स्तंभ था) राजा के भतीजे गोपालदास को किसी झगड़े में मार डाला। राजा उसे बहुत चाहता था, अतः उससे (गोविन्ददास से) खून का बदला लेना अस्वीकृत कर दिया। किशुनसिंह इस बात से क्रुद्ध होकर इससे भतीजे का बदला लेने के लिए घात में लगे और वे शीघ्र ही अवसर भी पा गए। जहाँगीर के राज्य के १०वें वर्ष सन् १०२४ हि० में (जब बादशाही सेना अजमेर में

---

१. मारवाड़ नरेश उदयसिंह मोटा राजा के पुत्र थे, जिनकी पुत्री भानुमती का विवाह सलीम से हुआ था। इसी राजकन्या का पुत्र खुर्रम अर्थात् शाहजहाँ था जिस संबंध से यह जहाँगीर का साला और शाहजहाँ का मामा लगता था।

टिकी हुई थी) उस दिन[1] (जिस दिन जहाँगीर भक्कर[2] के तालाब पर सैर के लिये ठहरे हुए थे) किशुनसिंह सवेरा होने के पहले ही उसे मार डालने की इच्छा से उस बाग में (जिसमें राजा सूरजसिंह उतरे हुए थे) पहुँचा और अपने कुछ सैनिकों को, जो साहसी और अनुभवी थे, पैदल गोविंददास के घर भेजा। उन्होंने कुछ मनुष्यों को (जो रक्षार्थ घर के चारों ओर थे) तलवार से मारा। इस मार पीट में गोविंददास[3] जाग कर घर के एक ओर से निःशंक निकल आए। किशुनसिंह के मनुष्यों ने (जो उसी का पता लगाने में व्यस्त थे) उसे देखते ही मार डाला। किशुनसिंह (जिसे अभी यह समाचार नहीं मिला था) भी क्रोध तथा घबराहट में पैदल ही उस घर में चला आया। मनुष्यों के बहुत मना करने पर भी नहीं माना। उसी समय राजा सूरजसिंह भी जाग कर तलवार हाथ में ले घर से निकले और अपने मनुष्यों को दमन करने के लिये कहा। उस गड़बड़ी

---

१. इस घटना की तिथि सं० १६७२ वि० की जेठ व० ८ या ६ बतलाई जाती है।

२. भक्कर न होकर इसे पुष्कर होना चाहिए। प्रतिलिपि-कर्ताओं के प्रमाद से यह भक्कर हो गया है।

३. यह गोविंददास भाटी बहुत योग्य मंत्री, बुद्धिमान् तथा राज्य का शुभचिंतक था। इसने राज्य का प्रबंध विशेष रूप से सुधारा था। मुं० देवीप्रसाद जी ने इसकी एक छोटी जीवनी भी प्रकाशित कराई है।

में किशुनसिंह कुछ साथियों सहित मारा गया[1] और बचे हुए लोग द्वार तक पहुँच जाने पर बाहर निकल गए। राजा के सैनिकों ने पीछा किया और बादशाही झरोखे के सामने युद्ध हुआ। आबदार तलवार जिसके सिर पर बैठती, कमर तक उतर जाती; और हिंदुस्तानी फौलाद के खड्ग जिसकी कमर पर पड़ते, साफ़ दो टुकड़े कर देते। दोनों पक्षों के अड़सठ राजपूत उस घोर युद्ध में मारे गए। कहते हैं कि उसी दिन से सिरोही की तलवार पर विश्वास हुआ और दूसरों को भी उसकी इच्छा हुई। जहाँगीर ने इस घटना के बाद उसके पुत्रों[2] को मन्सब देकर किशुनगढ़ को उनके लिये बहाल रखा।

---

१. यह भाग निकला था, पर पिता की आज्ञा से महाराज कुमार गजसिंह ने पीछा कर इसे मार डाला था।

२. इसके चार पुत्रों का नाम साहसमल्ल, जगमल्ल, भारमल्ल और हरिसिंह था जिनमें प्रथम, द्वितीय तथा चतुर्थ क्रमशः किशनगढ़ की गद्दी पर बैठे; पर तीनों की बिना उत्तराधिकारी छोड़े मृत्यु हो जाने पर हरिसिंह के पुत्र रूपसिंह गद्दी पर बैठे थे।

१०—कीरतसिंह

यह मिरज़ा राजा जयसिंह के द्वितीय पुत्र थे। (जब विद्रोही मेवातियों ने कामा पहाड़ी और खोह मजाहिद में, जो आगरा और दिल्ली के बीच में हैं, मार्ग के कटंक होकर आसपास के रहनेवालों को लूट मार से कष्ट पहुँचाया, परगने उजाड़ हो गए और जागीरदारों को इससे हानि पहुँची तब) शाहजहाँ के राज्य के २३वें वर्ष (सन् १६४९-५० ई०) के अंत में कीरतसिंह को आठ सदी,८०० सवारों का मन्सब और पूर्वोक्त महाल जागीर में मिला और मिरज़ा राजा को आज्ञा हुई कि उन दंडनीय विद्रोहियों को जड़ से नष्ट कर डालने में कोई प्रयत्न न उठा रखें तथा अपने मनुष्यों को लाकर वहाँ बसावें। राजा अपने देश को जाकर चार हज़ार सवार तथा छः हज़ार बंदूकची या धनुर्धारी लेकर उस महाल में पहुँचे और जंगल काटना आरंभ किया। बहुत से विद्रोही मारे गए, (लुटेरों का) वह झुंड नष्ट-प्राय हो गया और बहुत से पशु हाथ आए। बचे हुए भी तितर बितिर हो गए। राजा के मन्सब के हज़ार सवार दो अस्पः सेह अस्पः किए गए और परगना हाल कस्यान (जिसको तहसील अस्सी लाख दाम थी) वेतन के रूप में दिया गया। कीरतसिंह के मन्सब में भी वृद्धि हुई और मेवात की फौजदारी मिली।

(बुद्धिमान मिरज़ा राजा के संबंध से उसकी भी बुद्धि तीव्र थी और अच्छी शिक्षा प्राप्त होने से बुद्धि रूपी बाग़ में उसकी योग्यता का वृक्ष बहुत बढ़ा है) थोड़े ही समय में अपनी दूरदर्शिता तथा कार्यदक्षता का बादशाह को विश्वास करा दिया। २८वें वर्ष (जब बादशाही सेना अजमेर में पहुँची तब) उसका मन्सब एक हज़ारी, ९०० सवार का करके दिल्ली की अध्यक्षता सौंप कर विदा किया। (जब ३०वें वर्ष के अंत में सरकार सहारनपुर के अंतर्गत परगना मुजफ्फ़राबाद के पास फैज़ाबाद अर्थात् मुखलिसपुर की इमारतें, जो जून नदी के किनारे पर उत्तरी पहाड़ के नीचे थीं—जो सिरमौर पहाड़ के पास है—तैयार होने पर आईं और उसे देखने के लिये—जो दिल्ली से सैंतालीस कोस पर है—बादशाह ने विचार किया तब) कीरतसिंह दिल्ली के रक्षार्थ बाहर नियुक्त किए गए। (जब इनके पिता सुलेमान शिकोह का साथ छोड़ कर औरंगज़ेब से मिलने चले, तब) कीरतसिंह (जो दारा शिकोह के युद्ध के अनंतर देश चले गए थे) पिता से मिल कर साथ दरबार गए और झंडा पाकर सम्मानित हुए। यह मेवात के विद्रोहियों का दमन करने के लिये नियुक्त हुए और कुछ दिन दिल्ली के पास फौजदार रहे। फिर पिता के साथ शिवाजी की चढ़ाई पर गए जहाँ अच्छा प्रयत्न किया और तीन हज़ार सैनिकों के साथ दुर्ग पुरंदर के सामने मोरचा बाँधा था।

(जब शिवाजी ने अधीनता स्वीकृत कर ली और उस जाति के सरदारों को बादशाही कृपा प्राप्त हुई तब) कीरतसिंह

का मन्सब ढाई हजारी, २००० सवार का हो गया। इसके अनंतर (जब मिरज़ा राजा बीजापुर प्रांत की चढ़ाई पर चले और मध्य की सेना का प्रबंध कीरतसिंह को सौंपा तब) ये उन युद्धों में बीजापुर की सेना से बड़ी वीरता से लड़े। (जब मिरज़ा राजा की बुरहानपुर में मृत्यु[1] हो गई तब) बादशाह ने इनका मन्सब बढ़ा कर तीन हज़ारी, २५०० सवार का कर दिया और डंका भी देकर इन पर विश्वास बढ़ाया। फिर दक्षिण में सहायता के लिये भेजे जाने पर वहाँ बहुत दिन रहे। १६वें वर्ष सन् १०८४ हि०[2] में इनकी मृत्यु हुई।

---

१. टाड कृत राजस्थान भाग २, पृ० १२०७ में लिखा है कि मिरजा राजा जयसिंह के अत्यधिक बढ़ते हुए प्रताप से डरकर औरंगजेब ने इन्हीं कीरतसिंह को बड़े पुत्र रामसिंह के बदले में आमेर का राज्य देने का लोभ देकर उन्हें मार डालने के लिये उत्साहित किया। इन्होंने सन् १६६७ ई० में अफ़ीम में विष मिलाकर पिता को दे दिया और स्वयं पुरस्कार पाने के लिये बादशाह के पास गए। परन्तु रामसिंह गद्दी पर बैठ चुके थे, इससे इन्हें केवल मन्सब बढ़ाकर पुरस्कृत किया गया था।

२. सन् १६७३ ई०।

११—राजा किशन (कृष्ण) सिंह भदोरिया

आगरे से तीन कोस पर एक स्थान भदावर है जहाँ के रहने-वाले इस पदवी से प्रसिद्ध हैं। यह जाति वीर और साहसी होती है। यह पहिले स्वतंत्र[१] थी। अकबर ने इनके सरदार को हाथी के पैरों के नीचे डलवा दिया, तब ये शासन में आए और नौकरी कर ली। पूर्वोक्त बादशाह के समय भदोरियों का सरदार हज़ारी मन्सबदार था। जहाँगीर के समय राजा विक्रमाजीत के साथ (जो स्वयं अब्दुल्लाखाँ के साथ राणा पर चढ़ाई करने गए थे और फिर दक्षिण पर नियत हुए थे) रहा। ११ वें वर्ष में इसकी मृत्यु हो जाने पर इसका पुत्र भोज दक्षिण से आकर बादशाही नौकर हो गया। शाहजहाँ के समय में राजा कृष्णसिंह वहाँ का सरदार था। यह पहिले वर्ष महाबतख़ाँ के साथ जुझार-सिंह की चढ़ाई पर और तीसरे वर्ष शायस्ताख़ाँ के साथ निज़ा-मुल्मुल्क दक्खिनी के राज्य पर चढ़ाई में (जिसने ख़ानेजहाँ लोदी को शरण दी थी) नियत हुआ था। छठे वर्ष दौलताबाद दुर्ग के

---

१. तारीखे-शेरशाही में लिखा है कि शेर शाह इस स्थान में अपनी सेना की एक टुकड़ी बराबर रखता था। मख़ज़ने अफ़ग़ानी में लिखा है कि बहलोल लोदी (सन् १४५१ ई० से सन् १४८६ ई० तक) के समय में भदावर का राजा स्वतंत्र था।

घेरे और विजय में अच्छी वीरता दिखलाई। ९वें वर्ष खानेज़माँ के साथ साहू भोंसला का दमन करने गया। १७वें वर्ष १०५२ हि० (सन् १६४३ ई०) में इसकी मृत्यु हो गई। एक दासीपुत्र के सिवा दूसरा कोई पुत्र नहीं था, इससे उसके चाचा के पौत्र वदनसिंह[1] को खिलअत के साथ एक हज़ारी, १००० सवार का मन्सब और राजा की पदवी दी। २१वें वर्ष में यह एक दिन दरबार में गया था। एक मस्त हाथी इसकी ओर दौड़ा और उसने एक अंधे को दोनों दाँतों के नीचे दबा लिया। राजा ने आवेश में आकर उस हाथी पर जमधर चलाया और उसे छोड़ देने के कारण उसे कुछ चोट नहीं आई। वह मनुष्य भी दो दाँतों के बीच आ जाने से सुरक्षित रहा। राजा को खिलअत दिया गया और ढाई लाख रुपया भेंट का (जिसे राज्य मिलते समय इसने देना स्वीकार किया था) क्षमा कर दिया गया। २२वें वर्ष में इसका मन्सब पाँच-सदी बढ़ाकर मुहम्मद औरंगज़ेब बहादुर के साथ कंधार पर भेजा। २५वें वर्ष में फिर उसी शाहज़ादे के साथ और २६वें वर्ष में मुहम्मद दाराशिकोह के साथ उसी चढ़ाई पर गया। २७वें वर्ष में वहीं से यमलोक चला गया। उसके पुत्र महासिंह को हज़ारी, ६०० सवार का मन्सब, राजा की पदवी और घोड़ा मिला। २८वें वर्ष में यह काबुल गया। ३१वें वर्ष में इसका मन्सब हज़ारी,

१. इन्हीं वदनसिंह ने वटेश्वर ग्राम में वटेश्वरनाथ का मंदिर सं० १७०३ वि० में निर्माण कराया था। उसी समय से इस ग्राम की अधिक उन्नति हुई और अनेक महल तथा मंदिर आदि बनते गए।

१००० सवार का हो गया। इसके अनंतर (जब औरंगज़ेब विजयी हुआ और दाराशिकोह परास्त हुआ तब) यह पहिले ही वर्ष में आलमगीर की सेवा में पहुँच कर शुभकरण बुंदेले के साथ चंपत बुंदेले पर भेजा गया। १०वें वर्ष (सन् १६६७ ई०) में कामिलखाँ के साथ यूसुफ़ज़ाई अफ़ग़ानों को दंड देने में वीरता दिखलाई। इसके उपलक्ष में ५०० सवार दो अस्पः सेह अस्पः कर दिए गए। २६वें वर्ष में यह मर गया। इसका पुत्र उदयसिंह[1] (जो पहिले ही से बादशाही सेवा में था और मिरज़ा राजा जयसिंह के साथ दक्षिण में नियत था) २४वें वर्ष में चित्तौड़ का दुर्गाध्यक्ष नियुक्त हुआ था। अपने पिता की मृत्यु पर यह राजा हुआ।

---

१. यद्यपि इस ग्रन्थ में मुहम्मद शाह तक के इतिहास का समावेश है, पर इस वंश का वृत्तांत सन् १६६१ ई० ही तक का दिया है, जब उदयसिंह गद्दी पर बैठा था। इसके अनंतर के तीन राजाओं का उल्लेख और मिलता है। उदयसिंह के बाद कल्याणसिंह हुए जिन्होंने बाह बसाया था। यहाँ इन्होंने एक महल और बाग़ भी बनवाया था। सन् १७२७ ई० में गोपालसिंह ने बुरहानुलमुल्क के साथ शाहाबाद कन्नौज के पास छाछंदी के दुर्गाध्यक्ष हिंदूसिंह चंदेला पर चढ़ाई की और उसे धोखा देकर दुर्ग से बाहर निकाल कर उस पर अधिकार कर लिया था। इस कपटाचरण का उसे शीघ्र ही फल मिल गया और उसकी मृत्यु हो गई। (इलि० डा० जि० ८, पृ० ४६) इसके बाद अमृतसिंह राजा हुए थे जिनपर सन् १७३३ ई० में मराठों ने चढ़ाई की थी। इनका ऐश्वर्य इतना बढ़ गया था कि इन्होंने मराठों का सामना करने के लिये सात सहस्र सवार, बीस सहस्र पैदल तथा ४९ हाथी इकट्ठे किए थे। अंत में कर देकर इन्होंने अपना पीछा छुड़ाया था।

१२—राजा गजसिंह

यह राजा सूरजसिंह राठौर के पुत्र थे। जहाँगीर के राज्य के दसवें वर्ष में यह पिता के साथ बादशाही सेवा में आए और उसकी मृत्यु पर १४वें वर्ष में तीन हज़ारी, २००० सवार का मन्सब और राजा की पदवी पाई[१]। बराबर उन्नति होने से ऊँचे पद तक पहुँच गए। १८वें वर्ष में (जब जहाँगीर और शाहजहाँ में युद्ध की तैयारी हुई और सुलतान पर्वेज़ महाबत ख़ाँ आदि के साथ दक्षिण पर नियुक्त हुआ तब) यह भी शाहज़ादे के साथ नियुक्त हुए। जहाँगीर के राज्य-काल का अंतिम भाग दक्षिण में व्यतीत कर ख़ानेजहाँ लोदी के साथ (जिसने नर्मदा पार करके मालवा प्रांत के कुछ महालों पर अधिकार कर लिया था) उस प्रांत में पहुँचे[२]। जब शाहजहाँ का प्रताप

१. इनका जन्म कार्तिक शुक्ल ८ सं० १६५२ वि० को हुआ। चौबीस वर्ष की अवस्था में सं० १६७६ कुँआर सु० ६ को यह गद्दी पर बैठे थे।

२. जहाँगीर के राज्य के अंतिम वर्ष सन् १६२७ ई० में खानजहाँ लोदी ने निज़ामुल्मुल्क से घूस लेकर बालाघाट प्रांत उसे सौंप दिया था और सेना सहित मालवा आकर उस प्रांत के कुछ भाग पर अधिकार कर बुरहानपुर लौट गया था।

चढ़ा[1], तब ये खानेजहाँ से अलग होकर स्वदेश लौट गए। बादशाह से पद की प्राप्ति की इच्छा से जुलूस के पहिले वर्ष राजधानी आगरे में यह सेवा में पहुँचे। इनके पिता बादशाह के मामा[2] होते थे, इससे कृपा करके इन्हें अच्छा खिलअत, फूल कटारः सहित जड़ाऊ जमधर, जड़ाऊ तलवार, पाँच हजारी ५००० सवार के मन्सब की निश्चिति[3] (जो जहाँगीर के समय से थी), झंडा, डंका, सोने की जीन सहित बादशाही घुड़साल का एक घोड़ा और एक बादशाही हाथी प्रदान किया। तीसरे वर्ष शाहजहाँ ने खानेजहाँ लोदी का दमन करने (जिसने विद्रोह करके भाग कर अपने को निजामुल्मुल्क बहरी[4] के पास पहुँचाया था और उसे अपना रक्षक माना था) और उसी दोष में निजामुल्मुल्क को दंड देकर उसके राज्य को अधिकृत करने का विचार किया और राजधानी से दक्षिण को चला। तीन सेनाएँ

---

१. जब भाई-भतीजों को मार कर शाहजहाँ गद्दी पर बैठा अर्थात् बादशाह हुआ।

२. शूरसिंह अर्थात् सूरजसिंह की बहिन मानमती का पुत्र खुर्रम ही शाहजहाँ के नाम से गद्दी पर बैठा था, इससे गजसिंह उसके ममेरे भाई हुए।

३. जहाँगीर ने यह मन्सब राजा गजसिंह को सन् १६२३ ई० में देकर पर्वेज के साथ खुर्रम (शाहजहाँ) को दबाने के लिये भेजा था।

४. बहरी का अर्थ मिस्टर बेवरिज ने 'चिड़ियों का अहेरी' किया है; पर यहाँ 'समुद्री' से तात्पर्य है, क्योंकि इसके राज्य में कई बंदर थे तथा समुद्री व्यापार होता था।

तीन बड़े सरदारों के सेनापतित्व में नियत हुईं जिनमें एक पूर्वोक्त राजा की अध्यक्षता में दक्षिण के सूबेदार आज़मख़ाँ के साथ बिदा हुई कि जाकर निज़ामुलमुल्क के राज्य को घोड़ों के सुम से ध्वंस करे। अन्य दोनों सेनाएँ ख़ानेजहाँ को दंड देने में कुछ उठ न रखें। इसके अनंतर ४ थे वर्ष में यमीनुद्दौला जब आदिलख़ाँ को जगाने के लिये नियत हुआ, तब यह हरावल में नियुक्त हुए। वहाँ से लौटने पर अपने देश गए और छठे वर्ष दरबार पहुँचे[1]। दूसरी बार सोने की ज़ीन सहित घोड़ा और अच्छे खिलअत के साथ १०वें वर्ष गृह जाने की छुट्टी मिली। ११वें वर्ष (सन् १६३७ ई०) में अपने पुत्र जसंवतसिंह के साथ देश से आकर भेंट की। उसी वर्ष के अंत में २ मुहर्रम सन् १०४८ हि० को संसार देखनेवाले नेत्रों को जीवन के बगीचे के दृश्यों की ओर से बन्द कर लिया[2]। संबंध, उच्च पद और सेना की अधिकता से वे दूसरे राजाओं से अधिक प्रतिष्ठित थे। राठौर जाति की चाल दूसरे राजपूतों से भिन्न है। (अर्थात् जो पुत्र[3] उस माता से होता है, जिस पर पति का अधिक प्रेम होता है, वही पिता का उत्तराधिकारी होता है, चाहे

१. सन् १६३२ ई० में बादशाह पंजाब गए। वहीं इन्होंने अपने बड़े पुत्र अमरसिंह को शाहजहाँ के सामने पेश कर नागौर का परगना दिलवाया था।

२. आगरे ही में सं० १६९५ की ज्येष्ठ शुक्ल ३ को इनका स्वर्गवास हुआ जहाँ जमुनाजी के किनारे इनकी छतरी बनी हुई है।

३. इनके तीन पुत्र अमरसिंह, जसवंतसिंह और अचलदास थे।

वह दूसरों से छोटा भी हो।) आरम्भ में राठौर वंशीय सरदार राव कहलाते थे। इसके अनंतर (जब उदयसिंह ने अकबर की सेवा में राजा की पदवी पाई तब) निश्चित हुआ कि इस जाति के दूसरे सरदार को राव की पदवी दी जाय। (तब से ऐसा होने लगा कि) उदयसिंह की मृत्यु पर सूरजसिंह, जो दूसरे भाइयों से छोटे थे, राजा की पदवी से सम्मानित हुए थे। इसलिये बादशाह ने जसवन्तसिंह को उनके पिता के इच्छानुकूल खिलअत, जड़ाऊ जमधर, चार हज़ारी, ४००० सवार का मन्सब और राजा की पदवी दी और डंका, निशान, सुनहली ज़ीन का घोड़ा और अपना एक हाथी उपहार दिया। जसवन्तसिंह के बड़े भाई अमर-सिंह को (जो आज्ञानुसार शाहज़ादा सुलतान शुजाअ के साथ काबुल गया था) एक हज़ार सवार बढ़ाकर तीन हज़ार सवार का मन्सब और राव की पदवी दी। दोनों का वृत्तांत अलग अलग दिया गया है[१]।

---

१. इन दोनों की जीवनियाँ शीर्षक ४ और २५ में दी गई हैं।

१३–राजा गोपालसिंह गौड़

इसके पूर्वज इलाहाबाद प्रान्त के अन्दरखो[१] के राजा थे और ओड़छा-नरेशों की सेवा में रहते थे। इसके दादा बिहारसिंह ने औरंगज़ेब के समय विद्रोह मचाया था, इसलिये मालवा प्रांत के अधिकारी मुल्लूकचंद ने (जो मुहम्मद आज़म शाह की ओर से वहाँ नियुक्त था) इसका सिर काटकर भेज दिया। इसके अनन्तर इसके पिता भगवंतसिंह भी, जो बिहारसिंह के पुत्र थे, मुल्लूकचंद के साथ युद्ध में काम आए। इसके वंशवालों ने अपना स्थान छोड़ दिया। इसी के पुत्र गोपालसिंह थे। यह (जब निज़ामुलमुल्क आसफ़जाह उत्तरी भारत से लौट कर मुबारिज़ ख़ाँ के साथ युद्ध[२] करने जा रहे थे, तब) उन्हीं के साथ दक्षिण गया और युद्ध के दिन बड़ी वीरता दिखलाई। विजय के अनंतर योग्य मन्सब और जागीर पाई तथा बीदर प्रांत के

---

१. इस स्थान का कुछ पता नहीं चलता।

२. सन् १६२२ ई० में निज़ामुलमुल्क आसफजाह दूसरी बार वज़ीर नियत हुए थे; पर दरबार के षड़यंत्र से उकता कर दक्षिण लौट गए। वहाँ मुबारिज ख़ाँ को परास्त कर अपनी सूबेदारी पर अधिकार किया था।

दुर्ग कंधार[1] का (जो दूर पर था और अपनी दृढ़ता के लिये प्रसिद्ध था और शाहजहाँ के समय ख़ानदौराँ ने जिसे विजय किया था।) अध्यक्ष बनाया गया। उस समय से लिखने के समय तक यह दुर्ग उसी के वंश के अधिकार में रहा। सन् ११६२ हि०, १७४९ ई० में यह मर गया।

इसकी मृत्यु पर, यद्यपि सब से बड़ा पुत्र दलपतसिंह इसके जीवन-काल ही में मर गया था, अन्य पुत्रों के (जिनमें कुँअर विष्णुसिंह सबसे बड़ा था) रहते हुए भी इसके इच्छानुसार दुर्ग की अध्यक्षता और पैतृक जागीर पर द्वितीय पुत्र अजयचंद नियुक्त हुआ। तीसरा पुत्र नृपतिसिंह (दोनों सहोदर भाई थे) भी उसमें साथी था। पहले ने अपने पिता की पदवी पाने से प्रसिद्ध होकर अच्छी उन्नति की। युद्ध[2] में (जो रघुनाथराव से गोदावरी के किनारे हुआ था) यह निज़ामुद्दौला आसफ़जाह के सेनाध्यक्ष के साथ था। दृढ़ता से डटे रहने के कारण यह

---

१. कंधार—निज़ाम राज्य के अंतर्गत गोदावरी की सहायक नदी मान्नदा के तट पर बसा है। यहाँ एक दुर्ग भी है। यह इस समय इस राज्य के बीदर विभाग के अंतर्गत न होकर नानदेर विभाग में है।

२. हैदराबाद के नवाब निज़ाम अली ने पानीपत के तृतीय युद्ध के अनंतर मराठों को निर्बल देख कर सन् १७६३ ई० में पूना पर चढ़ाई कर उसे लूट लिया; और जब लूट सहित लौटते हुए गोदावरी के किनारे पहुँचे, तब रघुनाथ राव ने उस पर धावा किया। कुछ सेना पार उतर चुकी थी और जो बची हुई थी, उसका अधिकांश मराठों ने नष्ट कर दिया था। इसके बाद दोनों पक्षों में संधि हो गई।

मारा गया। इसके बड़े पुत्र को पैतृक दुर्ग की अध्यक्षता मिली। इस ग्रंथ के लिखते समय इसकी पदवी राजा गोपालसिंह हिंदूपत महेंद्र थी। दूसरे दो पुत्र राजा तेजसिंह और राजा पद्मसिंह ने मन्सब और जागीर पाई तथा हैदराबाद प्रांत के अंतर्गत दुर्ग कौलास[1] के अध्यक्ष नियुक्त हुए। दूसरे ने धीरे धीरे अच्छा मन्सब और महाराज की पदवी प्राप्त की। कुछ दिन बीर[2] का शासक रहा जिसके बाद बीदर प्रांत के नानदेर[3] का हाकिम और बरार प्रांत के माहोर[4] दुर्ग का अध्यक्ष नियत हुआ। दो तीन वर्ष बाद वह मर गया। इसके पुत्र कुँअर दुर्जनसिंह और जोधसिंह को योग्य मन्सब, जागीर और पैतृक ताल्लुका मिला तथा वे सेवा में रहा करते थे।

---

१. कौलास—यह उसी राज्य के इंदुपुर वर्तमान इंदौर तथा बीदर विभागों की सीमा पर बीदर नगर के ठीक उत्तर दस मील पर है। यहाँ भी एक दुर्ग है।

२. बीर या भीर गोदावरी की सहायक नदी सिंधफना की सहायक पद्स्वा नदी पर है। यह निज़ाम राज्य में अहमदनगर से ठीक पूर्व लगभग चैंसठ मील पर है।

३. नानदेर—निज़ाम राज्य के नानदेर विभाग का प्रधान नगर गोदावरी के तट पर बसा है।

४. माहोर—यह दुर्ग पेनगंगा के दाएँ तट पर सिरपुर टांडोर विभाग में बरार की सीमा पर बना है। ७८° प १९°८′ उ० अक्षांश पर स्थित है।

१४—राय गौरधन सूरजधज[१]

यह गंगा जी के तटस्थ खारी[२] का रहनेवाला था। कहते हैं कि आरंभ में कचहरी के द्वार पर बैठ कर नक़ल उतारा करता था और तीन चार पैसे प्रति दिन कमा लेता था। इसकी इच्छा एक पीतल की दावात लेने की हुई थी, पर वह नहीं ले सका। कंपिला बटाली के रहनेवाले हरकरन के साथ नौकरी के लिये ख्वाजः अबुलहसन तुरबती[३] के पास गया, जो उस समय दीवान था।

---

१. गौरधन शब्द गोवर्धन का और सूरजधज सूर्य्यध्वज का अपभ्रंश है। सूर्य्यध्वज कायस्थों की एक उपजाति विशेष है। कायस्थों की बारह शाखाओं में से यह भी एक है।

२. खारी नाम शुद्ध नहीं है, खेरा होना चाहिए। एटा ज़िले में तीन खेरा हैं। नुह खेरा और खेरा कुंडलपुर पास पास तहसील जलेसर में हैं तथा अतरांजी खेरा एटा तहसील में है। इन तीनों में से किस से तात्पर्य है, यह स्पष्ट नहीं हो सका। कंपिला फर्रुख़ाबाद ज़िले की कायमगंज तहसील में है और यह एक प्राचीन स्थान है जो राजा द्रुपद की राजधानी कही जाती है।

३. ख्वाजा अबुलहसन तुर्बती रुकुस्सल्तनत अकबर के समय दक्षिण का दीवान हुआ। जहाँगीर ने इसे दक्षिण से बुला लिया और कई पदों पर रहने के अनन्तर सन् १६१३ ई० में यह मीर बख्शी बनाया गया। एतमादुद्दौला की मृत्यु पर ख्वाजा पाँचहजारी पाँच हजार सवार का

उसने देख कर कहा कि हरकरन हिसाब रख सकता है, पर चोर मालूम होता है और गौरधन मूर्ख है। पहिले का तीस रुपया और दूसरे का पच्चीस रुपया महीना कर दिया। जब एतमादुद्दौला दीवान हुए, तब गौरधन को पचास रुपए महीने पर अपने नौकरों का बख़्शी बना दिया। इसके अनंतर राय की पदवी मिली और दीवान एतमादुद्दौला के यहाँ से बादशाही नौकरी में आ गया। प्रतिदिन विश्वास बढ़ने लगा और धीरे धीरे यह कुल भारत साम्राज्य के कार्य्यों का केंद्र हो गया। यहाँ तक कि एक समय खानखानाँ सिपहसालार[1] इसके घर पर जाकर इसका प्रार्थी हुआ था।

मन्सबदार और मुख्य दीवान नियत हुआ। यह सन् १६२४ ई० में काबुल का सूबेदार हुआ। महाबत ख़ाँ के विद्रोह के समय नूरजहाँ की सेना के साथ उस पर आक्रमण करने के समय नदी पार करने में डूब चुका था, पर बच गया। शाहजहाँ के समय इसे छः हज़ारी, छः हज़ार सवार का मंसब मिला। सन् १६२९ ई० में यह खानेजहाँ लोदी के पीछे भेजा गया और जब शाहजहाँ बुरहानपुर पहुँचा, तब इन्हें नसीरी ख़ाँ की सहायता को कंधार भेजा। पर रास्ते में विजय का समाचार सुन कर लौट आया और पातर में ठहरा था कि पहाड़ी नदी के बढ़ आने से इसके कंप का सर्वनाश हो गया। सन् १६३२ ई० में कास्मीर का सूबेदार बनाया गया, पर उसी वर्ष ७० वर्ष की अवस्था में मर गया। (मआसिरु० भा० १, पृ० ७३७)

१. अज़ीज़ कोका की जीवनी में इसी ग्रन्थकार ने लिखा है कि खानखानाँ मिरज़ा अब्दुर्रहीम राय गोवर्धन के गृह पर गए थे, जब वह एतमादुद्दौला का दीवान था। (मआसिरु० भाग १, पृ० ६६१)

गुजरात की यात्रा में (जब जहाँगीर समुद्र देखने के लिये चला तब) एक रात्रि गैारधन दरबार से घर आ रहा था कि एतमादुद्दौला के बख्शी शरीफुल्मुल्क के बहकाने से एक मनुष्य ने इसके हाथ पर तलवार मारी, पर कुछ ज्यादा घाव नहीं लगा। उस दिन से इसकी प्रतिष्ठा बढ़ती गई। यद्यपि एतमादुद्दौला की स्त्री असमत बेगम इससे बुरा मानती थी, पर उसने इसकी उन्नति में रुकावट नहीं डाली। एतमादुद्दौला की मृत्यु पर यह नूरजहाँ बेगम की सरकार का प्रबन्ध-कर्ता नियत हुआ। महाबत ख़ाँ के विद्रोह में (जो इस वंश का शत्रु था) यह स्वार्थ के विचार से उससे मिल गया। महाबत ख़ाँ ने अपना कुल कार्य्य इसी को सौंप दिया। गैारधन ने अकृतज्ञता और कृतघ्नता से अपने स्वामियों की बुराई की इच्छा कर उनके कोषों और गड़े हुए धनों का भेद बतला दिया और संसार के सामने अपने को बुरा बनाया। जब यह विद्रोह शांत हुआ, तब आसफ़ ख़ाँ ने इसे क़ैद में डाल दिया जहाँ कुछ दिन बाद मर गया। इसकी स्त्री इसके साथ सती हो गई और इसे संतान थी ही नहीं। अपने स्थान खारो को पक्के घेरे, बड़े महलों, सड़कों और बाज़ारों आदि से नगर बना कर उसका गैारधन नगर नाम रखा था। पुराने मकानों को नए सिरे से पक्का बनवा कर उनके स्वामियों को दे दिया और उनका कर कारीगर प्रजा के लिये छोड़ दिया। हर प्रकार के कारीगरों को बसाया। गायों, भैंसों, घोड़ियों, ऊँटनियों, बकरियों और भेड़ियों की शालाएँ गंगा के किनारे अपने स्थान के पास

विलायत (फ़ारस आदि स्थान) की चाल की बनवाई। दूध, दही और घी बहुत होता था। लाहौर के रास्ते पर सराय और बड़ा तालाब बनवाया था। मथुरा में, जो गौरधनपुर के सामने गंगा के इस पार है, एक बड़ा मंदिर बनवाया और उज्जैन में भी एक तालाब तथा मंदिर बनवाया था। अर्थात् प्रसिद्धि की खोज में इसने कुछ अच्छा काम किया और कुछ अच्छे नियम निकाले जिससे इस प्राचीन सराय (संसार) में उसका नाम बना रहे। परन्तु उसके मनहूसपन और कृतघ्नता के कारण उसके अनन्तर उसका माल आसफ़जाह की सरकार में छिन गया। तालाब का पानी सूख गया और सराएँ खँडहर हो गईं। उसका स्थान खारी सैयद शुजाअत ख़ाँ बारः को जागीर में मिला। इसके ऐश्वर्य्य और पशुओं में कुछ भी न बच गया।

(आधे शैर का भावार्थ)

न शराब का न शराबखाने ही का पता रह गया।

---

१. जहाँगीर ने अपने राज्य के १२ वें वर्ष (सन् १६१७ ई०) में गुजरात की यात्रा की थी और खंभात की खाड़ी में समुद्र की सैर भी की थी। (इलि० डा०, भा० ६, पृ० ३५४)

१५—चूड़ामन जाट

जाट[1] स्वभावतः विद्रोह करनेवाले, कठोर-हृदय तथा लूट मार करने में दत्तचित्त रहते हैं। यद्यपि वे पन्ना[2] में कृषि करने के बहाने रहते हैं तथा उन्होंने बस्तियाँ और गढ़ियाँ बनवा ली हैं, पर वे बराबर आगरे से दिल्ली प्रांत की सीमा तक लूट-मार करते रहते थे। दो बार बादशाही फौजदारों ने इन डाकुओं के हाथ

---

१. कर्नल टाड आदि इन्हें राजपूतों के ३६ वंशों के अन्तर्गत मानते हैं। राजपूतों और जाटों में कहीं कहीं विवाह सम्बन्ध भी होता है; पर कुछ स्थानों के जाटों में विधवा-विवाह तथा सगाई की प्रथा भी प्रचलित है। यदुवंशी होने से जदु या जादव शब्द से जाट की व्युत्पत्ति हुई है।

२. इस ग्रन्थ तथा मआसिरे-आलमगीरी की प्रतियों में पन्ना या पटना पाठ मिलता है; पर इस नाम का कोई स्थान इन लोगों के पुराने वासस्थान के आस पास नहीं मिलता। मआसिरे-आलमगीरी के अनुवादक लेफटिनेन्ट पर्किन्स ने इसे 'तबिया' रूप दे दिया है और मआसिरुल् उमरा के अँग्रेज़ी अनुवादक मिस्टर बेवरिज 'पन्ना' पाठ रखते हुए भी पट्टी अर्थात् पाठ ग्राम होना बतलाते हैं। यह उसी प्रकार की पढ़ने की अशुद्धि है, जिस प्रकार बघेला नरेश राजा रामचंद्र के राज्य का नाम अंग्रेज़ अनुवादक ने पन्ना पढ़ा है जो वास्तव में भट्टः या भीठा है। बुंदेलखंड के आस पास पहाड़ी स्थानों को या जहाँ बड़े बड़े टूहे हों, भीटा कहते हैं। बघेलखंड पहाड़ी देश है और फारसी तवारीखों में भट्टः नाम से ही उसका उल्लेख मिलता है। यहाँ भी उसी शब्द का प्रयोग हुआ है। ऐसे स्थानों में खेती के बहाने बसकर ये जाट दस्युओं का काम करते थे।

में पड़ कर अपने प्राण खोए। शाहजहाँ के समय मथुरा, महाबन और कामों पहाड़ी[1] का फौजदार मुर्शिद कुली खाँ[2] तुर्कमान उसी जाति की एक दृढ़ बस्ती पर आक्रमण करते समय गोली लगने से मर गया। कई बार बादशाही सेना द्वारा वे डाकू दमन किए गए तथा उन्होंने प्राण और प्रतिष्ठा भी खोई, पर पुनः कुछ दिन के अनन्तर उनमें से एक ने विद्रोही होकर राजमार्गों पर लूट-मार आरम्भ कर दी और उस जाति की सरदारी की प्रसिद्धि प्राप्त की। आलमगीर के समय गोकला[3] जाट ने लूट-मार से चारों ओर अपनी धाक जमा ली थी और सैदाबाद क़स्बे को (जो मथुरा के पास है) लूटकर जला दिया। वहाँ के प्रसिद्ध फ़ौजदार अब्दुन्नबी खाँ[4] ने मौज़ा सोरा[5] पर (जो

---

१. पाठा० 'कामाँ बिहारी' है, पर शुद्ध शब्द कामवन है जो कामों के नाम से प्रख्यात है।

२. शाहजहाँ के राज्य के ११वें वर्ष (सन् १६३७ ई०) की यह घटना है। यह युद्ध संभल के अन्तर्गत जटवाड़ में हुआ था। (बादशाहनामा भाग २, पृ० ७ और खफी खाँ भाग १ पृ० ५५२) सन् १६४७ में राजा जयसिंह भी इनका दमन करने को नियत हुए थे।

३. 'गाफ़' अक्षर पर भी एक ही मर्कज़ देने की पुरानी प्रथा से इस नाम को एक अनुवादक ने 'कोकल' बना दिया है।

४. सं० १७२५ वि० में मथुरा के फ़ौजदार अब्दुन्नबी हनरे के जाटों को दंड देने गया। उनका सरदार मारा गया, पर वह भी गोली लगने से मर गया। यह दानी पुरुष थे और इन्होंने मथुरा में एक बड़ी मसजिद बनवाई थी। (मआ०-आलम०, हिं० अनु० भाग २, पृष्ठ १४.)

५. मआ०-आलमगीरी में हनरे, होरा या बसराह पाठ मिलता है, पर यह वास्तव में महाबन परगने का सहोर स्थान है।

उन अत्याचारियों का स्थान था) १२वें वर्ष में चढ़ाई कर बहुतों को मार डाला। युद्ध में गोली खाकर वह भी मारा गया। औरंगज़ेब ने राजधानी से हसन अली खाँ[1] बहादुर को मथुरा का फ़ौजदार नियत कर बड़ी सेना और तोपखाने के साथ भेजा। उसने प्रयत्न और परिश्रम करके उस विद्रोही को उसके 'संगी' के साथ पकड़ कर दरबार भेज दिया। वे दोनों बादशाही कोप से टुकड़े टुकड़े कर डाले गए। उसके पुत्र और पुत्री[2] जवाहिर खाँ नाज़िर को पालन के लिये सौंपे गए। पुत्री का विवाह शाह कुली चेला से हुआ जो अच्छे मंसब पर था; और पुत्र फाज़िल नाम का हाफ़िज़ हुआ जिसको स्मरण शक्ति औरंगज़ेब के विचार में सबसे अधिक विश्वास योग्य थी।

जब बादशाही सेना दक्षिण के दुर्गों को विजय करने की इच्छा से उस प्रान्त में पहुँची, तब अफसरों के आलस्य से (जो आराम रूपी कॉलर में सिर को तथा निःशंकता के दामन में पैरों को लपेटे थे) इस जाति को अवसर मिल गया और उन्होंने

---

१. अब्दुन्नबी के मारे जाने पर पहिले सफशिकन खाँ मथुरा का फौजदार हुआ था; पर दूसरे वर्ष जाटों के फिर सिर उठाने पर हसन अली खाँ उन पर भेजे गए। (मआ०, आल० हिं० अनु०, भाग २, पृष्ठ १६.)

२. फारसी लिपि में दुख्तरान और दुख्तरे-आँ एक सा लिखा जायगा। पहिले का अर्थ पुत्रियाँ और दूसरे का उसकी पुत्री है। यहाँ दूसरा ही पाठ लेना चाहिए; क्योंकि इसके आगे एक ही लड़की का हाल दिया गया है।

अधीनता छोड़ कर विद्रोह कर दिया। राजा राम[1] ने अपनी सरदारी में बहुत से परगनों पर अत्याचार कर क़ाफ़िलों तथा यात्रियों को लूट लिया। क़ैद होने तथा अप्रतिष्ठा किए जाने से अच्छे लोगों का मान-भंग हुआ। वीरों का मान मिट्टी में मिल गया तथा सूबेदारों को उस विद्रोही के आगे नाक रगड़नी पड़ी। निरुपाय होकर शाहज़ाद: बेदारबख्त और ख़ानेजहाँ बहादुर ज़फ़र-जंग दक्षिण से इस कार्य पर नियुक्त हुए और इसमें बहुत प्रयत्न तथा व्यय किया। ३२ वें वर्ष के १५ रमज़ान को वह युद्धप्रिय डाकू गोली से मारा गया और वह प्रांत उसकी लूट-मार से साफ़ हो गया। उसका सिर दरबार में भेजा गया। इसके अनंतर ३३वें वर्ष में १६ जमादिउल् अव्वल सन् ११०० हि०[2] को शाहज़ादा जवाँबख़्त

१. मुन्तख़बुल् अख़बार में लिखा है कि मौज़ा सिनसिन के भज्जा जाट ने औरंगजेब के दक्षिण जाने पर अधिक उत्पात मचाया था जिस पर बेदारबख़्त और ख़ानेजहाँ दक्षिण से भेजे गए थे। सं० १७४५ वि० के युद्ध में भज्जा का तीसरा पुत्र राजाराम गोली लगने से मारा गया और दूसरे वर्ष मुगलों का सिनसिन पर अधिकार हो गया। भज्जा के तीन पुत्र थे—चूड़ामणि, वदनसिंह और राजाराम। (इलि० डाउ०, जि० ८, पृ० ३६०.) मआसिरुल्उमरा और मिस्टर अरविन कृत 'दि लेटर मुग़ल्स' में इस काल के जाट सरदार का नाम राजाराम लिखा गया है; पर दूसरी पुस्तक में यह भी उल्लिखित है कि राजाराम के बाद भज्जा का नाम सुना जाता है जो सिनसिन में रहता था। सूदन कृत सुजान-चरित में वदनसिंह के पिता का नाम भावसिंह दिया है जिसका अपभ्रष्ट रूप भज्जा हो सकता है। सुजान-चरित से वदनसिंह के एक भाई का नाम रूपासिंह भी ज्ञात होता है।

२. २६ फरवरी सन् १६८९ ई०। (मआ० आलम०, पृ० ३३४.)

की अध्यक्षता में सिनसिनी[1] दुर्ग (जो उस डाकू का वासस्थान था) काफिरों से (जो उस साहसी के सहायक थे) ले लिया गया। पर वे नष्ट नहीं किए जा सके और न पूर्णतया उनका दमन ही किया गया। बादशाह के पास इनकी लूट-मार का समाचार बराबर पहुँचता रहा[2]। ३९ वें वर्ष में बादशाह के सबसे बड़े पुत्र बहादुर शाह उन्हें दमन करने के लिए नियुक्त हुए[3]। इसके उपरांत चूड़ामन ने फिर से लूट-मार आरंभ की।

जब शाह आलम और मुहम्मद आज़म शाह युद्ध के लिये वहाँ पहुँचे, तब चूड़ामन डाकुओं को एकत्र कर पराजित पक्ष को लूटने की इच्छा से दोनों सेनाओं के पास ठहर गया। (ज्यों ही एक ओर की पराजय होती ज्ञात हुई त्योंही) ये लूटना आरंभ कर सैनिकों का सामान उठा ले गए और क्षण भर में इतना कोष, रत्न आदि लूटा जितना इनके पूर्वजों ने अपने जीवन भर में न एकत्र किया होगा[4]। इसी गड़बड़ में (जब शाह आलम

---

१. डीग और कुंभेर के बीच का एक ग्राम। ख़फ़ी ख़ाँ, भा० २, पृ० ३९४ में इसका नाम 'सानसी' लिखा है।

२. सन् १६९१ ई० में आग़र ख़ाँ काबुल से दरबार आ रहा था कि जाटों ने इसे आगरे के पास लूट लिया। यह लड़ने गया तो मारा गया। (इलि० डाउ०, भा० ७, पृ० ५३२.)

३. सन् १७०५ और सन १७०७ ई० में क्रमशः मुख़्तार ख़ाँ और रज़ा बहादुर ने भी सिनसिन पर चढ़ाई की थी, पर विफल रहे।

४. ख़फ़ी ख़ाँ, भा० २, पृ० ७७६ और इलि० डाउ०, भाग ८, पृ० ३६०।

दक्षिण से लौट कर गुरु का दमन करने के लिये अजमेर पहुँचे और) बादशाही सेना इन्हीं के निवासस्थान के पास दैवात् ठहरी, तब चूड़ामन अपने सामान आदि की रक्षा के विचार से बादशाह के सामने गया और विद्रोह के चिह्न को मुख से धो डाला। ये मुहम्मद अमीन खाँ चीन बहादुर के साथ नियुक्त हुए (जो आगे सिक्खों पर चढ़ाई करने को भेजा गया था)। इसके बाद उम्दतुलमुल्क खानखानाँ (जिन्होंने गुरु को दुर्गम पहाड़ियों के बीच बर्फीकोह[1] के पास लोहगढ़ में घेर रखा था) के साथ बहुत परिश्रम किया। दूसरा बादशाह[2] होने पर तथा उनके सशंकित होने पर ये अपने स्थान को लौट गए और अपनी पुरानी चाल पर चल कर विद्रोह तथा लूट-मार की मात्रा बहुत बढ़ा दी। लूट-मार से राजधानी तक में अशांति फैल गई थी।

फर्रुखसियर के समय राजाधिराज जयसिंह सवाई ने इन पर ससैन्य चढ़ाई की और क़ुतुबुल्मुल्क के मामा सैयद खानेजहाँ अच्छी सेना के साथ बादशाह की ओर से सहायतार्थ भेजे गए। वह विद्रोही थून दुर्ग में जा बैठा। एक वर्ष के घेरे तथा कई घोर युद्धों के अनंतर जब वह तंग आ गया, तब कुतुबुल्मुल्क से क्षमा-

---

१. ख़फ़ी ख़ाँ, भा० २, पृ० ६६९-७० में लिखा है—"शत्रु पहाड़ों में भाग कर लोहगढ़ में चले गए जो बरफी राजा का था।' खुलासुतुत्तवारीख़ लिखता है कि यह सिरमौर के राजा का एक नाम था बरफ़ी का तात्पर्य बर्फवाला है।

२. बहादुरशाह के बाद जहाँदार शाह बादशाह हुए थे।

प्रार्थी हुआ और मंसब बढ़ाने की प्रार्थना तथा कर देने के लिये प्रतिज्ञा की। बादशाह की इच्छा न रहने पर और राजा जयसिंह के विरोध करने पर भी हठ करके कुतुबुल्मुल्क ने उसे बुलाया और अपने पास स्थान दिया। निरुपाय होकर बादशाह ने उसे नौकरी में लेने की आज्ञा दे दी[1]। पर फिर द्वितीय बार दरबार में नहीं आने पाया। सैयद अब्दुल्ला खाँ की कृपा से उसे अच्छा मन्सब मिला तथा एक डाकू के पद से सरदारी की उच्च पदवी प्राप्त हुई। वे भी बारहा के सैयदों से मित्रता दृढ़ कर उनके पक्के पक्षपातियों में से हो गए। उस समय (जब अमीरुल्उमरा बादशाह को साथ लेकर दक्षिण चले और कुतुबुल्मुल्क राजधानी गए) ये अमीरुल्उमरा के साथ नियुक्त थे। इस वीर सरदार के मरे जाने पर यह कुछ दिन बादशाही सेना के साथ कपटपूर्वक रहे और इनकी इच्छा थी कि बारूद-घर में आग लगा दें या तोपखाने के बैलों को हाँक ले चलें, पर मीरे-आतिश के सुप्रबंध और सतर्कता से कुछ न कर सके। जब कुतुबुल्मुल्क युद्धार्थ पास पहुँचे, तब ये कुछ ऊँट और तीन हाथी बादशाही कैंप से लेकर उसके पास पहुँचे। युद्ध के दिन बादशाही सामान पर कड़े धावे किए और नदी का तट इन्हीं की सेना के अधिकार में था; इसलिये शत्रु या मित्र किसी को तृषा मिटाने नहीं देते थे। जो पानी के पास जाता था, मारा जाता था। मनुष्यों के एक समूह

१. इलि० डा०, जि० ७, पृ० ५२१–२ और ५२३ तथा जि० ८, पृ० ३६०–१। मुंतखिबुल्लुबाब भा० २, पृ० ७७६।

को (जो जमुना के किनारे बालू के एक ढूहे पर एकत्र हुए थे) पूरी तरह लूट लिया, यहाँ तक कि सदर का दफ़र भी नष्ट हो गया। इनकी उद्दंडता यहाँ तक बढ़ी कि स्वयं बादशाह को इन पर दो तीन तीर चलाने पड़े और मुख्य बंदूकचियों को इन पर गोली चलानी पड़ी। जब पराजय के चिह्न प्रकट हुए, तब पड़ाव से दिल्ली के मार्ग पर घूम घूम कर पराजितों के भागने का रास्ता बंद कर दिया और जो हाथ में आया उसके बचे बचाए सामान को लूट लिया[१]। जब इनकी मृत्यु हो गई[२] तब इनके पुत्र मुहकमसिंह आदि दृढ़ दुर्गों में बैठ कर युद्ध करने को तैयार हुए और अत्याचार तथा लूट की अग्नि से सूखे तथा तर को जलाने लगे। आगरे के नाज़िम सआदत ख़ाँ बुरहानुलमुल्क ने बड़ी वीरता से इन्हें दमन करने में साहस दिखलाया तथा प्रयत्न किया;-पर

---

१. ख़फ़ी ख़ाँ के मुंतख़िबुल्लुबाब भा० २, पृ० ६१५–२५ से यह वृत्तांत लिया गया है। इलि० डाउ०, भा० ७, पृ० ५११–१५।

२. इलि० डाउ०, जि० ८, पृ० ३६१ में मजमउल् अख़बार के अवतरण में लिखा है—'पराजय निश्चित समझ कर दुर्ग के बारूद-घर में आग लगा कर जल मरा।' इम्पीरिअल गज़ेटिअर में लिखा है कि सन् १७२२ ई० में यह हीरे की क़नी खाकर मर गया। दोनों ही तरह यह स्पष्ट है कि इसने आत्महत्या कर ली थी। इस इतिहास से यह मालूम होता है कि चूड़ामणि की मृत्यु के अनंतर सवाई जयसिंह ने जाटों पर चढ़ाई की थी और बदनसिंह शत्रुओं से मिल गए थे, पर मजमउल् अख़बार से यह ज्ञात होता है कि इस चढ़ाई के अनंतर बदनसिंह के मिल जाने पर पराजय निश्चित समझ कर चूड़ामणि ने आत्महत्या की थी।

उसकी तलवार न उन्हें काट सकी और न उसके बाहुबल से वह विद्रोह का काँटा उखड़ सका।

बादशाह ने राजाधिराज को अमीरों और तोपों के साथ इन पर भेजा। राजा ने पहले जंगल कटवा डाला और मुग़ल तथा अफ़ग़ान सैनिकों की सहायता से दो तीन गढ़ियों को विजय किया। दो महीने के भीतर ही (जिसमें दोनों पक्षों ने बहुत से युद्धों तथा रात्रि के आक्रमणों में प्रयत्न कर प्रसिद्धि पाई थी) दुर्गवालों को तंग कर डाला। इसी बीच उनके एक चचेरे भाई बदनसिंह[1] घरेलू झगड़े के कारण अलग होकर राजा के पास पहुँचे और दुर्ग लेने का रास्ता बतला दिया। इस पर उनके होश उड़ गए और अपने ही बारूद-घर को आग लगा कर उड़ा दिया[2]। दुर्ग पर अधिकार हो गया। पर कोषों का (जो संसार-प्रसिद्ध थे) चिह्न तक न मिला। जब राजा की प्रार्थना[3] से वहाँ की जमींदारी पर बदनसिंह नियुक्त हुए, तब मुहकमसिंह भी खानदौराँ के भाई मुजफ्फ़र खाँ को बीच में डाल कर

---

१. यह भज्जा का पुत्र और चूड़ामणि का भाई था तथा चूड़ामणि के पुत्र मुहकमसिंह का चाचा लगता था।

२. यह घटना चूड़ामणि पर ही घटी होगी। केवल लिखने में कुछ क्रमभंग सा हो गया मालूम होता है।

३. सवाई जयसिंह की बदनसिंह पर की यह कृपा सूदन द्वारा यों कही गई है—ज्यों जैसाहि नरेस करत कृपा तुव देस पै। (सु० च०, पृ० ४०, सो० १५) यह सब वृत्तांत खफ़ीखाँ से लिया गया है। (इलि० डाउ०, भा० ७, पृ० ५-२१-२२.)

दरबार आए और बहुत प्रयत्न किया, पर कुछ लाभ नहीं हुआ। उस समय से डीग उसका स्थान प्रसिद्ध हुआ और वह कभी अधीनता न छोड़ कर बराबर सेवा करता रहा। सन् ११५० हि० (सं० १७९४-५) में (जब आसफ़जाह बहादुर दरबार से बाजीराव का दमन करने के लिये भेजे गए थे तब) इस (बदनसिंह) ने अपने एक आपसवाले को सेना सहित साथ भेजा था। भूपाल-मालवा युद्ध में इसके मनुष्यों ने अच्छी वीरता दिखलाई थी। यद्यपि मन्सब तथा बादशाही नौकरी के विचार से लूट-मार की अपनी प्राचीन प्रथा को इन लोगों ने छोड़ दिया था, पर इनका अधिकार राजधानी के पाँच कोस इधर से लेकर आगरा प्रांत के चतुर्थांश पर ज़मींदारी या जागीर के रूप में था। जब उन स्थानों को जागीरदारों को देते थे, तब निडर होकर यात्रियों से मनमाना राहदारी कर लेते थे। कोई फरियाद न करता था। हे ईश्वर ! ये सूबेदार इस कुप्रबंध का दोष अपने पर नहीं लेना पसंद करते थे। तब न जाने हिंदुस्तान के साम्राज्य के कार्यों का किस प्रकार प्रबंध होता था !

मुहम्मद शाह के राज्य के अंत में जब बदनसिंह की मृत्यु हो गई[1] तब उनके पुत्र सूरजमल ने अपने पूर्वजों के आश्रय

१. बदनसिंह की आँखें बेकार हो गई थीं; इसलिए इन्होंने सन् १७४५ के लगभग राज्य का सब कार्य अपने सुयोग्य पुत्र सुजानसिंह उपनाम सूरजमल को सौंप दिया था। सन् १७६१ ई० तक यह एकांत में अपना जीवन सुख से व्यतीत करते रहे, जब इनकी मृत्यु हुई। (इलि० डा०, जि० ८, पृ० ३६२.)

को त्याग कर अपने आत्मबल पर ही पूर्ण विश्वास किया और डाकूपन से पास के महालों पर अधिकार करने का साहस कर शाही तथा जागीरी महालों पर अधिकार कर लिया। दिल्ली से भदावर तक और कछवाहों के अधि त महालों से गंगा नदी तक (जिसकी दूसरी ओर रुहेलों का अधिकार था) किसी को नहीं छोड़ा[1]। बहुधा दोआब के परगनों और सन् ११७४ हि० में (सं० १८१८ वि०) आगरा दुर्ग पर भी अधिकार कर लिया था[2]। (जब शाहआलम बिहार और इलाहाबाद प्रांत के पास ठहरे हुए थे तब) सीमा के महालों के कारण नजीब खाँ[3] पर कुपित होकर सूरजमल ने उस पर ससैन्य चढ़ाई की। दिल्ली के पास युद्ध हुआ। यद्यपि नजीब खाँ के पास सेना कम थी, पर उन्हीं (सूरजमल) के अहंकार तथा आत्माभिमान ने उनका काम समाप्त कर उन्हें मृत्यु-शय्या पर सुलाया। उसका विवरण

---

१. इन युद्धों का विस्तृत वर्णन इनके दरबारी कवि सूदन ने 'सुजान चरित' में किया है।

२. वज़ीर सफदर जंग से मित्रता रखने के कारण उसके साथ अहमदख़ाँ बंगश पर दो बार चढ़ाई की थी। इसी में आगरा प्रांत, मेवात तथा दिल्ली प्रांत तक का कुछ भाग मिला था। सन् १७६० ई० में आगरा दुर्ग पर भी इन्होंने अधिकार कर लिया था।

३. पानीपत के तीसरे युद्ध के बाद नजीबुद्दौला रुहेला ने दिल्ली साम्राज्य की बागडोर सँभाली थी। इसी से बिगड़ कर इन्होंने सन् १७६४ ई० में दिल्ली पर चढ़ाई की थी। (मजमउल् अख़बार, इलि०, जि० ८, पृ० ३६३.)

यों है कि सूरजमल थोड़े आदमियों के साथ अपने सैनिकों के (जिन्हें नजीब खाँ के चारों ओर पकड़ने के लिये नियुक्त किया था) निरीक्षण के लिये गुप्त रूप से जा रहे थे कि खाँ का एक साथी (जो इन्हें पहचानता था) अपनी जाति के सौ जवानों के साथ इन पर टूट पड़ा और इनका अंत कर दिया। इसके अनंतर इनके पुत्र जवाहिरसिंह इनके स्थानापन्न हुए और बदला लेने की इच्छा से ससैन्य दिल्ली चढ़ गए और कुछ दिन गड़बड़ मचाते रहे। अंत में मल्हारराव ने मध्यस्थ होकर संधि कराई[१]। ( ) वर्ष[२] में इसने आमेर नरेश से शत्रुता आरंभ कर युद्ध किया और परास्त हुआ। इसके अनंतर इनके भाई[३] लोग स्थानापन्न हुए। मिरज़ा नजफ़ खाँ बहादुर ने प्रबल

---

१. इलि० डाउ०, भा० ८, पृ० ३६३।

२. वर्ष का स्थान रिक्त है पर सन् ११८२ हि० (१७६८ ई०; सं० १८२५ वि०) होना चाहिए। इन्होंने जयपुर-नरेश माधोसिंह पर पुष्कर स्नान के बहाने चढ़ाई की थी, पर परास्त होकर इन्हें लौटना पड़ा था। उसी वर्ष आगरे में एक घातक के हाथ से इनकी मृत्यु हुई।

३. सूरजमल पाँच पुत्र छोड़ कर मरे थे जिनमें प्रथम जवाहिरसिंह राजा हुए। इनकी मृत्यु पर इनके भाई रत्नसिंह तथा उसके बाद तीसरे भाई नवलसिंह राजा हुए। चौथा भाई रंजीतसिंह विद्रोह कर नजफ़ ख़ाँ को सहायतार्थ लिवा लाया और इस राज्य पर अधिकार कर लिया। (इम्पीरियल गजेटिअर, भा० २, पृ० ३७३)। एडवोकेट बेवरिज कृत 'हिन्दुस्तान का बृहद् इतिहास' के भाग २, पृ० ७८५ में रंजीतसिंह को सूरजमल का पौत्र लिखा है।

होकर इनका अंत कर दिया। उनकी एक संतान छोटे राज्य पर अधिकत है[1]।

---

१. मआसिरुलूउमरा ग्रंथ सन् १७५५--६० ई० के बीच लिखा गया था। यह निबंध ग्रंथकर्ता के पुत्र अबुलहई ख़ाँ ने लिखा है जिन्हों ने इस संपादन कार्य को सन् १७६८ ई० में आरंभ कर सन् १७८० ई० में समाप्त किया था। उस समय रंजीतसिंह राजा थे जो सन् १८०५ ई० में मरे। यही प्रथम राजा थे जिन्होंने पहले पहल अंग्रेज़ों से संधि की थी। इसी के समय होलकर का साथ देने के कारण अँग्रेज़ों ने भरतपुर घेरा, पर उसे नहीं ले सके। इसके अनंतर इन्होंने अँग्रेज़ों से संधि कर ली।

१६—राजा चंद्रसेन

यह मरहट्ठों में से था और इसका जादून अल्ल था। इसका पिता धन्ना जी जादून[१] शम्भा जी भोंसला के विश्वासी सरदारों में से था। यह सर्वदा बड़ी सेना के साथ प्रांतों में दूर दूर तक लूट मचाता फिरता था; इस कारण उसका नाम राजा साहू भोंसला

---

१. महाराज शिवा जी का मातामह लाखा जी जादव सन् १६२६ ई० में मुर्तजा निज़ाम शाह की आज्ञा से मारा गया था जिसके साथ उसका पुत्र अचलो जी भी मारा गया। अचलो जी के पुत्र संता जी जादव शिवाजी के बड़े भाई शंभाजी के मित्र थे और उन्हीं के साथ कनकगिरि के युद्ध में मारे गए। संताजी के पुत्र शंभूसिंह थे जिनके पुत्र यही धन्ना जी जादव हुए। यह सवारों के प्रसिद्ध सेनानी प्रतापराव गूजर के सहकारी थे। सन् १६८९ ई० में चालीस सहस्र सेना के साथ यह पल्टन में नियुक्त हुए और मुग़ल सेना को वहाँ परास्त किया। पर मुग़लों के रामगढ़ ले लेने पर ये राजाराम के साथ विशालगढ़ से जिंजी दुर्ग में चले गए। इनसे तथा मराठी सेना के प्रधान सेनापति संता जी घोरपदे में मनोमालिन्य हो गया था जो यहाँ तक बढ़ा कि अंत में इन्होंने संता जी के पड़ाव पर चढ़ाई कर दी। युद्ध में मराठी सेना ने इन्हीं का साथ दिया जिससे संता जी भागे और मारे गए। संता जी तथा धन्नाजी दोनों ही उस समय मराठी सेना के अग्रगण्य सरदार थे। इसके अनंतर धन्ना जी प्रधान सेनापति हुए। इन्होंने सन् १६९९ ई० में पंढरपुर के पास एक मुग़ल सेना को परास्त किया और दो अन्य मराठी सेनाओं ने भी कई विजय प्राप्त कीं। इसके अनंतर सन् १७००

के जीवन-वृत्तांत में आया है। इसके अनंतर भी राजा चंद्रसेन ने उस जाति में अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त की, पर किसी कारण से असंतुष्ट[1] होकर मुहम्मद फ़र्रुख़सियर के समय में निज़ामुलमुल्क आसफ़जाह (जो पहले पहल दक्षिण का सूबेदार हुआ था) के कहने पर बादशाही सेवा में चला आया और सात हज़ारी मन्सब सहित बीदर प्रांत के भालकी आदि महाल उसे जागीर में मिले।

ई० में जुल्फिकार खाँ से यह परास्त भी हुए थे, पर मराठों का अधिकार बढ़ता गया। सन् १७०८ ई० में लोदी खाँ को परास्त कर पूना तक अधिकार कर लिया। साहू के लौटने पर इन्होंने उसका साथ दिया और प्रधान सेनापति नियुक्त हुए। सन १७१० ई० में इनकी मृत्यु हो गई। बाला जी विश्वनाथ भट्ट इन्हीं के सहकारी थे जो आगे चल कर प्रथम पेशवा हुए थे। इन पर धन्ना जी का बहुत विश्वास था जिससे उनके पुत्र चंद्रसेन इनसे वैमनस्य रखते थे।

१. पिता की मृत्यु पर चंद्रसेन प्रधान सेनापति नियुक्त हुए, पर यह भीतर से ताराबाई ही के पक्षपाती थे। साहू जी ने बाला जी विश्वनाथ को इन पर दृष्टि रखने के लिये इनका सहकारी बना दिया जिससे वह वैमनस्य बढ़ गया। एक हरिण की बात लेकर दोनों में लड़ाई हो गई और बाला जी भाग कर साहू की शरण में चले गए। चंद्रसेन इससे क्रुद्ध होकर विद्रोही हो गए और परास्त होकर ताराबाई के पास चले गए। सन् १७१२ ई० में ताराबाई तथा उसके पुत्र शिवा जी को कारारुद्ध कर जब उनकी सपत्नी राजसबाई कोल्हापुर में प्रधान हो गई, तब चन्द्रसेन इस भय से कि कहीं वह मुझे पकड़ कर साहू के पास न भेज दे, निज़ामुलमुल्क आसफ़जाह के यहाँ चला आया। (पारस० किन० मराठों का इतिहास, भाग २, पृ० १४५-६)

चार हज़ार सवार से काम देता था। पंचमहला ताल्लुक़े में (जिसमें अंकोर, मकन्हल, अम्रचतिया, करीचूर और उदमान नामक पाँच महाल हैं और जो मुज़फ्फ़रनगर उर्फ़ मालखेड़ सरकार तथा मुहम्मदाबाद बीदर प्रांत के अंतर्गत है और जो सब उसकी जागीर में थे) कृष्णा नदी से तीन कोस हट कर पहाड़ी के ऊपर एक छोटा सा दुर्ग बना कर चंद्रगढ़ नाम रखा था। आसफ़जाह उसका बहुत पक्ष करते थे[1]। सन् ११५६ हि० (सन् १७४३ ई०) में उसकी मृत्यु पर उसका पुत्र राजा रामचंद उसके स्थान पर नियुक्त हुआ और सात हज़ारी मंसब तथा महाराज की पदवी पाई। मद्यपान और काम न करने से सेना का वेतन सर्वदा बाकी रहा करता था। सलाबतजंग के समय अन्याय के कारण बहुधा महाल ले लिए जाते थे और फिर लौटा दिए जाते थे। कभी नौकरी पर पहुँचता था, कभी नहीं। निज़ामुद्दौला आसफ़जाह के यौवराज्य के समय (जब मुसल्मानी सेना मरहठों के देश में पहुँच चुकी थी और रोज लड़ाई हो रही थी) यह उनसे मिल कर रात्रि को ससैन्य उनके यहाँ चला गया। कुटिल स्वभाव और मूर्खता के कारण उनका भी विश्वास-पात्र न हो सका और कुछ दिन बाद लौट कर दौलताबाद में क़ैद हो गया। कुछ लोगों के मध्यस्थ होने पर छोड़ा गया और क्षमा मिलने पर

१. सन् १६२६ ई० में निज़ामुल्मुल्क के साह्व पर चढ़ाई करने पर इसने उसकी बहुत सहायता की थी, पर यह सब देशद्रोह उसके कुछ भी काम न आया।

पश्चात्ताप करता हुआ निज़ामुद्दौला आसफ़जाह के सामने गया और पहले को तरह जागीर और मंसब पर बहाल हो गया। अंत में जब फिर अनुचित कार्य करने लगा, तब उस पर से विश्वास उठ गया और वह गोलकुंडा के दुर्ग में क़ैद किया गया। वहीं उसकी मृत्यु हो गई। दो पुत्र थे जिन्हें पैतृक महालों से थोड़ी जागीर मिल गई थी, जिससे वे अपना जीवन व्यतीत करते थे।

१७—छत्रसाल[१]

यह चंपत बुँदेला के पुत्र थे जिसने जुझारसिंह के मारे जाने और उसके राज्य के साम्राज्य में मिला लिए जाने पर उस प्रांत में विद्रोह कर लूट मचा रखी थी[२]। ११वें वर्ष में शाहजहाँ ने अब्दुल्ला खाँ फीरोजजंग को उसे दमन करने के लिये नियत किया[३]। उसी वर्ष के अंत में राजा पहाड़सिंह बुँदेला भी इस कार्य पर नियुक्त हुआ। चंपत बुँदेला ने बहुत दिन वीरसिंह देव

---

१. फारसी तवारीखों तथा इस इतिहास के मूल में 'सत्रसाल' नाम शत्रुसाल का बिगड़ा रूप दिया गया है, पर यह छत्रसाल नाम ही से विख्यात हैं और इसलिये यही नाम दिया गया है। इनका यश-कीर्तन गोरेलाल कवि ने 'छत्रप्रकाश' में किया है तथा महाकवि भूषण ने भी छत्रसाल-दशक में इनकी कीर्ति गाई है।

२. सन् १६३५ ई० में जुझारसिंह मारे गए थे और ओड़छा राज्य चँदेरी के राजवंश के राजा देवीसिंह बुंदेला को सौंप दिया गया था। पर वहाँ के बुँदेलों का यह दमन नहीं कर सके और लौट गए।

३. शाहजहाँ ने ओड़छा राज्य को एक परगना बना कर उसका इसलामाबाद नाम रखा और पहिले बाकी खाँ को फौजदार नियत किया। जब वह कुछ न कर सका, तब सन् १६३८ ई० में अब्दुल्ला भेजा गया। (बादशाहनामा, जि० २, पृ० १३६, १६३.)

और जुझारसिंह की सेवा को थी[1] इसलिये पूर्वोक्त राजा के पहुँचने पर विद्रोह का विचार छोड़ कर सेवा में चला आया। उसके बाद दाराशिकोह की शरण में आकर बादशाह की बंदगी करने योग्य हुआ। सन् १०६८ हि० में औरंगज़ेब के दक्षिण से हिंदुस्तान आने और महाराज जसवंतसिंह के साथ युद्ध होने के अनंतर शुभकरण बुँदेला के साथ आलमगीर की सेवा में आकर इसने अच्छा मन्सब पाया और उस समय (जब बादशाह मुलतान से शुजाअ के युद्ध के लिये लौट रहे थे तब) लाहौर के सूबेदार ख़लीलुल्ला के साथ नियत हुआ। स्वभाव ही से झगड़ालू होने के कारण वहाँ से भाग कर स्वदेश चला आया और लूट मार करने लगा[2]। (इस कारण कि बादशाह के आगे भारी काम—जैसे शुजाअ से युद्ध, महाराज को दंड देना और दाराशिकोह की लड़ाई उपस्थित थे) इस बात से वे अनजान बन गए और अजमेर से शुभकरण बुँदेला को दूसरे राजों के साथ उसे

---

१. ये लोग एक ही वंश के थे। प्रतापरुद्र के एक पुत्र मधुकर साह के वंश में ओड़छेवाले तथा दूसरे पुत्र उदयाजीत के वंश में चंपतराय तथा पन्ना का राजवंश हुआ। पहाड़सिंह जुझारसिंह के छोटे भाई थे, इसलिये इनको राज्य मिलने पर बुँदेलों में कुछ शांति स्थापित हो गई। (का० ना० प्र० पत्रिका, नया संदर्भ, भा० ३, पृ० ४२-४४.)

२. सन् १६५३ ई० में यह दारा के साथ क़ंधार गए थे और इनकी वीरता से प्रसन्न होकर दारा कोंच परगना तीन लाख खिराज पर इन्हें देना चाहता था; पर पहाड़सिंह के षड्यंत्र से वह न मिल सका। इस पर क्रुद्ध होकर चंपतराय स्वदेश लौट गए।

दमन करने को भेजा। उन बड़े कामों से निपट कर चौथे वर्ष राजा देवीसिंह बुँदेला को इस कार्य पर नियुक्त किया। वह डर कर प्रति दिन कहीं छिप रहता था। राजा सुजानसिंह (जो बंगाल के सहायकों में नियत था) को ढूँढते हुए पता लगा कि वह राजा इन्द्रमणि धंदेर के वास-स्थान सहरा में छिपा है। तब वह उसे बुलाने वहाँ गया। वहाँ के आदमियों ने डर कर उसका सिर शरीर से जुदा कर बादशाह के पास भेज दिया[1]।

इसके अनंतर सत्रसाल (जिसने छोटा मन्सब पाया था) शिवा जी भोंसला के पास गया। उन्होंने देश लौट जाने की छुट्टी दी[2]। देश पहुँच कर लूट-मार आरंभ कर दो। २२वें वर्ष[3] राजा जसवंतसिंह बुँदेला उसे दमन करने गया। उसके बाद बादशाही नौकरी में आकर ४४वें वर्ष में आज़मतारा (प्रसिद्ध नाम सितारा) का दुर्गाध्यक्ष हुआ। ४८वें वर्ष[4] फिर देश चला गया। ४९वें वर्ष फीरोज़जंग द्वारा क्षमा प्राप्त कर इन्होंने चार हज़ारी मन्सब पाया। औरंगजेब की मृत्यु पर देश जा बैठा और बहादुरशाह के कई

---

१. पहाड़सिंह तथा उनकी रानी हीरादेवी इनसे बहुत द्वेष रखती थी और इन्हीं लोगों के प्रयत्न से यह अंत में मारे गए।

२. छत्र-प्रकाश पृ० ७८-७९। यह प्रसिद्ध वीर तथा पन्ना आदि कई राज्यों के संस्थापक थे। यहाँ इनकी जीवनी का अत्यंत ही संक्षिप्त उल्लेख है; इसलिये विशेष टिप्पणी नहीं दी गई।

३. अन्य प्रति में २४वाँ वर्ष लिखा है।

४. अन्य प्रति में ४६ वाँ वर्ष लिखा है।

१८—राजा छबीलेराम नागर

नागर ब्राह्मणों की एक जाति विशेष है, जो मुख्यतः गुजरात में बसती है। इसका भाई दयाराम था और ये दोनों सुलतान अज़ीमुश्शान की सरकार में तहसील के अफ़सर थे। कुछ दिनों बाद दयाराम मर गया और छबीलेराम कड़ा जहानाबाद का फ़ौजदार हुआ। जब मुहम्मद फर्रुख़सियर राज्य लेने और अपने चाचा जहाँदार शाह से युद्ध करने की इच्छा से पटने से चला, तब यह पहले जहाँदार शाह के पुत्र इज्जुद्दीन के साथ हुआ; पर फिर अपने प्रांत से कई लाख रुपया इकट्ठा कर और अच्छी सेना के साथ मुहम्मद फर्रुख़सियर के पास पहुँचा[1] और युद्ध के दिन कोकलताश खाँ के सामने सज कर ख़ूब लड़ा[2]। विजय होने पर इसका मन्सब बढ़ कर पाँच-हज़ारी हो गया और राजा की पदवी तथा खालसा की दीवानी मिली। यह कार्य (जो वज़ीरी से नीचे है) कुतुबुल्मुल्क वज़ीर की सम्मति से नहीं हुआ था; इससे बादशाह और वज़ीर के बीच कहा-सुनी हुई और बात बहुत बढ़ गई। अंत में इन्हें राजधानी की सूबेदारी मिली और फिर यह

---

१. इलि० डा०, भाग ७, पृ० ४३५।

२. तारीख इरादत खाँ, इलि० डाउ०, जि० ७, पृ० ५६१।

इलाहाबाद का सूबेदार नियुक्त होकर वहाँ गया। (जब कुछ कुचक्रियों ने सुलतान मुहम्मद अकबर के पुत्र निकोसियर को आगरे बुला कर गद्दी पर बैठाया था तब) रफ़ीउद्दर्जात् के राज्य के आरंभ में सुनाई पड़ा कि यह उसका साथ देना चाहता था[1]। परन्तु अपने ही अधीनस्थ प्रांत के जमींदार से लड़ाई होने के कारण यह वहाँ पहुँच नहीं सका। निकोसियर के पकड़े जाने पर हुसैन अली खाँ ने उसे दंड देना निश्चित किया; परन्तु रवाना होने के पहले ही मुहम्मद शाह के राज्य के प्रथम वर्ष में सन् ११३१ हि० (सन् १७१९ ई०) में वह मर गया[2]। इसके अनन्तर उसके भतीजे गिरधर ने, जो दया बहादुर[3] (यह छबीलेराम का मीर शमशेर कहलाता था) का पुत्र था, सेना एकत्र की और दुर्ग इलाहाबाद के बुर्ज आदि को दृढ़ कर लिया। यद्यपि उस पर हैदर कुली खाँ के अधीन सेना भेजी गई, परन्तु राजा रतनचन्द के बीच में पड़ने से उसे पाँच-हजारी ५००० सवार का मन्सब, राजा गिरधर बहादुर की पदवी और अवध की सूबेदारी मिली।

---

१. अधिराज सवाई जयसिंह के साथ यह निकोसियर की सहायता को जाना चाहता था, पर नहीं जा सका।

२. निकोसियर की सहायता करने का इसका विचार सुन कर उस पर चढ़ाई होने को थी; पर सेना रवाना होने के पहिले ही वह मर गया। (इलि० डा०, भा० ८, पृ० ४८६.)

३. ठीक नाम दयाराम है, जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है।

तब वह वहाँ चला गया[1] । जब सैयदों का प्रभाव नष्ट हुआ, तब यह दरबार में आया। ७वें वर्ष आसफ़ जाह के बदले इसे मालवे को सूबेदारी मिली। ९वें वर्ष में जब होलकर दक्षिण से मालवा आया और लूट-मार करने लगा, तब सन् ११३९ हि० (सन् १७२७ ई०) में उसे दमन करने जाकर स्वयं मारा गया। दूसरे सूबेदार के पहुँचने तक उसके पुत्रों ने उज्जैन की रक्षा की[2] ।

---

१. इलाहाबाद का दुर्ग बहुत दिनों तक घेरा गया था और स्वयं हुसेन अली खाँ ने वहाँ जाने की तैयारी की थी। अंत में गिरिधर के कहने पर जब रतनचन्द भेजे गए, तब संधि हुई। (खफी ख़ाँ, भा० २, पृ० ८४२)

२. मालवा पर मराठों की प्रथम चढ़ाई सन् १६९८ ई० में ऊदाजी पवार की अधीनता में हुई थी। परन्तु यह लूट-मार का धावा मात्र था। राजपूतों में मुसलमानों के अत्याचार तथा साम्राज्य की अवनति से अशांति बढ़ती गई। सन् १७२३-४ ई० में मल्हारराव होल्कर ने इंदौर और ऊदाजी पवार ने धार पर अधिकार कर लिया। सन् १७२९ ई० में सारंगपुर के पास इसके पड़ाव पर चिमना जी आप्पा तथा ऊदाजी ने छापा मार कर राजा गिरिधर को मार डाला। इसके अनन्तर इसका चचेरा भाई दया बहादुर मालवा का प्रांताध्यक्ष हुआ; पर वह भी दो वर्ष बाद धार के पास थाल ग्राम में मल्हारराव से युद्ध कर मारा गया। इस पर एक रुहेला सरदार मुहम्मद ख़ाँ बंगश ग़ज़नफ़र जंग सूबेदार हुआ, पर हार कर भाग गया। (पारस० किन०, मराठों का इतिहास, भाग २, पृ० २११-५.)

१६—कुँअर जगतसिंह

यह राजा मानसिंह कछवाहा के सब से बड़े पुत्र थे। अकबर के समय सेनापतित्व में यह प्रसिद्ध थे और इन्होंने अच्छे कार्य किए थे। ४२वें वर्ष (सन् १५९७ ई०) मिरज़ा जाफ़र आसफ़ ख़ाँ (जो मऊ और पठान[1] के राजा बासू का दमन करने पर नियुक्त था और सरदारों की अनबन से काम नहीं हो रहा था) की सहायता के लिये नियुक्त हुए और उस कार्य को समाप्त किया। ४४ वें वर्ष सन् १००८ हि० में जब दक्षिण जाते समय बादशाही सेना मालवा की ओर चली और शाहज़ादा सलीम राणा अमरसिंह का दमन करने के लिये बिदा हुए, तब राजा मान-सिंह (जो बंगाल के प्रबंध से निश्चिन्त होकर दरबार में आए थे) शाहज़ादे के साथ नियत हुए और उस बड़े प्रांत की अध्यक्षता पिता के सहकारत्व में जगतसिंह[2] को मिली। आगरे में यात्रा का सामान ठीक कर रहे थे कि ठीक यौवनारंभ में इनकी मृत्यु

---

१. पंजाब के उत्तर-पूर्व नूरपूर के अंतर्गत है।

२. इनका विवाह बूंदी के राव भोज की कन्या से हुआ था। इसी की पुत्री से सलीम का विवाह होना निश्चित हुआ था; पर उसके नाना राजा भोज ने अनुमति नहीं दी। सन् १६०८ ई० में राव भोज को आत्म-हत्या करने से मृत्यु होने पर उसके दूसरे वर्ष विवाह हुआ।

हो गई जिससे कछवाहों को अत्यन्त शोक हुआ। अकबर ने कृपा कर उनके अल्पवयस्क पुत्र महासिंह को उनका स्थानापन्न करके बंगाल भेजा जिससे आशा रूपी बाग तर हो गया। उस प्रांत के कुछ विद्रोहियों तथा कुछ अफ़ग़ानों ने (जो पहुँच कर सेवा भी करते थे) उसकी अल्पावस्था के कारण उसे कुछ न समझ कर विद्रोह कर दिया। महासिंह ने अयोग्यता से इसका प्रबन्ध सहज समझकर युद्ध आरम्भ कर दिया। ४५ वें वर्ष में भद्रक ग्राम में युद्ध हुआ जिसमें बादशाही सेना परास्त हुई तथा शत्रु ने कुछ स्थानों पर अधिकार कर लिया[१]। राजा मानसिंह शाहजादे से अलग होकर फुर्ती से बंगाल चले और उस पराजय का बदला लेने का बहुत प्रयत्न किया[२]। महासिंह ने भी यौवनारंभ में पिता के समान शराब अधिक पीने का दुर्गुण ग्रहण किया और उसी कड़ुए पानी पर अपना मधुर प्राण निछावर किया।

---

१. उसमान और सज़ावल ख़ाँ की अधीनता में अफ़ग़ानों ने विद्रोह आरम्भ किया था। महासिंह और राजा भगवानदास के पुत्र प्रतापसिंह की अध्यक्षता में बादशाही सेना परास्त हुई। बंगाल के अधिकांश पर अफ़ग़ानों ने अधिकार कर लिया।

२. मानसिंह ने शेरपुर के युद्ध में अफ़ग़ानों को पूर्णतया परास्त कर फिर से दक्षिणी बंगाल तथा उड़ीसा पर अधिकार कर लिया।

२०—राजा जगतसिंह

यह राजा वासू का पुत्र था। जब इसका बड़ा भाई सूरजमल पिता की मृत्यु[1] के अनन्तर जहाँगीर की कृपा से अपने पैतृक देश का स्वामी हुआ, तब यह (भाई से मित्रता नहीं होने से) छोटे मन्सब के साथ बंगाल में नियत हुआ। १३वें वर्ष में जब सूरजमल ने विद्रोह किया, तब बादशाह ने इसे जल्दी बंगाल से बुलाकर एक हज़ारी, ५०० सवार का मन्सब, राजा की पदवी, बीस सहस्र रुपया, जड़ाऊ ख़ंजर, घोड़ा और हाथी दिया और उसे राजा विक्रमाजीत सुन्दरदास (जो सूरजमल का दमन करने पर नियत था) के पास भेजा[2]। उस बादशाह के राज्य के अन्त में तीन हज़ारी २००० सवार के मन्सब तक पहुँचा था। शाहजहाँ के पहिले वर्ष में यही मन्सब बहाल रहा। ७वें वर्ष (जब बादशाह पंजाब की ओर गए थे) यह सेवा में पहुँचा। ८वें वर्ष बादशाही सेना के काश्मीर से लौटने पर बंगश (नीचे) की थानेदारी और ख़ंग जाति के विद्रोहियों (जो उस प्रांत में रहते थे) का दमन करने पर नियत हुआ। १०वें वर्ष में उस पद से हटाया जाकर

१. सन् १६१२ ई० में इसकी मृत्यु हुई थी।

२. ७८ शीर्षक में सुंदरदास की जीवनी में विशेष हाल देखिए।

काबुल प्रान्त के सहायक सरदारों में नियत हुआ। जलालः तारीकी[1] के पुत्र करीमदाद को क़ैद करने में इसने अच्छा कार्य्य किया। ११वें वर्ष में (जब अली मर्दां खाँ ने दुर्ग क़ंधार शाही नौकरों को सौंप दिया था और आज्ञानुसार सईद खाँ काबुल प्रान्त के सहायकों के साथ क़ज़िलबाश सेना को, जो पास आ पहुँची थी, परास्त करने गया था तब) यह भी सेना के हरावल में थे। दुर्ग कंधार पहुँचने पर इन्हें जमींदावर दुर्ग विजय करने भेजा गया। इन्होंने बड़े प्रयत्न और परिश्रम से दुर्गाध्यक्ष को विजय कर घेरा जमा लिया। इस पर अधिकार कर दुर्ग बुस्त के घेरे में बड़ी वीरता दिखलाई। १२वें वर्ष (जब लाहौर में बादशाह थे तब) यह दरबार में आए। इसे ख़िलअत और मोती की माला मिली और उसी वर्ष यह बंगश का फ़ौजदार नियत हुआ। जब १४वें वर्ष में इसने कांगड़ा पर्वत की तराई की फ़ौजदारी अपने पुत्र राजरूप के लिये और उस पर्वत के राजाओं की भेंट उगाहने के पद के लिये, जो लगभग चार लाख रुपये की तहसील थी, प्रयत्न किया, तब वह मान ली गई और इन्हें ख़िलअत और चाँदी के साज का घोड़ा देकर उस पद पर नियत कर दिया। विद्रोह के कुछ चिह्न प्रकट होने पर यह उस पद से हटाया जाकर

१. पीर रोशनिया का पुत्र था जिसने मुसलमानी धर्म के विरुद्ध अपना मत चलाया था। तारीकी के माने अँधेरा है। उसे यह नाम इसलिए दिया गया है कि वह कुफ्र का अंधकार फैलानेवाला था। यह अकबर के ४५ वें वर्ष में मारा गया था। (इलि० डा०; जि० ६, पृ० १०१.)

दरबार में बुलाया गया। उस पर यहाँ से (जब आने में देर हुई) तीन सेनाएँ ख़ानेजहाँ बारहः, सईद ख़ाँ ज़फ़र जंग और एसालत ख़ाँ के अधीन भेजी गईं और पीछे से सुल्तान मुरादबख़्श को अलग सेना सहित दुर्ग मऊ, नूरगढ़ और तारागढ़ (ये जगतसिंह के अधीनस्थ दुर्ग थे और उस समय उनके लिये पहिले ही से बहुत प्रयत्न हुआ था[1]) विजय करने के लिये नियुक्त किया। जगतसिंह ने इन दुर्गों की रक्षा के लिये बादशाही सेनाओं से यथाशक्ति युद्ध किया।

जब मऊ और नूरपुर बादशाही मनुष्यों के अधिकार में चला गया और तारागढ़[2] भी हाथ से जाने लगा, तब निरुपाय होकर ख़ानजहाँ को मध्यस्थ कर शाहज़ादे के पास आया। बादशाह के इसके दोष क्षमा करने और इसके यह मान लेने के अनन्तर कि तारागढ़ और मऊ के दुर्ग गिरा दिए जायँगे, इसने दरबार में आकर अधीनता स्वीकृत की। बादशाह ने इनके दोषों का विचार न करके पहिले का मन्सब रहने दिया। उसी वर्ष शाहज़ादा दाराशिकोह के साथ कंधार गया और उसी के पास दुर्ग क़िलात का अध्यक्ष नियत हुआ। १७वें वर्ष सईद ख़ाँ ज़फ़र जंग उस प्रांत का अध्यक्ष नियत हुआ। उससे और राजा से मित्रता नहीं थी। इसलिये १८वें वर्ष में ख़िलअत और तलवार

१. राजा बासू का वृत्तांत ३६ वें शीर्षक में देखिए।

२. ये सब स्थान पंजाब के उत्तर-पूर्व और हिमालय की तराई के पास हैं।

जिसका साज़ सोने का था और जिस पर मीना किया हुआ था और चाँदी के साज़ सहित घोड़ा देकर अमीरुल-उमरा[1] की सहायता के लिये बदख़्शाँ विजय करने भेजा। उसने काम के अनुसार मन्सब के नियमानुकूल सेना एकत्र की और उसके योग्य निश्चित धन राज्य से पाकर लंबी यात्रा कर बदख़्शाँ पहुँचा। जब इसकी आज्ञा मिलने पर ख़ोस्त के मनुष्य भेंट करने आए, तब उनकी सम्मति से दुर्ग को, जो सराब और इन्दराब नदियों के बीच में है, दृढ़ कर तीन वार उज़बेगों और अलअमानों को (जिन्हें बलख़ के शासनकर्ता नज़र मुहम्मद ख़ाँ ने भेजा था) युद्ध में परास्त कर भगा दिया। उस दुर्ग को दृढ़ थाना बना कर पेशावर लौट आया। १९वें वर्ष में सन् १०५५ हि० (सन् १६४५ ई०) में वहीं मर गया। शाहजहाँ ने उसके पुत्र राजरूप को (इसका वृत्तान्त अलग दिया हुआ है[2]) सांत्वना दी थी।

---

१. सन् १६४५ ई० में शाहजहाँ ने अमीरुलउमरा अलीमर्दां ख़ाँ को शाहज़ादा मुरादबख़्श के साथ बदख़्शाँ पर भेजा था।

२. ६१ वाँ शीर्षक देखिए।

२१—जगन्नाथ

यह राजा भारामल के पुत्र थे, जिनका वृत्तांत अलग दिया जाता है। राजा ने इनको अपने दो भतोजों[१] के साथ मिरज़ा शरफ़ुद्दीन हुसेन (जिसने अजमेर की अध्यक्षता के समय राजा पर रुपया बाक़ी निकाला था) के पास बंधक रख छोड़ा था। इसके अनंतर (जब राजा अकबर का बहुत कार्य कर उसका कृपापात्र हुआ तब) बादशाह के कहने पर जगन्नाथ को मिरज़ा से छुट्टी मिली। तब शाही कृपा से कभी बादशाह के साथ और कभी अपने भतीजे कुँअर मानसिंह के साथ नियुक्त होकर अच्छा कार्य करता रहा। २१वें वर्ष में (जब मेवाड़-नरेश राणा प्रताप ने बादशाही सेना का सामना कर कई सरदारों को हरा दिया तब) इन्होंने दृढ़ता से डट कर वीरता दिखलाई और ज़यमल के पुत्र रामदास को (जो शत्रुओं के नामी सरदारों में से था) युद्ध में मारा। २३वें वर्ष में यह पंजाब प्रांत में जागीर पाकर वहाँ गया। २५ वें वर्ष में जब मिरज़ा हकीम के काबुल से पंजाब आ पहुँचने का समाचार ज्ञात हुआ और बादशाह का वहाँ जाना निश्चित हुआ, तब कुछ सेना आगे भेजी गई जिसमें यह भी नियुक्त हुए।

---

१. आसकरण के पुत्र राजसिंह और जगमल के पुत्र खंगार इसके भ्रातृप्पुत्र थे।

२९वें वर्ष में राणा को दंड देने के लिये (जो विद्रोही हो गया था) भारी सेना के साथ नियत होकर उसका कोष लूट लिया। इसके बाद मिरज़ा यूसुफ़ खाँ के साथ काश्मीर भेजा गया जहाँ का काम पूरा होने पर बादशाह के पास लौट आया। ३४वें वर्ष शाहज़ादा सुलतान मुराद के साथ नियुक्त होकर काबुल गया। ३६वें वर्ष (जब शाहज़ादा मुराद मालवा का सूबेदार हुआ तब) यह भी शाहज़ादे के साथ नियत हुआ और उन्हीं के साथ वहाँ से दक्षिण गया। ४३वें वर्ष शाहज़ादे से छुट्टी लेकर अपनी जागीर पर आया और वहाँ से दरबार गया। बिना आज्ञा लिए वह लौट आया था, इससे कुछ दिन दरबार में न जा सका था। (जब बादशाह दक्षिण से लौट कर रणथंभौर दुर्ग के पास ठहरे हुए थे तब) यह आज्ञानुसार बुरहानपुर से वहाँ पहुँचा। पूर्वोक्त दुर्ग उसी के अधीन था, इससे एक दिन (जब बादशाह सैर को गए तब) इसने सेवकों की चाल पर भेंट निछावर आदि की रस्म पूरी की। फिर दक्षिण में नियत हुआ।

जहाँगीर के पहले वर्ष में शाहज़ादा सुलतान पर्वेज़ के साथ राणा पर चढ़ाई करनेवाली सेना में नियत हुआ। खुसरो के विद्रोह के कारण जब शाहज़ादा राणा के पुत्र बाघ को साथ लेकर आगरे गया, तब इन्हें कुछ सेना के साथ वहीं छोड़ गया[१]। उसी वर्ष दलपति बीकानेरी को (जो नागौर में युद्ध कर रहा था)

---

१. तुजुके जहाँगीरी, पृ० ३३।

दमन करने पर नियत हुआ। ४थे वर्ष पाँच हज़ारी ३००० सवार का मन्सब पाया। उसका पुत्र रामचन्द्र दो हज़ारी १५०० सवार का मंसब पाकर दक्षिण में नियुक्त हुआ। उसकी[1] संतानों में एक मनरूप सिंह था जिसने शाहजहाँ का विद्रोह में साथ दिया था। उसको शाहजहाँ के बादशाह होने पर तीन हज़ारी २००० सवार का मन्सब, झंडा, चाँदी के साज़ सहित घोड़ा, हाथी और पचीस हज़ार रुपया सिंधी मिला। तीसरे वर्ष यह राजा गजसिंह के साथ निज़ामुल्मुल्क के राज्य पर अधिकार करने को नियत हुआ। उसी वर्ष[2] इसकी मृत्यु हो गई। इसके पुत्र गोपालसिंह को योग्य मन्सब मिला।

———

१. रामचन्द्र को। आईने अकबरी, ब्लोकमैन, भा० १, पृ० ४८८।
२. सन् १६३० ई०।

२२—जगमल

यह राजा भारामल के छोटे भाई थे। जब राजा ने अधीनता स्वीकार कर ली, तब उसके सभी संबंधी साम्राज्य के अनेक पदों पर नियुक्त हुए। यह भी बादशाही कृपा से ८वें वर्ष (सं० १६१९ वि०, सन् १५६३ ई०) में मेरठ दुर्ग के अध्यक्ष हुए। १८वें वर्ष (जब अकबर ने गुजरात पर चढ़ाई की तब) ये बड़े कैंप के रक्षक नियुक्त हुए और इनका मन्सब एक हज़ारी हो गया। इनके पुत्र खंगार को (जो अपने ताऊ राजा भारामल के साथ आगरे में रहता था) इब्राहीम हुसेन मिरज़ा के विद्रोह के समय राजा ने सेना सहित दिल्ली भेजा था। १८वें वर्ष में गुजरात से बादशाही सेना के लौटने के पहले छुट्टी पाकर पाटन के पास शाही कैंप में पहुँचा। २१वें वर्ष (सं० १६३३ वि०, सन् १५७६ ई०) में कुँअर मानसिंह के साथ राणा प्रतापसिंह को दंड देने पर नियत हुए। फिर बंगाल प्रांत में नियुक्त होकर शहबाज़ खाँ के साथ काम करते रहे। उस घटना[1] में (जब पूर्वोक्त खाँ

---

१. शहबाज ख़ाँ कंबू ने भाटी पर चढ़ाई कर वहाँ के राजा माधोसिंह को परास्त कर उसका राज्य लूटा और कर भी वसूल किया; पर उसे पूर्णतया दमन नहीं कर सका। वहाँ से लौटते समय मार्ग में कुछ बलवाई मिले, जिन्हें पहिले इन लोगों ने अपना आदमी समझा था। इस प्रकार

भाटी से विफल होकर लौट आया और टाँडा का रास्ता लिया तब) इन्होंने कुछ मनुष्यों के साथ जो लूट से लौट कर आ गए थे, विद्रोहियों का सामना किया जिसमें उनमें से नौरोज़ बेग क़ाक़शाल मारा गया और दूसरे लोग भाग गए[1]।

शत्रु के अचानक आ जाने पर भी ये दृढ़ता से लड़े और उनके सरदार नौरोज़ बेग को मारा, जिससे और शत्रु भाग गए। यह घटना ३०वें वर्ष सन् १५८५ ई० की है।

१. तबक़ाते अकबरी के अनुसार सन् १००१ हि० (सन् १५९३ ई०) में दो हज़ारी मंसबदारों की सूची से उसका जीवित रहना मालूम होता है; पर कुछ प्रतियों से न रहना भी ज्ञात होता है।

२३—मिर्ज़ा राजा जयसिंह कछवाहा

यह राजा महासिंह के पुत्र[१] थे। जब पिता की मृत्यु हुई, तब जहाँगीर के आज्ञानुसार दरबार पहुँचकर यह १२ वें वर्ष (सं० १६७१ वि०, सन् १६१७ ई०) में बारह वर्ष की अवस्था में एक हज़ारी ५०० सवार का मन्सब और एक हाथी पाकर सम्मानित हुए[२]। इसके अनन्तर सुलतान पर्वेज़ के साथ दक्षिण की चढ़ाई पर नियत हुए और कई बार बढ़न से अच्छे मन्सब पर पहुँच गए।

---

१. टाड कृत 'राजस्थान का इतिहास' (अंग्रे० भा० २, पृ० १२०६) में लिखा है कि महासिंह की मृत्यु पर जहाँगीर की राठोड़ रानी जोधाबाई के प्रस्ताव पर आमेर का राज्य राजा मानसिंह के भाई जगतसिंह के पौत्र जयसिंह को मिला था। मआसिरुल्उमरा में महासिंह राजा मानसिंह के सब से बड़े पुत्र कुँअर जगतसिंह के लड़के लिखे गए हैं (निबंध ५०)। मानसिंह की मृत्यु पर आमेर के राजा होने का स्वत्व इन्हीं का था, पर जहाँगीर ने भाऊसिंह पर विशेष कृपा रखने के कारण उसी को गद्दी दे दी थी (तुजुके-जहाँगीरी पृ० १३०)। इस प्रकार जयसिंह राजा मानसिंह के प्रपौत्र हुए।

२. राजा मानसिंह की मृत्यु जहाँगीर के नवें वर्ष सन् १६१४ ई० में हुई थी (ब्लोकमेन, आईन०, पृ० ३४१) और सन् १६१७ ई० में जयसिंह राजा हुए। इन्हीं तीन वर्षों के बीच भाऊसिंह की मृत्यु हो गई होगी। निबन्ध ५० में महासिंह का वृत्तांत दिया है।



जयपुर-नरेश महाराज जयसिंह

जहाँगीर की मृत्यु पर (जब दक्षिण का अध्यक्ष खानेजहाँ लोदी विद्रोह कर मालवा गया) यह (जो निरुपाय होकर साथ थे) शाहजहाँ की सेना के पहुँचने का समाचार सुनने पर अजमेर से अलग होकर स्वदेश चले गए[1]। वहाँ से शाहजहाँ के जुलूस के प्रथम वर्ष (सं० १६८४ वि०, सन् १६२८ ई०) में दरबार में पहुँचे और ५०० सवार बढ़ा कर उनका मन्सब चार हज़ारी ३००० सवार का हो गया तथा झंडा और डंका भी मिल गया। उसी वर्ष क़ासिम खाँ किजवीनी के साथ महावन (जो सरकार आगरा का एक परगना है) के विद्रोहियों को दमन करने के लिये नियुक्त होकर उपयुक्त दंड दे लौट आए। (जब उसी साल बलख़ के हाकिम नज़र मुहम्मद ख़ाँ ने विद्रोह कर काबुल प्रांत में पहुँच नगर को घेर लिया और महावत खाँ ख़ानख़ानाँ उसे दंड देने के लिये नियुक्त हुआ तब) ये भी पूर्वोक्त खाँ के साथ नियत हुए। दूसरे वर्ष ख्वाजा अबुलहसन तुर्बती के साथ यह ख़ानेजहाँ लोदी का पीछा करने पर नियत हुए[2]। ३रे वर्ष बादशाह ने

---

१. देखिए बादशाहनामा भा० १, पृ० २७२। खानेजहाँ लोदी दक्षिण का सूबेदार था और वह वहाँ के सब सरदारों को एकत्र कर, जिनमें यह भी थे, मालवे आया और उसी के कुछ भाग पर उसने अधिकार कर लिया। जब शाहजहाँ गद्दी पर बैठा, तब यह बुरहानपुर लौट गया और गजसिंह, जयसिंह आदि राजपूत राजे जो इसके साथ थे, अपने अपने देश चले गए।

२. सन् १६२६ ई० में यह दक्षिण भेजे गए और वहाँ से खानेजहाँ लोदी की चढ़ाई पर भेजे गए। (बादशाहनामा भा० १, पृ० ३१६-१८)

शायस्ता ख़ाँ के साथ ख़ानेजहाँ लोदी को दंड देने और निज़ामुलमुल्क के राज्य पर अधिकार करने को एक हज़ार सवार बढ़ाकर चार हज़ारी ४००० सवार के मन्सब सहित नियुक्त किया। सैयद ख़ानेजहाँ बारहः बीमारी के कारण दरबार में ही रहते थे, इससे आज़म ख़ाँ की सेना की हरावली इन्हीं को मिली और भालुरी के युद्ध तथा पेठा और क़स्बा परेंदा[1] के धावों में इन्होंने अच्छा प्रयत्न किया। ४ थे वर्ष यमीनुद्दौला के साथ (जो आदिल शाह के राज्य पर अधिकार करने को भेजा गया था) नियुक्त होकर सेना की बाईं ओर रहे। उसी के साथ यह दरबार भी आए और इन्होंने स्वदेश जाने की छुट्टी पाई। ६ ठे वर्ष दरबार पहुँचकर हस्तियुद्ध के दिन (जब एक हाथी औरंगज़ेब पर दौड़ा था) राजा ने उस पर घोड़ा दौड़ाया और दाहिनी ओर से बरछा मारा। उसी वर्ष के अंत में सुलतान शुजाअ के साथ दक्षिण की चढ़ाई पर गए। ७ वें वर्ष ख़ानेजमाँ के साथ कर[2] और परेंदा दुर्ग के घास-दानों को जलाने के लिये नियुक्त हुए। उसी दुर्ग के घेरे में और लौटते समय सामान लाने में (क्योंकि शत्रु से बराबर लड़ाई होती रहती थी) राजा ने साहस न छोड़ा और

---

१. बादशाहनामा पृ० ३५६-८ में लिखा है कि किस प्रकार राजा जयसिंह ने स्वयं पट्टा लूटा और दुर्ग के बाहरी क़स्बे पर खाई और दवीर पार कर अधिकार कर लिया था। आज़म ख़ाँ ने पहुँच कर दुर्ग घेरा, पर न ले सकने पर लौट गए।

२. यह संभवतः बीर दुर्ग है।

अपनी मर्यादा पर रहकर अच्छी सेवा की। ८ वें वर्ष बालाघाट की सूबेदारी (जो दौलताबाद और अहमदनगर आदि सरकारों में विभक्त है) खानेज़माँ को मिली तो ये भी उनके साथ नियुक्त किए गए। उसी वर्ष एक हज़ारी मन्सब बढ़ने से इनका मन्सब पाँच हज़ारी ४००० सवार का हो गया। इसके अनन्तर ये दरबार आए। ९ वें वर्ष खानेदौराँ के साथ साहू भोंसला को दंड देने पर नियत हुए[1]। १० वें वर्ष यह दरबार आए। दक्षिण में इन्होंने अच्छा काम किया था, इसलिए बादशाह ने प्रसन्न होकर अच्छा खिलअत देकर अपने देश आमेर जाने की छुट्टी दी कि वहाँ कुछ दिन आराम करें। ११ वें वर्ष (सन् १६३७ ई०) में दरबार आकर सुलतान शुजाअ के साथ (अली मर्दां खाँ के कंधार दुर्ग बादशाही नौकरों को सौंप देने पर शाह सफ़ी काबुल से लौट गया था, वहाँ) नियुक्त हुए। १२ वें वर्ष आज्ञानुसार दरबार आने पर मोती की माला, बादशाही हलके का हाथी और मिरज़ा राजा की पदवी पाकर सम्मानित हुए। १३ वें वर्ष देश पर फिर नियुक्त हुए। १४ वें वर्ष दरबार आने पर सुलतान मुराद बख्श के साथ काबुल प्रांत में नियत हुए। १५ वें वर्ष सईद खाँ के साथ मऊ दुर्ग विजय करने (जो राजा बासू के पुत्र राजा जगतसिंह—जो विद्रोही हो गया था—के अधिकार में था)

१. तीन सेनाएँ खानेदौराँ, खानेजमाँ और शायस्ता ख़ाँ के अधीन निज़ामुल्मुल्क के राज्य पर भेजी गई थीं, जहाँ का प्रबन्ध विशेषतः शाह जी भोंसले के हाथ में था।

गए। उस दुर्ग के पास पहुँचने पर (ज़ब घेरे का प्रबंध हो गया और धावा करने को आज्ञा दे दी गई तब) राजा औरों के पहले दुर्ग में पहुँच गए। इसके उपलक्ष में इनका मन्सब पाँच हज़ारी ५००० सवार दो हजार सवार दो अस्पः सेःअस्पः हो गया और उस दुर्ग की अध्यक्षता इन्हीं को मिली। इसके अनंतर (जब राजा जगतसिंह क्षमा कर दिए गए तब) पूर्वोक्त राजा दरबार चले आए और उसी वर्ष अच्छी ख़िलअत, फूल कटारः सहित जड़ाऊ जमधर, सोने के साज सहित ख़ास तवेले का घोड़ा और बादशाही हलके का हाथी पाकर यह शाहज़ादा दारा शिकोह के साथ कंधार पर नियत हुए। १६वें वर्ष दरबार आकर देश चले गए। १७वें वर्ष अजमेर में निज के पाँच सहस्र सवार दिखला कर फिर देश जाने की आज्ञा होने से प्रसन्न हुए। १८वें वर्ष (सन् १६४४ ई०) में (जब दक्षिण की सूबेदारी खानेदौराँ को मिली थी, पर वे कुछ परामर्श करने के लिये दरबार बुला लिए गए थे तब) एकाएक राजा को आज्ञा मिली कि देश से दक्षिण जाकर ख़ानेदौराँ के पहुँचने तक उस प्रांत की रक्षा करें।

जब ख़ानेदौराँ विदा होकर लाहौर पहुँचने पर मर गए तब राजा के नाम स्थायी सूबेदारी का ख़िलअत भेजा गया। २०वें वर्ष आज्ञानुसार दक्षिण से लौटकर दरबार आए। इसके उपरांत यहाँ से शाहज़ादा औरंगज़ेब के साथ बलख़ की चढ़ाई[1] पर

१. शाहज़ादा मुराद इस कार्य पर पहिले ही से नियुक्त थे, पर जब इन्होंने वहाँ के जलवायु से घबरा कर लौटने को लिखा, तब औरंगज़ेब उसके

गए। जब यह प्रांत आज्ञानुसार नजरमुहम्मद खाँ को सौंपा गया, तब लौटते समय बाईं ओर की सेना का सेनापतित्व राजा को मिला। २२वें वर्ष इनके मन्सब में एक हजार सवार दो-अस्पः सेः-अस्पः और बढ़ाकर अर्थात् पाँच हजारी ५००० सवार तीन सहस्र सवार दो अस्पः सेःअस्पः का मन्सब कर शाहजादा औरंगजेब के साथ कंधार की चढ़ाई पर नियुक्त किया और दाहिनी ओर की अध्यक्षता इन्हें मिली। जब कंधार की विजय का कुछ उपाय न हो सका और शाहजादा को बुला लिया गया, तब ये भी २३वें वर्ष दरबार पहुँचे[1]। उसी वर्ष के अंत में देश जाने की छुट्टी पाकर कामाँ पहाड़ी के विद्रोहियों को (जो आगरा और दिल्ली के बीच में है) दंड देने पर नियत हुए[2]। जब समाचार मिला (कि

स्थान पर सन् १६४६ ई० में भेजे गए। यह चढ़ाई आरम्भ ही से दुरूह थी और अंत में इन्हें सब विजित प्रांत आदि छोड़कर लौटना पड़ा। इस लौटने में भी लगभग ५००० मनुष्य और इतने ही पशु मरे। लौटते समय सेना का दाहिना भाग अमीरुलउमरा अली मर्दाँ खाँ को और बायाँ जयसिंह को सौंपा गया था; क्योंकि रास्ते भर पहाड़ी जातियों से लड़ते भिड़ते और सामान की रक्षा करते बीता था। एक बार इन्हें एक पहाड़ पर तीन दिन बर्फ के तूफान में व्यतीत करने पड़े थे। (इलि० डाव० भा० ७, पृ० ७७-८३.)

१. कंधार पर जब ईरानियों ने अधिकार कर लिया, तब शाहजहाँ ने दो बार औरंगजेब के और एक बार दारा शिकोह के अधीन सेनाएँ भेजी थीं, पर तीनों ही बार विफल रहा।

२. जाटों ने इन प्रांतों में बराबर लूट-मार मचा रखी थी और उन्हीं का दमन करने को यह नियत हुए थे।

राजा देश पहुँचने पर लगभग चार हज़ार सवार और छः हज़ार पैदल बंदूकची और धनुर्धारी एकत्र कर पूर्वोक्त महाल पर चढ़ गए और जंगल काट कर बहुत से लुटेरों को कटवा कर उनके बहुत से पशुओं को छीन लिया) तब इनके मन्सब के एक सहस्र सवार दो-अस्पः, सेःअस्पः और भी बढ़ा कर इनका मन्सब पाँच हज़ारी ५००० सवार चार सहस्र सवार दो अस्पः सेः अस्पः कर दिया तथा परगना कल्यान (जिसकी तहसील सत्तर लाख दाम थी) इस तरक्की के वेतन में मिला। २५वें वर्ष आज्ञानुसार दरबार आने पर शाहज़ादा औरंगज़ेब के साथ कंधार की चढ़ाई में हरावल की अध्यक्षता पर नियुक्त हुए। ये अच्छा खिलअत, ख़ास तवेले के सोने के साज़ का घोड़ा और ख़ास हलके का हाथी पाकर सम्मानित हुए।

जब कंधार की विजय रह गई, तब २६वें वर्ष (सं० १७०९ वि० सन् १६५२ ई० ; जब शाहजहाँ काबुल में थे तब) सेवा में पहुँच कर सुलतान सुलेमान शिकोह के साथ (जो काबुल का सूबेदार हो गया था) नियुक्त हुए। फिर ये बादशाहज़ादा दारा शिकोह के साथ कंधार की चढ़ाई पर नियुक्त हुए (पर जब उसकी विजय का कोई उपाय न हो सका तब) दरबार में आकर २७ वें वर्ष देश जाने की छुट्टी पाकर विदा हुए। २८वें वर्ष जुमलतुल्मुल्क सादुल्ला ख़ाँ के साथ चित्तौड़ खुदवाने गए[1]। ३१ वें वर्ष (जब सुलतान शुजाअ के मार्ग में जाने का

१. पहिले की संधि में यह शर्त्त हुई थी कि चित्तौड़ की मरम्मत

समाचार आया, जिसने शाहजहाँ की माँदगी का वृत्तांत सुनकर बादशाही महालों पर भी अधिकार कर लिया था तब) ये सुलेमान शिकोह के अभिभावक बनाए जाकर तथा एक हज़ारी १००० सवार दो अस्पः से:अस्पः का मन्सब बढ़ाकर भारी सेना के साथ सुलतान शुजाअ का सामना करने को भेजे गए। उसके पराजय पर बादशाहज़ादा दारा शिकोह की गुप्त प्रार्थना पर उनका मन्सब बढ़कर सात हज़ारी ७००० सवार पाँच हज़ार सवार दो अस्पः से:अस्पः का हो गया और बादशाहज़ादा के आज्ञानुसार दरबार को रवाना हुए। उसी समय (जब औरंगज़ेब की सेना दक्षिण से चल कर महाराज जसवन्तसिंह और दारा शिकोह को परास्त करती हुई आगरा पहुँची और वहाँ से दिल्ली की ओर अग्रसर हुई तब) ये भी स्वार्थवश सुलेमान शिकोह का साथ छोड़ कर बादशाही सेवा में पहुँचे और एक करोड़ दाम का परगना पुरस्कार में पाया। औरंगज़ेब के राज्य के पहले वर्ष में सेना सहित ख़लीलुल्लाख़ाँ की सहायता को (जो दारा शिकोह का पीछा कर रहा था) नियुक्त हुए।

जब दाराशिकोह ने मुलतान का रास्ता लिया, तब ये आज्ञानुसार लाहौर में ठहर कर बादशाह से मिले। वहाँ से (इस कारण कि बहुत दिनों से देश नहीं गए थे और बराबर

कभी न की जाय। पर जब राणा जगतसिंह जी ने कुछ दीवार उठवाई, तब उसी को खुदवाने के लिये सादुल्ला ख़ाँ के साथ यह भेजे गए थे। (शाहजहाँ नामः इलि० डा० भा० ७, पृ० १०३.)

चढ़ाइयों पर रहे थे) देश जाने की आज्ञा पाकर शुजाअ के युद्ध के अनंतर लौटे। दारा शिकोह के युद्ध में (जो अजमेर के पास हुआ था) बहुत प्रयत्न करने तथा उसके परास्त होने पर उसका पीछा करने पर ससैन्य नियत हुए। ४ थे वर्ष में पहले के पुरस्कार के अतिरिक्त एक करोड़ दाम जमा का परगना पाकर सम्मानित हुए। ७वें वर्ष शिवाजी भोंसला को दंड देने के लिये (जो पुरंधर, गढ़ आदि औरंगाबाद प्रांत के दृढ़ दुर्गों के भरोसे पर, जो निज़ामशाही सुलतानों के समय से उनके अधिकार में थे, विद्रोह करके लूट-मार करते थे और समुद्र के यात्रियों को हानि पहुँचाते थे) नियुक्त हुए। वहाँ पहुँचने पर दुर्ग पुरंधर को घेर लिया और शिवाजी के राज्य पर चढ़ाइयाँ कर उन्हें ऐसा तंग किया कि निरुपाय होकर उन्हें राजा के पास आना पड़ा तथा तेईस दुर्ग बादशाह को देने पड़े[1]। जब यह समाचार बादशाह को मिला, तब दो सहस्र सवार दो अस्पः से:अस्पः बढ़ा कर उनका मन्सब सात हज़ारी ७००० सवार दो-अस्पः सेह अस्पः के ऊँचे दरजे तक पहुँचा दिया। ८ वें वर्ष आदिलख़ाँ के राज्य पर चढ़ाई करने की (जिसने भेंट भेजने में ढिलाई की थी) आज्ञा हुई। आज्ञा पाते ही यह सेना सहित बीजापुर के पास पहुँचे और रास्ते में लूट-मार में कुछ उठा न रखकर आदिल ख़ाँ के बहुत से दुर्गों पर अधिकार कर लिया। जब उधर दाने-

१. महाराज शिवाजी ने २२ दुर्ग देकर दरबार जाने तथा सेना सहित बीजापुर की चढ़ाई में सहायता देने का वचन दिया था।

घास की कमी हुई, तब दूरदर्शिता से यह विचार कर (कि हलके होकर दक्षिणियों को दंड दें) वहाँ से लौट बादशाही राज्य में चले आए। जाने आने में दक्षिणी सेना से बराबर (जो डाकुओं के समान युद्ध करती थी) लड़ाई होती रही। राजा ने स्वयं वीरतापूर्वक प्रयत्न और सेनापति के योग्य दूरदर्शिता तथा सतर्कता दिखलाई थी। इसके अनंतर (वर्षा ऋतु पास थी) इस आशय का बादशाही आज्ञा-पत्र (कि औरंगाबाद नगर में छावनी करें) मिलने पर ये उस नगर को पहुँचे और फिर आज्ञा आने पर दरबार जाने की इच्छा की। १०वें वर्ष सन् १०७७ हि० (सं० १७२३ वि० सन् १६६७ ई०) में बुरहानपुर पहुँच कर मर गए[1]। उपायों तथा गंभीर विचारों के लिये यह प्रसिद्ध थे। सैनिक तथा सेनापति दोनों के गुण इनमें थे। संसार की प्रगति पहचानने और सामयिक विचारों को जाननेवाले थे जिससे राज्य-प्राप्ति के आरंभ से मृत्यु पर्यन्त प्रतिष्ठा से बिता दिया तथा बराबर उन्नति करते गए। इनके पुत्र राजा रामसिंह और राजा कीरतसिंह थे। दोनों के वृत्तांत अलग दिए गए हैं[2]। औरंगाबाद के बाहर पश्चिम की ओर एक पुरा इनके नाम पर बसा है।

---

१. औरंगज़ेब की कूट नीति में फँस कर इन्हीं के पुत्र कीरतसिंह ने इनकी अफ़ीम में विष मिला कर पितृ-हत्या की थी। देखिए इसी ग्रन्थ में कीरतसिंह की जीवनी।

२. निबंध ६७ और १० देखिए।

२४—धिराज राजा जयसिंह सवाई

यह विष्णुसिंह के पुत्र और मिरज़ा राजा जयसिंह के प्रपौत्र थे। जयसिंह नाम था। पिता की मृत्यु[1] पर औरंगजेब के ४४ वें वर्ष (सं० १७५७ वि०, सन् १७०० ई०) में इन्हें डेढ़ हज़ारी १००० सवार का मन्सब तथा राजा जयसिंह की पदवी और इनके भाई को विजयसिंह की पदवी मिली। ४५ वें वर्ष में असद ख़ाँ के साथ दुर्ग सख़रलना अर्थात् खुलना पर अधिकार करने के लिये नियत हुए। उस दुर्ग के लेने में प्रति दिन के धावों में इनसे अच्छा कार्य होता रहा। इसके पुरस्कार में इनका मन्सब दो हज़ारी २००० सवार का हो गया। बादशाह की मृत्यु पर मुहम्मद आज़म शाह के साथ दक्षिण से हिन्दुस्थान गए और बहादुर शाह के साथ युद्ध होते समय सेना के बाएँ भाग में थे। कहते हैं कि उसी दिन बहादुर शाह की सेना में जा मिले, इससे इनका विश्वास कम हो गया। इनके भाई विजयसिंह को (जो बहादुर शाह की ओर नियत थे) तीन हज़ारी ३००० सवार का मन्सब देकर आमेर की सरदारी के लिये उनके साथ झगड़ा खड़ा कर दिया। बादशाह ने (जो सभी का मन रखना चाहते थे और किसी को कष्ट नहीं

१. सन् १६९९ ई० में यह गद्दी पर बैठे और दूसरे वर्ष इन्हें पदवी आदि मिली।

पहुँचाना चाहते थे) आमेर को सरकार में मिलाकर सैयद हसन खाँ बारह: को वहाँ का फौजदार नियत किया[1]। जब बादशाह कामबख्श से युद्ध करने दक्षिण चले, तब यह रास्ते से अहेर के बहाने आवश्यक वस्तुएँ साथ लेकर और खेमा आदि छोड़ कर राजा अजीतसिंह के साथ देश चले गए और सैयद हसन खाँ बारह: से झगड़ा करके युद्ध किया जिसमें खाँ मारा गया[2]। जब बादशाह दक्षिण से लौटे, तब खानखानाँ को मध्यस्थ बनाकर रास्ते में भेंट की और इस प्रतिज्ञा पर कि दो महीने में वे स्वयं राजधानी पहुँचेंगे, इन्हें देश जाने की छुट्टी मिल गई[3]। फ़र्रुखसियर के समय में धिराज की पदवी पाकर पाँचवें वर्ष चूड़ामणि जाट (जिसने द्वितीय बार विद्रोह मचाया था) का दमन करने पर

१. औरंगजेब की मृत्यु पर मुअज़्ज़म, आज़म और कामबख्श में युद्ध हुआ। इन्होंने आजम का पक्ष लिया था, इसलिये जब मुअज़्ज़म बहादुर शाह की पदवी से बादशाह हुआ, तब इनका राज्य छीन लेने के विचार से इनपर हसन ख़ाँ बारह को फौजदार बना कर भेज दिया।

२. मारवाड़-नरेश अजीतसिंह से मिलकर इन्होंने अपना राज्य मुसलमान सैनिकों से साफ़ कर दिया। (टाड, भा० २, पृ० १२०८.)

३. असद ख़ाँ खानखानाँ का पुत्र जुल्फ़िक़ार ख़ाँ खानेजमाँ ही उस समय दिल्ली साम्राज्य का हर्ताकर्ता हो रहा था, इस कारण इन्होंने उसी की सहायता ली थी। खफ़ी ख़ाँ कहता है कि जब सन् १७०८ ई० में बहादुर शाह आगरे से राजपूतों को दंड देने निकले, तब इन लोगों ने इन पिता-पुत्र को मध्यस्थ बनाकर संधि की। (इलि० डा०, जि० ७, पृ० ४०४-५.)

नियत हुए। इसके अनन्तर कुतुबुल्मुल्क और हुसेन अली खाँ के मामा सैयद खानेजहाँ बारहः दूसरी सेना के साथ इस कार्य पर नियुक्त हुए। चूड़ामणि का कार्य खानेजहाँ द्वारा निपटने पर वह बादशाह की सेवा में चले आए। इसमें राजा का कुछ भी हाथ नहीं था। यद्यपि राजा चुप रहे, पर हृदय में वैमनस्य रख कर बादशाह से सैयदों की बुराई करने लगे। सैयदों से इनकी मित्रता नहीं थी, इसलिये इसके प्रकट होने पर उन लोगों से वैमनस्य बढ़ा। पूर्वोक्त बादशाह के राज्य के अंत में (यह उस समय दरबार ही में थे) सैयदों ने इन्हें कष्ट पहुँचाना चाहा, पर इन्होंने अवसर पाकर आज्ञानुसार आमेर का रास्ता लिया[1]। निकोसियर की लड़ाई में उसका पक्ष लेकर भी अंत में सैयदों से सफ़ाई हो गई[2]। इसके अनंतर

१. इन्होंने तथा अन्य मुग़ल, तूरानी आदि सरदारों ने फर्रुख़सियर का ही पक्ष लिया था; पर उसमें साहस की कुछ भी मात्रा न देखकर अंत में यह अपने राज्य को लौट गए; क्योंकि औरों की तरह उस समय सैयदों से यह मिलना नहीं चाहते थे (ख़फ़ी खाँ भा० २, पृ० ८०४-५)। क़ैद होने पर भी फर्रुख़सियर भागकर इन्हीं की शरण में जाने का विचार कर रहा था; पर अब्दुल्ला खाँ अफ़ग़ान ने, जो इनका जेलर था, यह बात सैयदों से कह दी जिससे वह मार डाला गया।

२. सन् १७१९ ई० में कुतुबुल्मुल्क अब्दुल्ला ने जयसिंह पर चढ़ाई की और उनके भाई हुसेन अली खाँ ने आगरा घेरा, जिसमें निकोसियर बादशाह बन बैठा था। जयसिंह ने इसका पक्ष लिया था, पर छबीलेराम आदि अन्य सरदारों के, जिन्होंने साथ देने की प्रतिज्ञा की थी, न आने पर अधीनता स्वीकार कर ली।

(जब सैयदों को वैमनस्य रूपी रुकावट बीच में नहीं रह गई तब) मुहम्मद शाह के राज्यारम्भ में दरबार जाकर कृपापात्र हुए। फिर चूड़ामणि की चढ़ाई पर नियुक्त हो कर उसे उसके स्थान से निकाल कर थून पर अधिकार कर लिया[१]। सन् ११४५ हि० (सन् १७३२ ई०) में मुहम्मद खाँ वंगश के स्थान पर मालवा के सूबेदार हुए[२]। सन् ११४८ हि० (सन् १७९२ वि०, सन् १७३५ ई०) में वहाँ की सूबेदारी इन की प्रार्थना पर खानेदौराँ की मध्यस्थता से वाजीराव मरहठा को दे दी गई। बहुत दिनों तक जीवित रह कर इनकी मृत्यु हुई[३]।

कहते हैं कि यह बड़े कौशली थे। ज्योतिष के प्रेमी थे। आमेर के पास नया नगर बसाकर विजयनगर नाम रखा। दूकानों की सजावट और रास्तों की चौड़ाई के लिये वह बाज़ार प्रसिद्ध है। इस नगर के बाहर और दिल्ली दोनों स्थानों में बहुत रुपया व्यय करके जंतर-मंतर तैयार कराए थे। ज्योतिष में तारों के पूरे हिसाब के लिये तीस वर्ष (जो शनि के पूरे चक्र का समय है) चाहिए और इसके पहिले ही इनकी मृत्यु हो गई, इससे यह कार्य अपूर्ण

---

१. सन् १७२३ ई० में यह राजा अजीतसिंह पर अन्य सरदारों के साथ भेजे गए थे और इसी वर्ष इन्होंने जयपुर शहर की नींव डाली थी।

२. तारीखे हिन्दी में लिखा है कि इसी वर्ष इन्हीं के इशारे से मराठों ने इस पर अधिकार कर लिया था।

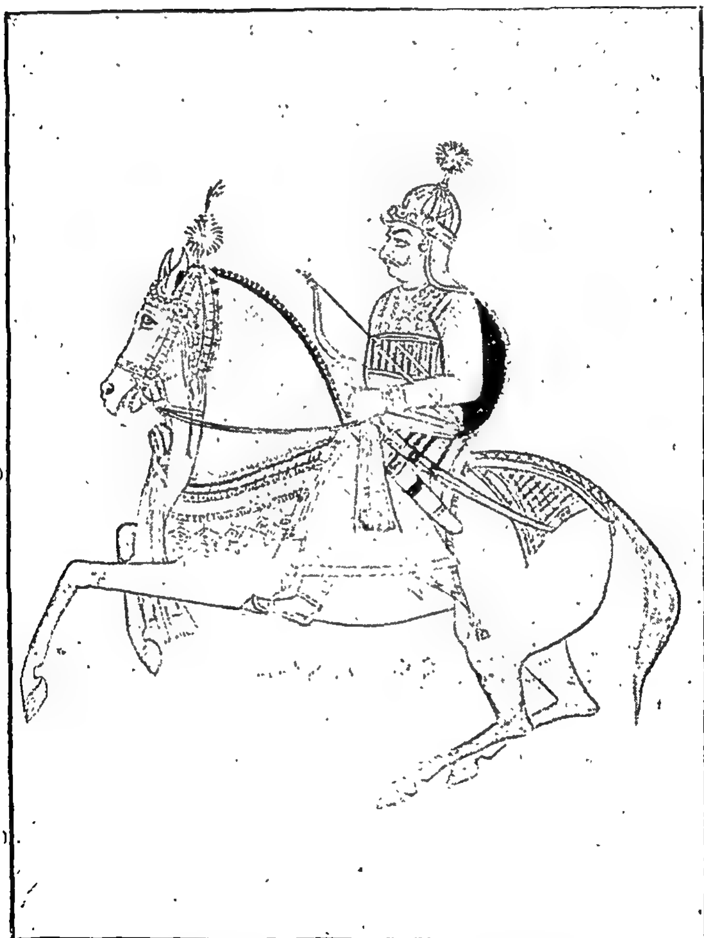
३. सआदत जावेद लिखता है कि इन्होंने अपने जीवन में तीस करोड़ रुपए दान दिए। (इलि० डा०, भा० ८, पृ० ३४२) ४४ वर्ष राज्य करने पर सन् १७४३ ई० में इनकी मृत्यु हुई।

रह गया। इनकी मृत्यु पर इनका पुत्र ईश्वरसिंह गद्दी पर बैठा। उसके अनन्तर इनके पुत्र पृथ्वीसिंह[1] के समय मराठों ने इनके राज्य के कई महालों पर अधिकार कर लिया। कुछ बादशाही स्थान भी इन लोगों के हाथ में हो गया। लिखते समय पृथ्वीसिंह के भाई प्रतापसिंह राज्य पर अधिकृत थे।

---

१. ईश्वरसिंह के अनन्तर उनके छोटे भाई माधोसिंह ने सत्रह वर्ष राज्य किया था, जिनके अनन्तर पृथ्वीसिंह द्वितीय गद्दी पर बैठे। यह अल्पवयस्क थे, इससे इनकी विमाता तथा प्रतापसिंह की माता अभिभावक रहीं और उसकी मृत्यु पर अपने पुत्र ही को गद्दी पर बैठाया था।





जोधपुर-नरेश महाराज यशवंतसिंह

२५—महाराज जसवंतसिंह राठौर[1]

यह राजा गजसिंह के पुत्र थे। शाहजहाँ के राज्य के ११वें वर्ष में पिता के साथ दरबार आकर बादशाह के कृपापात्र हुए। जब इनके पिता की मृत्यु हो गई (उसी समय राजपूतों की इस प्रथा के विपरीत कि बड़ा पुत्र ही युवराज होता है, इनकी माता पर अधिक प्रेम होने के कारण बड़े पुत्र को अपनी संतानों में से निकाल दिया था) तब बादशाह ने इन्हीं को (यद्यपि अमरसिंह इनसे अवस्था में बड़े थे) पिता का स्थानापन्न बनाकर खिलअत, जड़ाऊ जमधर, चार हजारी ४००० सवार का मन्सब, पैतृक रूप में राजा की पदवी, झंडा, डंका, सुनहले साज का घोड़ा और खास हलके का हाथी देकर कृपा दिखाई। १५वें वर्ष (सन् १६४१ ई०) में बादशाहज़ादा दारा शिकोह के साथ अच्छा खिल-अत, फूलकटार सहित जड़ाऊ जमधर, खास तवेले का सोने के साज़ सहित घोड़ा और खास हलके का हाथी प्रदान कर इन्हें कंधार प्रांत में नियुक्त किया। १८ वें वर्ष में (जब बादशाही सेना

---

१. इनके पिता गज सिंह की जीवनी १२ वें तथा भाई अमरसिंह की १४ वे शीर्षक में अलग दी गई है। इनका जन्म माघ व० ४ सं० १६८३ वि० को बुरहानपुर में हुआ था। यह १३ वर्ष की अवस्था में सं० १६९५ में गद्दी पर बैठे।

आगरे से लाहौर आईं तब) इन्हें आज्ञा मिली कि क़ुतुबुद्दीन ख़ाँ कोका के पुत्र शेख़ फरीद (जो आगरा प्रांत का अध्यक्ष नियत हुआ था) के पहुँचने तक वहाँ के अध्यक्ष रहें और फिर दरबार चले आवें। २१ वें वर्ष (सन् १६४७ ई०) मन्सब बढ़कर पाँच हज़ारी ५००० सवार तीन हज़ार सवार दोअस्पः सेह अस्पः का हो गया और उसी वर्ष के अंत में बचे हुए सवार भी दो अस्पः सेह अस्पः हो गए। २२वें वर्ष में यह बादशाहज़ादा मुहम्मद औरंगजेब बहादुर के साथ कंधार के सहायतार्थ (जिसे क़ज़िलबाशों ने घेर लिया था) भेजे गए; पर बादशाही आज्ञा से काबुल में ठहर गए। (जब उस वर्ष के अंत में बादशाह स्वयं काबुल आए तब) इन्होंने अपनी घुड़सवार सेना (जो दो सहस्र थी) दिखलाई[1]। २६वें वर्ष इनका मन्सब बढ़कर छः हजारी ५००० सवार दोअस्पः सेह अस्पः का हो गया। २९ वें वर्ष (सन् १६५५ ई०) में मंसब बढ़कर छः हज़ारी ६००० सवार पाँच हज़ार सवार दोअस्पः सेह अस्पः का हो गया और महाराजा की पदवी मिली। २९ वें वर्ष (इस कारण कि इनका विवाह सर्वदेव सिसोदिया की पुत्री से निश्चित हुआ था) इन्हें आज्ञा मिली कि मथुरा जाकर इन रस्मों को निपटा कर स्वदेश जोधपुर जायँ। ३२ वें वर्ष के आरम्भ में (जब मुरादबख़्श के अयोग्य कार्यों

---

१. २३ वें वर्ष शाहजहाँ की आज्ञा से जसवंतसिंह ने जैसलमेर के असल अधिकारी सबलसिंह की सहायता कर उन्हें उनकी पैतृक गद्दी पर बैठाया।

तथा शाहजहाँ को देखने के लिये बादशाहज़ादा मुहम्मद औरंगज़ेब बहादुर के दक्षिण से आने का समाचार आने पर) दारा शिकोह ने अपने कार्य में विघ्न पड़ते देखकर दो विश्वासपात्र सेनापतियों के अधीन दो सेनाओं को दोनों शाहज़ादों का रास्ता रोकने के लिये भेजने का विचार किया। इसलिये महाराज का मन्सब सात हज़ारी।७००० सवार पाँच हज़ार सवार दो अस्पः सेह अस्पः करके तथा खानजहाँ बहादुर शायस्ता खाँ के स्थान पर मालवा की सूबेदारी, सौ घोड़े, जिनमें से एक का साज़ सोने का था, चाँदी के साज़ सहित हाथी, हथिनी और एक लाख रुपया देकर विदा किया। ये साथियों सहित उज्जैन पहुँचे; और औरंगज़ेब की सेना के पहुँचने पर यद्यपि बादशाह-ज़ादा ने बहुत नम्रता दिखलाई, पर इन्होंने सिवा युद्ध करने के कुछ नहीं माना। अंत में युद्ध होने पर राजपूतों के मारे जाने और दूसरों के भागने पर इन्होंने साहस छोड़ कर भागना ही उचित समझा[१]। औरंगजेब के राज्यारंभ के प्रथम वर्ष में (जब बादशाही सेना सतलज नदी के किनारे तक पीछा करती पहुँच गई थी तब) क्षमा प्राप्त होने पर (जो बादशाही सरदारों की प्रार्थना पर हुई थी) इन्हें बादशाह से भेंट करने का अवसर मिला। बादशाह ने समय के

---

१. सन् १६५८ ई० में प्रसिद्ध धर्मत युद्ध हुआ जिसमें मुसलमान सरदारों के औरंगजेब से मिलकर भाग जाने से जी तोड़ लड़ने पर भी जसवंतसिंह को युद्ध से विमुख होना पड़ा था। इस विजय से औरंगज़ेब की धाक जम गई और वह दारा शिकोह के समकक्ष समझा जाने लगा था।

अनुसार इनकी नियुक्ति की कि पीछा करने का कार्य समाप्त होने तक ये दिल्ली में रहें[1]। शुजाअ के युद्ध में ये सेना के दाहिने भाग में थे।

शाहजहाँ के प्रेमपात्र होने के कारण जब इनके साथ उस प्रकार का बर्ताव नहीं रहा, तब इनके चित्त में अप्रसन्नता काँटे की तरह खटकने लगी। यहाँ तक कि अदूरदर्शिता तथा दुस्साहस से शत्रु से बात चीत कर काम से हट गए और रात्रि में अपना स्थान खाली छोड़ कर अपनी सेना सहित देश को चल दिए। इस गड़बड़ में बादशाह-ज़ादा मुहम्मद सुलतान तथा बादशाही सरकार, सरदारों तथा सैनिकों के कुछ सामान भी नष्ट हुए और मनुष्यों में बड़ी घबराहट हुई[2]। शुजाअ के युद्ध से निपट कर बादशाह अजमेर चले। उस समय (बादशाह की ओर से कोई आशा न रहने पर) गुजरात की ओर से दारा शिकोह के आने का समाचार सुनकर अपने देश में भारी सेना एकत्र कर उससे बात चीत की। इसी समय मिरजा राजा

---

१. उस समय दारा पंजाब होता हुआ सिंध की ओर जा रहा था; इसलिए इस डर से कि यह कहीं उससे मिल न जायँ, जैसा कि इन्होंने पीछे से किया भी था, दिल्ली में रोक रखे गए।

२. खजवा युद्ध में इन्होंने शुजाअ से मिलकर औरंगजेब को परास्त करने का विचार किया था; पर समय पर शुजाअ के न पहुँचने से ये विफल रहे और अंत में केवल मुहम्मद सुलतान के तथा इनके रास्ते में पड़ते हुए सरदारों के खेमे आदि लूट कर दिल्ली को चल दिए।

जयसिंह (जो उपाय सोचने में संसार-प्रसिद्ध थे) की मध्यस्थता में क्षमाप्रार्थी होकर उसकी मित्रता से हाथ उठाया। वहीं से (कि बराबर दोष करने के कारण सामने आने का साहस नहीं रखते थे इससे) पुराना मन्सब, महाराजा की पदवी और अहमदाबाद की सूबेदारी एकाएक पाकर विश्वास-पात्र हुए[१]। ४थे वर्ष (सन् १६६१ ई०) में बादशाह की आज्ञा से अपनी कुल सेना सहित अमीरुल्उमरा शायस्ता खाँ के सहायतार्थ दक्षिण को चले। ५वें वर्ष गुजरात की सूबेदारी से अलग होकर दो तीन वर्ष दक्षिण में (कुछ दिन शायस्ता खाँ के साथ और बहुत दिनों तक बादशाह-ज़ादा मुहम्मद मुअज्ज़म के साथ, जो पूर्वोक्त खाँ के हटाए जाने पर उस प्रांत के प्रबंध के लिये नियत हुआ था) व्यतीत किए और यथाशक्ति शिवाजी के दमन में प्रयत्न किया। ७वें वर्ष के अंत में बुलाए जाने पर दरबार आए[२]। ९वें वर्ष जब बादशाह और ईरान के सुलतान शाह अब्बास द्वितीय के बीच की मैत्री शत्रुता में बदल गई, तब बादशाहज़ादा मुहम्मद मुअज्ज़म (जो युद्धार्थ बादशाही सेना के चलने के पहले बहुत सी

---

१. औरंगजेब ने खजवा युद्ध के इनके कृत्य से क्रुद्ध होकर इन्हें दंड देना चाहा था; पर जब इन्होंने दारा शिकोह को उभाड़ा, तब उसने जयसिंह के द्वारा इन्हें गुजरात की सूबेदारी देकर फिर अपनी ओर मिला लिया।

२. पूने में शायस्ता खाँ की दुर्दशा होने पर तथा इनके शिवा जी का कुछ पक्षपात करने का समाचार सुनकर औरंगजेब ने इन्हें बुला लिया था।

सेना के साथ काबुल में नियुक्त हुआ था) के साथ ये भी नियत किए गए। ईरान के सुलतान की मृत्यु का समाचार पहुँचने पर (बादशाह-ज़ादा आज्ञानुसार लाहौर से लौट आए तथा) ये भी साथ ही लौट आए। १०वें वर्ष यह बादशाह-ज़ादा मुहम्मद मुअज्ज़म के साथ दक्षिण को गये। १४वें वर्ष काबुल के पास जमरूद की थानेदारी मिलने पर वहाँ गए। २२वें वर्ष सन् १०८९ हि० में इनको मृत्यु हुई[1]। वैभव तथा सेना की संख्या की अधिकता से ये भारत के अच्छे राजाओं में गिने जाते थे। पर (सुख तथा प्रेम से पालन होने के कारण जीवन के एक ही ओर का दृश्य देखा था, इससे) दुनियादारी का ढंग नहीं था[2]। औरंगाबाद की सीमा के बाहर एक अच्छा पुरा और तालाब इनके नाम पर प्रसिद्ध है और पत्थर के मकानों के (जो तालाब पर बने हैं) चिह्न बचे हुए हैं। बड़े पुत्र पृथ्वी-सिंह इनकी जीवितावस्था में ही मर गए[3]। इनकी मृत्यु पर दो

---

१. पौष ब० १० सं० १७३५ वि० को ५२ वर्ष की अवस्था में जमरूद ही में इनकी मृत्यु हुई।

२. वास्तव में इनके स्वभाव में औद्धत्य की मात्रा अधिक थी और स्वार्थ के अनुसार समय देखकर राजनीति के धुरंधर ज्ञाताओं की तरह नहीं चलते थे। इसी से औरंगजेब इनसे सदा द्वेष मानता रहा।

३. राजकुमार पृथ्वीसिंह इनके एक मात्र होनहार पुत्र थे और यह बाहर जाते समय राज्य का प्रबंध इन्हें सौंप जाते थे। औरंगजेब ने इन्हें सन् १६६७ ई० में, जब ये केवल १४ वर्ष के थे, अपने पास बुलवाकर इनके दोनों हाथ पकड़ लिए और पूछा कि अब तुम क्या कर सकते हो?

पुत्र हुए जिनमें एक जल्द पिता के पास चला गया और दूसरा मुहम्मदी राज था जो मुसलमान बनाया जाकर बादशाही महल में पाला गया[१]। एक अन्य पुत्र (कहते हैं कि उनके जातिवालों ने बहुत प्रयत्न के साथ देश में लाकर पाला था) अजीतसिंह थे जिनका वृत्तांत इस ग्रंथ में अलग दिया गया है।

राजकुमार ने उत्तर दिया कि एक हाथ पकड़ने से जब शरणागत के सब मनोरथ सिद्ध होते हैं, तब दोनों हाथ पकड़ने पर क्या नहीं हो सकता। टाड लिखते हैं कि बादशाह ने ईर्ष्या से कहा कि यह दूसरा खुत्तन है। औरंगजेब जसवंतसिंह को खुत्तन के नाम से याद किया करता था। इसके अनंतर पृथ्वीसिंह को विषाक्त खिलअत दिया गया, जिससे बीमार होने पर कुछ ही समय बाद इनकी मृत्यु हो गई।

१. जसवंतसिंह की मृत्यु के तीन मास बीतने पर दो पुत्र दो रानियों से जमरुँद ही में उत्पन्न हुए थे, जिनका नाम अजीतसिंह और दलथंभन रखा गया था। इनके सरदार इन दोनों को लेकर दिल्ली आए। बादशाह ने इनके डेरों पर पहरा कर दोनों कुमारों को अपनी रक्षा में लेना चाहा। सरदारों इनकी कुटिल नीति समझ कर दोनों कुमारों को गुप्त रूप से मारवाड़ की ओर भेज दिया। मार्ग में दलथंभन जी की मृत्यु हो गई और अजीतसिंह सकुशल मारवाड़ पहुँच गए। दिल्ली का कोतवाल फौलाद खाँ एक लड़के को पकड़ कर अजीतसिंह के नाम से औरंगजेब के सामने ले गया जिसने उसे मुसलमान बना कर उसका मुहम्मदी वख्श नामकरण किया था। कुछ दिनों के बाद उसकी मृत्यु हो गई। अजीतसिंह का वृत्तांत अलग ग्रंथ के आरंभ में प्रथम शीर्षक में दिया गया है।

२६—जादोराव कानसटिया

यह अपने को यदुवंशी कहता था जिस वंश में प्रसिद्ध कृष्ण-जी हुए हैं। यह निज़ामशाही राज्य का एक सरदार था। जहाँगीर के १६ वें वर्ष में जब शाहजहाँ ने दूसरी बार दक्षिण के विद्रोहियों को (जिन्होंने बलवा कर बादशाही राज्य में लूट मार करना आरंभ कर दिया था) दमन करने जाकर अपनी तीव्र बुद्धि तथा तलवार के बल से उस कार्य को पूर्ण किया, तब जादोराव (जो दक्षिणी सेना का हरावल था) सौभाग्य से शाहज़ादे की सेवा में आकर पाँच हज़ारो ५००० सवार का मन्सब पाकर सम्मानित हुआ। पुत्र, पौत्र और सम्बन्धियों के मन्सबों को मिला कर कुल मन्सब चौबीस हज़ारी, १५००० सवार तक पहुँच गया था। दक्षिण में जागीर पाकर उस प्रांत के सूबेदारों की अच्छी सहायता करता रहा और बराबर बादशाही सेवा में रहा।

शाहजहाँ के जलूस के ३रे वर्ष (सन् १६२९ ई०) में जब बुरहानपुर में शांति स्थापित हो गई थी, तब जादोराव सेवा छोड़ कर पुत्रादि सहित निज़ामशाही राज्य में चला गया। उसने यह जानकर (कि यह स्वामिद्रोही है) यह विचार किया कि इसे हाथ में लाकर क़ैद करे और इसलिये उसे अपने यहाँ बुलाया। उन

लोगों का दुर्भाग्य था कि वे निःशंक होकर चल पड़े। एकाएक घात में लगी हुई सेना उनपर टूट पड़ी और उन्हें बाँधने लगी। इन लोगों ने बँध जाना ठीक न समझ तलवारें खींचीं और दोनों ओरवाले भिड़ गए। जादोराव अपने दो पुत्र अचल और राघो तथा युवराज पौत्र यशवंतराव के साथ मारा गया[1]। बचे हुए मनुष्य[2] उसकी स्त्री करजाई (जो उस हानि उठाए हुए झुंड के कार्यों को देखती थी) के साथ दौलताबाद से अपने देश सिंघखेड़ (जो परगना जालनापुर[3] के पास बरार की सीमा पर है और जहाँ जादोराव ने दुर्ग बना लिया था) पहुँचकर दुर्ग में जा बैठे। निज़ाम शाह ने उन्हें मिलाने का बहुत प्रयत्न किया, पर उन्हें न समझा सका और वे बड़ी लज्जा के साथ बादशाह के यहाँ प्रार्थी हुए। वहाँ (कि क्षमा करना बड़े बादशाहों का स्वभाव है) उन लोगों का भारी दोष क्षमा हो गया और वे फिर से नौकरी में ले लिए गए। दक्षिण के अध्यक्ष आज़म खाँ को (जो बालाघाट में खानेजहाँ लोदी का दमन करने में व्यस्त था) फर्मान भेजा गया। पूर्वोक्त खाँ ने दत्त जी के द्वारा (जो जादोराव के सब कार्यों की देख भाल करता था) उन लोगों को सम्मान सहित बुलाकर प्रत्येक के लिये अच्छा मन्सब नियत किया।

---

१. बादशाहनामा भा० १, पृ० ३०८ से यह वृत्त लिया गया है। फारसी अक्षरों के कारण अचल को उजला और यशवंत को बसवंत पढ़ा गया है। (इलि० डा०, जि० ७, पृ० १०–११)

२. इसमें इसका भाई जगदेव और पुत्र बहादुर जी भी थे।

३. औरंगाबाद के पूर्व केवल जालना नाम से प्रसिद्ध है।

बादशाह के दरबार से इन मन्सबों पर नियुक्ति तथा व्यय के लिये एक लाख तीस हज़ार रुपया पुरस्कार, दक्षिण, बरार और खानदेश प्रांतों में जागीर और जादोराव को पहले के महाल की बहाली दी गई। ४ थे वर्ष जादोराव के पुत्र बहादुर के दरबार आने पर पाँच हज़ारी ५००० सवार का मन्सब, झंडा और डंका मिला। जादोराव के भाई जगदेवराव को चार हज़ारी ४०·० सवार का मन्सब, झंडा और डंका मिला। पतंगराव को तीन हज़ारी १५०० सवार का मन्सब (जो पहले उसके मारे गए भाई जसवंत राव को मिला था) और जादोराव की पदवी[१] (जो उसके दादा का नाम था) मिली। बेन्दजी[२] को दो हज़ारी १००० सवार का मन्सब (जो उसके मृत पिता अचल को प्राप्त था) मिला। ५ वें वर्ष जगदेव राव मर गया; और जब ८वें वर्ष बहादुर जी की भी मृत्यु हो गई, तब उसके पुत्र दत्ताजी को तीन हज़ारी १००० सवार का मन्सब मिला। आलमगीर के समय यह दिलेर खाँ के साथ मराठों के युद्ध में मारा गया। उसके पुत्र को जगदेवराव की पदवी और अच्छा मन्सब मिला। इसके अनन्तर उसके पुत्रों में से एक मानसिंह मन्सूर खाँ की सूबेदारी के समय थोड़ी सेना के साथ औरंगाबाद की रक्षा तथा अध्यक्षता पर नियुक्त हुआ। इसने तालाव पर एक नया गृह बनवाया। इसका दूसरा

१. जब अमीरुल् उमरा शायस्ता खाँ ने शिवा जी पर चढ़ाई की, तब यह भी साथ था और सूबा विजय होने पर यह उस स्थान का अध्यक्ष बनाया गया।

२. पाठा० विट्ठो जी

भाई रघू जगदेवराय के साथ वहाँ पहुँचा। जिस समय प्रसिद्ध शिवाजी के पिता शाहजी निज़ाम-शाही जादोराय का दामाद हुआ, उस समय इस गोत्रवाले मध्यस्थ थे। वर्तमान राजा साहू की बहिन का विवाह जगदेवराय से निश्चित हुआ। मुहम्मद शाही राज्य के छठे वर्ष में (११३६ हि०, सन् १७२३ ई०) उस युद्ध में (जो निज़ामुल्मुल्क आसफ़जाह और हैदराबाद के नाज़िम मुबारिज़ खाँ के बीच उसकी जागीर के पास शकरखेरा में हुआ था) इस पक्ष को छोड़कर मुबारिज़ खाँ की ओर चला गया और युद्ध में मारा गया[1]। उस दिन से उनमें से किसी को दूसरा मन्सब या जागीर नहीं दी गई। उसका पुत्र मानसिंह (जो राजा साहू का भांजा था) अपने चचेरे भाइयों के साथ सिंधखेड़ में सरकार दौलताबाद की जमींदारी से (जो पहले से इनके पूर्वजों को प्राप्त थी) दिन व्यतीत करता था और देश-प्रेम के कारण कहीं नहीं जाता था। अंत में आय की कमी से लाचार होकर चला गया। यह सिंधखेड़ परगना औरंगाबाद से तीस कोस पर बरार प्रांत को मेहकर सरकार के पास है जो जादोराव का प्राचीन स्थान था। इससे छः सात कोस पर देवलगाँव[2] राजा नामक परगना है जहाँ जादोराव ने दृढ़ दुर्ग बनवाने और उसे बसाने का साहस किया। उस समय बस्ती अच्छी थी, क्योंकि उसके उत्तर में प्रायः ही उजाड़ बस्तियाँ हैं।

१. खफी खाँ भा० २, पृ० ६४९—६४।

२. बुरहानपुर से लगभग तीस कोस दक्षिण।

२७--महाराव जानोजी जसवंत बिनालकर[१]

ये राव रंभा के पुत्र थे जो औरंगज़ेब के समय अच्छे मन्सब सहित दक्षिण में नियुक्त था। (जब साहू भोंसला से दो बार युद्ध हो चुका तब) इन्होंने संधि होने पर हुसेन अली ख़ाँ से उसकी शिकायत की। उसने इनके कहने पर उसे (राव रंभा को) क़ैद कर लिया। (जिस समय निज़ामुलमुल्क आसफ़जाह बहादुर मालवा से दक्षिण को रवाना होकर नर्मदा पार उतरे, उस समय) मुहम्मद अनवर ख़ाँ की प्रार्थना पर छुट्टी पाकर सहायता के लिये बुरहानपुर में नियत हुए। इसने (कि हृदय में चोट थी) मुहम्मद ग़ियास ख़ाँ बहादुर को मध्यस्थ कर पूर्वोक्त सरदार से भेंट की। आलम अलीख़ाँ[२] और मुबारिज़ ख़ाँ एमादुलमुल्क[३] के युद्ध में अच्छा प्रयत्न किया जिससे सात

---

१. शुद्ध शब्द निंबालकर है।

२. अमीरुलउमरा हुसेन अली खाँ सैयद तथा उसके बड़े भाई का दिल्ली में फर्रुख़सियर के समय से प्रभुत्व बहुत बढ़ गया था और इन दोनों से दिल्ली के सम्राट् मुहम्मद शाह तथा अन्य सरदार बिगड़े हुए थे। निज़ामुलमुल्क भी उन्हीं में से एक था और अवसर देख कर इसने मालवा जाने के बहाने दक्षिण का रास्ता लिया। दक्षिण की सूबेदारी पर हुसेन अली खाँ का भतीजा आलम अली खाँ नियत था जिसे परास्त कर सन् १७२० ई० में आसफजाह ने वहाँ अपना अधिकार कर लिया।

३. मुबारिज़ खाँ निज़ामुलमुल्क की सहायता से ऊँचे मन्सब को

हज़ारी ७००० सवार का मन्सब मिला। उसकी मृत्यु पर जानोजी को योग्य मन्सब तथा पिता के महाल जागीर में मिले। जागीर-दारी की योग्यता अच्छी थी। अच्छी बस्ती बसा कर और शिक्षित सेना एकत्र कर युद्धों में अच्छा साहस दिखलाया। स्वभाव ही से यह बहुत नीति-कुशल था, इससे दक्षिण के मरहठे सरदारों की बातचीत में बराबर मध्यस्थ रहता था। नासिरजंग[1] शहीद के समय इसे जसवंत की पदवी मिली। फुलझरी के युद्ध में पूर्वोक्त सरदार के साथ अच्छा कार्य किया। यद्यपि रम्मालों की भाषा में उसका मारा जाना लिखा था, पर वह सन् ११७६ हि०[2] में मर गया। बड़ा पुत्र आनंदराव जयवंत (कि उसमें यौवन का चिह्न प्रगट हो रहा था) उसी के सामने मर गया। अब उसके दूसरे पुत्र महाराव और जयवंत के पुत्र रावरंभा पैतृक जागीर पाकर सेवा करते रहे।

पहुँचा था और हैदराबाद का अध्यक्ष था। निज़ामुलमुल्क प्रधान मंत्री होकर दिल्ली गया था, पर सन् १७२४ ई० में वहाँ से लौट आया। बाद-शाह के इशारे से मुबारिज़ खाँ उसी से लड़ गया और मारा गया।

१. जब नवाब आसफजाह की सन् १७४८ ई० में मृत्यु हुई, तब नासिर जंग निज़ामुद्दौला गद्दी पर बैठे। मुज़फ़्फ़र जंग से युद्ध होने के बाद यह पौंडिचेरी (फूलझरी) होता हुआ अर्काट गया जहाँ पठानों के फ़रांसीसियों से मिल जाने के कारण उनके षड्चक्र का शिकार हुआ। (मैलेसन कृत हिस्टरी 'आव द फ्रेंच इन इंडिया' पृ० २४२-२४८)

२. सं० १८१९ वि० (सन् १७६२ ई०)।

२८--जुगराज उपनाम विक्रमाजीत

यह राजा जुझारसिंह बुँदेला का पुत्र[1] था। शाहजहाँ के प्रथम वर्ष में इसे हज़ारी १००० सवार का मन्सब मिला। जिस वर्ष ख़ानेजहाँ लोदी आगरे से भाग कर बुँदेलों के राज्य में पहुँचा और वहाँ से देवगढ़ होता हुआ निज़ामुल्मुल्क के राज्य की सोमा में चला गया, पर बादशाही सेना (जो पीछा कर रही थी) उस तक नहीं पहुँच सकी, उस वर्ष यह बादशाह के कोप-भाजन हुए क्योंकि उसका बिना किसी रुकावट के निकल जाना तथा शाही सेना का न पहुँचना इन्हीं के मार्ग-प्रदर्शन का दोष था[2]। ४थे वर्ष (जब ख़ानेजहाँ लोदी दरिया ख़ाँ रुहेला के साथ दक्षिण से मालवा पहुँच कर कालपी जाने के विचार से फुर्ती के साथ बुँदेलों के राज्य में पहुँचा तब) इसने अपने पिता की बद-नामी और लज्जा मिटाने के लिये झट उसका पीछा किया। चंदा-वल तक (जिसका सरदार दरिया ख़ाँ था) पहुँचकर लड़ने लगा

---

१. इनका जन्म सं० १६६६ वि० में हुआ था। ना० प्र० पत्रिका सं० १९७७ पृ० ११६।

२. दूसरे वर्ष सन् १६२९ ई० में खानेजहाँ दक्षिण गया था। बादशाहनामा भा० १, पृ० २७४-५ में स्पष्ट ही यह दोषारोपण विक्रमाजीत पर किया गया है।

जिसमें दरिया खाँ गोली खाकर मर गया। बुँदेलों ने खाने जहाँ समझ कर उसे घेर लिया और विक्रमाजीत ने उसका सिर काट कर बादशाह के पास भेज दिया। इस प्रयत्न का पुरस्कार भी जल्दी मिला। मन्सब बढ़कर दो हजारी २००० सवार का हो गया और जुगराज की पदवी, खिलअत, जड़ाऊ तलवार, डंका और निशान पाया। फिर पिता के बदले दक्षिण जाकर खान-खानाँ और खानेज़माँ के साथ अच्छा कार्य कर कभी मध्य और कभी चंदावल में नियत होता था। दौलताबाद और परेंदा के दुर्गों के घेरे में मोर्चों की रक्षा और शत्रुओं के धावों में बहुत वीरता दिखलाई। ८वें वर्ष पिता के लिखने पर (जिस पर चौरागढ़ के राजा भीमनारायण को मारने के कारण शंका की गई थी) देश लौट गया। बुरहानपुर के सूबेदार खानेदौराँ ने इसके भागने का समाचार सुनकर पीछा किया। कुछ आदमी मारे गए और कुछ घायल हुए, पर यह पिता से जा मिला। बादशाही सेना के वहाँ पहुँचने पर पिता के साथ यह भागता फिरा (इसका विवरण[1] जुझारसिंह के वृत्तांत में लिखा गया है)। सन् १०४४ हि० (सन् १६३४ ई०) में यह मारा गया। इसका पुत्र दुर्जन साल बादशाही सेना द्वारा पकड़ा गया।

---

१. विस्तृत वर्णन के लिए बादशाहनामा भाग २, पृ० ९४–१०२ देखिए।

२१—राजा जुझारसिंह बुँदेला

ये राजा वीरसिंह देव के पुत्र थे। पिता की मृत्यु पर राजा की पदवी सहित योग्य मन्सब तक उन्नति करते हुए जहाँगीर के राजत्व के अंतिम काल में चार हज़ारी ४००० सवार का मन्सब प्राप्त कर लिया था। शाहजहाँ के राजत्व के प्रथम वर्ष (सन् १६८४ वि०, सन् १६२७ ई०) सेवा में आकर ख़िलअत, फूल-कटार: सहित सड़ाऊ जमधर, डंका और झंडा पाने से सम्मानित हुआ। जब शाहजहाँ के समय में राज-कार्यों की अधिक जाँच होने लगी तब यह (जिसने अपने पिता का संचित बहुत सा धन बिना परिश्रम के पाया था) शंका[1] के कारण अपने दृढ़ दुर्गों और जंगलों (कि उसके राज्य में थे) का विश्वास करके कुछ दिनों के अनंतर अर्द्ध रात्रि को आगरे से भाग कर ओड़छा चला

---

१. डो लिखते हैं कि 'आगरे आने पर उसे पता लगा कि शाही ख़ज़ाने के रजिस्टर में वह कर, जो उसके पूर्वज तैमूरी वंश को देते आए थे, बढ़ाया गया है। उसे घटाने के लिए प्रार्थना-पत्र देने के बदले बिना बादशाह की आज्ञा के ही भाग गए।' (जि० ३. पृ० १०८)। ख़फ़ी ख़ाँ लिखता है कि जुझार यह जानकर कि शाहजहाँ जहाँगीर के अंतिम वर्षों में उसके पिता का उसकी लूट-मार के लिये नाश करना चाहता था, डर गया और भाग गया (जि० १. पृ० ४०६)।

गया और वहाँ दुर्गों को दृढ़ करने तथा सेना एकत्र करने में लगा। जब बादशाह को यह समाचार मिला तब महाबत खाँ खानखानाँ और दूसरे सरदारों को उस पर नियुक्त किया तथा मालवा के सूबेदार खानेजहाँ लोदी को आज्ञा भेजी कि उस प्रांत की सेना के साथ चँदेरी के रास्ते से (जो ओड़छा के उत्तर ओर है) उस राज्य में जाय। अब्दुल्ला खाँ बहादुर को आज्ञा भेजी गई कि अपनी जागीर कन्नौज से बहादुर खाँ रुहेला आदि सरदारों के साथ ओड़छा की ओर पश्चिम से जाय। जब तीनों सेनाएँ पूर्वोक्त दुर्ग के पास पहुँच कर युद्ध करने लगीं और अब्दुल्ला खाँ, बहादुर खाँ और पहाड़सिंह बुँदेला के प्रयत्न से दुर्ग एरिज[1] टूटा, तब जुझार सिंह ने निरुपाय होकर महाबत खाँ की शरण आकर क्षमा के लिये प्रार्थना की। बादशाह ने इसे मान लिया। वह दूसरे वर्ष पूर्वोक्त खाँ के साथ दरबार में आया। खाँ उसके गले में दुपट्टा डालकर और उसके दोनों सिरों को पकड़ कर सेवा में लाया। एक हजार अशर्फी भेंट और पंद्रह लाख रुपया और चालीस हाथी (जो दंड के रूप में निश्चित हो चुके थे) सामने लाने पर लिए गए।

जब शाहजहाँ ३रे वर्ष खानेजहाँ लोदी को दंड देने और निज़ामुलमुल्क के राज्य को नष्ट करने (जिसने खानेजहाँ को शरण दी थी) के लिये दक्षिण गया और तीन सेनाएँ उस प्रांत

---

१. एरिच या ऐरछ बेतवा नदी के तट पर झाँसी से २० कोस पूर्व और उत्तर में है।

पर अधिकार करने के लिये नियत कीं, तब यह दक्षिण के सूबेदार आज़म खाँ के साथ नियुक्त हुआ और इसे राजा की पदवी प्राप्त हुई। इसके अनंतर (जब दक्षिण की सेना का सेनाध्यक्ष यमीनुद्दौला हुआ तब) यह दूसरे मन्सबदारों के साथ चंदावल में नियुक्त हुआ। जब दक्षिण के सूबे महाबत खाँ के अधीन हुए, तब कुछ दिन खाँ के साथ रहकर छुट्टी ले कर देश गया और अपने पुत्र विक्रमाजीत को सेना सहित वहीं छोड़ गया। देश पहुँचने पर ८ वें वर्ष उपद्रवी स्वभाव के कारण चौरागढ़ (कि गढ़ा प्रांत की राजधानी है) के भूस्वामी भीमनारायण[१] पर चढ़ाई की और प्रतिज्ञा करके उसको बाहर निकाल कर उसके साथवालों के झुंड सहित मरवा डाला। दुर्ग पर कोष और सामान सहित अधिकार कर लिया। जब यह समाचार बादशाह को मिला तब आज्ञापत्र गया कि उस प्रांत को बादशाह के लिये छोड़ दे या अपने राज्य से उतनी ही भूमि बदले में छोड़ दे और उसके धन में से दस लाख रुपया भेज दे। उसने वकील के लिखने से यह जानकर अपने पुत्र को (जो दक्षिण में था) लिखा कि भागकर चले आओ। तब तीन सेनाएँ सैयद खानेजहाँ बारहः, फ़ीरोज़ जंग बहादुर और खानेदौराँ की अधीनता में उसे

---

१. अब्दुलहामिद भी गोंड़ राज का यही नाम लिखता है। (बादशाहनामा भाग २, पृ० ६५)। इम्पीरियल गज़े० जि० १८. पृ० ३८७ में प्रेमनारायण नाम लिखा है। चौरागढ़ मध्य प्रदेश के नृसिंहपुर ज़िले में गाडरवाड़ा स्टेशन से पाँच कोस दक्षिण और पूर्व है।

दंड देने के लिये नियत हुईं। इन लोगों के सहायतार्थ सुलतान औरंगज़ेब बहादुर भी शायस्ता ख़ाँ आदि के साथ भेजे गए। जब बादशाही सेनाएँ पास पहुँचीं तब पहिले ओड़छा से धामुन[1] (जो उसके पिता का बनवाया हुआ था) और फिर वहाँ से चौरागढ़ गया। जब कहीं नहीं ठहर सका तब निरुपाय होकर सब सामान लिए हुए देवगढ़ गया। बादशाही सेनाएँ[2] भी पीछा करती हुई पहुँचीं और फिर लड़ाई हुई। बहुत से सिक्के और जड़ाऊ सामान मुसलमानों के हाथ आया। वह स्वयं अपने बड़े पुत्र विक्रमाजीत के साथ जंगल में छिपा था। गोंड़ों ने (जो वहाँ बसे थे) इन दोनों को सन् १०४४ ई० में मार डाला। ख़ाने-दौराँ यह समाचार सुनकर दोनों के सिर काटकर फीरोज जंग के पास लाया। पूर्वोक्त ख़ाँ ने बादशाह के पास भेजा और उसके कोष से जो एक करोड़ रुपया प्राप्त हुआ था, बादशाह के कोष में भेजा गया[3]।

---

१. धसान नदी के पास सागर नाम से १२ कोस उत्तर है।

२. बादशाही सेना में देवीसिंह बुँदेला, सिसोदिया, राठौड़, कछवाहा और हाड़ा जाति की राजपूत सेनाएँ भी सम्मिलित थीं।

३. जुझारसिंह तथा ओड़छा के अन्य राजाओं का विस्तृत वर्णन जानने के लिये नागरी-प्रचारिणी पत्रिका, भा० ३, अंक ४ देखिए।

३०—राजा जैराम बडगूजर

राजा अनूपसिंह प्रसिद्ध नाम अनीराय सिंहदलन[1] का यह पुत्र था। पिता के सामने योग्य मन्सब सहित काम पर नियत था। उसकी मृत्यु के अनन्तर शाहजहाँ के ११ वें वर्ष (सन् १६३७ ई०) में खिलअत, राजा की पदवी और मन्सब बढ़कर हज़ारी ८०० सवार का मन्सब मिला। १२वें वर्ष २०० सवार मन्सब में बढ़ाए गए। १३वें वर्ष शाहज़ादा मुरादबख़्श के साथ (जो भीरा में ठहरने गया था और वहाँ से आज्ञानुसार काबुल गया) बिदा हुआ। १४ वें वर्ष में फिर उसी शाहज़ादे के साथ काबुल गया। १९ वें वर्ष में उसका मन्सब बढ़कर डेढ़ हजारी १५०० सवार का हो गया और यह शाहज़ादा मुरादबख़्श के साथ बलख़ बदख़्शाँ की चढ़ाई पर गया। बलख़ विजय होने पर यह बहादुर ख़ाँ और एसालत ख़ाँ के साथ वहाँ के राजा नज़र मुहम्मद ख़ाँ का पीछा करने पर नियत हुआ। २० वें वर्ष में यह मन्सब के दो-हज़ारी १५०० सवार तक बढ़ने पर सम्मानित हुआ। बलख़ के आसपास उज़बेगों का दमन करने और अलअमानों का नाश करने में अच्छा कार्य्य किया। २१ वें वर्ष १०५५

---

१. इनका वृत्तांत अलग ३२ शीर्षक पर दिया गया है।

हि० (सन् १६४७ ई०) में वहीं उसकी मृत्यु हो गई। बाद-शाह ने यह समाचार सुनकर उसके पुत्र अमरसिंह को राजा की पदवी और मन्सब में उन्नति करके आपसवालों में परि-गणित किया।

३१–राजा टोडरमल

यह लाहौरी[१] खत्री थे। यह समझदार लेखक और वीर सम्मतिदाता थे। अकबर की कृपा[२] से बड़ी उन्नति करके चार हज़ारी मन्सब और अमीरी और सर्दारी की पदवी तक पहुँच

---

१. राजा टोडरमल जाति के खत्री थे और इनका अल्ल टण्डन था। इनका जन्मस्थान अवध प्रांत के सीतापुर ज़िले के अंतर्गत तारापुर नामक ग्राम है और यद्यपि कुछ इतिहासज्ञ लाहौर के पास चूमन गाँव को इनका जन्मस्थान बतलाते हैं, पर वहाँ के भग्नावशेष ऐसे ऐश्वर्य्य का पता देते हैं जो इनके माता पिता के पास नहीं था। इनके पिता इन्हें बचपन ही में छोड़कर स्वर्ग सिधारे थे और इनकी विधवा माता ने किसी प्रकार इनका पालन पोषण किया था। कुछ बड़े होने पर माता की आज्ञा से यह दिल्ली गए और सौभाग्य से वहाँ नौकरी लग गई।

२. अकबर की सेवा में आने के पहिले यह शेर शाह की नौकरी कर चुके थे। तारीख़े-ख़ानेजहाँ लोदी में लिखा है कि शेर शाह ने इन्हें दुर्ग रोहतास बनवाने पर नियुक्त किया था; पर गक्खर जाति एका करके किसी को भी काम करने में बाधा डालती रही। टोडरमल ने जब यह वृत्तांत शेर शाह से कहा, तब उसने उत्तर दिया कि धन के लोभी बादशाहों की आज्ञा पूरी नहीं कर सकते। इस पर इन्होंने एक एक पत्थर ढोने की एक एक अशर्फी मज़दूरी लगा दी जिस पर इतनी भीड़ हुई कि आप से आप मज़दूरी अपने भाव पर आ लगी। जब दुर्ग तैयार हो गया तब शेर शाह ने इनकी बहुत प्रशंसा की थी।

गए। अठारहवें वर्ष में[1] (कि गुजरात प्रांत बादशाह के आने से विद्रोहियों के उपद्रव से साफ़ हो गया था) राजा को कोष विभाग को जाँच करने के लिये छोड़ गये कि न्यायपरता के साथ और कुछ निश्चित करें, उसी प्रकार की वेतन-सूची काम में लाई जाय। १९वें वर्ष (सं० १६३१ वि० सन् १५७४ ई०) में यह पटना विजय के अनंतर झंडा और डंका मिलने से सम्मानित होकर मुनइम खाँ खानख़ानाँ की सहायता के लिये बंगाल में नियुक्त हुए। यद्यपि सेनापतित्व और आज्ञा ख़ानख़ानाँ के हाथ में थी, पर सैन्य-संचालन, सैनिकों को उत्साह दिलाने, साहसपूर्वक धावें

---

१. अकबर के राज्य के ९वें वर्ष सन् १५६४ ई० में इन्होंने मुज़फ़्फ़र ख़ाँ की अधीनता में कार्य आरंभ किया था तथा इसके दूसरे वर्ष अली-कुली ख़ाँ खानेज़माँ के विद्रोह करने पर यह मीर मुईज़ुलमुल्क के सहायतार्थ लश्कर ख़ाँ मीरबख़्श के साथ सेना लेकर गए थे। युद्ध में बादशाही सेना परास्त हुई और खानेजमाँ का भाई बहादुर ख़ाँ विजयी हुआ। (बदायूनी भा० २, पृ० ८०–८१ और तबक़ाते-अकबरी, इलि० डा०, भा० ५, पृ० ३०३–४)। १७वें वर्ष सन् १५७२ ई० में गुजरात की चढ़ाई पर यह अकबर के साथ गए थे और बादशाह ने इन्हें सूरत दुर्ग देख कर यह निश्चय करने भेजा था कि वह दुर्ग टूट सकता है या अभेद्य है। बदायूनी भा० २, पृ० १४४ में लिखता है कि इनकी राय में वह अजेय नहीं था और उसके जीतने के लिये बादशाह के वहाँ जाने की भी विशेष आवश्यकता नहीं थी। अठारहवें वर्ष के आरंभ में यह पंजाब भेजे गए कि वहाँ के प्रबंध में अपने अनुभव से सूबेदार हुसेन कुली ख़ाँ खानेजहाँ को सहायता पहुँचावें। इसके बाद से मआसिरुल्उमरा में टोडरमल का जीवनवृत्त आरंभ होता है।

करने और विद्रोहियों तथा शत्रुओं को दंड देने में राजा ने बड़ी वीरता दिखलाई। दाऊद खाँ किर्रानी के युद्ध में (जब ख़ाने आलम हरावल में मारा गया और ख़ानख़ानाँ कई घाव खाकर भाग गया तब भी) राजा दृढ़ता से डटा रहा और बहुत प्रयत्न करके ऐसे पराजय को विजय में परिणत कर दिया। ठीक युद्ध में (कि शत्रु विजय होने के घमंड में थे) ख़ाने आलम और ख़ानख़ानाँ के बुरे समाचार लाए गए, जिस पर राजा ने बिगड़ कर कहा कि 'यदि ख़ाने आलम मर गया तो क्या शोक, और ख़ानख़ानाँ मर गया तो क्या डर ? बादशाह का इकबाल तो हमारे साथ है !' इसके अनंतर वहाँ का प्रबंध ठीक होने पर बादशाह के पास पहुँच कर पहिले की तरह माली और देश के कार्य्यों में लग गया[१]।

जब ख़ानेजहाँ ने बंगाल की सूबेदारी पाई तब राजा भी उसके साथ नियुक्त हुए। इस बार इनके सौभाग्य से वह प्रांत हाथ से जाकर फिर अधिकार में चला आया और इन्होंने दाऊद खाँ को पकड़ कर मार डाला। २१वें वर्ष में उस प्रांत की लूट को (जिनमें तीन चार सौ भारी हाथी थे) बादशाह के सामने लाए[२]। गुजरात प्रांत का प्रबंध ठीक नहीं था और वज़ीर खाँ

---

१. तबकातें अकबरी (इलि० डाउ०, भा० ५, पृ० ३७२–३९०) में विस्तृत विवरण दिया हुआ है।

२. तबकात में लिखा है कि २२वें वर्ष के अंत में ५०० हाथी लेकर दरबार आए थे। इलि० डा०, भा० ५, पृ० ४०२।

की ढिलाई से वहाँ गड़बड़ी और अशांति मची थी, इसलिये राजा उस प्रांत का प्रबंध करने के लिये नियत किया गया। यह बुद्धिमानी, कार्य्यदक्षता, वीरता और साहस के साथ सुलतानपुर और नदरबार से बड़ौदा और चंपानेर तक का प्रबंध ठीक करके अहमदाबाद आए और वज़ीर खाँ के साथ न्याय करने में तत्पर हुए। एकाएक मेहर अली के बहकाने से मिर्ज़ा मुज़फ्फ़र हुसेन का बलवा मच गया। वज़ीर खाँ ने चाहा कि दुर्ग में जा बैठे; पर राजा टोडरमल ने साहस करके उसे युद्ध करने पर उत्साहित किया और २२वें वर्ष में ध्वादर[1] के पास युद्ध की तैयारी की। वज़ीर खाँ ने सैनिकों के भागने से लड़ मरना चाहा और पास ही था कि वह काम आ जाता, पर राजा (कि बाएँ भाग का सरदार था) अपने विपक्षी को भगा कर सहायता को पहुँचा और एक बार ही घमंडियों के युद्ध का ताना बाना टूट गया। मिर्ज़ा जूनागढ़ की ओर भागा। उसी वर्ष भाग्यवान राजा दरबार में पहुँच कर अपने मंत्रित्व के काम में लग गया।

जब इसी वर्ष बादशाह का अजमेर से पंजाब जाना हुआ, तब चलाचली में एक दिन राजा की मूर्तियाँ (कि जब तक उनकी पूजा एक मुख्य चाल पर नहीं कर लेता था, दूसरा काम नहीं करता था) खो गईं। उसने सोना और खान-पान छोड़ दिया। बादशाह ने बहुत कुछ समझा कर इससे अपनी मित्रता

१. अहमदाबाद से बारह कोस पर घोलका स्थान में युद्ध हुआ था।

प्रदर्शित की[1] । वहाँ से (कि मंत्रिसभा का कार्य करता था) इस बड़े कार्य के उत्तरदायित्व और कपटी चुग़लखोरों के बढ़ने का विचार करके, इसको उसने स्वीकार नहीं किया। २७वें वर्ष के आरंभ (सन् ९९० हि०) में यह प्रधान अमात्य नियत हुआ जो अर्थ में वकीले-कुल के समान है और कुल कार्य उसी की सम्मति से होने लगा। राजा ने कोष और राज्य के कार्यों को नए ढंग से चलाया और कुछ नए नियम भी बनाए जो बादशाही आज्ञा से काम में लाए जाने लगे। उनका विवरण अकबरनामे में दिया है[2] । २९वें वर्ष में उसका गृह बादशाह के जाने से प्रकाशित हुआ जिनकी प्रतिष्ठा के लिये राजा ने महफ़िल सजाई थी। ३२वें वर्ष (सं० १६४४ वि०, सन् १५८७ ई०) में किसी कपटी 'खत्री बच्चे'

१. २६वें वर्ष में जब मुज़फ़्फ़र खाँ की कड़ाई से बहुत से बादशाही सरदार भी विद्रोहियों से मिल गए तथा उसकी मृत्यु पर बिहार तथा बंगाल के बहुत भाग पर अधिकार भी कर लिया, तब राजा टोडरमल वहाँ शांति स्थापित करने के लिये भेजे गए। मासूम काबुली, काक़शाल सरदारों तथा मिर्ज़ा शरफुद्दीन हुसेन ने ३०००० सेना के साथ इन्हें मुँगेर में घेर लिया। हुमायूँ फर्माली और तर्खान दीवानः बलवाइयों से मिल गए। सामान की भी कमी थी, पर सब कष्ट सहन करते हुए तथा अनेक बादशाही सरदारों को, जो विद्रोही हो गए थे, शांत कर मिलाते हुए इन्होंने अंत में वहाँ शांति स्थापित की। (ब्लोकमैन, आईन अकबरी, पृ० ३५१-२, इलि० डा०, भाग ५, पृ० ४१४-४२१)

२. यह अंशतः अकबर नामे से लिया गया है। (अकबरना.. इलि० डा०, भा० ६, पृ० ६१-६५)

ने, जा इसस जलता था, रात्रि के समय सवारी में तलवार फेंकी। साथवालों ने उसे वहीं मार डाला। जब राजा बीरबर पार्वत्य प्रदेश स्वाद में मारे गए, तब यह (राजा) कुँअर मानसिंह के साथ यूसुफ़ज़ई जाति को दंड देने पर नियुक्त हुए। जब ३४वें वर्ष में बादशाह हरे भरे काश्मीर को चले, तब यह मुहम्मद क़ुली ख़ाँ बर्लास और राजा भगवंतदास कछवाहा के साथ लाहौर के रक्षक नियुक्त हुए। इसी वर्ष (जब बादशाह काश्मीर से काबुल चले तब) इन्होंने प्रार्थनापत्र लिखा कि वृद्धावस्था और रोगों ने हमें दबा लिया है और मृत्यु का समय पास आ गया है; इसलिये यदि छुट्टी पाऊँ तो सबसे हाथ उठा लूँ और गंगाजी के तट पर जाकर प्राण त्यागने के लिये परमेश्वर को याद करूँ। प्रार्थना के अनुसार छुट्टी मिल गई और लाहौर से हरिद्वार को चल दिए। साथ ही दूसरा आज्ञापत्र पहुँचा कि ईश्वर के पूजन से निर्बलों की सेवा नहीं हो सकती; इससे अच्छा है कि मनुष्यों का काम सँभालो। निरुपाय होने से लौट कर ३४वें वर्ष सन् ९९८ हि० के आरंभ के ग्यारहवें दिन मर गए।

अल्लामी फ़हामी अबुलफ़ज़ल इनके बारे में लिखते हैं—"यह सचाई, सत्यता, कार्य्यदक्षता, कार्यों में निर्लोभिता, वीरता, कादरों को उत्साह दिलाने, कार्य्य-कुशलता, काम लेने और हिन्दुस्थान के सरदारों में अद्वितीय था। पर द्वेषी और बदला लेनेवाला था। उसके हृदय के खेत में थोड़ी कठोरता उत्पन्न हो गई थी। दूरदर्शी बुद्धिमान ऐसे स्वभाव को बुरे स्वभावों में गिनते

हैं, मुख्यतः राजकीय कार्य्यों में जहाँ संसारी लोगों का काम उसे सौंपा गया हो। सम्राट् के वकील नियत हुए थे। यदि उसकी बुद्धिमानी के मुख पर धार्मिक कट्टरपन का रंग न होता तो ऐसा अयोग्य स्वभाव न रखता। सच यह है कि यदि धार्मिक कट्टरपन, हठ और द्वेष न रखता और अपनी बातों का पक्ष न लेता तो महात्माओं में से होता। तब भी संसार के और लोगों को देखते हुए वह संतोष, निर्लोभिता (कि उसका बाज़ार लोभ से मिला हुआ है) परिश्रम करने, काम करने और अनुभव में अनुपम क्या अद्वितीय था। (उसकी मृत्यु से) निःस्वार्थ कार्य्य-संपादन को हानि पहुँची। चारों ओर से कामों के आ जाने पर भी वह नहीं घबराता था। ठीक है कि ऐसा सच्चा पुरुष (कि उनक़ा के समान था) हाथ से निकल गया। वह विश्वास (कि संसार में कम दिखलाई देता है) किस जादू से मिलता है और किस तिलस्म से प्राप्त हो सकता है !'

आलमगीर बादशाह कहते थे कि शाहजहाँ के मुख से सुना है कि एक दिन अकबर बादशाह उससे कहते थे कि टोडरमल कोष और राज्य के कामों में तीव्र-बुद्धि था और अधिक जानकारी रखता था; पर उसका हठ और अपनी बातों पर अड़ना अच्छा नहीं लगता था। अबुलफज़ल भी उससे बुरा मानता था। जब एक बार उसने शिकायत की तब अकबर ने कहा कि कृपापात्र को नहीं छुड़ा सकता। राजा टोडरमल के बनाए हुए नियम नगरों और सेना के प्रबन्ध में सर्वदा काम में लाए जाते हैं और बहुधा बादशाही दफ़्तर

उन्हीं पर स्थित हैं। हिन्दुस्थान में सुलतानों और प्राचीन राजाओं के समय से छठा भाग कर लिया जाता था। राजा टोडरमल ने भूमि के कई विभाग पहाड़ी, पड़ती, ऊसर और वंजर आदि किए। उपजाऊ और अन-उपजाऊ खेतों की नाप करके (जिसे रक़्वः कहते हैं) तथा उसकी नाप वीघा, विस्वा और लाठा से लेकर हर प्रकार के अन्न पर प्रति वीघा नगद और कुछ पर अन्न का, जिसे वँटाई कहते हैं, लगाया। पहिले सैनिकों के वेतन पैसों में दिए जाते थे, इससे टोडरमल ने रुपए को (कि उस समय चालीस पैसे को चलता था) चालीस दाम का निश्चित कर प्रत्येक स्थान की आय का हिसाव लगाकर मनुष्यों में वेतन के वदले में वाँट दिया, जिसे जागीर कहते हैं। महाल को (जिस का कर राजकोष में आता है, खालसा नाम देकर) जिसकी आय एक करोड़ दाम थी, (जो वारह महीने के ठीके पर दिया जाता था। एक लाख दाम का ढाई हज़ार रुपया होता था। फसलों की उपज पर भी वहुत कुछ ध्यान रखा जाता था।) एक योग्य मनुष्य के प्रवन्ध में देकर उसका करोड़ी नाम रखा। उगाहने के लिये एक सौ पाँच रुपया ठीक किया। पहिले पैसे के सिवाय और कोई सिक्का नहीं था और सरदारों, राजदूतों और कवियों को पुरस्कार देने के लिये पैसे भर चाँदी में ताँवा मिला कर सिक्का वनाते थे और चाँदी का तनका नाम देकर काम में लाते थे। राजा ने वेमिलावट के ग्यारह माशे सोने की अशर्फ़ी और साढ़े ग्यारह माशे चाँदी का रुपया ढलवाया। इस नई वात का पता

इसी से अधिक लगता है कि उस पर संवत् दिया है। वस्तुतः अकबर बादशाह का स्वभाव (कि राज्य और संसार-पालन को जड़ है) हर एक काम की इच्छा रखता था। और गुणों तथा कारीगरियों को ठीक करता था। उसके सुप्रकाशित समय में (कि सातों देशों के बुद्धिमान् और विद्वान् एकत्र थे) हर एक बुद्धिमान् सरदार अपनी बुद्धि और विद्या की पहुँच से अपने अधीनस्थ कार्यों में किसी नई बात और लाभकारी का अन्वेषण करता था तो वह बादशाही कृपा का पात्र होता था। यहाँ तक कि कारीगर और विद्वान् लोग अपने अपने कार्य्य में उन्नति कर के पुरस्कार पाते थे[१]।

जब बादशाह स्वयं बुद्धिमान् होता है, तब और विद्वानों को भी वैसा ही बना लेता है।

राजा के कई लड़के[२] थे और सब से बड़े का नाम धारू

१. पहिले तहसील के काग़ज़-पत्र हिंदी में रहते थे और हिन्दू लेखक-गण ही लिखते पढ़ते थे; पर इन्हीं टोडरमल के प्रस्ताव पर सब काम फ़ारसी में होने लगा और तब हिंदुओं ने भी फ़ारसी भाषा का अध्ययन किया। कुछ ही दिनों में ऐसी योग्यता प्राप्त कर ली कि 'वे मुसलमानों के फ़ारसी भाषा के उस्ताद बन बैठे थे।'

२. इसके एक दूसरे लड़के का नाम गोवर्धन था जिसे बादशाह ने अरब बहादुर का पीछा करने भेजा था, जो बंगाल से परास्त होकर जौन-पुर चला आया था। जब इसने उसे लड़ाई में हरा दिया, तब वह पहाड़ों में भाग गया। (मआसिरुल् उमरा, अंग्रेज़ी पृ० २६७)

था। अकबर के समय में सात सौ सवार का मन्सब मिला था। ठट्ठा के युद्ध में ख़ानख़ानाँ के साथ बड़ी वीरता दिखला कर मारा गया। कहते हैं कि घोड़ों की नाल सोने और चाँदी की बँधवाता था।

३२—राजा टोडरमल (शाहजहाँनी)

आरंभ में यह अफ़ज़ल खाँ का मित्र था। उसकी मृत्यु पर १३वें वर्ष (सन् १६३९ ई०) में राय की पदवी पाकर सरकार सरहिंद की दीवानी, अमीनी और फौजदारी के काम पर नियुक्त हुआ। १४ वें वर्ष में इन सब के साथ ही लखी जंगल की फ़ौजदारी भी मिल गई। जब बादशाह ने उसकी योग्यता समझ ली तब १५वें वर्ष में खिलअत, घोड़ा और हाथी पुरस्कार में दिया। १६वें वर्ष अच्छे कार्य के पुरस्कार में इसका मन्सब बढ़ कर हज़ारी १००० सवार दो और तीन घोड़ेवाला हो गया। १९वें वर्ष पाँचसदी २०० सवार और बढ़ाकर सरहिंद पर नियुक्त किया। २०वें वर्ष ३०० सवार दो तीन घोड़ेवाले उसके मन्सब में और बढ़ाये गये। धीरे धीरे उसका ताल्लुक़ा सरकार दिपालपुर, परगना जालंधर और सुलतानपुर के मिलने से बढ़ गया जिसकी तहसील प्रति वर्ष पचास लाख रुपया हो गई और वह उसी के समय में बराबर उगह आती थी। इसलिये २१वें वर्ष में इसका मन्सब दो हज़ारी २००० सवार तक बढ़ाया गया और राजा की पदवी दी गई। २३वें वर्ष में इसे डंका मिला। सामूगढ़ के युद्ध[१] के अनंतर जब दारा शिकोह भाग कर सरहिंद गया

१. यह सन् १६५८ ई० की घटना है।

और वहाँ से अपने रक्षार्थं लखा जंगल से जा रहा था, तब बास लाख रुपए उसकी जमा से (जो कई मौजों में गड़े हुए थे) दारा शिकोह के हाथ लगे। औरंगज़ेब के समय कुछ दिन इटावा का फ़ौजदार रहा और नवें वर्ष सन् १०७६ हि० (सन् १६६६ ई०) में उसको मृत्यु हुई।

३३—राव दलपत बुँदेला

राजा वीरसिंह देव के पौत्र और भगवान राय[१] के पुत्र राव शुभकरण का यह पुत्र था। कहा जाता है कि इनका देश कासी[२] था और इनका एक पूर्वज वहाँ से आकर खैरागढ़ कटक में बस गया जिससे खैरवाड़[३] कहलाया। बहुत दिन हुए काशी-राज नामक एक राजा (राव दलपत का २४वाँ पूर्वज) उस प्रांत में (जिसे अब बुंदेलखंड कहते हैं) बस कर विंध्यवासिनी[४] देवी

---

१. वीरसिंह देव का तीसरा पुत्र था।

२. काशी अर्थात् बनारस में गहरवार क्षत्रियों का राज्य था जो सूर्यवंशी थे। बुंदेलखंड में चंदेल वंश का अधिकार था जिसका अंतिम राजा भोजवर्मन था। इसी के समय काशी से वीरभद्र ने आकर बुंदेलखंड में अपना अधिकार जमाया था।

३. खैरागढ़ कटक मध्य प्रदेश में है (इंडि० गज़े० १५, २०७) और खैरवार गहरवार का ही रूप है; क्योंकि फ़ारसी लिपि में दोनों एक ही प्रकार से लिखे जाते हैं।

४. मूल में विंदवासी सा लिखा है जो शुद्ध रूप नहीं जानने के कारण हुआ है। मिस्टर बेवरिज ने अनुवाद में विंध्येश्वरी लिखा है और नोट में लिखते हैं कि जर्नल एशाटिक सोसाइटी पृष्ठ १०४ में विंधासनी या दुर्गा नाम का उल्लेख है। विंध्यवासिनी भी दुर्गा जी का एक नाम है।

की पूजा करता था जिस कारण वह बुँदेला[1] कहलाया। शाहजहाँ के समय जब इस जाति की सरदारी राजा पहाड़सिंह को मिली, तब औरंगज़ेब ने, जो शाहज़ादा था (और दक्षिण का सूबेदार था) शुभकरण को आज्ञापत्र और धन भेज कर बुलाया और उसे एक हज़ारी मन्सब दिया। सैयद अब्दुल वहाब जूनागढ़ी (कि कुछ दिन से बुरहानपुर में ही रहने लगा था) के साथ[2] बगलाना विजय करने पर नियत हुआ। और वह प्रांत बादशाही अधिकार में चला आया। ३२वें वर्ष में जब औरंगज़ेब पिता की बीमारी देखने को आगरे की ओर चला

---

१. वीरभद्र की दो रानियाँ थीं जिनमें से प्रथम के चार पुत्र—राजसिंह, हंसराज, मोहनसिंह और मानसिंह—थे और दूसरी रानी से एक पुत्र जगदास था जो वीरभद्र का पंचम पुत्र होने के कारण पंचम कहलाता था। वीरभद्र अपने राज्य का अर्द्धांश प्रिय पुत्र पंचम को और आधे में अन्य चार पुत्रों को भाग देकर स्वर्गलोक सिधारे जिसके अनंतर उन चार भाइयों ने पंचम को परास्त कर उसका राज्य भी आपस में बाँट लिया। पंचम विंध्याचल पर जाकर देवी का पूजन और तपस्या करने लगा। अंत में देवी को सिर चढ़ाने के लिए तलवार निकाली जिसकी चोट से रक्त की बूँदें पृथ्वी पर गिरीं और तब से यह वंश बुँदेला कहलाने लगा। देवी ने प्रगट होकर तलवार छीन ली और वरदान दिया। गोरेलाल कृत छत्रप्रकाश, प्रथम अध्याय।

२. मूल में इस शब्द के लिये कुछ नहीं दिया है जिस कारण अब्दुल वहाब का ज़िक्र असंगत मालूम होने लगता; इसलिये 'के साथ' बढ़ा दिया गया है।

और उज्जैन के पास पहुँच कर उसने महाराज जसवंतसिंह के साथ युद्ध किया, तब इसने बड़ी वीरता दिखलाई और घायल हुआ। दारा शिकोह के युद्ध में भी उसने ऐसी ही वीरता दिखलाई। शुजाअ के युद्ध के बाद चंपतराय बुंदेला का दमन करने पर नियत हुआ। इसके अनन्तर दक्षिण में नियुक्त होने पर बीजापुर की चढ़ाई में यह मिरज़ा राजा के बाएँ भाग में था। १० वें वर्ष यह मिरज़ा राजा से ख़फ़ा होकर लौट गया। इसके बाद काबुल के नाज़िम मुहम्मद अमीन ख़ाँ के साथ नियुक्त हुआ। पर जब ख़ाँ और उसका साथ ठीक नहीं बैठा, तब १२ वें वर्ष में वह दरबार बुला लिया गया तथा दक्षिण में नियुक्त किया गया जहाँ युद्धों में उसने अच्छा कार्य दिखलाया। १९ वें वर्ष (जब दिलेर ख़ाँ की अध्यक्षता में दक्खिनियों से युद्ध हो रहा था) यह अपने पुत्र दलपत के साथ चंदावल में था। २० वें वर्ष माँदा होकर दिलेर ख़ाँ का साथ छोड़ बहादुरगढ़ (जहाँ उसका स्थान था) गया और २१ वें वर्ष वहीं मर गया।

राव दलपत को ११ वें वर्ष में ढाई सदी, ८० सवार का मन्सब मिला था जो कुछ दिन बाद तीन सदी, १०० सवार का हो गया। पिता की मृत्यु पर उसका मन्सब पाँच सदी ५०० सवार का हो गया और इसने पिता के नौकरों को उत्साह के साथ रखा। २२ वें वर्ष किसी कारण दक्षिण के सूबेदार ख़ानेजहाँ बहादुर से बिगड़ कर दरबार चला गया; पर आज़म शाह के साथ फिर दक्षिण लौट आया। हसन अली ख़ाँ आलमगीर शाही के साथ कोंकण

में जाकर बहुत वीरता दिखलाई। २३ वें वर्ष में मन्सब बढ़कर छः सदी ६०० सवार दो घोड़ेवाले, २४ वें वर्ष सात सदी ७०० सवार तथा २७ वें वर्ष में (जब गाजी उद्दीन खाँ के साथ मुहम्मद आज़म शाह की, जो बीजापुर घेरे हुए था, सेना के लिये घास लाने और शत्रु को रोकने में बहुत प्रयत्न किया तब) डेढ़ हज़ारी १५०० सवार का हो गया तथा राव की पदवी पाई। ३० वें वर्ष जब इमतियाज़गढ़ अर्थात् अदोनी बादशाही अधिकार में आया, तब इसका मन्सब ढाई हज़ारी १५०० सवार का हो गया और डंका और अदोनी की दुर्गाध्यक्षता मिली। ३३ वें वर्ष दुर्ग की अध्यक्षता छोड़कर दरबार आया और औरंगाबाद से खज़ाना लाने तथा वहाँ तक क़ाफ़ला पहुँचाने पर नियुक्त हुआ, जिसमें बहुधा शत्रु से लड़ना पड़ता था। ३४ वें वर्ष शाहज़ादा कामबख्श के साथ नियुक्त हुआ और जब शाहज़ादे ने वाकिन्करा पर चढ़ाई की, तब इसने चन्दावल का अच्छा प्रबन्ध किया और शाहज़ादे के साथ जिंजी की ओर (कि जुल्फ़िक़ार खाँ उसमें था और अन्न की कमी थी) आज्ञानुसार अन्नादि के साथ गया। जुल्फ़िक़ार खाँ ने उसे दाहिनी ओर रखा। ४४ वें वर्ष में मन्सब ढाई हज़ारी २५०० सवार का हो गया। ४७ वें वर्ष में इसका मन्सब बढ़कर तीन हज़ारी २७०० सवार का और ४९ वें वर्ष में तीन हज़ारी ३००० सवार का हो गया। औरंगज़ेब की मृत्यु पर मुहम्मद आज़म शाह के साथ उत्तरी भारत आया और पाँच हज़ारी मन्सब तक पहुँचा। युद्ध में (जो

सुल्तान अज़ीमुश्शान के साथ हुआ था) हरावलों में मारा गया[1]।

इसकी मृत्यु पर इसके पुत्रों—बिहारीचन्द और पृथ्वीसिंह— में राज्य के लिये झगड़ा होने लगा। इसी समय सब से बड़ा पुत्र रामचन्द्र (जो सितारागढ़ में था) भी आ पहुँचा। जब बिहारी चन्द की सेना बाहर निकली, तब यह दरबार लौट गया और (इस कारण कि बहादुर-शाही सेना अजमेर के पास थी) वहाँ पहुँचा। जब वहाँ किसी ने कुछ न सुना तब स्वदेश जाकर भाइयों को परास्त किया और फिर लाहौर में बहादुर शाह के दरबार में गया। मुहम्मद शाह के समय शाही सेना सहित कड़ा जहानाबाद के राजा भगवंतसिंह[2] पर भेजा गया जहाँ युद्ध में काम आया। इसके नौकर बादशाही सेवा में चले आए, पर इसके राज्य के अधिकांश भाग पर मराठों का अधिकार हो गया।

---

१. सन् १७१० ई० में बहादुर शाह की मृत्यु पर उसके चारों पुत्रों के बीच लाहौर के पास यह युद्ध हुआ था।

२. कोड़ा जहानाबाद का राजा भगवंतसिंह खीची सन् १७३५ ई० में नवाब बुर्हानुल्मुल्क सआदत खाँ के साथ युद्ध कर मारा गया था। इसके पहिले इलाहाबाद के फ़ौजदार जाननिसार खाँ को भगवंतसिंह ने मार डाला था, जिसपर वज़ीर कमरुद्दीन खाँ ससैन्य चढ़ आए थे; पर अंत में कुछ सरदारों को इस कार्य पर छोड़ कर लौट गए। भगवंतसिंह ने वज़ीर के चले जाने पर इन सरदारों को मार कर भगा दिया था। इन्हीं में यह बिहारीचंद भी हो सकते हैं। (ना० प्र० पत्रिका, भा० ५, सं० १)

लिखते समय[1] टोपीवाले फिरंगियों की सेना (जो बंगाल से सूरत जा रही थी) इसकी सीमा के भीतर कुछ दिन ठहरी और बहुत हानि की।

जब कि टोपीवाले फिरंगियों का नाम आ गया, तब इस जाति का कुछ हाल[2] लिखना आवश्यक हो गया। यह झुंड पहले यहाँ के राजाओं की आज्ञा से समुद्र तट पर स्थान बनाकर प्रजा की तरह रहते थे। कोह (गोआ) बन्दर में इनका अध्यक्ष रहता था। सुलतान बहादुर गुजराती के समय वहाने से आज्ञा प्राप्त कर दमन और बसी (बसीन) नामक दो दृढ़ दुर्ग बना लिए और बस्ती बसा ली। यद्यपि लंबाई ४५ कोस थी, पर चौड़ाई कहीं कोस डेढ़ कोस से अधिक नहीं थी। पहाड़ों की तराई में खेती करते और अच्छी चीजें जैसे ईख, अनन्नास, चावल आदि बोते थे। नारियल और सुपारी के वृक्षों से बहुत धन पैदा

---

१. यह जीवनचरित्र अब्दुल हई का लिखा हुआ है। यह सेना कर्नल गोडडार्ड की अध्यक्षता में, जो छः हज़ार से अधिक थी, बंगाल से सूरत भेजी गई थी, क्योंकि वहाँ अँग्रेज़ी सेना मराठों से परास्त हो चुकी थी। वारेन हेस्टिंग्ज़ ने बंबई सरकार के सहायतार्थ यह सेना भेजी थी।

२. ख़फ़ी ख़ाँ भा० २, पृ० ४०० और भा० १, पृ० ४६८ (इलि० डाट और डाउ० भाग ७, पृ० ३४४) से यह वर्णन संक्षिप्त करके लिया गया हुआ मालूम होता है।

करते थे। इनका सिक्का[१] अशरफ़ी (जो चाँदी का नौ आने के बराबर होता था) फिरंगी चाल पर ढला था और ताँबे के टुकड़े थे जिन्हें बुजुर्ग कहते थे। एक पैसा चार बुजुर्ग का होता था। प्रजा को कष्ट नहीं देते थे। मुसल्मानों के लिये अलग बस्ती रखी थी। पर यदि कोई उनमें मर जाता तो उसकी संतान को अपना धर्म सिखाते थे[२]।

जब औरंगज़ेब को यह बात मालूम हुई, तब गुलशनाबाद[३] के फ़ौजदार मोतबिर खाँ ने (जो मुल्ला अहमद नायतः का दामाद था) शाही आज्ञानुसार इन पर चढ़ाई कर कुछ स्त्री-पुरुषों को क़ैद कर लिया। इस पर गोआ[४] के कप्तान ने बड़ी

---

१. इन सिक्कों के लिए ह्वाइटवे का 'राइज़ आव पोर्चुगीज़ पावर' देखिए। बुजुर्ग सिक्के के बहुत कम दाम होने से स्यात् बँगला का 'बुज़रुक' शब्द निकला ज्ञात होता है। फ़ारसी में 'बुजुर्ग' का अर्थ बड़ा है।

२. ख़फ़ी खाँ १, ४६६।

३. जुन्नेर के पास बगालने में है (इलिअड जि० ७, पृ० ३३७)। ख़फ़ी खाँ २, ४०२।

४. मि० बेवरिज लिखते हैं—'गोआ जुन्नेर से बहुत दक्षिण है। दमन के पुर्तगीज़ों ने प्रार्थनापत्र भेजा होगा जिस पर मोतबिर ने चढ़ाई की होगी।' पुर्तगीज़ों की मुख्य कोठी गोआ थी, इसलिये वहाँ के कप्तान का ही प्रार्थनापत्र होना अधिक ठीक जँचता है। साथ ही दमन के पुर्तगीज़ परास्त हो चुके थे और उन्होंने अवश्य ही मुख्य कोठी को यह वृत्तांत भेजा होगा। ख़फ़ी खाँ भाग २, पृ० ४०३ देखिए। यह चढ़ाई सन् ११०३ हि० सं० १७४८-९ में हुई थी।

नम्रता से बादशाह और उनके सरदारों को प्रार्थना-पत्र भेजा तथा उसमें लिखा कि हम लोग आप के अवैतनिक नौकर हैं जो समुद्र के डाकुओं का दमन करते रहते हैं; और यदि आप की इच्छा न हो तो हम स्थल छोड़कर जल ही में जा रहें। इस पर उनके दोषों को क्षमा करके फिरंगी क़ैदियों को छोड़ने की आज्ञा मोतबिर खाँ के पास भेज दी गई। इसके बाद गज सवाई[1] नामक जहाज़ को (जो सूरत के बन्दर में सब से बड़ा जहाज़ था) रोक कर और समुद्र में लूट मचाकर फिरंगियों ने बादशाह को फिर क्रुद्ध किया जिस पर उसने उन्हें दंड देने की फिर आज्ञा दी, परन्तु अफ़सरों के षड्यंत्र से कुछ नहीं हुआ। इन सब ने (अँग्रेज़ों ने) बहुत प्रयत्न करके फ़रासीस जाति को (जिसने नासिर जंग के मारे जाने पर अपना एक सरदार मुज़फ्फरजंग के साथ किया था और आसफुद्दौला अमीरुल्मुमालिक के समय तक दक्षिण में रहे) नाश करने पर कमर बाँधी। हैदराबाद के कर्णाटक पर अधिकृत हो गए और फिर बंगाल से बादशाही राज्य उठाकर बिहार तक अधिकार कर लिया। इसी बीच धीरे धीरे इलाहाबाद और अवध पर भी इनका ज़ोर बढ़ गया। बंगाल से

१. खफ़ी खाँ भाग २, पृ० ४२१ में इस घटना का वर्णन है जहाँ इसका नाम गंज सवाई दिया है। यह पोत सूरत से जब आठ नौ दिन के रास्ते पर था, तभी एक अंग्रेज़ जहाज़ ने इसे सं० १७५० वि० में लूटा था। (इलि० भा० ७, पृ० ३६०)

अर्काट और तलकोंकण[1] तक बन्दर बना लिए और सूरत भी छीन लिया। हैदराबाद के सिकाकोल आदि परगनों पर अधिकार कर लिया। इस समय रघुनाथ राव के बहकाने पर मराठों से शत्रुता कर गुजरात में गड़बड़ मचाए हुए हैं। ऐ खुदा! मुहम्मदियों को सहायता कर। उसके और उसके परिवार को शांति दे।

---

१. खफ़ी खाँ लिखता है कि कोंकण के उस भाग को तलकोंकण कहते हैं जो बीजापुर के राज्य में है।

३४–राव दुर्गा सिसोदिया

यह चन्द्रावत[1] था। इसका जन्मस्थान चित्तौड़ के पास का रामपुर[2] परगना है। राव दुर्गा[3] अकबरी राज्य के २६वें वर्ष

---

१. चंद्रावत सीसोदियों की एक शाखा है। इस शाखा के प्रादुर्भाव के विषय में इंदौर गज़ेटिअर ने दो मत दिए हैं। एक यह कि मेवाड़ के राणा राहप के द्वितीय पुत्र चंद्र से निकलने के कारण यह चंद्रावत कहलाई। दूसरे यह कि अलाउद्दीन खिलजी के समसामयिक राणा लक्ष्मणसिंह के पूर्वज जयसिंह के पुत्र चंद्रासिंह से यह शाखा निकली है। मूता नैणसी लिखता है कि राणा भुवनसिंह के पुत्र चंद्रसिंह के वंशज चंद्रावत कहलाए। इसके बाद ही उसी ख्यात में चंद्रासिंह के पिता का नाम भीमसिंह लिखा है। रामपुर की ख्यात में लिखा है कि भुचंड रावल के पुत्र चाँदा जी, उनके पुत्र वीर भामा जी, उनके आसपूरण जी और उनके चंद्रा जी हुए, जिनके वंशज चंद्रावत कहलाए। स्यात् ये भुचंड ही भीमसिंह हों या यह नाम और कुछ परिवर्तित हो गया हो। भुवनसिंह का भी बिगड़ कर भुचंड हो सकता है।

२. इंदौर राज्य में नीमच के प्रायः चालीस मील पूर्व २४°२८′ उ० ७५°७०′ पू० अक्षांश पर यह स्थान है। कहते हैं कि चंद्रावत शिवा ने रामा नामक भील को मार कर इस प्रदेश पर अधिकार किया तथा उसी के नाम पर रामपुरा बसाया था। मूता नैणसी की ख्यात में लिखा है कि "अचला का बेटा दुर्गा बड़ा दातार और जुझार हुआ। उसने रामपुर का क़स्बा श्रीरामचंद्र जी के नाम पर बसाया जो बड़ा गाँव है और भूमि वहाँ की दुफसली है।' इन्हीं राव दुर्गा का पूरा नाम दुर्गभाण था।

३. राव शिवसिंह या शिवा ने इंदौर के अंतर्गत रामपुरा भानुपुरा

(सं० १६३८ वि०, सन् १५८१ ई०) में सुलतान मुराद के साथ मिर्ज़ा हकीम का दमन करने पर नियुक्त हुआ। २८वें वर्ष में (जब मिर्ज़ा ख़ाँ गुजरात के विद्रोहियों का दमन करने पर नियुक्त हुआ, तब) यह भी उनके साथ नियुक्त हुआ और अच्छा कार्य्य दिखलाया। ३०वें वर्ष में ख़ाने आज़म कोका के साथ दक्षिण के कार्य्य पर नियत हुआ। ३६वें वर्ष में (जब सुलतान मुराद मालवा का अध्यक्ष नियत हुआ तब) यह भी शाहज़ादे के साथ अच्छे पद पर नियुक्त हुआ और इसके अनन्तर शाहज़ादे के साथ ही दक्षिण जाकर अच्छी सेवा की। ४५वें वर्ष में अकबर ने इसे मुज़फ़्फ़र हुसेन मिर्ज़ा की खोज में भेजा। मिर्ज़ा को ख्वाजा वैसी क़ैद कर सुलतानपुर लाया था जहाँ पहुँचकर राय दुर्गा

के एक छोटे से गाँव आँतरी पर अधिकार कर लिया। इसने नदी में डूबती हुई एक शाहज़ादी को बचाया था। जिसका मालवेश होशंगशाह गोरी से विवाह हुआ था। उसके कहने से शाह ने रामपुर परगना इसे जागीर में दे दिया और राव की पदवी तथा बहुत सा धन पुरस्कार में मिला। राव शिवा, राव रायमल तथा राव अचला तक आँतरी ही राजधानी रही; पर अचला के पौत्र राव दुर्गा ने रामपुर बसा कर उसे राजधानी बनाया। मालवा के सुलतान को परास्त करने पर महाराणा कुंभा का रामपुरा पर भी अधिकार हो गया; इसलिये रायमल तथा अचला उन्हीं के अधीन रहे। जब सन् १५६७ ई० में आसफ़ख़ाँ ने रामपुरा पर चढ़ाई की, तब राव दुर्गा महाराणा का साथ छोड़ कर अकबर के अधीन हो गया। राव चंद्रभाण के सं० १६६४ वि० के एक लेख में अचल के पुत्र प्रताप, उनके दुर्गभाण और उनके चंद्रभाण का उल्लेख है जिसमें राव दुर्गा के दोनों युद्धों की प्रशंसा है। (काशी ना० प्र० पत्रिका, भा० ७, पृ० ४१६—२१)

उसे बादशाह के पास लाया। उसी वर्ष अबुलफ़ज़ल के साथ यह नासिक भेजा गया। इसी समय अपने यहाँ विद्रोह सुनकर यह छुट्टी लेकर देश गया और ४६वें वर्ष लौट कर आया। डेढ़ महीने के अनन्तर बिना छुट्टी लिए देश चला गया। ४०वें वर्ष में यह डेढ हज़ारी मन्सब प्राप्त कर चुका था। जहाँगीर के राज्य के दूसरे वर्ष में सन् १०१६ हि० (सन् १६०८ ई०) में इसकी मृत्यु हुई।

जहाँगीरनामा में (जिसे बादशाह ने स्वयं लिखा था) लिखा है कि वह राणा प्रताप के विश्वासपात्र सेवकों में था। अकबर की चालीस वर्ष नौकरी करके चार हज़ारी मन्सब प्राप्त कर लिया था[१]। ८२ वर्ष की अवस्था तक पहुँचा था। उसका पुत्र चाँदा जहाँगीर के राज्यारम्भ में सात सौ का मन्सब रखता था और उसने धीरे धीरे अच्छा मन्सब तथा राव की पदवी प्राप्त की। इसका पौत्र राव दूदा[२] शाहजहाँ के समय ३रे वर्ष में

---

१. तुज़ुके-जहाँगीरी (पृ० ६३) में तथा प्राट्स कृत जहाँगीर पृ० ५६ में इनका उल्लेख हुआ है। तबकाते अकबरी में लिखा है कि सन् १००१ हि० में यह दो हजारी मंसबदार थे। ब्लौकमैन कृत आईन अकबरी पृ० ४१७—८ में इनकी जीवनी दी हुई है।

२. मूता नैणसी लिखता है कि दुर्गा का पुत्र रावचंदा था। इसका टीकायत पुत्र नगजी पिता के सामने ही मर गया, इससे उसका पुत्र दूदा राव हुआ। यह दौलताबाद की लड़ाई में काम आया। इसके बाद हटीसिंह (हस्तीसिंह) राव हुआ, जो यौवनावस्था ही में निस्संतान मर गया। इसके अनंतर रुक्मांगद का पुत्र और चंद्रसिंह का पौत्र रूपसिंह गद्दी पर बैठा।

आज़म खाँ के साथ ख़ानेजहाँ लोदी पर नियुक्त हुआ तथा (बादशाह ने) उसी वर्ष पाँच सदी ५०० सवार का मन्सब बढ़ाकर उसे दो हज़ारी १५०० सवार का मन्सब और झंडा देकर सम्मानित किया। परन्तु जब युद्ध चन्दावल पर आ पड़ा तब यह भागा। इसके अनन्तर यमीनुद्दौला के साथ आदिल ख़ाँ को दंड देने गया। फिर दक्षिण के सूबेदार महाबत ख़ाँ ख़ानख़ानाँ के अधीन नियत हुआ। छठे वर्ष दौलताबाद के घेरे के समय (जब मुरारी बीजापुरी के दुर्गवालों के सहायतार्थ पहुँचने पर चारों ओर युद्ध होने लगा तब) इसके कुछ आपसवाले मारे गए थे। यहाँ इसने सेनापति के मना करने पर भी उनके शवों को उठा लाने का प्रयत्न किया। शत्रु ने अवसर पाकर इन्हें घेर लिया और निकलने का रास्ता न रहने के कारण यह पैदल हो कुछ साथियों के साथ मारा गया। बादशाह ने इसके कार्य्यों के विचार से इसके पुत्र हस्तीसिंह[1] को (जो देश पर था) एक खिलअत, डेढ़ हज़ारी १००० सवार का मन्सब और राव की पदवी दी। कुछ वर्ष तक ख़ानेज़माँ बहादुर के साथ इसने दक्षिण में काम किया। जब यह रोग से मर गया, तब इसके निस्सन्तान होने के कारण इसके चचेरे भाई रूपसिंह[2] को, जो रूपमुकुन्द का पुत्र और राव चाँदा

---

१. बादशाह नामा में माथीसिंह, हाथीसिंह या केवल हाथी नाम मिलता है। इस ग्रंथ के मूल में हस्तीसिंह दिया है और अंग्रेज़ी अनुवाद में मि० बेवरिज ने नाम ही नहीं दिया है। मूता नैणसी ने हत्तीसिंह (हस्तीसिंह) लिखा है।

२. इस ग्रंथ के लेखक ने रूपसिंह को चाँदा का पौत्र, रुक्मांगद का

का पौत्र था (जो १७वें वर्ष में बादशाह के यहाँ कृपा की आशा से आया था) वह स्थान, नौ सदी ९०० सवार का मन्सब और राव की पदवी के साथ मिला। रामपुर का परगना जो इस्लामपुर के नाम से सरकार चित्तौड़ और सूबा अजमेर में है (जो वंश परंपरा से इसका देश था) इसे जागीर में मिला। १९वें वर्ष में यह सुलतान मुराद के साथ बलख़ गया। (२०वें वर्ष में बलख़ के सुलतान नजर मुहम्मद ख़ाँ के साथ बहादुर ख़ाँ रुहेला और एसालत ख़ाँ की अधीनता में जो युद्ध हुआ था उसमें) यह हरावल में था और जब बहुत प्रयत्न पर नजर मुहम्मद ख़ाँ परास्त होकर भागा, तब इसका मन्सब बढ़ाकर हजारी १००० सवार का कर दिया गया।

पुत्र तथा हस्तीसिंह का चचेरा भाई लिखा है। इसके पहिले यही दूदा को चाँदा का पौत्र तथा हस्तीसिंह को दूदा का पुत्र लिख आए हैं जिससे हस्ती सिंह चाँदा का प्रपौत्र हुआ। मुता नैणसी में राव दूदा तथा हस्तीसिंह का कोई संबंध नहीं मिलता। पर रूपसिंह चाँदा को पौत्र तथा रुक्मांगद का पुत्र बतलाता है। आगे चलकर मआसिरुल्उमरा में लिखा है कि रूपसिंह की मृत्यु पर चाँदा के पौत्र अमरसिंह गद्दी पर बैठे थे। इन सब विचारों से यही निष्कर्ष निकलता है कि राव दूदा जो नगजी का पुत्र था तथा जो अपने पिता के यौवराज्य समय में ही काल-कवलित हो जाने से गद्दी पर बैठा था, चाँदा जी का पौत्र था। चाँदा सन् १६०८ ई० में गद्दी पर बैठा था। सन् १६३० ई० में दूदा यौवनारंभ में गद्दी पर बैठा और तीन वर्ष बाद ही मारा गया। इसका पुत्र उस समय अल्पवयस्क था और शीघ्र ही मर गया। तब रूपसिंह, जो वास्तव में चाँदा का पौत्र और हस्तीसिंह का चाचा था, गद्दी पर बैठा।

शाहज़ादा उस प्रान्त को ठंढी हवा, झुंड के झुंड उज़बेगों और लड़ाकू अलअमानों से (जो युद्ध में भाग जाते थे, पर फिर लौटकर लड़ने को तैयार हो जाते थे) घबरा गया था; इसलिये इसने अपने पिता से अपने को बुला लेने और किसी दूसरे को उस कार्य पर नियुक्त करने के लिये प्रार्थना की। कुछ राजपूत बलख़ और बदख़्शाँ से विना आज्ञा के लौटकर पेशावर आ पहुँचे थे। इन्हीं में राव रूपसिंह भी था। जब यह समाचार बादशाह को मिला, तब अटक के अध्यक्षों को आज्ञा भेजी गई कि उन्हें नदी पार न उतरने दें। इसके अनन्तर (जब सुलतान औरंगजेब बहादुर इस कार्य पर नियत हुए तब) यह भी शाहज़ादे के साथ वहीं लौट गया और वहाँ पहुँच कर नियमानुसार हरावल में नियुक्त होकर इसने बड़ी वीरता दिखलाई। इन्हीं शाहज़ादे के साथ (जिन्हें लौटने की आज्ञा मिल चुकी थी) यह दरबार पहुँचा। २२ वें वर्ष शाहज़ादे के साथ कंधार की ओर गया और पहिले की चाल पर हरावल में नियत हुआ। युद्ध में (जो रुस्तम ख़ाँ और क़ुलीज ख़ाँ की अधीनता में कज़िलबाशों के साथ हुआ था) अच्छा कार्य्य करने से मन्सब बढ़ाए जाने पर दो हज़ारी १२०० सवार का मन्सब पाकर यह सम्मानित हुआ। २४वें वर्ष में इसकी मृत्यु हो गई। इसके कोई पुत्र न होने के कारण राव चाँदा के पौत्र-गण अमरसिंह[१] आदि राव रूपसिंह के मनुष्यों के साथ बाद-

---

१. शिलालेखों से, जो राव चाँदा के समय के हैं, ज्ञात होता है कि अमरसिंह चाँदा के पौत्र थे। मालवा के चौहान वंशीय चंदोजी की पुत्री

शाह के पास गए। अमरसिंह को (जो उत्तराधिकारी होने के योग्य था) बादशाह ने एक हज़ारी १००० सवार का मन्सब, राव की पदवी और चाँदी की ज़ीन सहित घोड़ा और उसके भाई को योग्य मन्सब देकर उनका देश रामपुरा दोनों भाइयों को जागीर में दिया। २५वें वर्ष में इनका मन्सब एक सदी बढ़ा कर औरंगज़ेब बहादुर के साथ (जो दूसरी बार कंधार पर नियुक्त हुआ था) बिदा किया। २६वें वर्ष में सुल्तान दारा शिकोह के साथ उसी कार्य्य पर नियुक्त होने से यह वहाँ गया। २७वें वर्ष में शाहज़ादे के लिखने से इनका मन्सब बढ़ाकर डेढ़ हज़ारी १००० सवार का हो गया। २८वें वर्ष में यह दक्षिण गया। ३१वें वर्ष में आज्ञानुसार दरबार पहुँच कर महाराज जसवंतसिंह के साथ मालवा गया, जो दक्षिणी सेना के रास्ते में रुकावट डालने को नियुक्त था। औरंगज़ेब के पहुँचने और सामना होने पर यह महाराज के हरावल में था। युद्ध से भाग कर स्वदेश चला गया।

इसके अनंतर औरंगज़ेब की सेवा में आकर शाहज़ादा मुहम्मद सुल्तान के साथ शुजाअ का पीछा करने भेजा गया। मूर्खता से दृढ़ता न रख और दरबार के विभिन्न समाचारों को

प्रभावतीबाई का राव चाँदा से विवाह हुआ था, जिससे इनके पुत्र हरिसिंह हुए। इनका विवाह जोधपुर के राठौड़ राव यशवंत की पुत्री यमुनाबाई से हुआ था जिससे अमरसिंह पुत्र हुए। इनके मुहकमसिंह, मुकुंदसिंह, रामसिंह, बैरिशाल तथा अक्षयसिंह पाँच पुत्र थे।

सुनकर शाहज़ादे से विना आज्ञा लिए रास्ते से लौट गया। वहाँ से दक्षिण में नियुक्त होकर मिर्ज़ा राजा जयसिंह के साथ अच्छी सेवा की। ११वें वर्ष साल्हेर दुर्ग के नीचे (जब शत्रु ने बादशाही सेना पर धावा किया) यह मारा गया और इसका पुत्र मुहकम सिंह पकड़ा गया[1]। कुछ दिन बाद धन देकर छुट्टी पाई और वहादुर ख़ाँ कोका (जो उसी वर्ष दक्षिण का सूबेदार हुआ था) के पास पहुँचा, तब मन्सब बढ़ा और राव की पदवी पाई। बहुत समय तक सेवा की। ३३वें वर्ष में मुहकमसिंह का पुत्र गोपाल-सिंह अपने देश रामपुरा से दरबार आया और पैतृक नौकरी पर काम करने लगा। इसने अपने पुत्र रत्नसिंह को देश का प्रबंध ठीक रखने के लिये वहाँ भेजा था; पर वह विद्रोह कर पिता के लिये व्यय को कुछ धन नहीं भेजता था। गोपालसिंह ने बादशाह

१. सन् १६६५ ई० में दाऊदख़ाँ की अधीनता में महाराज जयसिंह ने छः सहस्र की एक सवार सेना तैयार की जो मराठा राज्य में धावे किया करती थी। राव अमरसिंह ने भी इस सेना में रह कर बहुत कार्य किया था। सन् १६७२ ई० में इख़लास ख़ाँ मियाना के अधीन एक मुग़ल सेना सल्हेर दुर्ग को घेरने के लिये छोड़ कर दिलेरख़ाँ तथा बहादुर ख़ाँ अहमदनगर की ओर चले गए। इधर शिवाजी ने सेना सहित पहुँच कर इस सेना को घेर लिया और घोर युद्ध के अनंतर मुग़ल सेना परास्त हुई जिसमें राव अमरसिंह कई सरदारों तथा कई सशस्त्र सैनिकों के साथ मारे गए। इखलास ख़ाँ, राव अमरसिंह के पुत्र मुहकमसिंह तथा तीस अन्य सरदार कैद हुए। (प्रो० सरकार कृत शिवा जी, पृ० २१७, पारसनीस किनकेड, मराठों का इतिहास, भा० १, पृ० २३५)

से बहुत कुछ कहा, पर कुछ लाभ नहीं हुआ। ४२वें वर्ष में मालवा के सूबेदार मुख़्तार ख़ाँ के द्वारा मुसलमान होने पर रत्नसिंह मुस्लिम ख़ाँ[१] के नाम से अपने देश का अध्यक्ष नियत हो गया। गोपालसिंह ने शाहज़ादा बेदारबख़्त का साथ छोड़ कर राणा के देश में शरण ली; पर वहाँ उसका प्रयत्न सफल नहीं हुआ। ४६वें वर्ष में गोपालसिंह चंद्रावत बादशाह के पास आकर कौलास[२] का दुर्गाध्यक्ष नियत हुआ। ४८वें वर्ष में छुड़ा दिए जाने पर यह मरहठों के यहाँ चला गया। परंतु जहाँदारशाह के राज्य के आरंभ में आमानत ख़ाँ ख़्वाजा मुहम्मद (जो मालवा का सूबेदार नियुक्त होकर सारंगपुर के पास आ पहुँचा था) के साथ मुस्लिम ख़ाँ ने अपने ताल्लुक़े पर अधिकार करने से रोका और युद्ध के लिये तैयार हुआ। इसके साथवाले इसके कार्य और बात-चीत से प्रसन्न नहीं थे, इससे आक्रमण के समय साथ छोड़ कर चल दिए और यह गोली लगने से मर गया।

---

१. राजा मुस्लिमख़ाँ के नाम से रामपुरा का अधिकारी हुआ। टाड को राजस्थान १म भाग, १५ परिच्छेद।

२. हैदराबाद राज्य में मांजरा नदी के किनारे पर है।

३५—राजा देवीसिंह

यह राजा भारथ का पुत्र है। पिता की मृत्यु पर शाहजहाँ के ७वें वर्ष में इसे दो हज़ारी २००० सवार का मन्सब और राजा की पदवी मिली। ८वें वर्ष में खानेदौराँ के साथ जुझारसिंह को दंड देने पर नियुक्त होकर डंका मिलने से सम्मानित हुआ। ओड़छा विजय पर (जो पहिले इसी के पूर्वजों के हाथ में था, पर जहाँगीर बादशाह ने वीरसिंह देव के कहने से इनसे लेकर उसे सौंप दिया था) वह राज्य राजा देवीसिंह के नाम हो गया था; इसलिये यह वहीं रह गए और बुंदेला जाति की सरदारी उसे मिली[1]। इसके अनंतर (जब बादशाह ने ओड़छा आकर एकाएक दक्षिण जाने का विचार किया तब) यह ९वें वर्ष ओड़छा

---

१. मधुकर शाह के प्रथम पुत्र रामसाह या रामचंद सन् १५९२ ई० में गद्दी पर बैठे और सन् १६०५ ई० तक इन्होंने राज्य किया। अकबर की मृत्यु पर जहाँगीर की वीरसिंह देव पर विशेष कृपा देखकर इन्होंने विद्रोह किया। अंत में परास्त होकर यह सन् १६०७ ई० में दिल्ली गए और ओड़छा का राज्य वीरसिंहदेव को दे दिया गया। इन्हीं रामसाह ने चंदेरी राज्य स्थापित किया था। इनके पुत्र संग्रामसाह पिता के सामने ही मर गए, जिनके पुत्र भारत साह थे। सन् १६२७ ई० में वीरसिंहदेव

प्रांत का प्रबंध ठीक करके बादशाह के दरबार में पहुँचा[1] और वहाँ से सैयद खानेजहाँ बारहः (जो बीजापुर पर अधिकार करने के लिये भेजा गया था) के यहाँ भेजा गया। वहाँ इसने अच्छा काम दिखलाया। १०वें वर्ष में खानेदौराँ की प्रार्थना पर इन्हें झंडा और डंका दोनों मिल गया। १९वें वर्ष शाहज़ादा मुरादबख्श के साथ बलख और बदख्शाँ विजय करने पर नियुक्त हुआ। इस यात्रा में भी द्वितीय बार अच्छा कार्य किया और अलअमानों से कई बार अच्छी लड़ाइयाँ हुईं। २२वें वर्ष (जब दुर्ग कंधार कज़िलबाशों के अधिकार में चला गया था तब) यह भी दूसरी बार सुल्तान औरंगज़ेब बहादुर के साथ उस दुर्ग की चढ़ाई पर गए और क़ज़िलबाशों के साथ युद्ध में दृढ़ता से डटकर अच्छी वीरता दिखलाई। तीसरी बार सुल्तान दारा-

---

की मृत्यु होने पर जुझारसिंह ओड़छा के राजा हुए। सन् १६३५ ई० में बादशाही सेना ने ओड़छा विजय कर उस पर राजा देवीसिंह को अधिकार दिला दिया था। (देखिए जुझारसिंह शीर्षक निबंध)

१. खफ़ीख़ाँ जि० १, पृ० ४५४ पर लिखता है कि राजा देवीसिंह के ओड़छा का प्रबंध ठीक न कर सकने पर वह प्रांत खालसा कर इसलामाबाद नाम से बाक़ी ख़ाँ क़िलमाक़ को सौंपा गया था। छः वर्ष के निरंतर प्रयत्न पर जब वहाँ शांति स्थापित न हो सकी, तब सन् १६४१ ई० में जुझारसिंह के भाई पहाड़सिंह को वह राज्य दे दिया गया। (ना० प्र० पत्रिका, भा० ३, अंक ३)

शिकोह के साथ वहाँ फिर गया और वहाँ से लौटने पर २८वें वर्ष में मालवा प्रांत के पास भिलसा का फौजदार हुआ। ३०वें वर्ष मुअज़्ज़म खाँ मीर जुमला के साथ सुल्तान औरंगज़ेब बहादुर के पास दक्षिण गया। ३१वें वर्ष दरबार बुलाए जाने पर महाराज जसवंतसिंह (जो सुल्तान औरंगज़ेब का रास्ता रोकने को मालवा प्रांत में नियुक्त हुए थे) के साथ नियत हुआ। यहाँ (क्योंकि इसका कर्म इसकी रक्षा कर रहा था) युद्ध के दिन महाराज ने इसे फ़ौजी भांडार के रक्षार्थ नियत किया था और युद्ध में (जब सुल्तान मुराद बख्श ने बादशाही भांडार पर धावा किया और इससे बड़ी गड़बड़ मची तब) यह दूरदर्शिता से शाहज़ादे की शरण में चला गया और उसकी मध्यस्थता से औरंगज़ेब की सेवा में पहुँचा। पूर्वोक्त शाहज़ादे के क़ैद होने पर इसे ख़िलअत मिला। ख़ानेदौराँ सैयद महमूद के प्रार्थनापत्र से इसकी कर्मशीलता का पता लग चुका था, इसलिये इसका मन्सब बढ़ाकर ढाई हज़ारी २५०० सवार का कर दिया गया। दाराशिकोह की दूसरी लड़ाई के अनंतर राजा आलमसिंह के स्थान पर भिलसा का फ़ौजदार हुआ। ३रे वर्ष चंपत बुंदेला (जिसने मालवा प्रांत के पास विद्रोह मचा रखा था) को दंड देने पर नियत हुआ। १०वें वर्ष शमशेर ख़ाँ की सहायता को (जो यूसुफ़ज़ई जाति को दंड देने पर नियुक्त हुआ था) नियत किया गया। १३वें वर्ष काबुल के सूबेदार मुहम्मद अमीन ख़ाँ के साथ नियुक्त हुआ और जब ख़ैबर दर्रे में पहुँचने पर ख़ाँ परास्त हुआ, तब से इसका

वृत्तांत अप्राप्य है[1]। औरंगाबाद के बाहर पश्चिम और उत्तर की ओर एक पुरा इसके नाम पर बसा है।

---

१. पहिले राजा शुभकरण बुँदेला चंपतिराय का दमन करने के लिये भेजा गया था। पर जब उसके प्रयत्न निष्फल हुए, तब राजा देवीसिंह भी उसके सहायतार्थ भेजे गए थे।

२. सन् १६६३ ई० में देवीसिंह की मृत्यु हो गई थी जिनके अनंतर दुर्गासिंह गद्दी पर बैठे।

३६—राजा पहाड़सिंह[1] बुँदेला

यह राजा वीरसिंह देव के पुत्र थे। शाहजहाँ के बादशाह होने के अनंतर इनका दो हज़ारी, १२०० सवार का मंसब बहाल रहा और फिर वह हज़ारी ८०० सवार बढ़ कर तीन हजारी २००० सवार का हो गया। उसी वर्ष जब जुझारसिंह बुंदेला (जो राजधानी से भाग गया था) को दंड देने के लिये सेना नियुक्त हुई, तब यह भी अब्दुल्ला खाँ बहादुर के साथ नियत हुए[2]। वहाँ से (कि दुर्ग ऐरिछ के विजय करने में अच्छा प्रयत्न किया था) पूर्वोक्त खाँ की प्रार्थना पर इन्हें डंका प्रदान हुआ। जब जुझारसिंह नम्रता से क्षमा प्राप्त करके दरबार पहुँचा, तब

---

१. इलिअट डाउसन कृत 'हिस्टरी ऑव इंडिया एज़ टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरिअन्स' में फारसी लिपि के नुक़्तों के देने में कंजूसी करने के कारण पहाड़सिंह विहारसिंह हो गए हैं। यह टिप्पणी इसलिये दे दी गई है कि कोई पाठक यदि उस ग्रंथ को देखें तो निम्नलिखित टिप्पणियों में जहाँ उक्त ग्रंथ का उल्लेख है, वहाँ दूसरा नाम पाकर भ्रम में न पड़ें।

२. पहाड़सिंह तथा उनकी रानी हीरा देवी दोनों जुझारसिंह से अंत तक शत्रुता रखते रहे और जब कभी बादशाही सेनाएँ उन पर भेजी गईं, तब बराबर उनमें योग देते रहे। इसी भ्रातृद्रोह के पुरस्कार में अंत में इन्हें ओड़छा राज्य प्राप्त हुआ।

उसके अधिकृत महालों में से, जो उसके वेतन से अधिक थी, कुछ इन राजा को जागीर में दिया गया। ३रे वर्ष के आरंभ में (जब बादशाह ने खानदेश प्रांत में पहुँच कर तीन सेनाएँ तीन सरदारों की अधीनता में निज़ामुल्मुल्क के राज्य पर अधिकार करने के लिये नियुक्त कीं तब) यह शायस्ता खाँ के साथ नियत हुए। उसी वर्ष राजा की पदवी पाकर सम्मानित हुआ। जब दक्षिण के सूबेदार आज़म खाँ ने बीर[1] के पास खानेजहाँ लोदी पर धावा किया और घोर युद्ध हुआ, तब उसमें इन्होंने अच्छी वीरता दिखलाई। इसके एक साथी ने लड़ाई में खानेजहाँ के भतीजे के पास पहुँचकर उसका सिर उतार लिया और लाकर इसे दिया जिसे यह आज़म खाँ के पास ले गया[2]। इसके अनंतर बहुत दिन तक दक्षिण में नियत रहा।

दौलताबाद दुर्ग के घेरने और अधिकार करने में अपनी जातीय वीरता और बुद्धिमानी से युद्धों में शत्रुओं को मारने और नाश करने में कमी न करके अच्छा कार्य दिखलाया। इसी

---

१. ग्वालियर से ६५ मील दक्षिण-पूर्व है।

२. बीर से छः कोस हट कर पीपलनेर में यह युद्ध हुआ था। खानेजहाँ लोदी के भतीजे बहादुर ने घोर युद्ध कर चाचा को उस समय निकल जाने का अवसर दिया। बहादुर गोली लगने से भाग न सका और अंत में पहाड़सिंह के एक सैनिक परशुराम के हाथ मारा गया। पहाड़सिंह ने उसका सिर आज़म खाँ के पास भेज दिया। (बादशाहनामा, भाग १, पृ० ३१६-२२, इलि डा० भा० ७, पृ० १४)

प्रकार परेंदा[1] के घेरे में भी अच्छी सेवा की। महाबत खाँ खानखानाँ की मृत्यु पर वह खानदौराँ (जो बुर्हानपुर का सूबेदार नियत हुआ था) के अधीन नियुक्त हुआ। ९वें वर्ष जब बादशाह ने दक्षिण आकर साहू भोंसला को दंड देने के लिये सेनाएँ भेजीं, तब यह खानेज़माँ के साथ नियुक्त किया गया। १५वें वर्ष सुल्तान औरंगज़ेब बहादुर के साथ दक्षिण से दरबार आया। उसी वर्ष इसके मंसब में १००० सवार दो और तीन घोड़ेवाले बढ़ा कर इसे चंपत बुंदेला (जो वीरसिंह देव और जुझारसिंह के सेवकों[2] में से था और उस समय उस प्रांत में विद्रोह मचाए हुए था) का दमन करने के लिये भेजा। वहाँ इसके पहुँचने पर बखेड़ा मचानेवाले चंपत ने विद्रोह की शक्ति अपने में न देख कर इससे आकर भेंट की। १८ वें वर्ष अलीमर्दां खाँ अमीरुल्-

१. ७वें वर्ष में पहिले दौलताबाद दुर्ग पर अधिकार किया गया और उसके अनंतर परेंदा दुर्ग घेरा गया था। यह दुर्ग धारूर से ६० मील दक्षिण-पश्चिम सीना नदी के किनारे अहमदनगर से शोलापुर जाने के मार्ग पर है। इसी वर्ष १४ जमादिउल्अव्वल को महाबत खाँ की मृत्यु हो गई।

२. चंपतिराय पहाड़सिंह के भतीजे लगते थे। मधुकर साह और उदयाजीत राजा प्रतापरुद्र के पुत्र थे। पहाड़सिंह मधुकर साह के पौत्र और चंपतराय उदयाजीत के प्रपौत्र थे। एक प्रकार से चंपतिराय ही के युद्धों के कारण अंत में खालसा हुआ ओड़छा राज्य पहाड़सिंह को मिला था। पर उसने अपने भतीजे को मारने का कई बार प्रयत्न किया। चंपतिराय इनके राजा होते ही इनसे मिलने गए थे।

उमरा के साथ बदख्शाँ की चढ़ाई को गया। जब उस वर्ष चढ़ाई का उपाय न हो सका, तब १९वें वर्ष उसके मन्सब के एक सहस्र सवार दो और तीन घोड़ेवाले करके उसे सुल्तान मुराद बख्श के साथ बलख और बदख्शाँ की चढ़ाई पर नियुक्त किया। उज़्बेगों और अलअमानों के युद्ध में उन पर धावा करने में कोई प्रयत्न उठा नहीं रखा और पूर्वोक्त सुल्तान के लौट जाने पर शाहज़ादा औरंगज़ेब बहादुर के पहुँचने तक वहीं ठहरा रहा। २१वें वर्ष शाहज़ादा के साथ लौट कर दरबार आया। २२वें वर्ष सुल्तान औरंगज़ेब के साथ दुर्ग कंधार (जिसे क़ज़िलबाश घेरे हुए थे) को विजय करने के लिये नियुक्त हुआ। वहाँ से लौटने पर देश भेजा गया। २४वें वर्ष एक हज़ारी १००० सवार दो और तीन घोड़ेवाले का मन्सब बढ़ा कर सरदार ख़ाँ के स्थान पर चौरागढ़ का जागीरदार नियत हुआ।

जब वहाँ पहुँचा तब वहाँ के भूम्याधिकारी हृदयराम ने (जिसके पिता भीम नारायण को जुझारसिंह ने प्रतिज्ञा करके बुला कर मार डाला था) बांधव के (इस दुर्ग के खंडहर हो जाने के कारण रीवाँ नामक स्थान में, जो इस दुर्ग से चालीस कोस पर है, दिन व्यतीत करता था) ज़मींदार अनूपसिंह[1] की शरण ली। राजा पहाड़सिंह चढ़ाई कर पचीस कोस

---

[1] यह अमरसिंह बघेला के पुत्र थे। सन् १६५६ ई० में प्रयाग के फौजदार सलाबत खाँ की मध्यस्थता से इन्हें फिर राज्य मिल गया। (राजा रामचंद बघेला शीर्षक ६४ वाँ निबंध देखिये)

पर पहुँचा। अनूपसिंह अपने में शक्ति न देख कर अपने बाल-बच्चों और हृदयराम के साथ नतूनथर के पार्वत्य प्रदेश में भाग गया। राजा ने रीवाँ पहुँच कर उसे नष्ट भ्रष्ट कर दिया। इसी समय उसके नाम आज्ञापत्र आया। तब २५वें वर्ष दरबार गया और एक हाथी और तीन हथिनियाँ (जो बांधव के भूम्याधिकारी की लूट में प्राप्त हुई थीं) भेंट दीं। दूसरी बार सुल्तान औरंगज़ेब के साथ कंधार की चढ़ाई पर नियत हुआ। २६वें वर्ष तीसरी बार उसी चढ़ाई पर सुल्तान दारा शिकोह के साथ नियत हुआ और उस दुर्ग के घेरे में एक मोर्चे का अधिनायक था। जब शाहज़ादा विफलता के साथ लौटा, तब इसने भी दरबार पहुँच कर देश जाने की छुट्टी पाई। २८वें वर्ष सन् १०६४ हि० (सन् १६५४ ई०) में इसकी मृत्यु हुई। बादशाह ने इसके बड़े पुत्र सुजानसिंह को (जिसका वृत्तांत अलग[1] दिया गया है) उत्तराधिकारी बनाया और दूसरे पुत्र इंद्रमणि को पाँच सदी, ४०० सवार का मन्सब दिया। औरंगाबाद के घेरे के बाहर पूर्व और उत्तर की ओर एक पुरा इसके नाम पर बसा है।

३७—पृथ्वीराज राठौर

यह शाहजहाँ का एक सरदार था। विद्रोह के समय साथ देने से यह विश्वासपात्र हुआ। शाहजहाँ के बादशाह होने पर इसे पहले वर्ष डेढ़ हज़ारी ६०० सवार का मन्सब मिला। दूसरे वर्ष ख़्वाजा अबुलहसन तुर्वती के साथ ख़ानेजहाँ लोदी का पीछा करने को (जो आगरे से भाग गया था) नियत हुआ। दूसरों का आसरा न देख कर कुछ सरदारों के साथ (जो फुर्ती से आगे बढ़ आए थे) धौलपुर के पास उस पर पहुँच गया और युद्ध में राजपूतों की चाल पर पैदल होकर स्वयं ख़ानेजहाँ से (जो सवार था) भिड़ गया। उसे बरछे से घायल किया और स्वयं भी घायल हुआ। बादशाह ने उसको बुलाकर उसका मन्सब दो हज़ारी ८०० सवार का कर दिया और घोड़ा तथा हाथी दिया। तीसरे वर्ष २०० सवार और बढ़ाकर उसको ख़्वाजा अबुलहसन के साथ नासिक दुर्ग विजय करने को भेजा। जब महाबत ख़ाँ दक्षिण का सूबेदार हुआ, तब इसने भी उसी प्रान्त में नियुक्त होकर दो हज़ारी १५०० सवार का मन्सब पाया। दौलताबाद के घेरे में अच्छी वीरता दिखलाई। एक दिन दक्षिण की सेना (जो विद्रोही हो गई थी) के एक सवार ने इसे द्वंद्व युद्ध के लिये ललकारा। सुनते ही यह सेना से निकल कर सामने हुआ और तलवार से उसे

मार डाला। ७वें वर्ष १०० सवार और बढ़ाए गए। ९वें वर्ष जब बादशाह दक्षिण आए तब बालाघाट के सूबेदार खानेज़माँ के साथ दौलताबाद के पास यह बादशाह से मिला और खाँ के साथ साहू भोंसला का दमन करने और आदिलशाही राज्य पर अधिकार करने को भेजा गया। इस चढ़ाई में अच्छा कार्य करने पर १०वें वर्ष में १०० सवार मन्सब में बढ़ाए गए। ११वें वर्ष जब औरंगज़ेब के वकीलों के बदले दक्षिण का प्रबन्ध खानेदौराँ को मिला, तब यह दौलताबाद का दुर्गाध्यक्ष हुआ। १८वें वर्ष मन्सब बढ़कर दो हज़ारी २००० सवार का हो गया। १९वें वर्ष आज्ञानुसार आगरे आकर यह बाक़ी खाँ के साथ वहाँ का अध्यक्ष हुआ। २०वें वर्ष (जब बादशाह लाहौर में थे) यह आज्ञा मिलने पर आगरे के कोष से एक करोड़ रुपया लेकर वहाँ गया। उसी समय शाहज़ादा मुहम्मद औरंगज़ेब बहादुर बलख और बदख़्शाँ की ओर रवाना हुए थे। इन्हें ख़िलअत और चाँदी की ज़ीन सहित घोड़ा दिया और पचास लाख रुपए की रक्षा (जो शाहज़ादे को देना निश्चित हुआ था) पर नियुक्त कर वहाँ भेजा। २१वें वर्ष राजा विट्ठलदास के साथ यह अलीमर्दां खाँ की सहायता को काबुल गए। २२वें वर्ष शाहज़ादा मुहम्मद औरंगज़ेब बहादुर के साथ कंधार गए और वहाँ से रुस्तम खाँ के साथ कज़िलबाशी सेना से युद्ध करने गए। २५वें वर्ष पूर्वोक्त शाहज़ादे के साथ उसी चढ़ाई पर गए। २६वें वर्ष शाहज़ादा दारा शिकोह के साथ उसी चढ़ाई पर नियत हुए। वहाँ से यह

रुस्तम खाँ के साथ बुस्त दुर्ग विजय करने गए। ३०वें वर्ष यह दक्षिण में शाहज़ादा मुहम्मद औरंगज़ेब के साथ नियत हुए। उसी वर्ष १०६६ हि० (सन् १६५६ ई०) में इनकी मृत्यु हुई। इनके भाई रामसिंह और पुत्र केसरीसिंह उस समय छोटे मन्सबों पर थे।

३८—मिरज़ा राजा बहादुरसिंह[1]

यह राजा मानसिंह का पुत्र था। अकबर के समय में प्राप्त एक हज़ारी मन्सब जहाँगीर के जुलूस के १ले वर्ष (सं० १६६२ वि०, सन् १६०५ ई०) में डेढ़ हज़ारी हो गया। ३रे वर्ष में दो हज़ारी २००० सवार का मन्सब पाकर यह सम्मानित हुआ। जब राजा मानसिंह की मृत्यु का समाचार मिला, तब यद्यपि राजपूत प्रथा के अनुसार जगतसिंह (जो पूर्वोक्त राजा का सब से बड़ा पुत्र था) के पुत्र महासिंह को उत्तराधिकार पहुँचता था, पर बादशाह ने अनुग्रह से (जो बहादुरसिंह पर था) इसको दरबार में बुलाकर मिरज़ा राजा की पदवी और मन्सब बढ़ाकर चार हज़ारी ३००० सवार का देकर उस जाति की सरदारी सौंपी। यह १०वें वर्ष फिर देश गया। ११वें वर्ष में इसे तुर्रा मिला। १२वें वर्ष में एक हज़ारी मन्सब बढ़ाकर इसको दक्षिण के कार्यों पर नियुक्त किया। १६वें वर्ष सन् १०३० हि० (सं०

---

१. टाड कृत राजस्थान में, इसी ग्रन्थ में महासिंह और जयसिंह की जीवनी में तथा अन्य इतिहासों में इसका नाम भाऊसिंह दिया है। इसकी मृत्यु सन् १६२० ई० में हुई थी। निबन्ध २३ और ५० देखिए। स्यात् इसका वास्तविक नाम भाऊसिंह या भावसिंह था और बादशाह की ओर से इसे बहादुरसिंह की उपाधि मिली थी।

१६७७ वि०, सन् १६२० ई०) में इसकी मृत्यु हुई। यद्यपि इसके बड़े भाई जगतसिंह और भतीजा महासिंह दोनों मदिरा पान से मर चुके थे, पर उनसे कुछ उपदेश न लेकर इसने भी मीठे प्राण को कड़ुए पानी के बदले बेच डाला। गम्भीर, योग्य और शील-वान युवक था।

३१--राजा बासू

यह मऊ और पठान[१] (पठानकोट) का ज़मींदार था, जो स्थान पंजाब प्रांत के बारी दोआब में उत्तरी पहाड़ों के पास है। (जिस समय हुमायूँ की मृत्यु से संसार में गड़बड़ी मच गई थी और चारों ओर सोए हुए बलवे जाग पड़े थे) उस समय सुलतान सिकंदर सूर ने (जो पंजाब की पहाड़ी घाटियों से निकल कर अपना अवसर देख रहा था) विद्रोह आरम्भ कर दिया। बख़्तमल ने (जो उस समय उस प्रांत का मुखिया था और विद्रोह और गड़बड़ मचाने में प्रसिद्ध था) सुलतान सिकंदर का साथ देकर युद्ध की तैयारी की। इसके अनन्तर (जब २रे वर्ष अकबर ने सिकंदर को मानकोट में घेर लिया और दुर्गवालों को प्रति दिन अधिक कष्ट मालूम होने लगे तब) वहाँ से, कि हिन्दोस्तान के बहुत से जमींदारों में यह चाल है (कि एक पक्ष की ओर न रह कर सब ओर ध्यान रखते हैं और जिस पक्ष को विजयी और बढ़ता देखते हैं, उसी का साथ देते हैं) यह भी दरबार पहुँच कर ज़मींदारी बुद्धि से बादशाही सेना में मिल गया। दुर्ग मानकोट लिए जाने और सुलतान सिकंदर के हट जाने के अनन्तर

---

१. पठानकोट गुरदासपुर ज़िले में रावी नदी के पास है।

(जब लाहौर में विजयी सेना ठहरी हुई थी) यद्यपि स्वयं आनेवालों को, जो निरुपाय होकर आए थे, दंड देना ठीक नहीं समझा जाता था, पर बैराम खाँ ने उसके विद्रोह और गड़बड़ी मचाने ही को विचार करके उसे प्राण-दंड देना उचित समझ कर उसे मरवा डाला और उसके भाई तख्तमल को उसका स्थानापन्न किया। जब उस प्रांत का अध्यक्ष राजा बासू हुआ, तब उसने बराबर राजभक्ति और आज्ञा पालन कर अच्छी सेवा की। (जब अकबर ने मिरज़ा मुहम्मद हकीम की मृत्यु और ज़ाबुलिस्तान अर्थात् अफ़ग़ानिस्तान पर अधिकर हो जाने के अनंतर पंजाब प्रांत को शांत करना पहिला कार्य समझ कर वहाँ कुछ दिन रहना ठीक किया तब) राजा बासू ने अदूरदर्शिता और मूर्खता से विद्रोह करना विचारा। इसलिये ३१वें वर्ष में हसनबेग शेख उमरी उस पर नियुक्त हुआ कि यदि वह समझाने से न माने तो उसे दंड दे। जब शाही सेना पठान पहुँची तब राजा बासू राजा टोडरमल के पत्र से मूर्खता की नींद से जागा और हसनबेग के साथ दरबार आया। इसके अनंतर ४१वें वर्ष में बहुत से विद्रोहियों को अपनी ओर मिला कर फिर से बादशाही आज्ञा नहीं मानने लगा। अकबर ने पठान और उसके आसपास की भूमि मिरज़ा रुस्तम क़ंधारी को जागीर में दे दी और उक्त विद्रोही को दंड देने पर नियुक्त किया। उसकी सहायता के लिये आसफ़ख़ाँ भी साथ गया था; परंतु जब इन दोनों सरदारों के अनैक्य से काम नहीं हो सका, तब मिरज़ा रुस्तम बुला लिया गया

और राजा मानसिंह के पुत्र जगतसिंह उस कार्य पर नियत हुए। बादशाही सेवकगण एकता कर के साहस के साथ काम में लग गए और मऊ दुर्ग को (जो दृढ़ता और दुर्गमता के लिये प्रसिद्ध और उस विद्रोही का वासस्थान था) घेर लिया। दो महीने तक युद्ध होता रहा और अंत में दुर्ग दे देना पड़ा। ४७वें वर्ष में जब उसके विद्रोह का समाचार पहुँचा, तब फिर एक सेना उसको दंड देने के लिये भेजी गई। ताज खाँ का पुत्र जमीलबेग[1] इसके आदमियों के हाथ मारा गया। इसके अनंतर राजा शाहज़ादा सुल्तान सलीम की शरण में गया जिससे शाहज़ादे की प्रार्थना से उसके दोष क्षमा हो जायँ। फिर विद्रोही हो ४९वें वर्ष में (जब शाहज़ादा दूसरी बार अपने पिता की सेवा में पहुँचा तब) यह भी क्षमा की आशा से उनके साथ आया, पर डर के कारण नदी के उसी पार ठहरा रहा। इसके पहिले (कि शाहज़ादा क्षमाप्रार्थी हो) अकबर ने माधोसिंह कछवाहा[2] को उसे पकड़ने को भेजा जिसका समाचार पाकर वह भाग गया।

---

१. ताश बेग ख़ाँ मुग़ल, जिसे ताजख़ाँ की उपाधि मिली थी, पंजाब के बख़्शी ख़्वाजः सुलेमान के साथ राजा बासू पर भेजा गया था। इसका पुत्र जमील बेग जिस समय खेमें लगवा रहा था, उसी समय राजा बासू ने धावा कर दिया जिसमें यह अपने पिता के पचास सैनिकों के साथ मारा गया। (ब्लोकमैन कृत आईने-अकबरी भा० १, पृ० ४५७)

२. अकबरनामा भा० ३, पृ० ८३२ से मालूम होता है कि यह राजा मानसिंह के भतीजे थे; पर वास्तव में यह उनके भाई थे, जैसा आईने-अकबरी (ब्लोकमैन) तथा तुजुके जहाँगीरी से भी ज्ञात होता है।

जब जहाँगीर बादशाह हुआ तब यह साढ़े तीन हज़ारी मन्सब पाकर सम्मानित हुआ। छठवें वर्ष में यह दक्षिण भेजा गया और ८वें वर्ष सन् १०२२ हि० (सन् १६१२ ई०) में मर गया। इसके दो पुत्र राजा सूरजमल[१] और राजा जगतसिंह थे जिन दोनों का वृत्तांत अलग दिया गया है।

यह बड़े बलवान पुरुष थे और इनकी शक्ति के विषय में कई दंतकथाएँ प्रचलित हैं।

१. इलि० डाउ०, भा० ६, पृ० ५२१—२५। सूरजमल के वृत्तान्त के लिये ८६वाँ तथा राजा जगतसिंह के वृत्तान्त के लिए २०वाँ निबंध देखिए।

४०—राजा विट्ठलदास गौड़

कहते हैं कि (राठौरों और सिसौदियों के अधिकार में आने के) पहिले मारवाड़ और मेवाड़ इसी जाति के अधिकार में थे। उन जातियों के अधिकृत होने पर भी बहुत से परगनों पर इनकी जमींदारी रह गई थी। पूर्वोक्त (विट्ठलदास) राजा गोपालदास गौर[१] का द्वितीय पुत्र था, जो सुलतान खुर्रम के बंगाल से लौटने और बुरहानपुर आने के समय आसीर का दुर्गाध्यक्ष था। इसके अनंतर शाहजादे ने उसको अपने पास बुला कर उसके स्थान पर सरदार खाँ को नियुक्त किया। इसने अपने पुत्र और उत्तराधिकारी बलराम के साथ ठट्टा के घेरे में वीरगति प्राप्त की। यह (विट्ठलदास) अपने देश से आकर जुनेर में सेवा में पहुँचा। शाहजहाँ के बादशाह होने पर तीन हजारी १५०० सवार का मन्सब, राजा की पदवी, झंडा, चाँदी की काठी सहित घोड़ा, हाथी और तीस सहस्र रुपया सिक्का पाकर सम्मानित हुआ। खानेजहाँ लोदी के साथ जुझारसिंह बुँदेला को दंड देने के लिये नियत हुआ। २रे वर्ष (सं० १६८५ वि०, सन् १६२८ ई०) ख्वाजः अबुलहसन तुरबती के साथ खानेजहाँ लोदी का पीछा करने पर नियुक्त हुआ। इसने काम करने की इच्छा से सेनापति की प्रतीक्षा न

१. तेरहवाँ निबंध देखिए।

करके हवा की तरह पीछा किया और धौलपुर के पास उसे पाकर उससे खूब युद्ध किया। राजपूतों की चाल पर पैदल होकर वीरता दिखलाई और घायल होकर प्रसिद्धि पाई। इसके पुरस्कार में ५०० सवार इसके मन्सब में बढ़े और इसने डंका पाया। ३रे वर्ष (जब बादशाह ने दक्षिण पहुँच कर तीन सेनाएँ तीन मनुष्यों की अधीनता में खानेजहाँ लोदी को दंड देने और निज़ामुलमुल्क के राज्य पर अधिकार करने के लिये नियत कीं तब) यह राजा गजसिंह के अधीन नियत हुए और खानेजहाँ लोदी के साथ के युद्धों में अच्छा कार्य कर दिखलाया।

यहाँ से (बादशाह ने इसकी और इसके पिता की राजभक्ति देखी थी और इसकी बड़ी इच्छा दुर्गाध्यक्ष होने की थी; क्योंकि उसके बिना राजत्व का पद विश्वसनीय नहीं समझा जाता था) ४थे वर्ष खान चेला के बदले में यह रंतभँवर का दुर्गाध्यक्ष नियत हुआ। ६ठे वर्ष अजमेर की फ़ौजदारी मिरज़ा मुज़फ्फ़र खाँ किर्मानी के बदले में इसे मिली। इसके अनंतर शाहजादा मुहम्मद शुजाअ के साथ दक्षिण प्रांत में नियुक्त होकर परेंदा[1] दुर्ग के घेरे में बहुत प्रयत्न करके अच्छी सेवा की। जब दुर्ग लेने का कोई उपाय न रहा और शाहज़ादा दरबार बुलाया गया, तब यह भी बादशाह के पास पहुँच कर ८वें वर्ष अजमेर प्रांत पर नियुक्त हुआ। ९वें वर्ष जब बादशाह ने दक्षिण जाकर तीन मनुष्यों की अधीनता में तीन सेनाएँ शाह जी भोंसला को दंड देने के लिये

१. चौरासीवाँ निबंध देखिए।

नियत की तब) यह खानदौराँ के साथवालों में था। इस पर अधिक कृपा होने के कारण धंदेरा प्रांत इसके भतीजे शिवराम[1] को मिला था जिसने सेना सहित जाकर इंद्रमणि[2] जमींदार को वहाँ से निकाल दिया था। पर इसके अनंतर उसने सेना एकत्र कर के शिवराम से उस स्थान का अधिकार फिर छीन लिया था। इस पर १०वें वर्ष राजा सेना सहित (जिसका सेनापति मोतमिद खाँ था) उस प्रांत को शांत करने के लिये नियुक्त हुआ। वहाँ पहुँच कर इसने दुर्ग सहरा को घेर लिया। जमींदार ने तंग होने पर मोतमिद खाँ से भेंट की। राजा के दरबार पहुँचने पर उसका मन्सब बढ़कर चार हज़ारी ३००० सवार का हो गया और धाँदेरा प्रांत उसे रहने के लिये मिल गया। ११वें वर्ष (जब बादशाह लाहौर जा रहे थे तब) इसे आगरे का दुर्गाध्यक्ष बना गए। १२वें वर्ष यह आज्ञानुसार आगरे से राजकोष लाहौर ले गया। १४वें वर्ष वज़ीर खाँ की मृत्यु पर यह आगरे का शासनकर्ता और दुर्गाध्यक्ष नियत हुआ। १६वें वर्ष बादशाह के आगरे आने पर इसका मन्सब पाँच हज़ारी ३००० सवार का हो गया। १९वें वर्ष यह पाँच हज़ारी ४००० सवार के मन्सब सहित बलख और बदख़्शाँ की चढ़ाई में मुरादबख़्श शाहज़ादा के हरावल में नियुक्त हुआ। बलख विजय के अनंतर जब शाहज़ादा घबरा कर दरबार

---

१. निज़ाम हैदराबाद के राज्य की पश्चिमी सीमा पर सीना नदी के किनारे पर बना हुआ एक दुर्ग है।

२. पाँचवाँ निबंध देखिए।

चला आया और वहाँ के प्रबंध के लिये सादुल्ला खाँ गया, तब यह आज्ञानुसार बलख के स्वामी नजर मुहम्मद खाँ के छूटे हुए मनुष्यों के साथ २०वें वर्ष दरबार चला आया। २१वें वर्ष (जब बादशाह शाहजहाँनाबाद के नए महलों में गए तब) यह पाँच हजारी ५००० सवार हजार सवार दो और तीन घोड़ेवाले मन्सब के साथ काबुल में नियुक्त हुआ। २२वें वर्ष दरबार आने पर एक हजार सवार दो और तीन घोड़ेवाले और बढ़ाए गए और शाहज़ादा औरंगज़ेब के साथ क़ज़िलबाशों के युद्ध में (जो क़ंधार दुर्ग घेरने आए हुए थे) इसने प्रसिद्धि पाई। जब दुर्ग-विजय का उपाय न हो सका तब २३वें वर्ष आज्ञा आने पर शाहजादे के साथ दरबार गया और वहाँ से अपने देश जाने की छुट्टी पाई। वहीं सन् १०६१ हि० (सन् १६५१ ई०) में इसकी मृत्यु हुई।

यह अपने कार्यों और राजभक्ति के कारण कृपापात्र हो गया था, इससे बादशाह को बहुत शोक हुआ और इसके साथियों पर कृपाएँ कीं। इसका बड़ा पुत्र राजा अनिरुद्ध[1] है जिसका वृत्तांत अलग दिया है। दूसरा पुत्र अर्जुन था जो पिता के सामने ही बादशाह शाहजहाँ का प्रियपात्र हो गया था। एक दिन (कि राव अमरसिंह राठौर ने मीर बख्शी सलाबत खाँ को बादशाही दरबार में मार डाला था) इसने साहस करके पूर्वोक्त राव पर दो बार तलवार चलाई थी[2]। १९वें वर्ष शाहज़ादा मुरादबख्श के

१. दूसरा निबंध देखिए।
२. चौथा निबंध देखिए।

साथ बलख़ और बदख़शाँ की चढ़ाई पर नियुक्त हुआ। २१वें वर्ष में इसका मन्सब हज़ारी ७०० सवार का था। २२वें वर्ष सौ सवार बढ़ाए गए और २५वें में पिता की मृत्यु के अनंतर पाँच सदी ७०० सवार का मन्सब और बढ़ाया जाकर दो बार शाह-जादों के साथ क़ंधार की चढ़ाई पर नियत हुआ। ३२वें वर्ष महा-राज जसवंतसिंह के साथ दक्षिण से आनेवाली सेना के रास्ते में रुकावट डालने के लिये मालवा में नियुक्त हुआ। युद्ध में (जो महाराज और सुलतान मुहम्मद औरंगज़ेब बहादुर के बीच उज्जैन के पास हुआ था) वीरता दिखलाकर मारा गया। तीसरा पुत्र भीम था, जिसने पिता की मृत्यु पर योग्य मन्सब पाया था और सामूगढ़ के युद्ध में दारा शिकोह के साथ था। युद्ध में वीरता के साथ शाहज़ादा औरंगज़ेब के मेगजीन तक पहुँच गया और मारा गया। चौथा पुत्र हरयश (जो औरंगज़ेब के समय सेवा में था) था। राजा की मृत्यु पर दस लाख रुपए (जो उसने बचा रखे थे) में से छः लाख रुपया सिक्का और उसका सामान राजा अनिरुद्ध को, तीन लाख रुपया अर्जुन को, साठ हज़ार भीम को और चालीस हज़ार हरजस को मिला था। पूर्वोक्त राजा का छोटा भाई गिरधरदास शाहजहाँ के ९वें वर्ष में जुझारसिंह बुँदेला के मारे जाने और झाँसी दुर्ग के विजय होने पर वहाँ का दुर्गाध्यक्ष नियत हुआ। १५वें वर्ष में उसे हज़ारी ४०० सवार का मन्सब मिला जो बराबर बढ़ता हुआ २२वें वर्ष में १००० सवार तक बढ़ गया। पूर्वोक्त राजा की मृत्यु के अनंतर इसका मन्सब बढ़ कर

डेढ़ हज़ारी १२०० सवार का हो गया। यह क़ंधार को विजय पर नियुक्त हुआ और २९वें वर्ष में सआदत खाँ के स्थान पर आगरे का दुर्गाध्यक्ष नियुक्त होने पर इसका मन्सव दो हज़ारी १२०० सवार का हो गया। ३०वें वर्ष में दुर्ग की अध्यक्षता के साथ वहाँ का फौजदार भी नियुक्त हो गया। सामूगढ़ के युद्ध में सुलतान दारा शिकोह के हरावल में था। आलमगीर नामा से ज्ञात होता है कि यह औरंगज़ेब के समय भी राजकार्य में लगा हुआ था।

४१-राजा बीरबर[1]

ये महेशदास नामक बादफ़रोश (प्रशंसा बेचनेवाले) ब्राह्मण थे जिसे हिन्दी में भाट कहते हैं। यह जाति धनाढ्यों की प्रशंसा करनेवाली थी। यद्यपि यह कम पूँजी के कारण बुरी अवस्था में दिन व्यतीत कर रहे थे, पर बुद्धि और समझ भरी हुई थी। अपनी बुद्धिमानी और समझदारी से अपने समय के बराबर लोगों में मान्य हो गए। जब सौभाग्य से अकबर बादशाह की सेवा में पहुँचे, तब अपनी वाक्चातुरी और हँसोड़पन से बादशाही मजलिस के मुसाहिबों और मुख्य लोगों के गोल में जा पहुँचे और धीरे धीरे उन सब लोगों से आगे बढ़ गए। बहुधा बादशाही पत्रों में इन्हें मुसाहिबे-दानिशवर राजा बीरबर लिखा गया है। यह हिन्दी की अच्छी कविता करते थे, इससे पहले

---

१. राजा बीरबल का जन्म सं० १५८५ वि० में कानपुर ज़िले के अंतर्गत त्रिविक्रमपुर अर्थात् तिकवाँपुर में हुआ था। भूषण कवि ने अपने जन्मस्थान त्रिविक्रमपुर में ही इनका जन्म होना लिखा है। प्रयाग के अशोक-स्तंभ पर यह लेख है—सं० १६३२ शाके १४९३ मार्ग वदी ५ सोमवार गंगादास सुत महाराज बीरबल श्री तीरथराज की यात्रा सुफल लिखितं। बदायूनी ने इनके उपनाम ब्रह्म में दास मिला कर इनका नाम ब्रह्मदास लिखा है। (बदायूनी, लो, पृ० १६४) ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे।



राजा बीरबर

कविराय (जो मलिकुश्शोअरा अर्थात् कवियों के राजा के प्रायः बराबर है) की पदवी मिली । १८वें वर्ष जब बादशाह ने नगरकोट के राजा जयचन्द पर क्रुद्ध होकर उसे क़ैद कर लिया, तब उसका पुत्र विधिचन्द्र (जो अल्पवयस्क था) अपने को उसका उत्तराधिकारी समझ कर विद्रोही हो गया। बादशाह ने वह प्रान्त कविराय को (जिसकी जागीर पास ही थी) दे दी और पंजाब के सूबेदार हुसेन क़ुली खाँ खानेजहाँ को आज्ञापत्र भेजा कि उस प्रान्त के सरदारों के साथ वहाँ जाकर नगरकोट विधिचन्द्र से छीनकर कविराय के अधिकार में दे दे। इन्हें राजा बीरबर (जिसका अर्थ बहादुर है) की पदवी देकर उस कार्य पर नियत किया।

जब राजा लाहौर पहुँचे तब हुसेन क़ुली खाँ ने जागीरदारों के साथ ससैन्य नगरकोट पहुँच कर उसे घेर लिया। जिस समय दुर्गवाले कठिनाई में पड़े हुए थे, दैवात् उसी समय इब्राहीम हुसेन मिर्ज़ा का बलवा आरम्भ हो गया; और इस कारण कि उस विद्रोह का शान्त करना उस समय का आवश्यक कार्य था, इससे दुर्ग विजय करना छोड़ देना पड़ा। अन्त में राजा की सम्मति से विधिचन्द्र से पाँच मन सोना और खुतबा पढ़वाने, बादशाही सिक्का ढालने तथा दुर्ग काँगड़ा के फाटक के पास मसजिद बनवाने का वचन लेकर घेरा उठा लिया गया। ३०वें वर्ष सन् ९९४ हि० (सन् १५८६ ई०) में जैन खाँ कोका यूसुफ़जई जाति को, जो स्वाद और बाजौर नामक पहाड़ी देश को रहनेवाली थी, दंड

देने के लिये नियुक्त हुआ था। उसने बाजौर पर चढ़ाई करके स्वाद (जो पेशावर के उत्तर और बाजौर के पश्चिम है, चालीस कोस लम्बा और पाँच से पन्द्रह कोस तक चौड़ा है और जिसमें चालीस सहस्र मनुष्य उस जाति के बसते थे) पहुँच कर उस जाति को दंड दिया।

घाटियाँ पार करते करते सेना थक गई थी, इसलिये ज़ैन ख़ाँ कोका ने बादशाह के पास नई सेना के लिये सहायतार्थ प्रार्थना की। शेख़ अबुल फ़ज़ल ने उत्साह और स्वामिभक्ति से इस कार्य के लिये बादशाह से अपने को नियुक्त किए जाने की प्रार्थना की। बादशाह ने इनके और राजा बीरबर के नाम पर गोली डाली। दैवात् वह राजा के नाम की निकली। इनके नियुक्त होने के अनन्तर शंका के कारण हकीम अबुलफ़ज़ल के अधीन एक सेना पीछे से और भेज दी। जब दोनों सरदार पहाड़ी देश में होकर कोका के पास पहुँचे तब, यद्यपि कोकलताश तथा राजा के बीच पहिले ही से मनोमालिन्य था, तथापि कोका ने मजलिस करके नवागंतुकों को निमन्त्रित किया। राजा ने इस पर क्रोध प्रदर्शित किया। कोका धैर्य को काम में लाकर राजा के पास गया और जब राय होने लगी, तब राजा (जो हकीम से भी पहिले ही से मनोमालिन्य रखता था) से कड़ी कड़ी बातें हुईं और अन्त में गाली-गलौज तक हो गया।

फल यह हुआ कि किसी का हृदय स्वच्छ नहीं रहा और हर एक दूसरे की सम्मति को काटने लगा। यहाँ तक कि आपस

की फूट और झगड़े से विना ठीक प्रबन्ध किए वे वलंदरी को घाटी में घुसे। अफ़ग़ानों ने हर ओर से तीर और पत्थर फेंकना आरम्भ किया और घबराहट से हाथी, घोड़े और मनुष्य एक में मिल गए। बहुत आदमी मारे गए और दूसरे दिन बिना क्रम ही के कूच करके अँधेरे में घाटियों में फँस कर बहुत से मारे गए। राजा बीरबर भी इसी में मारे गए[1]।

कहते हैं कि जब राजा कराकर पहुँचे थे, तब किसी ने उनसे कहा था कि आज की रात्रि में अफ़ग़ान आक्रमण करेंगे; इससे तीन चार कोस ज़मीन (जो सामने है) पार कर ली जाय तो रात्रि-आक्रमण का खटका न रह जायगा। राजा ने ज़ैन ख़ाँ को बिना इसका पता दिए ही संध्या समय कूच कर दिया। उनके पीछे कुल सेना चल दी। जो होना था सो हो गया। बादशाही सेना का भारी पराजय हुआ और लगभग आठ सहस्र मनुष्य मारे गए जिनमें से कुछ ऐसे थे जिन्हें बादशाह पहचानते थे। राजा ने बहुत कुछ हाथ पैर मारा (कि बाहर निकल जायँ) पर मारा गया[2]।

जब कोई कृतघ्नता और अकृतज्ञता से धन्यवाद देने के बदले में बुराई करने लगता है, तब यह कंटकमय संसार उसे जल्दी उसके

---

१. अकबरनामा, इलि० डाउ०, जि० ५, पृ० ८०-८४ में विस्तृत विवरण दिया है।

२. जुब्दतुत्तवारीख़, इलि० डाउ०, जि० ५, पृ० १९१ में इसी प्रकार यह घटना लिखी गई है।

कामों का बदला दे देता है। कहते हैं कि जब राजा उस पार्वत्य प्रदेश में पहुँचा, तब उसका मुख और हृदय बिगड़ा हुआ था और अपने साथियों से कहता था कि 'हम लोगों का समय ही बिगड़ा हुआ है कि एक हकीम के साथ कोका की सहायता के लिये जंगल और पहाड़ नापना पड़ेगा। इसका फल न जाने क्या हो!' यह नहीं जानता था कि स्वामी के काम करने और उसकी आज्ञा मानने ही में धर्म और भलाई है। यह कारण कितना ही असंतोष-जनक रहा हो, पर यह प्रकट है कि जैन खाँ धाय-भाई और ऊँचे मन्सब का होने से उच्चपदस्थ था। राजा केवल दो हज़ारी मन्सब-दार था, पर उसने मुसाहिबी और मित्रता (जो बादशाह के साथ थी) के घमंड में ऐसा वर्ताव किया था।

कहते हैं कि अकबर ने उसकी मृत्यु-वार्ता सुन कर दो दिन तक खान-पान नहीं किया[१] और उस फ़रमान से (जो ख़ानख़ानाँ मिरज़ा अब्दुर्रहीम को उसके शोक पर लिखा था और जो अल्लामी शेख़ अबुल फ़ज़ल के ग्रंथ में दिया हुआ है) प्रकट होता है कि बादशाह के हृदय में उसने कितना स्थान प्राप्त कर लिया था और दोनों में कितना घना संबंध था। उसकी प्रशंसा और स्वामिभक्ति के शब्दों के आगे यह लिखा हुआ है कि "शोक! सहस्र शोक! कि इस शराबख़ाने की शराब में दुःख मिला हुआ है! इस मीठे

---

१. राजा बीरबल की मृत्यु के अनंतर उनके जीवित रहने की झूठी गप्पों का वर्णन बदायूनी ने विस्तार से लिखा है (देखिए मुंत्तखबुत्तवारीख बिब० इंडि० सं० पृ० ३५७-५८)।

संसार की मिस्री हलाहल मिश्रित है ! संसार मृग-तृष्णा के समान प्यासों से कपट करता है और पड़ाव गड्ढों और टीलों से भरा पड़ा है ! इस मजलिस का भी सवेरा होना है और इस पागलपन का फल सिर की गर्मी है ! कुछ रुकावटें न आ पड़तीं तो स्वयं जाकर अपनी आँखों से उसका शव देखता और उन कृपाओं और दयाओं (जो हमारी उस पर थीं) को प्रदर्शित करता।"

शैर का अर्थ

"हे हृदय, ऐसी घटना से मेरे कलेजे में रक्त तक नहीं रह गया; और हे नेत्र, कलेजे का रंग भी अब लाल नहीं रह गया है।"

राजा वीरवर दान देने में अपने समय में अद्वितीय थे और पुरस्कार देने में संसार-प्रसिद्ध थे। गान विद्या भी अच्छी जानते थे। उनके कवित्त और दोहे प्रसिद्ध हैं। उनके लतीफ़े और कहावतें सब में प्रचलित हैं। उनका उपनाम ब्रह्म[1] था। बड़े पुत्र[2]

---

१. दरबारे अकबरी में (पृ० २६५) उपनाम बुर्हिया लिखा है। बदायूनी लो कृत अनु० पृ० १६४ में ब्रह्मनदास लिखा है; पर मूल फ़ारसी (जि० २, पृ० १६१) में ब्रह्मदास है। मआसिरुल्उमरा के सम्पादकों ने वरहनः (नंगा) लिखा है। यह सब फ़ारसी लिपि की माया मात्र है। वास्तव में ब्रह्म ही ठीक है। मिश्रबंधुविनोद (सं० ७७, भाग १, पृ० २६६-८) में इनकी कविता का उद्धरण दिया हुआ है।

२. दूसरे पुत्र का हरिहरराय नाम था जिसका अकबरनामा जि० ३, पृ० ८२० में इस प्रकार उल्लेख है कि वह दक्षिण से शाहज़ादा दानियाल का पत्र लाया था।

का नाम लाला था, जिसे योग्य मन्सब मिला था। यह कुस्वभाव और बुरी लत से व्यय अधिक करता था जिससे इसकी इच्छा बढ़ी; पर जब आय नहीं बढ़ी, तब इसके सिर पर स्वतंत्रता से दिन व्यतीत करने की सनक चढ़ी। इसलिये इसको ४६वें वर्ष में बादशाही दरबार छोड़ने की आज्ञा मिल गई।

४२—राजा वीर वहादुर

यह भरोजी सरकर का पुत्र था। यह (अह्ल) धकर[1] जाति का एक भाग है। इनके पूर्वज अन्नागुंडी[2] के पास (जो तुगभद्रा नदी के किनारे पर स्थित है और पहले राजधानी थी) रहते थे। वहाँ से आकर वीजापुर के पास एक ग्राम में रहने लगे। तीमा[3] राजा सिंधिया से संवंध रखने के कारण (जो अच्छे मन्सब और जागीर पर नियुक्त था) भरो जी को निज़ामुलूमुल्क आसफ़जाह के समय योग्य मन्सव और वीदर प्रांत का पालम परगना जागीर में मिला। जव इसकी मृत्यु हुई, तव इसका वड़ा पुत्र अकाजी इसके स्थान पर नियत हुआ और धीरे धीरे सात हज़ारी मंसव, राजा वीर वहादुर की पदवी और अधिक जागीर पाकर सम्मानित हुआ। सन् ११९० हि० (सन् १७७६

१. अन्य प्रति में धनकर लिखा है।

२. अन्य प्रति में पाठांतर अन्ना गोविंद लिखा है। यह तुंगभद्रा नदी के उत्तरी किनारे पर धारवाड़ के ठीक पूर्व है। इसका शुद्ध नाम अनागुंडी ही है।

३. शुद्ध शब्द नीमा है। नीमा जी सिंधिया राजाराम के समय खानदेश के प्रांताध्यक्ष थे। यह महाराज साहु के समय एक प्रसिद्ध सेनापति थे।

ई०) में इसकी मृत्यु हुई। यह फ़ारसी जानता था और कवित्त, दोहे (जो गंगा-यमुना के दोआब के रहनेवालों की कविता[1] है) बनाने में पटु था। इसके बाद इसके पुत्र सधर्म और भतीजों ने पैतृक जागीर बाँट कर नौकरी से हाथ हटा लिया।

———

१. हिंदी कविता से तात्पर्य है।

४३--राजा भगवंतदास[१]

ये राजा भारामल[२] कछवाहा के पुत्र थे। सन् ९८० हि० (सन् १५७२ ई०) में गुजरात पर अधिकार होने के अनंतर सरनाल युद्ध[३] में (जब अकबर ने सौ सवारों के साथ इब्राहीम हुसेन मिरज़ा पर चढ़ाई की थी) राजा ने वीरता और साहस दिखलाया था और डंका और झंडा मिलने से सम्मानित हुए थे। गुजरात पर नौ दिन के धावे में भी इन्होंने अच्छा काम किया

---

१. इनका दूसरा तथा प्रसिद्ध नाम राजा भगवानदास है। महाकवि भूषण ने एक कवित्त में राजा भगवंतदास ही नाम लिखा है; यथा—अकबर पायो भगवंत के तनय सों मान।

२. ४६ वाँ निबन्ध देखिए।

३. गुजरात के सुलतान मुज़फ़्फ़र शाह के अकबर की शरण आने के अनंतर उसके कुछ सरदार ससैन्य सहायतार्थ सूरत से आ रहे थे। सरनाल ग्राम में बादशाह से इनकी मुठभेड़ हो गई। बादशाह के पास केवल डेढ़ सौ सैनिक थे और शत्रु लगभग एक सहस्र थे। दोनों के बीच में महींद्री नदी थी। मानसिंह हरावल में थे जिन्होंने नदी पार कर गुजरातियों पर धावा किया। नागफनी के झंखाड़ के कारण केवल तीन सवार बराबर जा सकते थे। बादशाह ने राजा भगवानदास तथा कुँवर मानसिंह को अपने दोनों ओर रख कर धावा किया और शत्रु को परास्त किया। (अबूतुराब कृत तारीखे गुजरात, पृ० ७५-७६)

था और ईडर के रास्ते से सेना सहित राणा के राज्य पर भेजे गए कि वहाँ के विद्रोहियों को शांत करें और जो न माने उसे दंड दें। राजा बुद्धिनगर और ईडर के जमींदारों को राजभक्ति के रास्ते पर लाया और राणा कीका[1] से भेंट की। उसके पुत्र अमरसिंह[2] को अपने साथ बादशाह के दरबार में ले गया। २३वें वर्ष में (जब कछवाहा जाति की जागीर पंजाब में नियत हुई तब) राजा उस प्रांत का सूबेदार नियुक्त हुआ था। २९वें वर्ष में राजा की पुत्री का सुलतान सलीम के साथ विवाह हुआ। एक मिसरे से, जिसका अर्थ है—'चन्द्र और जुहरा का मेल हुआ,' विवाह की तारीख निकलती है। अकबर स्वयं राजा के गृह पर गया था। उसने भारी मजलिस की और विवाह का दहेज तथा भेंट दी, जो मिल कर एक भारी रक़म हो गई।

कहते हैं कि बहुत से फ़ारसी, अरबी, तुर्की और कच्छी घोड़े, एक सौ हाथी, हब्शी, चरकिसी और हिन्दुस्थानी दास और दासियाँ दी थीं। दो करोड़ रुपया[3] मेह बाँधा गया। बादशाह और शाहजादा दोनों ही पालकी में सवार होकर वहाँ गए। सारे

---

१. मेवाड़-नरेश महाराणा प्रतापसिंह ही का "राणा कीका" प्रेम का नाम था जिससे उनकी प्रजा उन्हें याद करती थी। इनसे कुँवर मानसिंह से भेंट हुई थी।

२. ईडर के राणा के पुत्र अमरसिंह इनके साथ दरबार गए थे (ब्लौकमैन कृत आईने-अकबरी, पृ० ३३३)

३. तबक़ाते अकबरी और बदायूनी में तनकः या दाम लिखा है।

रास्ते में अच्छे कपड़े के पाँवड़े बिछे हुए थे। सन् ९९५ हि० में (४ अगस्त सन् १५८७ ई० को) इस राजकुमारी से सुलतान ख़ुसरो पैदा हुआ। ३०वें वर्ष में राजा को पाँच हज़ारी मन्सब मिला। इसी वर्ष (कि कुँअर मानसिंह यूसुफ़ज़ई जाति के काम पर नियत हुए थे) राजा भगवंतदास ज़ाबुलिस्तान के सूबेदार नियत हुए। इन्होंने कुछ अयोग्य इच्छाएँ प्रकट कीं जिस पर बादशाह ने इनको वहाँ भेजना स्थगित कर दिया जिससे दुःखी होकर बादशाह के यहाँ ये क्षमा-प्रार्थी हुए, तब इनका अपराध क्षमा किया गया। परन्तु जब सिंध नदी पार उतर कर ये ख़ैराबाद में ठहरे थे, तभी एकाएक इनका उन्माद रोग उठा जिससे लौट कर ये अटक चले आए। एक हकीम नाड़ी देख रहा था कि उसका जमधर इन्होंने खींच कर अपने ही को मार लिया। शाही हकीमों ने इनकी दवा करने पर नियत होकर कुछ ही समय में इन्हें अच्छा कर दिया। ३२वें वर्ष में राजा को उनके स्व-जातियों सहित बिहार में जागीर मिली और कुँअर मानसिंह उसके प्रबंध को भेजे गए। सन् ९९८ हि० (सन् १५८९ ई०) के आरंभ में लाहौर में इनकी मृत्यु हो गई। कहते हैं कि जिस समय राजा टोडरमल चिता पर जल रहे थे, उस समय यह भी साथ थे; और जब घर आए तब क़ै-दस्त[1] हुआ और बोली बंद

१. मूल में इस्तफ़राग़ शब्द है जिसका अर्थ पेट का ख़ाली हो जाना है। अन्य इतिहासों में शूल से इनकी मृत्यु लिखी है।

हो गई। पाँच दिन के अनंतर इनकी मृत्यु हो गई[1]। इनके अच्छे कामों में लाहौर की जामः मसजिद[2] है जहाँ शुक्रवार को नमाज़ पढ़ने के लिये लोग एकत्र होते हैं[3]।

---

१. राजा टोडरमल और राजा भगवानदास एक ही वर्ष में मरे थे और बदायूनी ने एक मिसरे में दोनों की मृत्यु की तारीख़ इस प्रकार कहकर अपनी धर्मांधता प्रकट की है—'विगुफ्तः टोडरो भगवान मुर्दंद।' अर्थात् कहा है कि टोडर और भगवान मुर्दे हुए। सन् ९९८ हि० के आरंभ में दोनों की मृत्यु का समाचार एक साथ ही अकबर को काबुल में मिला था।

२. लाहौर की जामअ मस्जिद सन् १६७४ ई० में औरंगज़ेब द्वारा बनवाई गई थी। राजा भगवानदास का मस्जिद बनवाना ठीक नहीं जँचता। ग्राउज पृ० ३०४ में लिखा है कि इन्होंने मथुरा में हरिदेवजी का मंदिर बनवाया था।

३. इनके उत्तराधिकारी मानसिंह का वृत्तांत अलग दिया है तथा पुत्र माधोसिंह और प्रतापसिंह का भी उल्लेख इसी ग्रंथ में हुआ है। निबंध ५४ में राजा मानसिंह का वृत्तांत दिया है।

४४—राव भाऊसिंह हाड़ा

ये राव छत्रसाल[१] के पुत्र थे, जिन्हें सामूगढ़ के युद्ध में दारा शिकोह के हरावल में युद्ध करते हुए वीरगति प्राप्त हुई थी। पहले वर्ष भाऊसिंह देश से आकर[२] औरंगज़ेब के दरबार में गए और तीन हज़ारी २००० सवार का मन्सब, डंका, झंडा, राव की पदवी और बूँदी आदि महालों की जागीर पाकर सम्मानित हुए। शुजाअ के युद्ध में बादशाही तोपख़ाने पर (जो आगे था) नियुक्त थे। शुजाअ के भागने पर शाहज़ादा मुहम्मद सुलतान के साथ उसका पीछा करने पर नियत हुए। इसके अनंतर (जब शाहज़ादे की सेना बंगाल की ओर वीरभूमि के आगे बढ़ी तब)

---

१. मूल में शत्रुशाल का बिगड़ा हुआ रूप सतरसाल है; पर शुद्ध नाम छत्रसाल है।

२. इनके पिता छत्रसाल ने दारा शिकोह का साथ दिया था; इसलिये औरंगज़ेब ने पुत्र पर क्रोध कर शिवपुर के राजा आत्माराम गौड़ को बूँदी पर भेजा। परंतु हाड़ाओं ने उसे परास्त कर शिवपुर जा घेरा। तब औरंगजेब ने हाड़ाओं की वीरता पर प्रसन्न होकर इन्हें बुलाने का फ़रमान भेजा और यह दरबार में हाज़िर हुए। (टाड, राजस्थान, जि० २; पृ० १३४२)

यह शाहज़ादे से बिना छुट्टी लिए लौट आए[1] और दक्षिण में नियुक्त हुए। ३२ वर्ष अमीरुल्उमरा शायस्ता ख़ाँ के साथ इस्लामाबाद अर्थात् चाकन दुर्ग घेरा जिसे अहमदशाह बहमनी के पुत्र सुलतान अलाउद्दीन के सेनापति मलिकुत्तज्जार ने (जो कोंकण प्रांत पर अधिकार करने के लिये नियुक्त हुआ था) बनवाया था। दुर्गवालों ने अंत में इसकी मध्यस्थता से दुर्ग सौंप दिया[2]। इसके बाद (जब शायस्ता ख़ाँ दक्षिण से हटा दिया गया और उसके स्थान पर महाराज जसवंतसिंह शिवा जी का दमन करने के लिये नियुक्त हुए तब) भी यह उनके साथ वहीं रहा। राव भाऊसिंह की बहिन महाराज जसवंतसिंह को व्याही थी, इसलिये महाराज ने उन्हें देश से बुला कर उनके द्वारा भाऊसिंह को मिलाना चाहा; पर वह स्वामिभक्त बने रहे और नहीं मिले। मिरज़ा राजा जयसिंह के दक्षिण पहुँचने पर यह उनके साथ चढ़ाइयों में रहे। ९वें वर्ष दिलेर ख़ाँ के साथ इन्होंने चाँदा के राजा पर चढ़ाई की। दिलकुशा[3] नामक पुस्तक से मालूम होता

---

१. दाराशिकोह के साथ अजमेर में जो युद्ध हुआ था, उसके बारे में झूठी गप्प सुनकर राजपूतों ने साथ छोड़ा था। (आलमगीरनामा, पृ० ४६८)

२. इलियट, जि० ७, पृ० २६२ में ख़फ़ी ख़ाँ से जो उदाहरण दिया गया है, उसमें इस घटना का विस्तृत वर्णन है। चाकण दुर्ग के विजय होने पर उसका इसलामाबाद नामकरण हुआ था।

३. मि० बेवरिज ने नुसख़ः को अनुवाद में नसख़ लिखा है। नुसख़ः का अर्थ हस्तलिखित पुस्तक भी है। यह पुस्तक भीमसेन कायस्थ की रचना है और इसमें औरंगज़ेब के समय की दक्षिण की घटनाओं का वर्णन है।

है कि यह बहुत दिन औरंगाबाद[1] में रहे। सुलतान मुहम्मद मुअज्ज़म से इनकी घनिष्ट मित्रता थी। २१वें वर्ष १०८८ हि० (सन् १६७७ ई०) में इनकी मृत्यु हुई।

इनको पुत्र न था, इसलिये इनके भाई भगवंतसिंह[2] के पौत्र और कृष्णसिंह[3] (जिसे सुलतान मुहम्मद अकबर ने, जब वह उज्जैन का सूबेदार था, बुलाया था और जो उद्धतता के कारण

जोनाथन स्कोट ने इसका अंग्रेज़ी अनुवाद 'ए जर्नल केप्ट बाई ए बुंदेला ऑफ़िसर' के नाम से प्रकाशित किया था। रयू १. २७१ ए। इसी पुस्तक के पृ० ६६८ में सन् १६६७ ई० में इनका बीकानेर-नरेश राव कर्ण को दिलेर खाँ के षडयंत्र से बचा कर औरंगाबाद लाने का विवरण दिया है।

१. औरंगाबाद के फ़ौजदार नियत होकर यह वहाँ बहुत दिन रहे। वहाँ अनेक इमारतें बनवाईं और अपनी वीरता, दान और भक्ति के कारण बहुत प्रसिद्ध हुए। वहीं सं० १७३४ में इनकी मृत्यु हो गई। (टाड कृत राजस्थान, भाग २, पृ० १३४२)

२. टॉड ने भीमसिंह नाम लिखा है। मिस्टर बेवरिज लिखते हैं कि 'मआसिरे-आलमगीरी' अनिरुद्ध को भाऊसिंह का पौत्र लिखता है (मआ० उमरा, अंग्रे० अनु०, पृ० २२७)। परंतु टाड मआसिरुल उमरा का मत मानता है जिसकी स्यात उसने नक़ल की हो।' (म० उ०, पृ० ४०६)। जब भीमसिंह या भगवंतसिंह और भाऊसिंह भाई भाई थे, तब एक का पौत्र दूसरे का भी पौत्र ही कहलावेगा। इस प्रकार तीनों का मत वास्तव में एक ही है।

३. मआसिरे-आलमगीरी लिखता है कि ख़िलअत पहनते समय कुछ झगड़ा हुआ था जिस पर कृष्णसिंह ने अपने को मार डाला। यह घटना सन् १०८८ हि०, सं० १७३४ ई० की है। टॉड लिखते हैं कि औरंगज़ेब ने इसे मरवा डाला था।

जमधर से मारा गया था) के पुत्र अनिरुद्धसिंह[1] को राज्य मिला। इसकी मृत्यु पर इसका पुत्र बुद्धसिंह राजा होकर बहुत दिन बहादुर शाह के समय काबुल में नियुक्त रहा। जब औरंगज़ेब की मृत्यु पर बहादुर शाह और आज़म शाह में युद्ध हुआ और पहला विजयी हुआ, तब इसे राम राजा[2] की पदवी, साढ़े तीन हज़ारी मन्सब और मोमीदाना तथा कोटा (जो माधोसिंह हाड़ा के पौत्र रामसिंह के अधिकार में था जो आज़म शाह के साथ मारा गया था) की ज़मींदारी मिली। इसके और रामसिंह के पुत्र भीमसिंह के बीच झगड़ा उठा था। इसकी मृत्यु पर इसका पुत्र उमेदसिंह राजा हुआ; पर उसने कुछ दिन बाद राज्य पुत्रों को दे दिया[3]। ग्रंथ-रचना के समय उसका पौत्र कृष्णसिंह[4] राजा था।

---

१. यह औरंगजेब के साथ दक्षिण के युद्धों में थे और एक बार इन्होंने शत्रु के हाथों से बेगमों को बचाया था। बीजापुर के घेरे में इन्होंने बड़ी वीरता दिखलाई। इन्होंने बूँदी के एक मुख्य सरदार दुर्जनसिंह को कुछ कड़े शब्द कह दिए थे जिससे वह राजद्रोह से सेना का साथ छोड़ कर देश चला आया और उसने बूँदी पर अधिकार कर लिया तथा उसके भाई बलवंत को टीका दे दिया। अनिरुद्धसिंह ने शाही सेना के साथ आकर उसे निकाल दिया और उसकी जागीर छीन ली। इसके अनंतर जयपुर के राजा विष्णुसिंह के साथ उत्तरी भारत की शांति में लगा रहा। यहीं इसी कार्य में इसकी मृत्यु हुई।

२. राम राजा ठीक नहीं है। बुद्धसिंह को राव राजा की पदवी दी गई थी।

३. जब सं० १८२७ में इन्होंने राज्य त्याग दिया, तब इनके पुत्र अजीतसिंह गद्दी पर बैठे।

४. टॉड ने इनका नाम विष्णुसिंह लिखा है।

४५—राजा भारथ बुँदेला

यह राजा मधुकर के पुत्र रामचंद्र[1] का पौत्र था। जहाँगीर को वीरसिंह देव का विशेष ध्यान था, इससे उस बादशाह के गद्दी पर बैठने के वर्ष के अंत में अब्दुल्ला ख़ाँ काल्पी से (जहाँ उसकी जागीर थी) दसहरे के दिन फुर्ती से ओड़छा पर गया और रामचंद्र को (जो वहाँ विद्रोह मचाया करता था) पकड़ कर दूसरे वर्ष जकड़े हुए बादशाह के सामने लाया[2]। बादशाह ने उसकी बेड़ी खुलवा कर और खिलअत देकर राजा बासू को सौंपा कि ज़मानत लेकर छोड़ दे। उसी दिन से वीरसिंह देव का ओड़छा पर अधिकार हो गया। चौथे वर्ष उस (रामचंद्र) की प्रार्थना पर उसकी पुत्री बादशाह के महल में ली गई[3]। जब वह मर गया, तब ७वें वर्ष उसका पौत्र भारथ योग्य मन्सब और

---

१. राजा रामचंद्र का वृत्तांत अलग नहीं दिया गया है, पर कुछ हाल ४६वें निबंध में पिता की जीवनी के साथ दिया गया है। ३५वें निबंध में भारथ शाह के पुत्र की जीवनी में भी कुछ हाल दिया गया है। वीरसिंह देव इनके छोटे भाई थे। भारथ साह के पिता का नाम संग्राम साह था जो अपने पिता के सामने ही मर गया था।

२. बादशाहनामा, भा० १, पृ० ४८७-८८।

३. तुजुके-जहाँगीरी पृ० ७७।

राजा की पदवी पाकर प्रतिष्ठित हुआ[1]। उस विद्रोह के अनंतर (जो महावत ख़ाँ ने वहत—झेलम—के किनारे किया था और अंत में न ठहर सकने पर राणा के राज्य में भाग कर चला गया था) उन सरदारों के साथ (जिन्हें जहाँगीर ने उसका पीछा करने के लिये भेजा था और जो अजमेर पहुँच कर ठहरे हुए थे) यह भी था। उसी समय आकाश ने दूसरा रंग पकड़ा; अर्थात् जहाँगीर बादशाह की मृत्यु हो गई और शाहजहाँ अजमेर में पहुँचे। यह झट सेवा में पहुँचा और इसका मन्सब पाँच सदी ५०० सवार बढ़ाया जाकर तीन हज़ारी २५०० सवार का हो गया और इसने झंडा और घोड़ा पाया[2]। पहिले वर्ष इटावा और उसके आस पास के प्रांत का (जो ख़ालसा था) फ़ौजदार हुआ और कुछ दिन के अनंतर डंका पाकर सम्मानित हुआ। दूसरे वर्ष ख़्वाजा अबुलहसन के साथ ख़ानेजहाँ लोदी का पीछा करने और तीसरे वर्ष राव रत्न हाड़ा के साथ तेलिंगाना विजय करने पर नियुक्त हुआ। पाँच सौ सवार उसके मन्सब में और बढ़ाए गए तथा नसीरी ख़ाँ के साथ (दखिनी) क़ंधार दुर्ग लेने में बड़ी वीरता दिखलाई। जब दुर्गवाले संकट में पड़े हुए थे, तब इसी की सम्मति से उन लोगों ने दुर्ग सौंप दिया[3]। ४थे वर्ष सेवा में

---

१. बादशाहनामा भा० १, पृ० ८२। सन् १६१२ ई० में यह गद्दी पर बैठा था।

२. बादशाहनामा, भा० १, पृ० १२०।

३. बादशाहनामा भा० १, पृ० ३७४-७७, इलि० डा०, भाग ७, पृ० २५-२६। क़ंधार का दुर्गाध्यक्ष याक़ूब हबशी का पुत्र सादिक़ था।

पहुँच[1] कर पाँच सौ का मन्सब बढ़ने पर साढ़े तीन हज़ारी ३००० सवार का मन्सब पाकर सम्मानित हुआ। इसके अनंतर जब तेलिंगाना की सीमा पर नियुक्त हुआ तब छठे वर्ष विकलूर को (जो दक्षिण के सुलतानों की ओर से सीदी मुफ़ताह के साथ उसका अध्यक्ष नियत था) बुला कर उसके परिवार के साथ अपने अधिकार में ले आया। जब यह समाचार शाहजहाँ को मिला तब इसका मन्सब बढ़ा कर चार हज़ारी ३५०० सवार का कर दिया। ७वें वर्ष में (जब बादशाह लाहौर में थे) समाचार आया कि सन् १०४३ हि० (सन् १६३४ ई०) में तेलिंगाने की सीमा पर इसकी मृत्यु हो गई। इसके पुत्र राजा देवीसिंह का वृत्तांत अलग लिखा गया है।

---

१. बादशाहनामा भा० १, पृ० ५३४-५ पर विकलूर के स्थान पर दिकलूर है, जो दाल और बाव अक्षरों के समान रूप को होने से पाठ-भ्रम मात्र है।

(जब हेमू मारा गया[1] और अकबर का प्रभुत्व सब ओर फैल गया) मजनूँ खाँ क़ाक़शाल ने राजा की सेवा का बादशाह से वर्णन कर उसको बुलाने के लिये आज्ञापत्र भेजवा दिया। राजा भारामल आज्ञा पाने पर (जुलूस के) पहले वर्ष के अंत में दरबार में आया। विदाई के दिन (राजा को उसके पुत्रों और संबंधियों सहित अच्छे खिलअत पहना कर सामने लाए थे) बादशाह मस्त हाथी पर सवार थे जो मस्ती के मारे इधर उधर दौड़ता था; और जिस ओर वह जाता था, उधर के मनुष्य एक ओर हट जाते थे। एक बार राजपूतों की ओर दौड़ा, पर वे अपने स्थान पर खड़े रहे। बादशाह को उनका यह खड़ा रहना बहुत पसंद आया और उन्होंने प्रसन्न होकर राजा से कहा कि हम तुम्हें भी प्रसन्न करेंगे।

६ठे वर्ष सन् १५६२ ई० में (जब अकबर मुईनुद्दीन चिश्ती के रौज़े के दर्शन को अजमेर जा रहा था) कलाली मौज़े में चग़त्ता खाँ ने बादशाह से कहा कि राजा भारामल (जो बुद्धि और वीरता में प्रसिद्ध है और दिल्ली में सेवा भी कर चुका है) शंका के कारण पर्वतों में जा बैठा है; क्योंकि अजमेर के सूबेदार मिरज़ा शरफ़ुद्दीन ने राजा के बड़े भाई पूरणमल[2] के पुत्र सूजा

---

१. सन् १५५६ ई० में पानीपत के द्वितीय युद्ध में हेमू मारा गया था।

२. अकबरनामे में राजा भारामल के चार भाइयों का नाम दिया है—पूरणमल, रूपसी, आसकरन और जगमल। इनमें पूरणमल इनसे बड़े थे जिनका पुत्र सूजा स्वयं राजगद्दी पर बैठना चाहता था।

के बहकाने से चढ़ाई करके कर निश्चित किया है और राजा के पुत्र जगन्नाथ[1], आसकरन के पुत्र राजसिंह और जगमल के पुत्र खंगार को, जो राजा के भतीजे हैं, क़ैद करके आमेर (जो राजा का परंपरागत स्थान है) पर अधिकार करना चाहता है। अकबर ने गुणग्राहकता से राजा को बुलाने के लिये आज्ञापत्र भेजा। देवसा[2] में उसका भाई रूपसी अपने पुत्र जयमल के साथ (जो उस प्रांत का मुखिया था) सेवा में आया। साँगानेर में राजा अपने बहुत से आपसवालों के साथ बादशाह के पास पहुँचा और उसका अच्छा स्वागत किया गया। राजा ने बुद्धिमानी और दूरदर्शिता से चाहा कि अपने को ज़मींदारों के वर्ग से निकाल कर बादशाह के संबंधियों में परिगणित करे, इसलिये इच्छा प्रकट की कि उसकी पुत्री हरम में ली जाय। अकबर ने उसे स्वीकार कर लिया। राजा ने इस विवाह की तैय्यारी करने के लिये छुट्टी ली और लौटते समय साँभर में अपनी पुत्री को पूरी तैयारी के साथ महल में भेजा। स्वयं अपने पुत्र भगवंतदास और उसके पुत्र कुँअर मानसिंह के साथ रतन[3] में बादशाह से भेंट

---

१. जगन्नाथ तथा जगमल का अलग वृत्तांत इस ग्रंथ में दिया है। (देखिए २१-२२ निबंध)

२. देवसा जयपुर से बीस कोस पूर्व है।

३. यह रणथम्भोर (रंतभँवर) हो सकता है। मानसिंह भगवानदास के छोटे भाई जगतसिंह के पुत्र थे और उन्हें कोई पुत्र नहीं था; इससे इन्हें दत्तक लिया था। भारामल की पुत्री जहाँगीर की माता थी।

की। अकबर ने भारत के दूसरे राजों और रायों से इनकी प्रतिष्ठा बढ़ा कर इनके पुत्रों, पौत्रों और स्वजातियों को ऊँची पदवियाँ और विश्वसनीय कार्य सौंप कर हिन्दुस्थान के साम्राज्य का स्तम्भ बनाया। राजा पाँच हजारी मन्सब प्राप्त कर स्वदेश लौट गया[1] और राजा भगवानदास तथा कुँअर मानसिंह बहुत से स्वजातियों सहित आगरे साथ गए और धीरे धीरे ऊँचे पदों पर पहुँचे।

---

1. सन् १५६९ ई० के लगभग भारामल की मृत्यु हुई थी; क्योंकि दूसरे ही वर्ष इनकी विधवा रानी के स्मारक में, जो मथुरा में सती हुई थीं, समाधि बनी हुई है। ग्राउज कृत मथुरा, पृष्ठ १४८। हरिदेव जी का एक मंदिर राजा भगवंतदास ने मथुरा में बनवाया है। उक्त ग्रंथ पृ० २०४। तबक़ाते अकबरी में आगरे में इनकी मृत्यु होना लिखा है।

४७—भेर जी, बगलाना[१] के ज़मींदार

इस प्रांत पर इनके पूर्वज चौदह सौ वर्षों से अधिकृत थे। ये अपने को राजा जयचंद राठौर (जो कन्नौज का राजा था) के वंशज मानते हैं। जो इस प्रांत का अध्यक्ष होता है, उसी का नाम भेर जी होता है। ये राजे पहले सिक्का ढालते थे, पर जब से गुजरात और दक्षिण के बीच में पड़ गए, तब से (जिसको प्रबल देखते थे, उसी में से) किसी ओर की अधीनता में रहने लगे। बहुत समय तक गुजरात को भेंट देते रहे, पर पीछे से ख़ानदेश के हाकिम के पड़ोस के कारण प्रबल हो गए। सन् ९८० हि० में (जब गुजरात पर अकबर का अधिकार हो गया और सूरत बंदर में बादशाही सेना की छावनी हो गई) भेर जी ने सेवा में पहुँच कर बादशाह के बहनोई मिरज़ा शरफुद्दीन हुसेन को (जिसे बलवा करके दक्षिण जाने के विचार से उस सीमा पर पहुँचने से पकड़ कर सुरक्षित रखा गया था) भेंट दी और कृपापात्र हुआ[२]।

---

१. बादशाहनामा भाग २, पृष्ठ १०५। बगलाना-विजय का वृत्तान्त और उस प्रान्त की सीमा आदि का वर्णन दिया है। इलि० डाउ०, जि० ७, पृष्ठ ६५।

२. अकबरनामा जि० ३, पृष्ठ २६। इलि० डा०, जि० ७, पृष्ठ २५ में देखिए।

इसके अनंतर वहाँ के अध्यक्ष बराबर बादशाही भेंट देते और कार्य पड़ने पर आज्ञानुसार दक्षिण के सूबेदारों के यहाँ जाते थे।

इस प्रांत की सोमा एक ओर खानदेश तक थी और दूसरी ओर वह गुजरात तक पहुँची थी; तथा बादशाही राज्य के बीच में पड़ती थी; इसलिये जब औरंगजेब पहली बार दक्षिण का सूबेदार हुआ, तब पहले उसने महम्मद ताहिर को (जो वजीर खाँ के नाम से प्रसिद्ध था) मालोजी दखिनी, जाहिद खाँ कोका और सैयद अब्दुलवहाब खानदेशी के साथ बगलाना पर अधिकार करने भेजा। घेरने पर वीरों के बहुत प्रयत्न से मुल्हेर दुर्ग (जो वहाँ की राजधानी थी) पर अधिकार हो गया। भेर जी ने अपनी माता को प्रार्थना करने के लिये भेज कर संधि कर ली और १२वें वर्ष में दुर्ग का अधिकार दे कर शाहज़ादे की सेवा में पहुँचा। शाहजहाँ ने उसको तीन हज़ारी २५०० सवार का मन्सब तथा उसी के प्रार्थनानुसार सुलतानपुर का परगना (जो दक्षिण के प्रसिद्ध अकाल[१] के समय से उजाड़ पड़ा हुआ था) जागीर में दिया। बगलाना खानदेश प्रांत में मिला दिया गया। रामगिरि[२] (जो बगलाना के पास है) भेर जी के दामाद सोमदेव[३] से ले लिया गया; पर उसका व्यय आय से अधिक था, इससे वह भेर

१. सन् १६३०-३१ के अकाल का वृत्तान्त बादशाहनामा जि० १, पृष्ठ ३६२ में दिया है।

२. बादशाहनामा जि० २, पृष्ट १०६ में रामनगर है।

३. बादशाहनामा जि० २, पृष्ठ १०६।

जी को फिर मिल गया और उस पर दस सहस्र वार्षिक कर लगा दिया गया। भेर जो की मृत्यु पर उसके पुत्र बैराम साह[1] को शाहजहाँ ने मुसलमान बना कर उसका नाम दौलतमंद खाँ रखा और डेढ़-हज़ारी मन्सब देकर सुलतानपुर के बदले में खानदेश का परगना पुनार उसे जागीर में दिया। वह औरंगज़ेब के राजत्व काल में वहीं रहता था और उसने वहाँ अच्छे गृह आदि बनवाए थे, जिनके चिह्न अब तक वर्तमान हैं।

शैर का अर्थ

टूटी हुई दीवारों और फाटकों के खँडहर से फ़ारस के बड़े बड़े आदमियों का चिह्न प्रकट होता है।

बगलाना प्रायः पार्वत्य प्रदेश है। इसकी लम्बाई सौ कोस और चौड़ाई तीस[2] कोस है। पूर्व में कालना (जालना) और नन्दरवार, पश्चिम में सोरठ (सूरत), उत्तर में तिपली (राजपीपला) और विन्ध्याचल तथा दक्षिण में सहियाचल[3] है जिस पर नासिक आदि स्थान हैं। पहले इस प्रान्त में तीन हज़ार सवार और दस हज़ार पैदल रहते थे। इसमें अन्तापुर और चिन्तापुर नामक दो बड़े नगर थे। अब कुछ अधिक ग्राम भी नहीं हैं। सात प्रसिद्ध दुर्ग थे, पर सब पहाड़ी थे। उनमें से दो विशेष विख्यात

---

१. ख़फ़ी ख़ाँ जि० १, पृष्ठ ५६४।

२. बादशाहनामा में चौड़ाई सत्तर कोस और लम्बाई सौ कोस लिखी है; पर अकबरनामा जि० ३, पृष्ठ ३० में तीस ही कोस चौड़ाई लिखी है।

३. सह्याद्रि पर्वत, जो नासिक के पास है।

थे—मुल्हेर[1] जिसका नाम औरंगगढ़ रखा गया और जिसकी वस्ती एक कोस में थी। औरंगाबाद के साठ कोस पश्चिम मूसन[2] नदी वहती है। साल्हेर सुल्तानगढ़ के नाम से सब से ऊँचा दुर्ग और शृंग है।

शेर का अर्थ

साल्हेर उच्च आकाश का पुत्र है। इससे वह पिता के समान ही ऊँचा है।

दूसरे दुर्गों के नाम हटगढ़,[3] जुल्हेर, वैसूल, नानिया और साल्तह हैं। इस प्रान्त में[4] तरी और नदियों की अधिकता से वहुतेरे पेड़, अच्छी खेती, आम की अच्छी फसल और अच्छा धान होता है, जो दक्षिण में सब से बढ़ कर है। पहले राजाओं के समय दस लाख रुपया आता था और साढ़े छः करोड़ दाम निश्चित तहसील थी। अकाल से उजाड़ होने पर और सेनाओं के कई बार धावा करने के कारण, जिस समय इस पर अधिकार हुआ था, उस समय इसकी चार लाख वार्षिक आय नियत की

---

१. चाँदौर और नन्दरवार के मध्य में है।

२. यह ताप्ती की सहायक नदी गिरना में गिरती है। इसे मूसा नदी भी कहते हैं।

३. बादशाहनामा जि० २, पृष्ठ १०६ में हाटगढ़, पेफल, बाड़न और सालूदा नाम दिये हैं।

४. ख़फ़ी ख़ाँ जि० १, पृष्ठ ५६१-२ में देखा हुआ वर्णन है।

गई। इस समय इसमें से भी ग्यारह हज़ार रुपया दफ़्तर में कम कर वेतन कर दिया गया है। पहले कुल बत्तीस परगने थे। इस समय सत्ताइस हैं, जिनमें से तीन चार महाल ऐसे हैं जिन पर अधिकार नहीं हुआ था। उस प्रान्त के वे ग्राम, जो जवार की ओर के पहाड़ों में हैं, भीलों के अधिकार में होने के कारण कम आयवाले हैं।

———

४८–राय[1] भोज

राय सुर्जन हाड़ा का यह छोटा पुत्र[2] था। जब इसके पिता ने अकबर की अधीनता स्वीकृत कर ली, तब यह अच्छी सेवा करके उसका कृपापात्र हो गया। २२वें वर्ष में बूँदी दुर्ग इसके भाई दूदा[3] से लेकर इसे दिया गया। इसके अनन्तर बहुत समय तक यह कुँवर मानसिंह के अधीन रहा और उड़ीसा में इसने अफ़ग़ानों के युद्ध में वीरता दिखलाई। दक्षिण के युद्ध में शेख़ अबुलफ़ज़्ल के साथ नियुक्त होकर वहाँ पहुँचा और युद्धों में बराबर साहस

---

१. राय अशुद्ध है जो भाटों की पदवी है। बूँदी के राजे राव कहलाते हैं। राव सुर्जन को अकबर ने राव राजा की पदवी दी थी।

२. यह राव सुर्जन जी के प्रथम पुत्र थे और सं० १६४२ वि० में गद्दी पर बैठे थे। गुजरात की चढ़ाई में यह भी अपने छोटे भाई दूदा सहित अकबर के साथ थे। सूरत के घेरे में अन्तिम धावे के समय शत्रु के सेनापति को इन्होंने द्वंद्व युद्ध में मारा था। अहमदनगर के घेरे में इन्होंने ऐसी वीरता दिखलाई थी कि अकबर ने दुर्ग में एक नया बुर्ज बनवा कर उसका नाम भोज बुर्ज रखा था और इन्हें अपना ख़ास हाथी पुरस्कार में दिया था।

३. टॉड साहिब इसे छोटा भाई लिखते हैं और उन्होंने इस घटना का कुछ भी उल्लेख नहीं किया है। दूदा के विद्रोह करने पर यह घटना घटी थी।

का कार्य करता रहा। जहाँगीर के बादशाह होने पर जब चाहा (कि राजा मानसिंह के पुत्र जगतसिंह की पुत्री से विवाह[1] करे) तब उन्होंने नहीं माना (जो उस लड़की की माता के पिता थे); इस बात से बादशाह इससे बिगड़ गए और निश्चय किया कि काबुल से लौटने पर उसे दंड देंगे। उसी वर्ष (कि जहाँगीर के राज्य का दूसरा वर्ष था) १०१६ हि० (सन् १६०८ ई०) में इसकी मृत्यु हो गई[2]। ४०वें वर्ष में एक हज़ारी मन्सब से सम्मानित हो चुका था। कहते हैं कि राठौर और कछवाहे राजों की पुत्रियाँ तैमूरी वंश के बादशाहों से ब्याही गईं, पर हाड़ा जाति ने ऐसा सम्बन्ध करना नहीं स्वीकृत किया।

———

१. सन् १६०९ ई० में यह विवाह हुआ था। (तुज़ुके-जहाँगीरी पृष्ठ ६८-९)

२. मआसिरुल्उमरा लिखता है—'ओ तारोवूद ज़िंदगी गुसेख्त' अर्थात् उसके जीवन का ताना-बाना टूट गया। इससे आत्महत्या नहीं लक्षित होती। टॉड साहिब भी लिखते हैं कि सं० १६६४ वि० में यह बूँदी के राजमहल में मरे। केवल ब्लोकमैन, आइने-अकबरी के पृष्ठ ४५८ में लिखता है कि इसने आत्महत्या की थी। इसकी मृत्यु पर इसका पुत्र राव रत्न गद्दी पर बैठा था।

४१–राजा मधुकर साह बुँदेला

यह गहरवार जाति का था। पहले इसके वंश में ऐश्वर्य्य और धन कुछ भो नहीं था और इसके पूर्वजगण लूटपाट कर किसी प्रकार जोवन व्यतीत करते थे। जब प्रताप[1] राजा हुआ (जिसने ओड़छा की नींव डाली थी) तब प्रभाव और ऐश्वर्य्य अर्जित कर दो वार शेर शाह और सलीम शाह[2] से युद्ध किया। इसके अनंतर इसका पुत्र राजा भारथचंद राजा हुआ। इसको संतति नहीं थी, इससे इसकी मृत्यु पर इसका छोटा भाई मधुकर साह राजा हुआ। यह अपने उपायों, नीति, साहस और वीरता से प्रसिद्धि प्राप्त कर सब पूर्वजों से आगे बढ़ गया। कुछ समय

१. बुँदेला वंश के अधिष्ठाता पंचम की १२वीं पीढ़ी में हुआ। इसका पूरा नाम रुद्रप्रताप या प्रतापरुद्र था। इसने सं० १५८७ वि० की वैशाख कृ० १३ को ओड़छा नगर की नींव डाली और करार को छोड़ कर उसे राजधानी बनाया। इसके बारह पुत्र थे—प्रथम राजा भारतीचंद्र और दूसरे यही मधुकर साह हैं। तीसरे पुत्र उदयाजीत ने महोवे का राज्य स्थापित किया था, जिनके वंश में पन्ना राज्य के संस्थापक प्रसिद्ध वीर छत्रसाल हुए थे।

२. अशुद्ध है। यह घटना उनके पुत्र भारतीचंद के समय की है। वीरसिंह देव चरित पृष्ठ १६।

बीतने पर इसने आस पास की चारों ओर की बस्तियों[१] पर अधिकार कर लिया। ऐश्वर्य्य, सेना और राज्य के बढ़ने से इसका अहंकार भी बढ़ गया और इसने अकबर बादशाह के विरुद्ध विद्रोह किया। इसे दंड देने के लिये अकबर ने दो बार सेनाएँ भेजीं। कभी यह अधीनता मान लेता था और कभी विद्रोह कर बैठता था। २२वें वर्ष में सादिक खाँ हर्वी राजा आसकरन और मोटा राजा के साथ इसे दंड देने के लिये नियुक्त हुआ। सेनापति ने इसके प्रांत में पहुँचने के पहिले इसे मिलाना चाहा, पर यह उन्मत्त नहीं समझा। निरुपाय हो जंगल काटने का प्रबंध किया। उस प्रांत में वृक्ष बहुत और घने थे, इसलिये सेना का जाना कठिन था। एक दिन जंगल काटने और वृक्ष गिराने में लग गया। दूसरे दिन वह सवा[२] नदी तक (जो बीस धारा के नाम से प्रसिद्ध है और ओड़छा के उत्तर में है) पहुँचा। राजा मधुकर ने बड़ी सेना के साथ उसके तट पर युद्ध की तैयारी की। बड़ी लड़ाई के अनंतर उसका प्रसन्न मुख मलीन हो गया और पास ही था कि बादशाही सेना परास्त हो जाय कि वह अपने पुत्र और उत्तराधिकारी राम साह के साथ साहस छोड़ कर भागा। इसका दूसरा

---

१. सं० १५१७ वि० में सिरोंज और ग्वालियर के बीच के स्थानों पर अधिकार कर लिया, जहाँ से बादशाही सेना ने सैयद महमूद बारहा की अधीनता में उसे हटाया।

२. नरवर के रास्ते से गया था। सवा बेतवा को एक सहायक नदी है।

पुत्र हौदल राय[1] गजनाल की चोट से मर गया। सादिक़ ख़ाँ इस विजय के अनंतर वहीं ठहर गया। जब मधुकर साह को कष्ट पहुँचने लगा, तब निरुपाय हो इसने प्रार्थना कर[2] अपने भ्रातृपुत्र को दरबार भेजकर क्षमा माँगी। क्षमा का समाचार मिलने पर २३वें वर्ष (सं० १६३५ वि०, सन् १५७८ ई०) में सादिक़ ख़ाँ के साथ दरबार जाकर फिर कृपाओं से सम्मानित हुआ।

जब मालवा का सेनापति शहाबुद्दीन अहमद ख़ाँ मिरज़ा अज़ीज़ कोका के साथ दक्षिण की चढ़ाई पर नियुक्त हुआ, तब यह भी उस सेना में नियत हुआ। जब इसने कोका का साथ नहीं दिया, तब शहाबुद्दीन अहमद ख़ाँ ने दूसरे जागीरदारों के साथ इसे दंड देने का विचार किया। जब ओड़छा चार कोस रह गया, तब वह अदूरदर्शी क्षमाप्रार्थी हो राजा आसकरन की मध्यस्थता में आज्ञा मानने के लिये तैयार हो गया। सजी हुई सेना को आकर देखने पर फिर विचार में पड़ कर जंगल में भाग गया। उसका सामान लुट गया। उसका पुत्र इन्द्रजीत खजोह दुर्ग में ठहर कर युद्ध करने को तैयार हुआ, पर जब वह युद्ध का साहस नहीं कर सका तब भाग गया। ३६वें वर्ष सन् ९९९ हि० (सन् १५९१ ई०) में जब सुल्तान मुराद मालवा का सूबेदार हुआ, तब वहाँ के सब सरदार मिलने गए; पर राजा मधुकर

---

१. इम्पी० गजे०, जि० १६, पृ० २४२ में होरिल देव लिखा है।

२. अपने भतीजे रामचंद्र को भेजकर क्षमा प्राप्त की थी।

साह बहाना करके नहीं गया; इससे शाहज़ादे ने उस पर चढ़ाई की। राजा अलग हो गया। जब अकबर ने शाहज़ादे को वहाँ से बुला लिया, तब इसने सादिक़ ख़ाँ के साथ आकर शाहज़ादे की सेवा की[१]। ३७वें वर्ष १००० हि० (सन् १५९२ ई०) में इसकी मृत्यु हुई। इसका पुत्र राम साह सादिक़ ख़ाँ के साथ काश्मीर के रास्ते में बादशाह से भेंट कर उसका कृपा-भाजन हुआ। इसका दूसरा पुत्र वीरसिंह देव बुँदेला है जिसका वृत्तांत अलग दिया हुआ है[२]।

---

१. ब्लॉकमैन, आइने-अकबरी पृ० ४५२।

२. ७६ वाँ निबंध देखिए जिसमें राम साह का भी वृत्तांत आ गया है। राजा मधुकर साह साहसी पुरुष थे तथा राजनीति अच्छी तरह समझते थे। यह उन्हीं की राजनीति-कुशलता थी कि अकबर के समान ऐश्वर्यशाली शत्रु, सम्राट् और पड़ोसी के रहते भी उन्होंने लड़ भिड़कर अपने राज्य की श्रीवृद्धि की।

मधुकर साह की रानी का नाम गणेशदेवी था। इनके आठ कुमार थे जिनके नाम क्रम से राम साह या रामचंद, होरिल राय, नरसिंहदेव, रत्नसेन, इंद्रजीतसिंह, साहिराम, प्रतापराव और वीरसिंह देव थे।

द्वितीय पुत्र होरिलराय बड़े वीर थे। सन् १५७८ ई० में जब सादिक़ ख़ाँ की लड़ाई में इनके पिता घायल होकर युद्धस्थल से हट गए, तब इन्होंने वीरता से लड़कर वीरगति प्राप्त की। फारसी इतिहासों में इनका नाम हौंदलराय भी लिखा मिलता है।

रत्नसेन के बारे में वीरसिंह चरित्र में लिखा है—'बादशाह अकबर ने अपने हाथ से इनके माथे पर पगड़ी बाँधी थी और इन्होंने गौड़ देश विजय करके अकबर को सौंपा था तथा वहीं युद्ध के बहाने स्वर्ग गए।' बंगाल में अफ़ग़ानों का विद्रोह दमन करने के लिये सन् १५८२ ई० में मुनइम खाँ ख़ानखानाँ और राजा टोडरमल की अधीनता में सेना भेजी गई थी। यह घटना मधुकर साह के बादशाही सेना द्वारा प्रथम बार पराजित होने के चार वर्ष बाद पड़ती है। इसी चढ़ाई में रत्नसेन भी साथ गए होंगे। गौड़-विजय के अनंतर वहाँ की दलदली हवा के कारण ज्वर का बड़ा वेग था जिससे बहुत सेना नष्ट हुई थी। इसी चढ़ाई में यह मारे गए या रोग से मरे होंगे। इनके पुत्र का नाम राव भूपाल था।

इंद्रजीतसिंह महाकवि केशवदास के आश्रयदाता होने के कारण अच्छी तरह प्रसिद्ध हैं। इनके वंशधर अभी तक खजोहा या कछोवा में रहते हैं। यह बड़े गुणग्राहक थे और कविता, गायन आदि के बड़े रसिक थे। इनके यहाँ अनेक प्रसिद्ध गायिकाएँ थीं जिनमें प्रवीणराय भी थीं। इसकी प्रसिद्धि सुनकर अकबर ने इसे बुलाया था।

साहिराम के पुत्र उग्रसेन हुए जिन्होंने धंधेरों को परास्त किया था।

५०—राजा महासिंह

इनके पिता कुँअर मानसिंह कछवाहा के पुत्र राजा जगतसिंह थे। पिता की मृत्यु पर यह अपने दादा के उत्तराधिकारी होकर बंगाल के शासन पर नियत हुए। अकबर के राज्य के ४५वें वर्ष (जब बंगाल के अफ़ग़ानों ने विद्रोह किया था तब) यह छोटी अवस्था के थे। राजा मानसिंह के भाई प्रतापसिंह ने (कि सब कार्य उसी के हाथ में था) इसे सहज काम समझ कर प्रबंध में ढिलाई करते हुए भद्रक के पास युद्ध की तैयारी की। जब अफ़-ग़ान विजयी हुए और बहुत से राजपूत मारे गए तब महासिंह वहाँ नहीं ठहर सका। ४७वें वर्ष में (जलाल खोखरवाल और क़ाज़ी मोमिन ने उसी सूबे के पास विद्रोह मचा रखा था) इसने उनका दमन करने में बड़ी वीरता दिखलाई। ५०वें वर्ष में दो हज़ारी ३०० सवार का मन्सब पाया। जहाँगीर के दूसरे वर्ष ससैन्य बंगश की चढ़ाई पर नियत हुआ। जहाँगीर ने अपने जलूस के ३रे वर्ष इसकी बहिन के लिए अस्सी सहस्र रुपए की बरी भेज कर उससे विवाह किया[1]। राजा मानसिंह ने दहेज में ६० हाथी दिए थे। ५वें वर्ष झंडा मिला। उसी वर्ष बांधव के ज़मींदार

---

१. राव भोज की नतिनी तथा जगतसिंह की पुत्री थी।

विक्रमाजीत को (जो विद्रोही हो गया था) दंड देने पर नियुक्त हुआ। ७वें वर्ष इसका मन्सव पाँच सदी ५०० सवार से वढ़ा। मानसिंह की मृत्यु पर जव वादशाह ने भाऊसिंह[1] पर अधिक कृपा करके उसे उसकी जाति का मुखिया वनाया, तव उसके वदले में इसका मन्सव पाँच सदी वढ़ाकर खिलअत और जड़ाऊ खंजर इसके लिए भेजा और वांधव प्रांत इसे पुरस्कार में मिला। १०वें वर्ष में राजा की पदवी और डंका भी मिल गया[2]। ११वें वर्ष पाँच सदी ५०० सवार का मन्सव और वढ़ा। १२वें वर्ष सन् १०२६ हि० (सन् १६१७ ई०) में वरार प्रांत के वालापुर में इसकी मृत्यु हुई। इसके पुत्र मिरज़ा राजा जयसिंह हैं जिनका वृत्तांत अलग दिया गया है[3]।

---

१. जगतसिंह सवसे वड़े पुत्र थे और उनके पुत्र महासिंह को गद्दी मिलनी चाहिए थी, पर जहाँगीर ने भावसिंह पर विशेष कृपा रखने से ऐसा किया था।

२. मदिरापान से भावसिंह की शीघ्र मृत्यु होने पर महासिंह को गद्दी मिली; पर यह भी उसी व्यसन के कारण दो वर्ष वाद मर गए। भाऊसिंह का वृत्तांत ३८वें निवंध में दिया गया है जिसके शीर्षक पर वहादुरसिंह नाम है।

३. २३ वाँ निवंध देखिए।

५१—महेशदास राठौर

महाराज सूरजसिंह के भाई दलपत[१] का पुत्र था। इन्होंने आरंभ में महाबतखाँ खानखानाँ की सेवा[२] में वीरता के लिए प्रसिद्धि प्राप्त की। खाँ की मृत्यु पर ८वें वर्ष में शाहजहाँ की सेवा में पहुँच कर पाँच सदी ४०० सवार का मन्सब पाया और शाहज़ादा औरंगज़ेब के साथ (जो जुझारसिंह बुँदेला का दमन करने के लिये नियुक्त सेना के सहायतार्थ नियत किया गया था) ९वें वर्ष में खानेदौराँ के साथ नानदे़ की ओर भेजा गया। ११वें वर्ष में मन्सब बढ़कर एक हज़ारी ६०० सवार का हो गया[३] और १५वें वर्ष में ४०० सवार और बढ़ाकर तथा झंडा प्रदान कर

---

१. मोटा राजा उदयसिंह के पुत्र थे, जिन्हें बादशाह ने जालौर परगना जागीर में दिया था।

२. खानखानाँ के साथ दौलताबाद दुर्ग लेने में वीरता दिखलाई थी, जहाँ इनके दो भाई मारे गए थे। यह घटना सन् १६३० ई० की है।

३. सन् १६३८ ई० में शाहजहाँ ने इन्हें कंपावत राजसिंह की मृत्यु पर मारवाड़ का प्रधान नियुक्त किया था; क्योंकि महाराज जसवंतसिंह अल्पवयस्क थे और प्रायः शाहजहाँ उन्हें अपने साथ रखता था। इसी वर्ष (सन् १०४८ हि० के १ रबीउलअव्वल को) इन्हें एक हाथी बादशाह ने उपहार में दिया। (बादशाहनामा)

शाहज़ादा दारा शिकोह के साथ कंधार भेजा गया। १६ वें वर्ष में इसका मन्सब दो हज़ारी १००० सवार का हो गया और परगना जालौर जागीर में मिला। १९वें वर्ष में पाँच सदी मन्सब की बढ़ती देकर शाहज़ादा मुरादबख्श के साथ बलख और बदख्शाँ की चढ़ाई पर नियुक्त किया। फिर इसका मन्सब बढ़ कर तीन हज़ारी, २००० सवार का हो गया और यह डंका पाकर सम्मानित हुआ[1]।

(शाहज़ादा के बलख पहुँचने और वहाँ के अध्यक्ष नज़र मुहम्मद खाँ के भागने पर) जब बहादुरखाँ और असमत खाँ कुछ सेना के साथ पीछा करने पर नियुक्त हुए, तब यह बिना आज्ञा के कार्य की उत्कट इच्छा से साथ गया। २०वें वर्ष में बुलाए जाने पर यह दरबार आया। उसी वर्ष सन् १०५६ हि० में इसकी मृत्यु हो गई[2]। अनुभवी और युद्ध-प्रिय सैनिक था। बादशाह इस पर बहुत विश्वास रखते थे। दरबार में यह बादशाह के बग़ल में रखी हुई संदली के पीछे (जो तलवार और तरकश रखने के लिये दो गज़ की दूरी पर रहती थी) खड़े रहते और सवारी के समय भी

---

१. सफर सन् १०५५ हि० (सन् १६४६ ई०) को यह लाहौर के किलेदार नियुक्त हुए थे। (बादशाहनामा)

२. सन् १६४६-७ ई०, सं० १७०३-४ में इनकी मृत्यु हुई। भारत के प्राचीन राजवंश में सं० १७०१ में लाहौर में मृत्यु होना लिखा है। बीसवें वर्ष में शाहजहाँ लाहौर ही में थे और ये वहीं बुलाए गए थे, इसलिये लाहौर में ही मृत्यु होना ठीक है।

दो गज़ की दूरी पर बराबर रहते थे। बड़ा पुत्र रत्न[1] (जो जालौर में था और जिसका मन्सब चार। सदी २०० सवार का था) का मन्सव बढ़ाकर डेढ़ हज़ारी १५०० सवार का करके कृपा दिखलाई और देश से आने पर वह शाहज़ादा मुहम्मद औरंगज़ेब बहादुर के साथ बलख़ पर नियत हुआ। जब शाहज़ादा पूर्वोक्त प्रांत नज़र मुहम्मद ख़ाँ को सौंप कर लौटे, तब रास्ते में इन्होंने अलअमानों के साथ लड़ने में बहुत परिश्रम किया। २२वें वर्ष में पूर्वोक्त शाहज़ादा के साथ कंधार गया और कज़िलवाशों के युद्ध में रुस्तम ख़ाँ के साथ नियुक्त हुआ। २५वें वर्ष झंडा मिलने से सम्मानित किया जाकर उसी चढ़ाई पर पूर्वोक्त शाहज़ादे के साथ दूसरी बार और शाहज़ादा दारा शिकोह के साथ तीसरी बार नियुक्त हुए। २८वें वर्ष में अल्लामी सादुल्ला ख़ाँ के साथ चित्तौड़ को नष्ट करने गए। ३१वें वर्ष औरंगज़ेब के पास दक्षिण गए और आदिलख़ानियों के युद्ध में अच्छा परिश्रम करने के उपलक्ष में इनका मन्सव बढ़ कर दो हज़ारी २००० सवार[2] का हो गया। इसके अनंतर महाराज जसवंतसिंह के

---

१. महेशदास के पाँच पुत्रों में ये सबसे बड़े थे। दिल्ली में एक बार दरबार जाते समय एक मस्त हाथी ने इनका रास्ता रोका, जिस पर अपनी कटार से इन्होंने ऐसी चोट की कि वह भाग गया।

२. भारत के प्राचीन राजवंश में इन्हें तीन हज़ार सवारों का मन्सब देना लिखा है जिसके साथ में मिले हुए चँवर, मोरछल, सूरजमुखी आदि के

साथ युद्ध[1] में (जो उज्जैन में हुआ था) नियुक्त होकर औरंगजेब के सैनिकों से वीरतापूर्वक लड़ते हुए मारे गए।

मिलने तथा अब तक उस राज्य में उनके सुरक्षित रखे रहने का भी उल्लेख है। (भा० २, पृ० ३६१)

१. यह धर्मपुर (फतेहाबाद) युद्ध में जसवंतसिंह के साथ थे और उसी युद्ध में मारे गए। इनके पुत्र रामसिंह गद्दी पर बैठे।

५२–माधोसिंह कछवाहा

यह राजा भगवंतदास के पुत्र थे। १७वें वर्ष (जब अकबर मिरज़ा इब्राहीम को दंड देने के लिये धावा कर अहमदनगर प्रांत के पास सरनाल क़स्बे में युद्ध के लिये उद्यत हुआ तब) यह भी साथ थे और अवसर पर पहुँच कर काम पर नियुक्त हुए। ३०वें वर्ष में (जब सेना मिरज़ा शाहरुख़ की अध्यक्षता में कश्मीर पर अधिकार करने भेजी गई और वहाँ के ज़मींदार याक़ूब से युद्ध हुआ तब) ये भी वीरता दिखला कर प्रशंसा के पात्र हुए। ३१वें वर्ष में (जब सैयद हामिद बुखारी पेशावर में मारा गया तब) ये बादशाही आज्ञानुसार पिता की सेना को साथ लेकर थाना लंगर से (कि उन्हीं के अधीन था) अली मसजिद (जहाँ कुँवर मानसिंह थे) पहुँचे[१]। ४०वें वर्ष में डेढ़ हज़ारी मन्सब तक पहुँच कर ४८वें वर्ष में तीन हज़ारी २००० सवार के मन्सब तक पहुँच गए[२]। इनके पुत्र शत्रुसाल जहाँगीर के राज्य के

---

१. बदायूनी भा० २, पृ० ३५५ पर लिखता है कि माधोसिंह, जो ओहिंद में इसमाइल कुलीख़ाँ के साथ नियुक्त था, ठीक मौके पर अपने भाई के सहायतार्थ सेना सहित आ पहुँचा जिससे २००० के ऊपर अफ़ग़ान मारे गए और बाकी भाग गए।

२. ४५वें वर्ष में जहाँगीर ने इन्हें राणा का पीछा करने भेजा,

अंत में डेढ़ हज़ारी १००० सवार के मन्सव तक पहुँचे और शाहजहाँ के राज्यारंभ में वही मन्सव वहाल रखा गया। इसके वाद यह मालवा के सूबेदार खानेजहाँ लोदी के साथ जुझारसिंह बुँदेला का दमन करने के लिये (जिसने विद्रोह किया था) भेजे गए। ३रे वर्ष (जब वादशाह दक्षिण में ठहरे हुए थे तब) यह राजा गजसिंह के साथ निज़ामुल्मुल्क का राज्य विजय करने के लिये नियुक्त हुए। युद्ध के दिन (इनका स्थान चंदावल में था और शत्रु ने एकाएक पीछे से धावा किया इससे) इन्होंने अपने दो पुत्रों भीमसिंह और आनंदसिंह के साथ वीरतापूर्वक युद्ध कर अपने प्राण निछावर कर दिए। दूसरा पुत्र उग्रसेन[१] योग्य मन्सव पाकर सम्मानित हुआ।

जिन्होंने वालापुर आदि स्थान लूट लिए थे (अकवरनामा भा० ३, पृ० ८३१)। अक़वर की मृत्यु पर जब राजा मानसिंह खुसरो को लेकर बंगाल जाने लगे, तव जहाँगीर ने इन्हीं माधोसिंह को भेजा था कि उन दोनों को समझा कर लिवा लावें। जहाँगीर से वचन लेकर ये इन लोगों को उसके पास लिवा गए। (इलि० डा०, भा० ६, पृ० १७२-३)

१. ब्लॉकमैन आईन-अकवरी, पृ० ४१८ में लिखा है कि इसे आठ सदी ४०० सवार का मन्सब मिल चुका था। (वादशाहनामा भा० १, पृ० २९४)

५३-माधोसिंह हाड़ा

यह राव रत्नसिंह के द्वितीय पुत्र थे। शाहजहाँ के राज्यारंभ में इनका पहले का मन्सब एक हजारी ६०० सवार का बहाल रहा। २रे वर्ष (सं० १६८५ वि०, सन् १६२९ ई०) में खानेजहाँ लोदी का पीछा करने पर, ३रे वर्ष बादशाह से भेंट करने के बाद दक्षिण की सेना में (जो शायस्ता खाँ के अधीन थी) नियत होने पर और इसके अनंतर सैयद मुजफ्फर खाँ के साथ खानेजहाँ लोदी को दंड देने पर (जो दक्षिण से निकलकर मालवा को जा रहा था) नियुक्त हुआ। जब ये लोग उस भगोड़े को ढूँढ़ते हुए उसके पास पहुँच गए, तब वह निरुपाय हो कर घोड़े से उतर पड़ा। युद्ध में माधोसिंह ने (जो सैयद मुजफ्फर खाँ का हरावल था) उसे बरछा मारा[1] जिसके उपलक्ष में इनका मन्सब बढ़कर दो हजारी १००० सवार का हो गया और डंका मिला। जब इसी वर्ष इनके पिता राव रत्न की मृत्यु हो गई, तब बादशाह ने इनके मन्सब में पाँच सदी ५०० सवार बढ़ा कर परगना कोटा बैलाथ

---

१. इन्होंने खानेजहाँ को ऐसा बरछा मारा था कि वह छाती फाड़ कर घुस गया। और लोगों ने पहुँच कर उसे तथा उसके पुत्र अजीज़ और ऐमाल को काट डाला। (बादशाहनामा, भा० १, पृ० ३४८-५०)

जागीर में दे दिया[1]। ६ठे वर्ष सुलतान शुजाअ के साथ दक्षिण गए और वहाँ के सूबेदार महावत खाँ की मृत्यु पर बुरहानपुर के सूबेदार खानेदौराँ के अधीन नियुक्त हुए।

इसी समय (जब दौलताबाद के पास साहू भोंसला ने विद्रोह किया और खानेदौराँ दूसरों के साथ उसे दंड देने की इच्छा से चला तब) इन्हें बुरहानपुर नगर की रक्षा पर छोड़ गया। ७वें वर्ष पूर्वोक्त खाँ के साथ जुझारसिंह बुँदेला को दंड देने के लिये नियुक्त हो कर चाँदा प्रांत में पहुँचने पर एक दिन (जब बहादुर खाँ रुहेला का चाचा नेकनामी से युद्ध कर घायल हो मैदान में गिरा तब) माधोसिंह ने उसकी दाहिनी ओर से धावा कर बहुत से विद्रोहियों को मार डाला और बाक़ी को हरा दिया। इसके अनंतर खाने-दौराँ के बड़े पुत्र सैयद मुहम्मद के साथ उस विद्रोही झुंड पर (जो अपनी स्त्रियों और बाल-बच्चों को मार रहे थे) धावा कर बहुतों को मार डाला। दरबार पहुँचने पर मन्सब तीन हज़ारी १६०० सवार का हो गया। ९वें वर्ष (सन् १६३५ ई०) में (जब बादशाही सेना बुरहानपुर में पहुँची और साहू भोंसला का दमन करने तथा आदिलखानी राज्य पर अधिकार करने के लिये तीन

---

१. टॉड कृत राजस्थान भा० २, पृ० १३६७-८। शाहजहाँ ने राव रतन के दूसरे पुत्र माधोसिंह को, जिनका सं० १६२१ में जन्म हुआ था, बुरहानपुर के युद्ध में वीरता प्रदर्शित करने के पुरस्कार में कोटा का राज्य दिया था। इनके पाँच पुत्र थे जिनमें से प्रथम पुत्र मुकुन्दसिंह सं० १६८७ वि० में गद्दी पर बैठे।

सेनाएँ तीन मनुष्यों के आधीन भेजी गईं तब) ये खानेदौराँ बहादुर के साथ नियुक्त हुए[1] । वहाँ से लौटने पर १०वें वर्ष जब सेवा में पहुँचे तब इनका मन्सब तीन हज़ारी २००० सवार का हो गया। ११वें वर्ष सुलतान मुहम्मद शुजाअ के साथ काबुल गए। १३वें सुलतान मुरादबख्श के साथ (जो काबुल की ओर नियुक्त हुआ था) गए और शाहज़ादे के लौटने पर १४वें वर्ष में (फिर कृपा होने से) मन्सब बढ़ कर तीन हज़ारी २५०० सवार का मिला। १६वें वर्ष ५०० सवार और बढ़े। १७वें वर्ष काबुल के सूबेदार अमीरुल्उमरा के सहायतार्थ (जो बदख्शाँ विजय करने को नियुक्त हुआ था) भेजे गए। फिर सुलतान मुरादबख्श के साथ बलख गए और (जब पूर्वोक्त शाहज़ादे ने उस प्रांत को छोड़ दिया और उनके स्थान पर सुलतान मुहम्मद औरंगज़ेब नियत हुए तब) ये अपनी कार्य-दक्षता के कारण बलख दुर्ग की रक्षा पर नियुक्त किए गए। जब पूर्वोक्त शाहज़ादा पिता के आज्ञानुसार उस प्रांत को वहाँ के अध्यक्ष नजर मुहम्मद ख़ाँ को लौटा कर चले गए तब (काबुल पहुँचने पर) माधोसिंह आज्ञानुसार शाहज़ादे से विदा होकर २१वें वर्ष दरबार पहुँचे और देश जाने की छुट्टी पाई। कुछ दिन बाद सन् १०५७ हि० (सन् १६४७ ई०) में सांसारिक रंगस्थल से आँखें बंद कर लीं। उनके पुत्र मुकुंदसिंह हाड़ा[2] का वृत्तांत अलग दिया गया है।

---

१. बादशाहनामा भाग २, पृ० १३५-४० ।

२. ५७वाँ निबंध देखिए ।



महाराजा मानसिंह

५४—राजा मानसिंह

यह राजा भगवंतदास के पुत्र थे[१]। अपनी बुद्धिमानी, साहस, संबन्ध और उच्च वंश के कारण अकबर के राज्य के स्तम्भों और सरदारों के अग्रणी थे। इनके कार्यों और व्यवहार से इन्हें बादशाह कभी 'फर्ज़ंद' (पुत्र) और कभी मिरज़ा राजा के नाम से पुकारते थे[२]। सन् ९८४ हि० (सन् १५७६ ई०)

---

१. राजा भगवंतदास के भाई जगतसिंह के पुत्र थे जिन्होंने स्वयं निस्संतान होने के कारण इन्हें दत्तक ले लिया था। मानसिंह पहले पहल सं० १६१६ में अकबर के दरबार में गए थे।

२. यह सन् १५६२ ई० में बादशाह के साथ आगरे आए थे, सन् १५७२ ई० में यह बादशाह के साथ गुजरात की चढ़ाई पर गए। जब बादशाह पाटन से बीस कोस इधर सिरोही से आगे डीसा दुर्ग पहुँचे, तब समाचार मिला कि शेर ख़ाँ फौलादी सपरिवार तथा ससैन्य ईडर जा रहा है। कुँअर मानसिंह उस पर भेजे गए और इन्होंने उसे परास्त कर भगा दिया (इलि० डा३०, जि० ५, पृ० ३४२)। इसके अनंतर सरनाल युद्ध में तथा गुजरात-विजय में योग दिया। इसके दो वर्ष अनंतर सन् १५७५ ई० में डूँगरपुर तथा आस पास के राजाओं का दमन करने के लिये भेजे गए जिनके अधीनता स्वीकार कर लेने पर ये उदयपुर के मार्ग से लौटे। यहीं महाराणा प्रतापसिंह से इन्होंने अपने को अपमानित किया गया समझा था (अकबरनामा, इलि० डा३०, जि०।६, पृ० ४२)। इसी के अनंतर अकबर बादशाह ने महाराणा पर इसका बदला लेने के लिये चढ़ाई की थी।

के अंत में यह राणा कीका (महाराणा प्रतापसिंह) को दंड देने पर नियत हुए। सन् ९८५ हि० (सन् १५७७ ई०) के आरंभ में गुलकंद[1] के पास (जिसे चित्तौड़ के अनंतर बनवाया था) घोर युद्ध हुआ। इसमें राजा रामसाह ग्वालियरी पुत्रों के साथ मारा गया। उसी मार-काट में राणा और मानसिंह का सामना होने पर युद्ध हुआ और घायल होने पर राणा भाग गए। राजा मानसिंह ने उनके महलों में उतर कर हाथी रामसाह को (जो उसके प्रसिद्ध हाथियों में से था) दूसरी लूट के साथ दरबार भेजा। परंतु जब उसने उस प्रांत को लूटने की आज्ञा नहीं दी, तब बादशाह ने इन्हें राजधानी में बुलाकर दरबार आने की मनाही कर दी।

जब राजा भगवंतदास पंजाब के सूबेदार नियत हुए, तब सिंध के पार सीमांत प्रांत का शासन कुँअर मानसिंह को दिया गया। जब ३०वें वर्ष सन् ९९३ हि० में अकबर के सौतेले भाई मिरज़ा मुहम्मद हकीम की (जो काबुल का शासनकर्त्ता था) मृत्यु हो गई, तब इन्होंने आज्ञानुसार फुर्त्ती से काबुल पहुँच कर वहाँ के निवासियों को शांति दी और उसके पुत्र मिरज़ा अफ़रासियाब और मिरज़ा कैक़ुबाद को उस राज्य के बुरे भले अन्य सरदारों के साथ

१. गोघूँदा नाम था। इस युद्ध का विस्तृत वर्णन बदायूनी ने अपने ग्रंथ मुंतख़बुत्तवारीख़ में दिया है। वह स्वयं उस युद्ध में सम्मिलित था (बदा०, भा० २, पृ० २३०-७)

लेकर वे दरबार आए। अकबर ने सिंध नदी तक ठहर कर कुअर मानसिंह को काबुल का शासनकर्ता नियत किया। इन्होंने बड़ी बहादुरी के साथ रूशानी जातिवालों को (जो लुटेरेपन और विद्रोह से खैबर के रास्ते को रोके हुए थे) पूरा दंड दिया। जब राजा बीरबर स्वाद प्रांत में यूसुफ़ज़ई के युद्ध में मारे गए और जैनखाँ कोका और हकीम अबुलफतह दरबार बुला लिए गए तब यह कार्य मानसिंह को सौंपा गया। जब ज़ाबुलिस्तान के शासन पर भगवंतदास नियुक्त हुए और सिंध पार होने पर पागल हो गए, तब उस पद पर कुँअर मानसिंह नियत हुए। ३२वें वर्ष में जब यह ज्ञात हुआ (कि कुँअर ठंढे देश के कारण घबरा गया है और राजपूत जाति ज़ाबुलिस्तान की प्रजा पर अत्याचार करती है, किंतु कुँअर दुःखितों का पक्ष नहीं लेता, तब) उसे वहाँ से बुला कर पूर्व की ओर उसके लिये जागीर नियुक्त की गई। स्वयं रूशा-नियों का दमन करना निश्चित किया। उसी वर्ष (जब बिहार प्रांत में कछवाहों की जागीर नियत हुई तब) कुँअर वहाँ का शासन-कर्त्ता नियत हुआ। ३४ वें वर्ष में इनके पिता की मृत्यु होने पर इन्हें राजा की पदवी और पाँच हज़ारी मन्सब मिला। जब यह बिहार गए तब पूर्णमल कंधोरिया पर (जो बड़ा घमंड करता था) चढ़ाई करके उसके बहुत से स्थानों पर अधिकार कर लिया। वह न्यारस्त दुर्ग में जा बैठा और वहाँ से उसने संधि का प्रस्ताव किया। वहाँ से लौट कर इन्होंने राजा संग्राम पर चढ़ाई की जिसने संधि कर के हाथी और उस ओर की अन्य वस्तुएँ भेंट में

दीं। राजा पटने लौट आया और रणपति चरवा पर चढ़ाई कर वहाँ से बहुत लूट पाई।

जब उस प्रांत के बलवाइयों ने फिर सिर उठाया, तब ३५वें वर्ष में इन्होंने झारखंड के रास्ते से उड़ीसा पर चढ़ाई की। उस प्रांत के शासनकर्त्ता सर्वदा अलग शासन करते थे। इससे कुछ पहिले प्रतापदेव नामक राजा था जिसके पुत्र वीरसिंह देव ने अपने बुरे स्वभाव के कारण पिता का पद लेना चाहा और अवसर मिलने पर उसे विष दे दिया जिससे वह मर गया। तेलिंगाना से आकर मुकुंददेव नामक एक पुरुष इनके यहाँ नौकर हो चुका था। वह इस बुरे काम से घबरा कर पुत्र से बदला लेने की फिक्र में पड़ा। उसने यह प्रकट किया कि मेरी स्त्री मुझे देखने आती है। इस प्रकार बहाना कर शस्त्रों से भरी हुई डोलियाँ दुर्ग में जाने लगीं और बहुत सा युद्ध का सामान दो सौ अनुभवी मनुष्यों के साथ दुर्ग में पहुँच गया। वहाँ (कि पिता को कष्ट देनेवाला देर तक नहीं ठहरा) उसका काम जल्दी समाप्त हो गया और उसे सरदारी मिल गई। यह कोई अच्छी चाल नहीं है कि पूर्वजों के संचित कोष पर राजा अधिकार कर ले ; पर इसने कोष के सत्तर तालों को तोड़ कर उनमें का संचित धन ले लिया। यद्यपि इसने दान बहुत किया, पर आज्ञापालन के रास्ते से हट गया और स्वपूजन में लग गया। सुलेमान किरानी ने (जिसका बंगाल पर अधिकार हो गया था) अपने पुत्र बायज़ीद को झारखंड के रास्ते से इस प्रांत पर भेजा और इसकंदर खाँ

उजवेग को (जो अकवर के यहाँ विद्रोह करके इसके पास चला आया था) साथ कर दिया। राजा ने अपने सुख के कारण दो सेनाएँ झपटराय और दुर्गा तेज के अधीन भेजीं। ये दोनों स्वामिद्रोही शत्रु के सेनाध्यक्षों से मिल कर युद्ध से लौट आए। बड़ी अप्रतिष्ठा हुई। निरुपाय होकर राजा ने शरीर का त्यागना विचार कर वायज़ीद का सामना किया। उसकी अधीनता में घोर युद्ध हुआ जिसमें राजा और झपटराय मारे गए तथा दुर्गा तेज सरदार हुआ। सुलेमान ने उसको कपट से अपने पास बुलवा कर मरवा डाला और उस प्रांत पर अधिकार कर लिया[१]।

मुनइम खाँ ख़ानख़ानाँ और ख़ानेजहाँ तुर्कमान की सूबेदारी में उस प्रांत से बहुतेरे सरदार साम्राज्य में चले आए। बंगाल के सरदारों को गड़बड़ी में क़तलू खाँ लोहानी वहाँ प्रबल हो उठा। जब राजा उसी वर्ष उस प्रांत में गया[२] तब क़तलू ने उन पर चढ़ाई की। जब बादशाही सेना परास्त हो गई, तब राजा दृढ़ नहीं रह सकते थे। पर क़तलू (जो बीमार था) एकाएक मर गया और उसके प्रधान ईसा ने उसके छोटे पुत्र नसीर खाँ को सरदार बनाकर राजा से संधि कर ली[३]। राजा जगन्नाथ जी का मंदिर उसकी

---

१. यह अंश अकबरनामे (जि० ३, पृ० ६४०) से लिया हुआ है। भिन्नता इतनी ही है कि प्रताप देव के स्थान पर प्रताप राव और वीरसिंह के वदले नरसिंह है। (इलि० डाउ०, जि० ६, पृ० ८८-९)

२. विहार तथा बंगाल की राजा मानसिंह की सूबेदारी का पूरा वर्णन स्टूअर्ट की 'हिस्ट्री ऑव बंगाल' (पृ० ११४-१२१) में दिया है।

३. अकबरनामा, इलि० डाउ०, जि० ६, पृ० ८५-७।

भूसंपत्ति सहित लेकर विहार लौट गए। यह मंदिर हिंदुओं के प्रसिद्ध तीर्थों में है और परसोतम नगर में समुद्र के पास है। उसमें श्रीकृष्ण जी, उनके भाई और बहिन की चंदन की मूर्तियाँ हैं।

कहते हैं कि इससे चार हज़ार और कुछ वर्ष पहिले नीलगिरि पर्वत के शासनकर्त्ता राजा इन्द्रमणि ने किसी महात्मा के कहने पर (कि सृष्टिकर्ता ईश्वर को यह स्थान पसंद आया था) बड़ा नगर बसाया। राजा को एक रात्रि स्वप्न हुआ कि 'उसे एक दिन एक लकड़ी बावन अंगुल लंबी और डेढ़ हाथ चौड़ी मिली है। वह ईश्वर का शरीर है और उसे लेकर उसने गृह में सात दिन तक बंद रखा है। इसके अनंतर उसी मंदिर में रख कर उसने उसके पूजन का प्रबंध किया है।' जब उसकी निद्रा खुली, तब जगन्नाथ जी नाम रखा। कहते हैं कि सुलेमान किरानी के नौकर काला पहाड़ ने जब वहाँ अधिकार किया, तब उसने इस लकड़ी को आग में डाल दिया था, पर वह नहीं जली। तब नदी में फेंकवा दिया, पर वह फिर लौट आई। कहते हैं कि इस मूर्ति को छः बार स्नान कराते और नए वस्त्र धारण कराते हैं। पचास साठ ब्राह्मण सेवा में रहते हैं। प्रति वर्ष (जब बड़ा रथ खींचकर उस मूर्ति के सामने लाते हैं तब) बीस सहस्र मनुष्य साथ में रहते हैं। उस रथ में सोलह पहिए लगे हुए हैं। उस पर मूर्तियों को सवार कराते हैं और उपदेश देते हैं कि जो उसे खींचेगा, पाप से शुद्ध हो जायगा। संसार की कठिनाई न देख कर उससे बहुत सी सिद्धाई देखना चाहते हैं।

जब तक क़तलू का वकील ईसा जीवित रहा, तब तक उसने राजा के साथ की हुई प्रतिज्ञा की रक्षा की। उसके अनंतर क़तलू के पुत्रों–ख्वाजा सुलेमान और ख्वाजा उसमान–ने संधि भंग कर विद्रोह आरंभ कर दिया। ३७वें वर्ष राजा ने उनका दमन करने के लिये और उस प्रांत पर अधिकार करने के लिये दृढ़ संकल्प किया। बंगाल का सूबेदार सईद खाँ भी पहुँचा। कड़े युद्धों के अनंतर वे परास्त होकर भागे और राजा रामचंद्र की शरण में (जो उस प्रांत का भारी भूम्याधिकारी था) गए। यद्यपि सईद खाँ बंगाल लौट गया, पर राजा ने पीछा करने से हाथ न उठा कर सारंग गढ़ को (जहाँ उन्होंने शरण ली थी) घेर लिया। निरुपाय होकर उसने राजा से भेंट की। सरकार ख़लीफ़ाबाद में उनके लिये जागीर नियत करके सन् १००० हि० में उड़ीसा प्रांत को साम्राज्य में मिला लिया[1]। ३९वें वर्ष सन् १००२ हि० में (कि सुलतान ख़ुसरो को पाँच हजारी मन्सब और उड़ीसा जागीर में मिला था) राजा उसका अभिभावक नियुक्त होकर बंगाल और उस प्रांत का शासनकर्त्ता हुआ। राजा ने अपने उपायों और तलवार के बल से भाटी प्रांत और दूसरे भूम्याधिकारियों को बहुत सी भूमि पर अधिकार कर साम्राज्य में मिला लिया। ४०वें वर्ष सन् १००४ हि० में आक महल के पास का स्थान पसंद किया, क्योंकि वहाँ लड़ाई का डर कम था। शेर शाह भी इस स्थान से प्रसन्न रहता था। इसे उस प्रांत की राजधानी नियत कर अकबर

१. अकबरनामा, इलि० डाउ०, जि० ६, पृ० ८६-७।

नगर नाम रखा। इसका नाम राजमहल भी है। ४१वें वर्ष में कूच[1] (जो घोड़ाघाट के उत्तर प्रजा-संपन्न प्रांत है, २०० कोस लंबा और ४० से १०० कोस तक चौड़ा है) के राजा लक्ष्मीनारायण ने अधीनता स्वीकृत कर राजा से भेंट की और अपनी बहिन राजा को व्याह दी।

४४वें वर्ष सन् १००८ हि० में (जब अकबर दक्षिण को चला, तब सुल्तान सलीम राणा को दंड देने के लिये अजमेर प्रांत पर नियत किया था तब) राजा को बंगाल की सूबेदारी के सहित शाहजादे के साथ नियत किया। उस समय ईसा के मरने से (जो वहाँ का बड़ा सरदार था) राजा ने उस प्रांत का शासन सहज समझ कर अपने बड़े पुत्र जगतसिंह को अपना प्रतिनिधि बना कर भेजा। जगतसिंह की मृत्यु रास्ते ही में हो गई। उसके पुत्र महासिंह को (जो अल्पवयस्क था) बंगाल भेजा। ४५वें वर्ष में क़तलू के पुत्र ख्वाजा उसमान ने विद्रोह मचाया। राजा के सैनिकों ने सहज समझ कर युद्ध किया, पर परास्त हुए। यद्यपि बंगाल हाथ से नहीं निकल गया, पर उसके बहुत से स्थानों पर वे अधिकृत हो गए। शाहज़ादा सुल्तान सलीम (जो शारीरिक सुख, मद्यपान और बुरे संग-साथ के कारण बहुत दिन अजमेर में ठहर कर उदयपुर चला गया था) कार्य पूर्ण होने के पहले ही स्वयं

१. कूचविहार से तात्पर्य है। इसी वर्ष ये घोड़ाघाट के पास अधिक बीमार हो गए थे। अफ़गानों ने बलवा किया, पर इनके पुत्र हिम्मतसिंह ने उन्हें परास्त कर दिया।

अपने मन से पंजाब चला गया। वहीं एकाएक बंगाल के विद्रोह का समाचार मिला। राजा मानसिंह को उस ओर विदा किया और कुछ लोगों के बहकाने से शाहज़ादा आगरा लेने चला। जब मरिअम मकानी उसे समझाने के लिए जाने को दुर्ग में सवार हुईं, तब शाहज़ादा लज्जा के मारे राजधानी के चार कोस इधर ही से लौट कर नाव पर सवार हो कर प्रयाग चला गया[1]। राजा शाहज़ादे से अलग होकर बंगाल के विद्रोहियों को दंड देने चला और उसने शेरपुर के पास युद्ध कर शत्रु को पूर्णतया परास्त किया। मीर अब्दुर्रज़्ज़ाक़ मामूरी, जो बंगाल प्रांत का बख्शी था, युद्ध में हथकड़ी-बेड़ी सहित पकड़ा गया। इसके अनंतर (जब उस प्रांत का प्रबंध ठीक हो गया तब) दरबार पहुँचकर राजा मानसिंह सात हज़ारी ७००० सवार का मन्सब (कि उस समय तक कोई भारी सरदार पाँच हज़ारी मन्सब से बढ़कर नहीं था, पर इसके अनंतर मिरज़ा शाहरुख़ और मिरज़ा अज़ीज कोका को भी यह पद मिला था) पाकर सम्मानित हुए[2]।

---

१. अकबरनामा में लिखा है कि जब जहाँगीर आगरा होता हुआ इलाहाबाद जा रहा था, तब वह अपनी दादी मरिअम मकानी से नियमानुसार मिलने नहीं गया। इससे दुःखित हो वह मिलने आ रही थी कि यह झट प्रयाग चला गया। (इलि० डा०, जि० ६, पृ० ६६)

२. ४७वें वर्ष में उसमान का विद्रोह शांत किया और ४८वें वर्ष में मग राजा और कैदराय को परास्त किया। (तकमीले अकबरनामा, इलि० डा०, जि० ६, पृ० १०६, ९, ११)

अकबर की मृत्यु के समय राजा मानसिंह ने सुलतान खुसरो को (जो प्रजा में युवराज माना जाता था) गद्दी पर बैठाने के विचार से मिरज़ा अज़ीज़ कोका का साथ दिया था; पर जहाँगीर ने बंगाल की नियुक्ति निश्चित रख और स्वदेश जाने की छुट्टी देकर अपनी ओर मिला लिया[1]। जहाँगीर की राजगद्दी होने पर यह अपने शासन पर चले गए; परन्तु उसी वर्ष बंगाल से बदल कर औरों के साथ रोहतास के विद्रोहियों का दमन करने पर नियत हुए। वहाँ से दरबार पहुँचकर ३रे वर्ष (सं० १६८६ वि० सन् १६३० ई०) में इन्हें इसलिये छुट्टी मिली कि दक्षिण की चढ़ाई का सामान ठीक कर ख़ानख़ानाँ के सहायतार्थ वहाँ जायँ। ये बहुत वर्षों तक दक्षिण में रहे। वहीं ९वें वर्ष में इनकी मृत्यु हो गई और साठ[2] मनुष्य उनके साथ जले।

राजा ने बंगाल के शासन के समय बहुत ऐश्वर्य्य और सामान संचित किया था। यहाँ तक कि इनके भाट के पास सौ हाथी थे और इनके सभी सैनिक सुसज्जित थे। इनके यहाँ बहुत से विश्वासी सेवक थे जो सभी सरदार थे। कहते हैं कि उस समय (जब दक्षिण का कार्य्य ख़ानेजहाँ लोदी के हाथ में आया तब) पन्द्रह डंके निशानवाले पाँच हज़ारी (जैसे नवाब अब्दुर्रहीम ख़ाँ ख़ानख़ानाँ, राजा मानसिंह, मिरज़ा रुस्तम सफ़वी, आसफ़ ख़ाँ

---

१. विक़ायः असदबेग, इलि० डा०, जि० ६, पृ० १७०-३।

२. राजा मानसिंह की पन्द्रह सौ रानियों में से साठ साथ में सती हुई थीं।

जाफ़र और शरीफ़ खाँ अमीरुल्उमरा) और चार हज़ारी से सौ तक वाले सत्रह सौ मन्सबदार वहाँ सहायतार्थ सेना में उपस्थित थे। जब बालाघाट में अन्न का यहाँ तक अकाल पड़ा (कि एक रुपये का एक सेर भी अन्न नहीं मिलता था) तब एक दिन राजा ने मजलिस में कहा कि यदि मैं मुसलमान होता तो प्रति दिन एक समय तुम लोगों के साथ भोजन करता। पर मैं वृद्ध हुआ; इसलिये मेरा पान ही लीजिए। सबके पहिले खानेजहाँ ने सलाम कर कहा कि मुझे स्वीकार है। दूसरों ने भी इस बात को मान लिया। उसी दिन से राजा ने ऐसा प्रबंध किया कि प्रत्येक पाँच हज़ारी को एक सौ रुपया और इसी हिसाब से सदी मन्सबवालों तक को दैनिक निश्चित कर प्रति रात्रि को वह रुपया खलीते में रखकर और उस पर उनका नाम लिख कर हर एक के पास भेज देते थे। तीन चार महीने तक (कि यह यात्रा होती रही) एक भी नागा नहीं हुआ। कंपवालों को रसद पहुँचने तक आमेर के भाव में बराबर अन्न देते रहे। कहते हैं कि राजा की विवाहिता स्त्री रानी कुँअर (जो बड़ी बुद्धिमती थी) देश से सब प्रबन्ध करके भेजती थी। राजा ने यात्रा में मुसलमानों के लिये कपड़े के स्नानागार और मसजिदें खड़ी कराई थीं और उनमें नियुक्त मनुष्यों को एक समय भोजन देते थे।

कहते हैं कि एक दिन एक सैयद एक ब्राह्मण से तर्क करने लगा कि हिंदू धर्म से इस्लाम बढ़कर है। इन दोनों ने राजा को पंच माना। राजा ने कहा कि 'यदि इस्लाम को बड़ा कहता

हूँ तो कहोगे कि बादशाह की चापलूसी है; और यदि इसके ऐसा कहता हूँ तो पक्षपात कहलाएगा।' जब उन लोगों ने हठ किया तब राजा ने कहा कि मुझे ज्ञान नहीं है, पर हिंदू धर्म (जो बहुत दिनों से चला आता है) के महात्मा को मरने पर जला देते हैं और हवा में उड़ा देते हैं; और रात्रि में यदि कोई वहाँ जाता है तो भूत का डर होता है। परन्तु हर एक गाँव और नगर के पास मुसलमान पीरों की क़ब्रें हैं जहाँ मनौती होती है और जमघट लगता है।

कहते हैं कि बंगाल जाते समय मुँगेर में शाह दौलत (नामक एक फ़क़ीर जो उस समय वहाँ रहता था) से भेंट की। शाह ने कहा कि इतनी बुद्धि और समझ रहने पर भी मुसलमान क्यों नहीं हुआ? राजा ने कहा कि क़ुरान में लिखा है कि ईश्वर की मुहर प्रत्येक हृदय पर है। यदि आपकी कृपा से अभाग्य का ताला मेरे हृदय से खुल जाय तो झट मुसलमान हो जाऊँ। एक महीने तक इसी आशा में वहाँ ठहरा रहा; पर भाग्य में इस्लाम ही नहीं लिखा था, इससे कोई लाभ नहीं हुआ।

शैर

फ़क़ीरों की कृपा से मुरझाए हुए हृदयों को क्या मिल सकता है?
जैसे कीमिया के कारण ताँबा व्यर्थ ही नष्ट होता है।

कहते हैं कि राजा मानसिंह की पंद्रह सौ रानियाँ थीं और प्रत्येक से दो तीन पुत्र हुए थे; परन्तु सब पिता के सामने ही मर

गए। केवल एक भाऊसिंह[1] था; वह भी पिता के कुछ दिन अनंतर मद्यपान के कारण मर गया। उसका वृत्तांत अलग दिया गया है।

---

१. इनके वृत्तांत के लिए ३८ वाँ निबंध देखिए जिसका शीर्षक 'मिरज़ा राजा बहादुरसिंह कछवाहा' है। तुजुके जहाँगीरी, पृ० १३० में भी इनका उल्लेख है।

५५–मालोजी[1] और पर्सोजी

ये दोनों खिलो जो[2] के भाई थे (जो निज़ामशाही सरदारों में से था)। शाहजहाँ के राज्य के पहले वर्ष में ये भाग्य की जाग्रति के कारण बादशाही सेवा में भरती होने की इच्छा से महावत ख़ाँ ख़ानख़ानाँ के पुत्र ख़ानेज़माँ के पास पहुँचे (जो पिता के प्रतिनिधि स्वरूप होकर बरार और ख़ानदेश से कुल दक्षिण पर हुकूमत करता था)। दरबार से पाँच हज़ारी ५००० सवार के मन्सब का फ़रमान, ख़िलअत, जड़ाऊ जमधर, झंडा, डंका, सुनहला ज़ीनदार घोड़ा और हाथी भेजा गया तथा दक्षिण के नियुक्त अफ़सरों में नियत होकर बादशाही कार्य में प्रयत्नशील हुआ। आरंभ हो में दौलताबाद दुर्ग पर अधिकार करने में ख़ाने-ज़माँ के साथ बहुत प्रयत्न किया था और शत्रु पर दो बार धावा कर राजभक्ति दिखलाई थी।

जब वीरों के सम्मिलित प्रयत्नों से उस दृढ़ दुर्ग के (जो निज़ामशाहियों की राजधानी थी) विजय होने का समय प्रति दिन निकट आने लगा, तब खिलो जो इस शंका से (कि दुर्ग

१. पाठा० माले जी।

२. पाठा० किलो जी।

दौलतावाद पर अधिकार हो जाने से निज़ामशाही राज्य पर चोट पहुँचेगा) याक़ूत ख़ाँ हब्शी की तरफ भाग गए और आदिलशाही नौकरों से मिलकर एक रात वादशाही सेना पर धावा कर दिया; पर सिवा लज्जा और हानि के कुछ हाथ न लगा। कहते हैं कि उसकी स्त्री गंगा-स्नान के लिये आने पर पकड़ी गई। महावत ख़ाँ ने उसे प्रतिष्ठापूर्वक रख कर खिलोजी से कहलाया कि 'स्त्री के लिये धन निछावर है। यदि एक लाख हूण दो तो उसे प्रतिष्ठा के साथ तुम्हारे पास भेज दें।' उसने निरुपाय होकर धन भेजा; तव महावत ख़ाँ ने उसकी स्त्री को वड़ी इज्जत से विदा कर दिया। इसके अनंतर (जव आदिलशाह ने वादशाही हुक्मों को शांति से सुना और मित्रता तथा राजभक्ति की संधि कर ली तव) खील्लू जी को अपने यहाँ से निकाल दिया। इसके वाद वह वहुत दिनों तक वादशाही राज्य में लूट मार कर जीवन व्यतीत करता रहा। शाहजादा मुहम्मद औरंगजेव वहादुर ने १९वें वर्ष में अपनी दक्षिण की सूवेदारी के पहले ही वर्ष में उसको पकड़ कर मरवा डाला।

उसके छोटे भाई मालोजी और पर्सोजी दोनों ही निज़ामशाही राज्य में वीरता तथा साहस के लिये प्रसिद्ध थे। उस समय (जव खील्लूजी वादशाही नौकरी छोड़कर आदिलशाहियों के यहाँ गया था तव) ये वुद्धिमत्ता तथा भाग्य से उसके साथी नहीं हुए और महावत ख़ाँ ख़ानख़ानाँ के पास आकर सेवा करने की प्रतिज्ञा की। महावत ख़ाँ ने उन लोगों का हर प्रकार से स्वागत

किया। पहले को पाँच हज़ारी ५००० सवार का और दूसरे को तीन हज़ारी २००० सवार का मन्सब दिलवाया। इस प्रकार शाही सेवा में आने से झंडा और डंका मिलने पर ऐश्वर्य तथा सेना खूब बढ़ाई। दोनों अपनी बुद्धि और चतुराई से दक्षिण के सभी सूबेदारों को प्रसन्न कर उनके कृपा-पात्र बने रहे। मालो जी योग्यता और शील से खाली नहीं थे और मित्रता का निर्वाह भी करते थे, इससे (कुल दक्षिणियों में इनके अधिक प्रबल होने पर भी) वे सब इनसे मित्रता रखते थे।

११वें वर्ष (जब शाहज़ादा मुहम्मद औरंगज़ेब ने बगलाना प्रांत विजय करने की इच्छा की तब) इनको तीन हज़ार बादशाही सेना के सहित मुहम्मद ताहिर वज़ीर ख़ाँ के साथ (जो औरंगजेब के विश्वसनीय सेवकों में से था) उस प्रांत पर भेजा। मालोजी बड़ी चतुरता से उस कार्य को निपटा कर सफलता सहित लौट आए। इसके अनंतर दक्षिण के सूबेदारों के साथ आवश्यकता पड़ने पर अच्छा कार्य करते थे। मुरादबख़्श की अध्यक्षता के समय (जब शाहनवाज़ ख़ाँ सफ़वी देवगढ़ पर सेना ले गया तब) ये दोनों दक्षिणी सरदारों के प्रधान थे। २९वें वर्ष में शाहज़ादा मुहम्मद औरंगजेब ने बरार के नाज़िम मिरज़ा ख़ाँ को तेलिंगाना के सूबेदार हादीदाद के साथ देवगढ़ की पेशगी वसूल करने के लिये (क्योंकि वहाँ का ज़मींदार बहाने कर रहा था) नियुक्त किया और मालोजी को दक्षिण के सरदारों सहित साथ भेजा। वहाँ का काम निपटा कर ३०वें वर्ष इसने स्वयं शाह-

ज़ादे के पास पहुँच कर (जो गोलकुंडा के घेरे में लगा हुआ था) अच्छा प्रयत्न किया। उसी समय किसी कारणवश शाहज़ादा उन दोनों भाइयों से बिगड़ गया। इस का कारण यह है कि (उस समय बादशाह ने शाहज़ादा को आदिलशाह बीजापुरी को दंड देने पर नियुक्त किया था और सहायतार्थ प्रबल सेना भी नियत हुई थी पर) ये दोनों भाई बादशाह के आज्ञानुसार दक्षिण से दिल्ली दरबार चले गए और उसी समय एरिज, भांडेर तथा आसपास के कुछ परगने उन्हें जागीर में मिले। (जब महाराज जसवंतसिंह वीर सेना के साथ मालवा में नियुक्त हुए तब) ये भी सहायतार्थ नियुक्त होकर उज्जैन के युद्ध में सामान की रक्षा पर (जो युद्धस्थल के पास ही था) रखे गए। ठीक युद्ध में मुराद-बख्श ने (जो औरंगजेब की सेना के दाहिने भाग में था) धावा करके सामान नष्ट कर दिया। मालोजी और पर्सो जी युद्ध का साहस न कर सके और ऐसा भागे कि आगरे पहुँचने तक बाग न खींची। दारा शिकोह के युद्ध में उसके पुत्र सिपेहर शिकोह के साथ बाएँ भाग में नियुक्त हुए। विजय के अनंतर औरंगजेब की सेवा में पहुँच कर कृपापात्र हुए।

(औरंगजेब का पहले ही से उन लोगों के साथ मनोमालिन्य था इससे) ३रे वर्ष दोनों को मन्सब से हटा कर पुरानी सेवाओं के विचार से (कि उन लोगों ने सारी उम्र दरबार की सेवा में व्यतीत कर दी थी) पहले के लिये तीस हज़ार रुपया तथा दूसरे के लिये बीस हज़ार रुपया वार्षिक नियत कर दिया।

मालोजी ५वें वर्ष सन् १०७२ हि० (सं० १७१९ वि०, सन् १६६२ ई०) में मरे। दोनों ने औरंगाबाद में पुरे बसाए थे, जिनसे उनका नाम अभी तक चलता है। मालोजीपुरा नगर के बाहर है और पर्सोजीपुरा दुर्ग में है। कहते हैं कि पर्सोजी मुग़लियों का सा खान-पान रखते थे। बरार के पास जलगाँव की ज़मींदारी अस्सी हज़ार रुपये की ख़रीदी थी।

५६–राय मुकुंद नारनौली

यह माथुर कायस्थ था। आरंभ में जब आसफ खाँ यमीनुद्दौला छोटे मन्सब (दो सदी ५ सवार) पर था, तब यह दो तीन रुपए मासिक पर उसके यहाँ नौकर हुआ। स्वामी की उन्नति के साथ साथ यह भी बढ़ता गया और परिश्रमी तथा बुद्धिमान होने के कारण कुछ समय बीतने पर उस भारी सरदार का दीवान हो गया। बड़े साहसवाला मनुष्य था और दूसरों का उपकार करने में भी एक ही था। लोग दोबारा इसका जाली सिफारिशी-पत्र बनाकर सफलता प्राप्त कर लेते थे। जब ऐसा पत्र इस तक पहुँचता तो कह देता कि मेरा लिखा है। कायस्थों में ऐसे कम रहे होंगे जिन्हें इसके कारण जीविका न मिली हो और जो प्रसिद्ध न हुए हों। बहुत रुपया नारनौल (जो इसका वासस्थान था) भेज कर वहाँ बड़ी इमारतें बनवाईं और वहाँ जाकर घूमने की इच्छा भी रखता था। आसफ़ खाँ की मृत्यु पर शाहजहाँ ने प्रसन्न होकर इसे सरकारी जागीरों का दीवान बनाया। भाग्य उन्नति पर था, इससे दीवाने-तन अर्थात् खालसा का दीवान नियत हुआ।

इसी के देशवाले शत्रुओं ने दरबार में जानेवालों के द्वारा बादशाह से कहलाया कि राय मुकुंद ने नारनौल में अपने

गृहों की नींव में चालीस लाख रुपए गाड़ रखे हैं। इस बात को सत्य मान कर इसके गृहों को खोदने के लिये मनुष्य नियत हुए; पर इस खुदाई पर भी (कि ऊँचे नीचे हो गए) एक पैसा नहीं मिला। जब झूठ बोलनेवालों को बादशाह के सामने पकड़ कर लाए तब उन लोगों ने अपना झूठ स्वीकार कर लिया और कहा कि 'ये पड़ोसी थे और हमारी भूमि इन्होंने बलात् छीन ली थी; इसलिये इस प्रकार बदला लिया है। अब हम लोगों के योग्य जो दंड हो, दिया जाय।' शाहजहाँ ने उन्हें क्षमा कर दिया। राय मुकुन्द ने बहुत दिनों तक ख़ालसा की दीवानी का कार्य किया और प्रतिष्ठा के साथ अपना जीवन व्यतीत किया।

५७–मुकुंदसिंह हाड़ा

यह माधोसिंह का पुत्र था। पिता की मृत्यु पर शाहजहाँ के २१वें वर्ष (सं० १७०४ वि०, सन् १६४७ ई०) में दरबार आकर यह दो हजारी, १५०० सवार का मन्सब तथा पिता की जागीर पाकर सम्मानित हुआ। फिर ५०० सवार की तरक्की हुई। २२वें वर्ष में सुलतान मुहम्मद औरंगजेब के साथ कंधार की सहायता पर (जिसे कजिलबाशों ने घेर लिया था) नियुक्त हुआ। वहाँ से लौटने पर २४वें वर्ष में पाँच सदी मन्सब बढ़ा तथा झंडा और डंका प्राप्त हुआ। उसी वर्ष सुलतान मुहम्मद औरंगजेब के साथ द्वितीय बार कंधार गया। २६वें वर्ष सुलतान दारा शिकोह के साथ उसी चढ़ाई पर फिर गया। वहाँ से लौटने पर इसका मन्सब बढ़कर तीन हजारी २००० सवार का हो गया। २८ वें वर्ष में सादुल्ला खाँ के साथ चित्तौड़ दुर्ग की चढ़ाई पर नियत हुआ। ३१वें वर्ष में महाराज जसवंतसिंह के साथ (जो सुलतान मुहम्मद औरंगजेब को रोकने के लिये मालवा में नियुक्त हुए थे) नियत किए गए। युद्ध में अपने भाई मोहनसिंह हाड़ा के साथ शत्रु के तोपखाने और हरावल को पार कर शाहजादे के सामने पहुँच कर साहस दिखलाया और युद्ध के गुत्थमगुत्थे में रुस्तम का सा वीरत्व प्रकट किया। अंत में मान पर प्राण निछावर कर दिया।

दोनों[1] भाई सन् १०६८ हि० (सन् १६५६ ई०) में वीरगति को प्राप्त हुए। मुकुंदसिंह के पुत्र जगतसिंह आलमगीर के समय में दो हज़ारी मन्सब और पैतृक जागीर पाकर बहुत दिन दक्षिण में नियुक्त रहे। २४वें वर्ष में इनकी मृत्यु हुई[2]। इनके स्थान की सरदारी किशोरसिंह को मिली (जिनका वृत्तांत रामसिंह हाड़ा के वृत्तांत में लिखा गया है[3])।

---

१. मुकुंदसिंह, मोहनसिंह, जुझारसिंह, कुणीराम तथा किशोरसिंह पाँचों भाई इस युद्ध में साथ ही थे। प्रथम चार मारे गए और अंतिम किशोरसिंह बहुत घायल होने पर भी बच गए।

२. टॉड साहब ने सं० १७२६ वि०, सन् १६६६ ई० में मृत्यु होना लिखा है।

३. जगतसिंह की मृत्यु पर कुणीराम का पुत्र प्रेमसिंह गद्दी पर बैठा। पर वह ऐसा जड़ था कि अंत में सरदारों ने उसे हटा कर किशोरसिंह ही को गद्दी पर बैठाया। इन्हीं के द्वितीय पुत्र रामसिंह थे, जिनका वृत्तांत ६९वें निबंध में देखिए। (टॉड कृत राजस्थान, भा० २, पृ० १३६९)

५८–राजा मुहकमसिंह

यह जाति का खत्री था। अमीरुल्उमरा हुसेन अली खाँ के समय नौकर होकर उसका विश्वासपात्र हो जाने से अच्छे पद पर पहुँच गया। धीरे धीरे उसकी दीवानी के पद तक पहुँच कर सेना का अफ़सर हुआ। दाऊद खाँ के युद्ध में (जो ११२७ हि० में हुआ था) यह हाथी-सवारों में था। औरंगाबाद पहुँचने पर (जहाँ खद्दू दिहारिया[1], जो खानदेश का एक रईस और राजा साहू के साथियों में से था, विद्रोह मचाए हुए था) हुसेन अली खाँ का बख्शी ज़ुल्फ़िक़ार बेग (जो उसे दमन करने को नियुक्त हुआ था) मारा गया। हुसेन अली खाँ ने पूर्वोक्त राजा को अच्छी सेना के साथ उस कार्य पर नियत किया और अपने भाई

---

१. ग्रांट डफ ने इसका नाम खंडेराव धावरे लिखा है; पर ठीक शुद्ध धावदे है। फारसी लिपि में धावदे को दिहापरे, दिहायरे आदि कई प्रकार से पढ़ सकते हैं। राजा साहू भोंसला का यह प्रसिद्ध सेनाध्यक्ष था और उसकी ओर से खानदेश सूबे में चौथ की तहसील के लिये नियुक्त था। इसके कुछ उपद्रव मचाने पर जुल्फिकार बेग दस सहस्र सेना के साथ भेजा गया; पर वह कुल सेना के साथ मारा गया। इसके अनंतर मुहकमसिंह तथा सैफ अली खाँ भेजे गए जिन्होंने उसे परास्त किया। (ख़फ़ी खाँ, भा० २, पृ० ७७७–९)

सैफुद्दीन अली खाँ को (जो बुरहानपुर का सूबेदार था) लिखा कि पूर्वोक्त राजा के साथ मिल कर खद्दू दिहारिया का दमन करें। ख़ानदेश में यद्यपि उस ओर से इच्छानुसार लूट मच चुकी थी, पर मुहकमसिंह ने मरहठों की सेना को (जो अहमदनगर के आस पास लूट मचा रही थी) युद्ध में परास्त कर सितारा दुर्ग (जो राजा साहू का वासस्थान था) तक पहुँचा दिया। इसके अनंतर हुसेन अली खाँ के साथ राजधानी आया और खाँ के मारे जाने पर हैदरकुली खाँ इसको प्राण-रक्षा और प्रतिष्ठा का संदेश देकर बादशाह के पास ले गया[1]। क्षमा किए जाने पर इसने छः हजारी ६००० सवार का मन्सब पाया और फिर इसका सात हज़ारी मन्सब हो गया। रात्रि में (जिसके दूसरे दिन बादशाही और क़ुतुबुलमुल्क की सेनाओं में युद्ध हुआ) राजा मुहकमसिंह, जो क़ुतुबुलमुल्क से पहले ही से लिखा-पढ़ी रखता था, विजयी सेना का साथ छोड़ कर क़ुतुबुलमुल्क के यहाँ चला गया। दिन भर युद्ध होता रहा। जब रात्रि के अंधकार ने सूर्य को ढँक लिया, तब रात भर बादशाही तोपों ने गोले बरसाए जिनमें से एक इसकी सवारी के हाथी के हौदे तक पहुँचा[2]। घोड़े पर सवार होकर

---

१. ख़फ़ी खाँ, भाग २, पृ० ९०१--१० में इस युद्ध का वर्णन है।

२. खफी खाँ, भा० २, पृ० ९२१--५ में लिखा है कि १७ मुहर्रम सन् ११३२ हि० की रात्रि को मुहकमसिंह, खुदादाद खाँ और खान मिरजा छः सात सौ सैनिकों के साथ सैयद अब्दुल्ला की ओर चले गए।......सवेरे के समय एक गोला मुहकमसिंह के हौदे में लगा, जिससे यह कूद कर घोड़े

दूर निकल गया और वहुत दिनों तक नहीं पता था कि वह जीवित है या मर गया।

पर सवार हो कर भाग गया। कुछ दिनों तक यह पता नहीं था कि यह जीवित है या मर गया।

५१--राजा रघुनाथ

यह सादुल्ला खाँ की सहायता से उन्नति करनेवाले लोगों में से था। शाहजहाँ के २३वें वर्ष के अंत में इसने राय की पदवी और सोने का क़लमदान पाया और २६वें वर्ष में योग्य मन्सब भी मिला। उसी वर्ष ख़ालसा और बादशाही दफ्तर की अध्यक्षता पाकर यह सम्मानित हुआ। २९वें वर्ष तक मन्सब बढ़कर एक हज़ारी २०० सवार का हो गया। ३०वें वर्ष सादुल्ला खाँ की मृत्यु पर खिलअत, मन्सब में २०० सवार की तरक्की और रायरायान की पदवी मिली और यह निश्चित हुआ कि प्रधान मंत्री की नियुक्ति तक यही दीवानी की कुल कार्रवाइयाँ बादशाह तक पहुँचाया करे। भाग्य की लेखनी चल चुकी थी (अर्थात् राजकार्य औरंगजेब के अधिकार में जा चुका था) इसलिये यह दारा शिकोह के प्रथम युद्ध के अनंतर लेखकों सहित बादशाही सेवा में पहुँचा। शुजाअ के युद्ध में और दारा शिकोह के दूसरे युद्ध में यह सेना के मध्य में था। दूसरी राजगद्दी के समय मन्सब बढ़ कर ढाई हज़ारी ५०० सवार का हो गया और राजा की पदवी मिली। अपने काम दृढ़ता से करता रहा। ६ठे वर्ष आलमगीरी सन् १०७३ हि० (सन् १६६२ ई०) में मर गया।

६०–राव रत हाड़ा

यह राव भोज हाड़ा का पुत्र था। किसी अपराध[१] से (जो इसके पिता ने किया था) यह कुछ दिन जहाँगीर के कोप में रहा। ३रे वर्ष (सं० १६६५ वि०, सन् १६०८ ई०) में दरबार में आकर बादशाह का कृपापात्र हुआ और सरबुलंद राय की पदवी पाई। ८वें वर्ष सुलतान खुर्रम के साथ राणा अमरसिंह की चढ़ाई पर नियत हुआ। १०वें वर्ष दक्षिण की चढ़ाई में इसकी नियुक्ति हुई और इसका मन्सब भी योग्यतानुसार बढ़ाया गया। इसके अनन्तर १८वें वर्ष में (जब जहाँगीर लोगों के बहकाने से अपने योग्य पुत्र शाहजहाँ से बिगड़ गया और युद्ध का प्रबंध हुआ तथा शाहज़ादा माँडू से कूच कर नर्मदा पार उतरा और सुलतान पर्वेज़ महाबत खाँ की अभिभावकता में पीछा करने पर नियत हुआ तब) यह भी उसी चढ़ाई में नियत हुआ। जब नर्मदा नदी उतरने पर शाहजहाँ तेलिंगाना की सीमा से बंगाल की ओर गया और पिता के आज्ञानुसार सुलतान पर्वेज़ बिहार को चला, तब

१. राव भोज के वृत्तांत में लिखा गया है कि किस प्रकार इसने राजा मानसिंह को पुत्री का जहाँगीर से विवाह होने के प्रस्ताव पर अपनी अस्वीकृति दी थी, जो इसकी नतिनी थी। इसी कारण यह जहाँगीर का कोप-भाजन रहा।

महाबत खाँ इसे १९वें वर्ष में बुरहानपुर के रक्षार्थ छोड़ गया। जब शाहजहाँ का बंगाल से दक्षिण को लौटने का समाचार फैलने लगा, तब इसने नगर से निकल कर युद्ध करने का विचार किया। इस समाचार के मिलने पर जहाँगीर ने आज्ञापत्र भेजा कि सहायता पहुँचने तक नगर की रक्षा करो और युद्ध के लिये कभी बाहर न निकलो। २०वें वर्ष जब शाहजहाँ बालाघाट बरार के पास देवलगाँव से अंबर की सेना सहित याकूत खाँ हबशी को साथ लेकर बुरहानपुर के पास पहुँचा तब लालबाग़ में सेना उतारी। एक ओर से अब्दुल्ला ख़ाँ बहादुर को और दूसरी ओर से मुहम्मद तक़ी चाँदीसाज़, प्रसिद्ध नाम शाह क़ुली ख़ाँ, का नगर घेर कर धावा करने को आज्ञा हुई। शाहक़ुली ख़ाँ चार सौ मनुष्यों के साथ नगर में चला आया और कोतवाली के चौतरे पर बैठकर ढिंढोरा पिटवाया कि शाहजहाँ का अधिकार है। सर बुलंदराय दूसरी ओर के मोर्चों पर था। उसने अपने पुत्र को भेजा; पर वह युद्ध कर परास्त हुआ। राव जकाजूट हाथी को आगे कर चौक में युद्ध करने के लिये पहुँचा और अच्छी वीरता दिखलाई। मुहम्मद तक़ी (जो सहायता से निराश हो गया था) दुर्ग में चला गया और प्रतिज्ञा कराकर उससे भेंट की[१]। कहते हैं कि राव रत्न युद्ध के समय यह शब्द जिह्वा पर रखता—" मैं "।

---

१. मुहम्मद हाजी कृत ततमए वाक़आते जहाँगीरी, इलि० डा० भा० ६, पृ० ३९३-६ में यह घटना १९वें वर्ष में सन् १६२४ में हुई

जब सुलतान पर्वेज भारी सेना के साथ (जो बादशाह के आज्ञानुसार इलाहाबाद से दक्षिण को गया था और इसी समय बादशाह को कड़ी बीमारी भी हो गई थी) कूच करके बालाघाट के रोहनखोरा[1] में पहुँचा, तब सरबुलंद राय को पाँच हजारी ५००० सवार का मन्सब और राम राजा की पदवी (जो दक्षिण में सब पदवियों से बढ़ कर मानी जाती है) दी[2]। शाहजहाँ के बादशाह होने पर उसके जलूस के प्रथम वर्ष में अपने देश बूँदी

लिखी गई है। उसमें याकूतख़ाँ हबशी का नाम याकूब ख़ाँ लिखा है। यह भी लिखा है कि शाहजहाँ ने स्वयं तीन बार धावे किए, पर तीनों बार परास्त हुआ। इक़बालनामा में यूसुफ हबशी लिखा है।

१. रोहनगढ़ नाम है। यहीं पहुँच कर शाहजहाँ ने अपने पिता से क्षमा माँगी थी। इकबालनामा में तथा इस ग्रन्थ में भी इसका उल्लेख नहीं है; पर 'ततमः' में दिया है। (इलि० डा०, भा० ६, पृ० ४१८) इक़बालनामा में यह घटना बीसवें वर्ष ही में होना लिखा है, जो १० मार्च सन् १६२४ से आरंभ होता है। सन दोनों ही का ठीक है, केवल जलूस के सन की संख्या में भेद है। इसका कारण है। अकबर की मृत्यु सन् १६०५ ई० के अक्टूबर में हुई थी; इसलिये सन् १६२४ ई० की घटना २०वें वर्ष की हुई। पर जहाँगीर इलाही सन् के अनुसार १ फरवरदीन से जुलूस का आरम्भ मानता था; इससे उसका प्रथम जलूसी वर्ष ११ मार्च सन् १६०६ से आरंभ हुआ और सन् १६२४ ई० उसका १९वाँ वर्ष हुआ।

२. बीसवें वर्ष में जहाँगीर ने यह समाचार सुनकर स्वयं यह मन्सब और पदवी आदि दी थी। रामराजा ठीक नहीं है, राव राजा होना चाहिए।

से आकर इसने सेवा की और खिलअत, जड़ाऊ जमधर, पाँच हज़ारी ५००० सवार का पुराना मन्सब, झंडा, डंका, सुनहली ज़ीन सहित घोड़ा और हाथी पाकर सम्मानित हुआ। इसी वर्ष महाबत ख़ाँ खानखानाँ के साथ उज़बेगों को दंड देने के लिये (जिन्होंने काबुल के पास गड़बड़ी मचा रखी थी) नियुक्त हुआ। ३रे वर्ष यह अपनी अधीनता में कई दूसरे सरदारों को साथ लेकर तेलिंगाना की ओर नियत हुआ। आज्ञा पहुँची कि बरार नामक परगने में ठहर कर तेलिंगाना प्रांत पर अधिकार कर लो और आने जाने के रास्तों को विद्रोहियों से साफ़ कर दो। जब उस प्रांत की चढ़ाई नसीरी ख़ाँ के प्रार्थनानुसार उसी के नाम निश्चित हुई, तब यह आज्ञा आने पर दरबार चला गया। इसके अनंतर (जब दक्षिण की सेना का अध्यक्ष यमीनुद्दौला आसफ़ ख़ाँ हुआ। तब) राव पूर्वोक्त ख़ाँ के साथ नियुक्त हुआ। ४थे वर्ष सन् १०४० हि० में बालाघाट के पड़ाव पर इसकी मृत्यु हो गई। सतरसाल (जो इसका पौत्र और उत्तराधिकारी था) और दूसरे पुत्र माधोसिंह पर बादशाह ने बहुत कृपाएँ कीं। हर एक का वृत्तांत अलग अलग[1] दिया गया है।

---

१. ८१ वाँ और ५३ वाँ निबन्ध देखिए।

६१—राजा राजरूप

यह राजा वासू के पुत्र राजा जगतसिंह का पुत्र था। शाहजहाँ के राजत्व के १२वें वर्ष में यह काँगड़े के पार्वत्य प्रदेश का फ़ौजदार नियत हुआ। जब इसका पिता विद्रोही हुआ, तब इसने भी पिता का साथ देकर बादशाह के विरुद्ध विद्रोह किया। पिता के दोषों के क्षमा होने पर यह भी उसके साथ सेवा में आया। १९वें वर्ष में पिता की मृत्यु क अनंतर डेढ़ हज़ारी १००० सवार का मन्सब हो गया और राजा को पदवी, अपना देश और घोड़ा पाकर सम्मानित हुआ। चोवीं दुर्ग (जिसे उसके पिता ने सरेआब और अंदरआब के बीच बनवा कर इसे उसके रक्षार्थ उसमें छोड़ आया था) की अध्यक्षता पर नियुक्त रहने पर डेढ़ हज़ार सवारों और दो हज़ार पैदलों में से (जो उसके पिता के सहायतार्थ नियत किए गए थे) पाँच सौ सवारों और दो हज़ार पैदलों का वेतन काबुल के कोष से मिलना निश्चित हुआ। उसी वर्ष यह शाहज़ादा मुरादबख़्श के साथ (जो बलख़ और बदख़्शाँ की चढ़ाई पर नियत हुआ था) नियुक्त होकर क़ंधार पहुँचने पर वहाँ का अध्यक्ष बनाया गया और वहाँ का प्रबंध ठीक करने के लिये इसे दो लाख रुपया दिया गया। इसका मन्सब बढ़ कर दो हज़ारी १५०० सवार का हुआ और जड़ाऊ जमधर और

मोती की माला पाकर सम्मानित हुआ। उसी समय उज़बेगों और अलअमानों को (जो लूट मार की इच्छा से झुंड के झुंड उस प्रांत में आते जाते थे) युद्ध कर किरात से भगा दिया और पीछा कर बहुतों को मार डाला। २०वें वर्ष में पाँच सौ सवार का मन्सब और बढ़ाकर इसे डंका प्रदान किया गया। उसी समय कुलीज खाँ से मिलने को यह कंधार से तालिक़ान आया और तभी अलअमानों के एक बड़े झुंड ने तालिक़ान घेर लिया तथा हर एक ओर युद्ध होने लगा। एक दिन (जब वे व्यूह बना कर इसके घेरे को ओर खड़े थे तब) साहस की अधिकता से इसने उन पर धावा कर दिया। कड़ा युद्ध हुआ। इसके कई मनुष्य मारे गए। स्वयं इसे तीन घाव लगे और अंत में लड़ते भिड़ते अपनों को घेरे के भीतर पहुँचाया। इसके अनंतर (घेरनेवाले जब निराश होकर नगर के चारों ओर से चले गए तब) २२वें वर्ष में इसका मन्सब बढ़कर ढाई हज़ारी २५०० सवार का हो गया और खलील बेग की बदली पर जमरुद का दुर्गाध्यक्ष हुआ। २५वें वर्ष पाँच सदी बढ़ने पर शाहज़ादा मुहम्मद औरंगज़ेब बहादुर के साथ कंधार की चढ़ाई पर गया, जिसके घेरे में एक मोर्चे का यह अध्यक्ष था। वहाँ से लौटने पर सुलेमान शिकोह के साथ काबुल पर नियुक्त हुआ। २६वें वर्ष में यह शाहज़ादा दारा शिकोह के साथ फिर कंधार गया और उसके घेरे में इसने कोई प्रयत्न उठा नहीं रखा। २९वें वर्ष आज्ञानुसार जमरुद से चल कर दरबार होता हुआ देश गया।

जब आलमगीर बादशाह से परास्त होकर दारा शिकोह लाहौर चला, तब यह (जो आज्ञा पाने पर युद्ध के पहिले देश से चल चुका था) दिल्ली और लाहौर के बीच उससे मिला और उसकी बातचीत में फँस कर इसने उसका साथ दिया। इसके अनंतर (जब दारा शिकोह ने लाहौर पहुँच कर मुलतान जाने का विचार किया तब) इसने उसकी बुरी हालत से उसका दुर्भाग्य समझ कर इस बहाने से कि देश जाकर सेना का प्रबंध करूँगा, उसका साथ छोड़ दिया। फिर अच्छी नीयत से देश से चल कर व्यास नदी के किनारे खलीलुल्ला खाँ (जो दारा शिकोह का पीछा कर रहा था) के पास पहुँच कर उसके आश्रय से आलमगीर की सेवा में पहुँचा और दरबार से इसका मन्सब साढ़े तीन हज़ारी ३५०० सवार का हुआ। यह श्रीनगर की सीमा पर (क्योंकि सुलेमान शिकोह इलाहाबाद से चल कर चाहता था कि सहारनपुर के रास्ते से पंजाब की सीमा पर पहुँच कर पिता से जा मिले; परन्तु आलमगीर की सेनाओं के कारण न जा सकने पर उसी पहाड़ी स्थान में जा रहा था) चाँदी[1] मौजे की थानेदारी पर भेजा गया कि उस पर्वत के नीचे प्रबंध के साथ ठहर कर सुलेमान शिकोह को निकलने से रोके। इसके अनंतर दरबार पहुँच कर दारा शिकोह के साथ के दूसरे युद्ध में दाहिनी ओर की हरावली में नियुक्त हुआ। दारा शिकोह के सैनिकों का रक्षास्थान कोकिला पहाड़ी था, इसलिये राजा ने अपने पैदल सिपाहियों को (जो

१. यह श्रीनगर के अन्तर्गत है।

पहाड़ी चढ़ने में कुशल थे) कोकिला पहाड़ी के पीछे से भेजा और उनकी सहायता को स्वयं सवार होकर गया। शत्रु थोड़े मनुष्यों को देख कर निडर हो मोर्चे से निकल आए और युद्ध होने लगा। बादशाही सरदार पीछे पहुँच कर तीन घड़ी तक युद्ध करते रहे। अभी मोर्चा ज्यों का त्यों था कि सुलेमान शिकोह का साहस छूट गया और वह भाग गया। श्रीनगर का राजा पृथ्वीपति सुलेमान शिकोह को अदूरदर्शिता और मूर्खता से अपने राज्य में स्थान देकर उसकी सहायता करने लगा था; इसलिये यह राजा दूसरे वर्ष विजयी सेना के साथ श्रीनगर के पार्वत्य प्रदेश पर नियुक्त हुआ कि यदि पूर्वोक्त भूम्याधिकारी समझाने से न मानकर उसकी सहायता में हठ करे, तो उसके राज्य को लूट कर उस पर अधिकार कर ले। जब उसने मूर्खता और उद्दंडता से नहीं माना, तब तरबिअत खाँ और रादअंदाज़ खाँ भी नियुक्त होकर उसे कष्ट देने लगे। निरुपाय होकर मिरजा राजा से क्षमा-प्रार्थी हुआ और उस फंदे में फँसे हुए (सुलेमान शिकोह) को निज क्षमा का द्वार बनाया (अर्थात् उसे औरंगजेब को सौंप कर क्षमा प्राप्त की)। चौथे वर्ष सैयद शहामत खाँ के स्थान पर ग़ज़नी की सीमा का अध्यक्ष हुआ और वहाँ पहुँचने पर उसी वर्ष १०७१ हि० (सं० १७१८ वि०, सन् १६६१ ई०) में मर गया। इसका पिता साहस और वीरता से हीन नहीं था तथा धैर्य और उत्साह से पूर्ण था, इसलिये उसके छोटे भाई भारसिंह को (जिसने अपने पिता के साथ बदख़्शाँ की चढ़ाई में वीरता

दिखलाई थी और अपनी अधिक अवस्था हिंदू धर्म ही में बिताई थी, पर तीसरे वर्ष के अंत में औरंगज़ेब के समझाने से मुसलमान हो गया था) बादशाही कृपापात्र बना कर मुरीद खाँ की पदवी दी। बहुत दिन गोरबंद का चौकीदार रहा। उसकी संतानों में, जो शाहपुर अर्थात् भरोयन (जो तारागढ़ के पश्चिम है) में रहती है, जो राजा होता है, वह मुरीद ख़ाँ कहलाता है।

———

६२—राजा राजसिंह कछवाहा

यह राजा भारामल के भाई आसकरन का पुत्र था। जब राजा भारामल अकबर के कृपापात्र हुए, तब उनके सभी आपसवालों को उनके पदानुसार उसने उन्नति की। राजा आसकरन २२वें वर्ष में सादिक खाँ के साथ राजा मधुकर को दंड देने पर नियुक्त हुआ था। २४वें वर्ष राजा टोडरमल के साथ बिहार में नियत हुआ। ३०वें वर्ष उसे हज़ारी मन्सब मिला। उसी वर्ष खानेआज़म कोका के साथ दक्षिण की चढ़ाई पर नियत हुआ। जब ३१वें वर्ष बादशाह ने प्रत्येक प्रांत में दो सरदार नियुक्त किए, तब आगरा प्रांत में यह और इब्राहीम खाँ नियत हुए। ३३वें वर्ष शहाबुद्दीन अहमद खाँ के साथ राजा मधुकर को दंड देने गया और लौटते समय इसकी मृत्यु हो गई[१]। राजसिंह राजा की पदवी और योग्य मन्सब पाकर बहुत दिन दक्षिण की चढ़ाई में नियत रहा। इसके अनंतर (इनके इच्छानुसार बुलाने का आज्ञापत्र भेजा गया तब यह) ४४वें वर्ष दरबार में आए और उसके बाद ग्वालियर के दुर्गाध्यक्ष नियत हुए। ४५वें वर्ष में (जब बादशाह आसीरगढ़ घेरे हुए थे तब) यह बादशाह के पास आए। ४७वें वर्ष में राय

१. अबुलफ़ज़ल ने सरदारों की सूची में इसका नाम नहीं दिया है; पर तबक़ाते अकबरी में तीन हजारी मन्सबदारों में नाम है।

रायान पत्रदास के साथ वीरसिंह देव बुँदेला का (जिसने चोरी से रास्ते पर आकर अबुलफ़ज़्ल को मार डाला था) पीछा करने पर नियत हुए। बुँदेला जाति का दमन करने में बहुत परिश्रम और प्रयत्न किया था; इससे इनका मन्सब बराबर बढ़ता हुआ ५०वें वर्ष में चार हज़ारी ३००० सवार तक पहुँच गया और डंका भी मिल गया। जहाँगीर के ३रे वर्ष यह दक्षिण भेजे गए। वहीं १०वें वर्ष सन् १०२४ ई० (सन् १६१५ ई०) में इनकी मृत्यु हो गई। इनके पुत्र रामदास को हज़ारी, ४०० का मन्सब मिला। १२वें वर्ष में इन्हें राजा की पदवी भी प्राप्त हो गई। उसी वर्ष के अंत में इनका मन्सब बढ़ कर डेढ़ हज़ारी ७०० सवार का हो गया। इसका एक पौत्र (जिसका नाम परसोतमसिंह था) शाहजहाँ के समय में मुसल्मान होकर सआदतमन्द[1] कहलाया और ख़िलअत, घोड़ा और सिक्का पाकर कृपापात्र हुआ।

---

1. ब्लौकमैन ने 'इबादतमंद' लिखा है। (ब्लौकमैन, आईन-अकबरी, पृ० ४५८)

६३—रामचंद्र चौहान

यह बदनसिंह के पुत्र थे। अकबर के समय इन्हें पाँच सदी मन्सब प्राप्त था। १८वें वर्ष में (जब बादशाह मिरज़ा अज़ीज कोका के सहायतार्थ गुजरात पर चढ़ाई करने चले तब) यह बादशाह के साथ थे। २६वें वर्ष में सुलतान मुराद के साथ मिरज़ा मुहम्मद हकीम को ठीक करने और ३८वें वर्ष में मालवा के सूबेदार मिरज़ा शाहरुख़ के साथ दक्षिण में नियत हुए। जब दक्षिण की सेना को गड़बड़ी का वृत्तांत और शाहज़ादा सुलतान मुराद से विना आज्ञा लिए शहबाज़ खाँ कम्बू का सेना से मालवा लौट आना[1] सुना गया, तब उसे बादशाह ने बरार में नियत किया। एक लाख अशरफी (जो रास्ते की गड़बड़ी से ग्वालियर दुर्ग में पड़ी हुई थी) सेना के सामान के लिये रक्षार्थ साथ ले गए। मालवा की सेना को दक्षिण भेजा और वह भी

---

१. यह सुल्तान मुराद और अब्दुर्रहीम खाँ खानखानाँ के साथ अहमदनगर की चढ़ाई पर गया था। विना आज्ञा पाए इसने अहमदनगर की बस्ती को लूट लिया जिस पर शाहज़ादे ने इस पर क्रोध किया था। शाहज़ादा इसकी सम्मति नहीं सुनता था, इससे चिढ़ कर यह अपनी जागीर पर लौट गया था।

वहीं पहुँचा। जिस युद्ध में[1] राजे अली खाँ[2] मारा गया था, उसी में इनका भी वही हाल हुआ। युद्ध में बीस घाव लगने पर गिरे और रात्रि भर शवों में पड़े रहे। लोग इन्हें सवेरे उठा कर लाए; पर कई दिन के अनंतर ४१वें वर्ष सन् १००५ हि० (सन् १५९६ ई०) में इनकी मृत्यु हो गई।

---

१. आष्टी का प्रसिद्ध युद्ध, जिसमें नवाब अब्दुर्रहीम खाँ खानखानाँ ने दक्षिण के तीनों सुलतानों की सम्मिलित सेना को, जो मोतमिदुद्दौला सुहेल खाँ के अधीन थी, परास्त किया था।

२. यह खानदेश का स्वतंत्र नवाब था और खानखानाँ के साथ सहायतार्थ ससैन्य आया था।

६४—राजा रामचंद्र बघेला

यह भट्टा प्रांत का भूस्वामी और हिन्दुस्थान के बड़े राजाओं में था। बाबर बादशाह ने अपने आत्मचरित्र में (जो तीन बड़े राजे गिनाए हैं उनमें) इन्हीं रामचंद्र[1] को तीसरा रखा है। तानसेन नामक कलावंत (जो गान विद्या का आचार्य था और जिसके समान आवाज़ और सूक्ष्म विचार उसके पहिले किसी में नहीं सुनने में आया था) इसी के दरबार में था। राजा उसका गुणग्राहक और प्रेमी था। जब उसके गुणों की प्रशंसा अकबर ने सुनी, तब ७वें वर्ष में जलाल खाँ शस्त्राध्यक्ष को उसके पास भेज कर तानसेन को बुलवाया। राजा ने विद्रोह करना अपनी शक्ति के बाहर समझ कर इन्हें पूरे साज और सामान के साथ बादशाह के लिये भेंट आदि देकर विदा किया। जब यह बादशाह के पास पहुँचे तब पहिले दिन दो करोड़ दाम (जो उस समय के दो

---

१. उस समय इनके पिता वीरभानु राजा थे। जौहर भी लिखता है कि चोसा युद्ध में परास्त होने के अनंतर वीरभानु ने हुमायूँ की सहायता की थी। गुलबदन बेगम ने भी यह वृत्तांत दिया है। प्रथम पानीपत युद्ध सं० १५८३ वि० में हुआ था और रामचंद्र की मृत्यु सं० १६७० वि० में हुई थी, इससे उसका बाबर के समय राजा होना असंभव है।

लाख रुपये[1] के बराबर होगा) पुरस्कार दिए। इस प्रकार के पुरस्कारों से वह यहीं फँस गया। उसके ग्रंथ (जो बहुधा अकबर के नाम पर हैं) आज तक प्रचलित हैं।

८वें वर्ष (कि आसफ़ खाँ अब्दुल मजीद गढ़ा विजय करने पर नियत हुआ) जब ग़ाजी खाँ तन्नोज राजा रामचंद्र की शरण में गया, तब पहिले राजा को लिखा गया कि उसको बादशाह के पास भेज दो; नहीं तो अपने किए का फल पाओगे। परंतु राजा ने युद्ध ही की ठानी। ग़ाजी खाँ के साथ राजपूतों और अफगानों की सेना एकत्र करके युद्ध की तैयारी की। बहुत लड़ाई के अनंतर ग़ाजी खाँ मारा गया और राजा परास्त होकर दुर्ग बांधव में (जो उस प्रांत के दृढ़तर दुर्गों में से है) जा बैठा। आसफ़खाँ ने घेरने का विचार किया। इसी समय विश्वासी राजाओं की (जो बादशाही दरबार में थे) मध्यस्थता में यह निश्चित हुआ कि राजा दरबार में आकर बादशाही सेवकों में परिगणित हो जायगा। तब उसके प्रांत पर अधिकार करने से हाथ खींच लिया गया।

१४वें वर्ष जब सरदारों ने दुर्ग कालिंजर (जिसे राजा रामचंद्र ने अफगानों के समय में पहाड़ खाँ के शिष्य-पुत्र बिजली खाँ से बहुत धन देकर ले लिया था और वह उसी समय से उस पर अधिकृत था) घेर लिया और दुर्गवाले कष्ट पाने लगे, तब राजा

१. अकबर के समय ४० दाम का एक रुपया होता था, जिस हिसाब से दो करोड़ दाम पाँच रुपए लाख के बराबर होता है।

बिना दुर्ग दिए संधि का कोई उपाय न देख कर दुर्ग के बाहर निकला और उसकी कुंजी योग्य भेंट के साथ अपने आदमियों के हाथ दरबार में भेजी। बादशाह ने उन पर कृपाएँ कीं और लौटने की आज्ञा भेज दी। यद्यपि राजा ने अपने पुत्र वीरभद्र को दरबार भेज कर आज्ञा पालन करना स्वीकार कर लिया था, पर वह स्वयं नहीं आया; इससे २८वें वर्ष में (जब बादशाही सेना इलाहाबाद में थी तभी) बादशाह ने इस पर सेना नियत करना चाहा। इसके पुत्र ने दरबारियों के द्वारा कहलाया कि यदि कोई सरदार उन्हें लाने के लिये नियत हो तो वह आपके विश्वास दिलाने पर दरबार अवश्य आवेंगे। तब बादशाह ने जैनखाँ कोका और राजा वीरबर को उसे लाने के लिये नियुक्त किया। वह दरबार में आया और उसे १०१ घोड़े पुरस्कार में मिले।

३०वें वर्ष में राजा की मृत्यु हुई और उसके पुत्र वीरभद्र को, जो दरबार में था, राजा की पदवी देकर देश बिदा किया। रास्ते में वह सुखासन[१] से गिर पड़ा और औषधि करने से उसका रक्त बिगड़ गया। असमय पर नहाने धोने से उसका रोग बढ़ता गया और ३८वें वर्ष सन् १००१ हि० (सन् १५९३ ई०) में वह मर गया। यह राय रायसिंह राठौर का संबंधी था, इससे शोक मनाने के लिये बादशाह इसके गृह पर गए। जब यह समाचार मिला (कि उस प्रांत के बलवाइयों ने राजा रामचंद्र के विक्रमाजीत नामक अल्पवयस्क पौत्र को गद्दी पर बैठाकर गड़बड़ मचाना

१. एक प्रकार की पालकी।

चाहा है) तब राय पत्रदास बांधव दुर्ग विजय करने के लिये नियत हुए। वहाँ पहुँचने पर (उस प्रांत के उजाड़ होने से बहुधा स्थानों पर बादशाही थाने बैठाए गए) मनुष्यों ने प्रार्थना की कि एक सरदार बादशाह की ओर से नियत होकर उस लड़के को ले जाय। तब इस्माइल कुली खाँ आज्ञानुसार उसको लेकर ४१ वें वर्ष बादशाह के पास आया। उन लोगों की इच्छा थी (कि कृपा होने से दुर्ग का विजय करना रुक जायगा) पर बादशाह को जब यह ठीक नहीं जँचा, तब उस लड़के को विदा कर दिया। आठ महीने और कई दिन के घेरे पर ४२वें वर्ष में दुर्ग टूटा। ४७वें वर्ष में उसी राजा के पौत्र दुर्योधन[1] को राजा की पदवी और अध्यक्षता दी तथा भारतीचंद्र को उसका अभिभावक नियत किया। जहाँगीर के बादशाह होने पर २१वें वर्ष में जब पूर्वोक्त राजा के पौत्र राजा अमरसिंह ने दरबार में आने की इच्छा प्रकट की, तब बुलाने का आज्ञापत्र, खिलअत और घोड़ा कान्ह राठौर की रक्षा में (जो बातचीत करने में बुद्धिमान् सेवक माना जाता था) उसके लिये भेजा गया। शाहजहाँ के समय ८वें वर्ष में यह अब्दुल्ला खाँ बहादुर के साथ रत्नपुर के जमींदार को दंड देने पर नियुक्त हुआ। इसके मध्यस्थ होने पर उस ज़मींदार ने आकर खाँ से भेंट की। इसके अनंतर यह दरबार

---

१. रीवाँ-नरेश महाराज रघुराजसिंह ने अपनी वंशावली में इनका नाम नहीं दिया है। शायद यह एकाध वर्ष नाम मात्र के लिये राजा बनाए गए हों।

गया और जुझारसिंह बुँदेला के विद्रोह में उसी खाँ के साथ नियत हुआ। इसकी मृत्यु पर इसका पुत्र अनूपसिंह इसका स्थानापन्न हुआ। २४वें वर्ष जब चौरागढ़ के जागीरदार राजा पहाड़सिंह बुँदेला ने, वहाँ (चौरागढ़ के) के ज़मींदार हृदयराम के अनूप-सिंह की (जो दुर्ग बांधव के उजाड़ होने पर वहाँ से चालीस कोस पर रीवाँ नामक स्थान में रहता था) शरण लेने पर, उस पर चढ़ाई की, तब वह बाल-बच्चों सहित नथूनथर के पहाड़ों में भाग गया। ३०वें वर्ष इलाहबाद के सूबेदार सलाबत खाँ सैयद के साथ दरबार में आया। खिलअत, जड़ाऊ जमधर, मीना की हुई ढाल, तीन हजारी २००० सवार का मन्सब और बांधव आदि उसका राज्य जागीर में मिला।

——

६५—राजा रामदास कछवाहा

इसका पिता उरुदत्त एक कम योग्यतावाला और दरिद्र मनुष्य था। अपने देश[१] में रंग के व्यापार से जीवन व्यतीत करता था। उसी अवस्था में रामदास रायसाल दरबारी के यहाँ नौकर होकर उसी राजा के द्वारा अकबर के सेवकों में भर्ती हो गया और थोड़े ही दिनों में उन्नति कर पाँच सदी मन्सब पा गया। धीरे धीरे विश्वास बढ़ने पर १८वें वर्ष (जब राजा टोडरमल ख़ानख़ानाँ[२] की सहायता और उसकी सेना का प्रबंध करने के लिये, जो बिहार को विजय करने जा रही थी, नियत हुआ तब) इसे राजा का नायब बना कर दीवानी का कार्य सौंपा गया। धीरे धीरे अपनी सेवा के कारण बादशाह के मन में स्थान कर लिया जिससे इसकी और उन्नति हुई[३]। राजपूत आदि सरदारों का काम भी करता और धन भी संचित करता था। कहते

---

१. मौज़ा लूनी या बौनली में रहता था।

२. मुनइम ख़ाँ खानखानाँ से तात्पर्य है।

३. तबक़ाते अकबरी में लिखा है कि जब अकबर गुजरात से लौटते समय साँगानेर के तीन कोस इधर पूना गाँव पहुँचा, जो राजा रामदास कछवाहा की जागीर में था, तब यहाँ इन्होंने बादशाह तथा बादशाही नौकरों का सत्कार किया था। (इलि० डा०, भा० ५, पृ० ३६६)

हैं कि आगरा दुर्ग के भीतर बहुत बड़ी और अच्छी हवेली हथियापोल के पास बनाई थी, पर वह स्वयं बराबर चौकी पर रहता था। अकबर के महल में आने जाने का कोई निश्चित समय नहीं था और कभी वह भीतर जाता और कभी बाहर आता था। रामदास दो सौ राजपूतों के साथ भाला हाथ में लिये बराबर प्रतीक्षा में तैयार रहता था।

उस बादशाह की मृत्यु के समय जब ख़ाने आज़म और राजा मानसिंह खुसरू को राजगद्दी देने के लिये प्रयत्न कर रहे थे, तब रामदास ने शाहज़ादा सलीम का पक्ष ग्रहण करके अपने मनुष्यों को कोष और कारख़ाने के पहरे पर खड़ा कर दिया था जिसमें प्रतिद्वंद्वी उन पर अधिकार न कर सके। इस कारण जहाँगीर के समय मन्सब बढ़ा और ऐश्वर्य्यादि में उन्नति हुई[1]। ६ठे वर्ष सन् १०२० हि० (सन् १६११ ई०) में गुजरात के सूबेदार अब्दुल्ला खाँ के साथ नियत होने पर इसे राजा की पदवी, डंका और रंतभँवर दुर्ग (जो हिन्दुस्थान के बड़े दुर्गों में है) मिला[2]। ऐसा प्रसिद्ध है कि इसे राजा कर्ण की पदवी मिली थी, पर एक़बाल-नामा में ऐसा नहीं लिखा है। नासिक से होते हुए ये लोग दौलताबाद पहुँचे; पर जब मलिक अंबर के विजयी होने से ये लोग भाग कर लौटे, तब जहाँगीर ने क्रोध करके उन सब सरदारों

१. असदबेग कृत विक़ाया, इलि० डाउ०, भा० ६, पृ० १७८-२.

२. तुज़ुके जहाँगीरी, पृ० ६८.

के चित्र (जिन्होंने उस चढ़ाई में भाग कर अपने को बदनाम किया था) खिंचवा कर मँगाए थे। प्रत्येक चित्र को देख कर कुछ कहता था। जब राजा के चित्र की पारी आई, तब दीवान का सिर हाथ से पकड़ कर कहा कि 'तू एक तनका दैनिक वेतन पर रायसाल का नौकर था। पिता ने शिक्षा देकर सरदार बनाया। राजपूत जाति के लिये भागना पाप है। दुःख है कि राजा कर्ण की पदवी की लज्जा नहीं रक्खी। आशा करता हूँ कि तू धर्म और संसार दोनों से निष्फल रहेगा।' इसके अनंतर उसको उस कार्य्य से हटा कर बंगश की चढ़ाई पर नियुक्त किया। राजा उसी वर्ष सन् १०२२ हि० (सन् १६१३ ई०) में मर गया। बादशाह ने कहा—'मेरी प्रार्थना ने काम किया; क्योंकि हिन्दुओं के मत में है कि सिंध नदी के उस पार जो मरता है, वह नरक में जाता है।' अंत में जलालाबाद में राजा की पगड़ी के साथ पंद्रह स्त्रियाँ और बीस पुरुष जले।

उस समय दान-पुण्य में यह अपना जोड़ नहीं रखता था। एक एक क़िस्से पर बहुत सा धन देता था। कवियों, भाटों और गवैयों को जो कुछ एक बार पुरस्कार देता था, उतना ही प्रति वर्ष उसी महीने में वे आकर उसके कोषाध्यक्ष से ले जाते थे। नई वस्तु के निकालने की इच्छा नहीं रहती थी। चौसर खेलने का बड़ा प्रेमी था, यहाँ तक कि दो दो दिन और रात खेलता रहता था। यदि कोई हरा देता तो यह उसे गाली देता और क्रोध करता था, मुख्य कर अपने मित्रों पर। भूमि पर हाथ पटकता और

बकता था। इसका पुत्र तमनदास[1] अकबर के ४६वें वर्ष में बिना छुट्टी लिए देश जाकर निर्बलों को सताने लगा। पिता के इच्छानुसार बादशाह ने आज्ञा दी कि शाह कुली खाँ के नौकर उसे दरबार में ले आवें। उसने यह समाचार सुन कर फाँसी लगा कर अपने प्राण दे दिए[2]। पुत्र की मृत्यु से रामदास को शोक हुआ। अकबर ने उसके द्वार तक जाकर शोक मनाया था। दूसरा पुत्र दिलीप नरायन था जो सरदार होकर सब कामों में पिता के समान था। ठीक जवानी में उसकी मृत्यु हुई।

---

१. ठट

जँचते। शायद नयनदास हो।

२. तमनदास ने शाहकुली खाँ का मुक़ाबिला किया और लड़ कर मारा गया (ब्लोकमैन कृत आईने अकबरी, पृ० ४८३)। तुजुके जहाँगीरी में लिखा है कि अकबर ने काश्मीर में वानपुर और काकापुर के बीच एक महल इसे दिया था।

६६–राजा रामदास नरवरी[1]

यह जहाँगीर के समय का एक मन्सबदार है। शाहजहाँ के राज्य के प्रथम वर्ष में यह महाबत खाँ खानखानाँ के साथ जुझारसिंह बुँदेला को (जिसने आगरे से भाग कर विद्रोह का झंडा खड़ा किया था) दंड देने के लिये नियत हुआ। ३रे वर्ष राव रत्न हाड़ा के साथ बरार के पास बासम में ठहरने और दक्षिणी सेना को रोकने के लिये नियत हुआ। ६ठे वर्ष के अंत में सुल्तान शुजाअ के साथ दक्षिण प्रांत के परेंदा दुर्ग को विजय करने गया। ८वें वर्ष में इसका मन्सब बढ़ कर दो हज़ारी १०००

---

१. दसवीं शताब्दी में नरवर तथा ग्वालिअर पर कछवाहों का अधिकार हो गया था। बारहवीं शताब्दी के आरम्भ में परिहारों का उस पर अधिकार हुआ। सन् १२३२ ई० में गुलाम वंश के शाह अल्तमश ने परिहारों को परास्त किया था। सन् १२५१ ई० में छाहड़देव ने हार कर यह दुर्ग नसीरुद्दीन को दे दिया था। तैमूर की चढ़ाई के समय तँवर राजपूतों ने इस पर अधिकार कर लिया। सन् १५०७ ई० में सिकंदर लोदी ने बारह महीने के घेरे के बाद नरवर दुर्ग पर अधिकार करके इसे राजसिंह कछवाहा को दे दिया। मुग़ल बादशाहों के समय में यह इसी वंश के हाथ में बराबर बना रहा। केवल शाहजहाँ के समय में कुछ दिन उस वंश के हाथ से निकल गया था। मराठों का उत्कर्ष होने पर दौलतराव सिंधिया ने इस पर अधिकार कर लिया।

सवार का हो गया और सैयद खानेजहाँ बारहः के साथ आदिल खानी राज्य को नष्ट करने पर नियत हुआ। १३वें वर्ष सन् १०४९ हि० (सन् १६३९ ई०) में इसकी मृत्यु हो गई। बादशाह ने इसके पौत्र अमरसिंह का मन्सब बढ़ा कर एक हज़ारी ६०० सवार का कर दिया और राजा की पदवी देकर नरवर दुर्ग[1] की अध्यक्षता पर इसके दादा की तरह इसे भी नियुक्त कर आस पास की भूमि दी। १९वें वर्ष में सुल्तान मुराद बख़्श के साथ यह बलख़ बदख़्शाँ की चढ़ाई पर गया। २५वें वर्ष सुल्तान औरंगजेब बहादुर के साथ (जो कंधार की दूसरी चढ़ाई पर नियत हुआ था) उस प्रांत को गया। २६ वें वर्ष सुल्तान दारा शिकोह के साथ उसी प्रांत को गया और वहाँ से रुस्तम खाँ के साथ बुस्त की विजय को गया। ३०वें वर्ष में इसका मन्सब बढ़ कर डेढ़ हज़ारी १००० सवार का हो गया। इसी वर्ष (सं० १७१३ वि०, सन् १६५६ ई०) मुअज़्ज़म ख़ाँ के साथ सुल्तान औरंगजेब बहादुर के सहायतार्थ दक्षिण गया। प्रथम वर्ष आलमगीरो में सेवा में पहुँच कर शाहजादा सुलतान मुहम्मद के साथ सुल्तान शुजाअ का पीछा करने को नियुक्त हुआ। वहाँ के कार्य्यों में और आसाम की चढ़ाई पर इसने बहुत प्रयत्न किया। इसके अनंतर शमशेर खाँ तरीं के साथ अफ़ग़ानों

---

१. विंध्याचल पर्वतमाला के एक ढालुएँ शृंग पर, जो वहाँ की भूमि से चार सौ फुट और समुद्र तट से १६०० फुट ऊँचा है, बना हुआ है। इसकी दीवार पाँच मील लंबी है। आगरा प्रांत की नरवर सरकार में यह दुर्ग है।

की चढ़ाई पर नियुक्त होकर अच्छी सेवा के पुरस्कार में इसका मन्सब बढ़ कर हज़ारी ३५० सवार का हो गया। इसके मन्सब में जो यह भिन्नता है (दस वर्षवाले आलमगीरनामा से लिया गया है) वह स्यात् इसके पुराने मन्सब में कमी हो जाने से हुई हो या लिखने की अशुद्धि हो[1]।

— —

१. खफ़ी खाँ, भा० २, पृ० ८७५-८० में दिलावर अली खाँ सैयद तथा निज़ामुल्मुल्क आसफ़जाह के बीच सन् १६२० ई० में रत्नपुर के पास जिस युद्ध का वर्णन दिया गया है, उसमें गजसिंह नरवरी के मारे जाने का उल्लेख है। यह गजसिंह इसी वंश के ज्ञात होते हैं।

६७—राजा रामसिंह कछवाहा

यह मिरज़ा राजा जयसिंह के बड़े पुत्र थे। राज्य के १६वें वर्ष में जब शाहजहाँ अजमेर की ओर गए तब यह पिता के साथ दरबार गए। १९वें वर्ष (जब बादशाह लाहौर से काबुल की ओर चले तब) पाँच सौ सवारों के साथ देश से आने पर इन्हें एक हज़ारी १००० सवार का मन्सब मिला। मन्सब बराबर बढ़ने के कारण दो हज़ारी १५०० सवार का हो गया और झंडा भी मिल गया। २६वें वर्ष पाँच सदी मन्सब और बढ़ा। २७वें वर्ष भी पाँच सदी मन्सब बढ़ा। सामूगढ़ के युद्ध में यह दारा शिकोह के साथ था, जिसके पराजित होने पर यह औरंगजेब के पास पहुँच कर पहले वर्ष शाहज़ादा मुहम्मद सुलतान और मुअज्ज़म ख़ाँ के साथ शुजाअ का पीछा करने पर नियुक्त हुआ। रास्ते में झूठी गप्पें सुनकर (जो दारा शिकोह के दूसरे युद्ध के बाद उड़ रही थीं) कुछ दिन इसने शाहज़ादे के यहाँ जाना-आना और साहब-सलामत छोड़ दी थी तथा वहाँ से लौट भी गया था। ३रे वर्ष सुलेमान शिकोह (जो श्रीनगर के राजा के पास था और जिसने मिरज़ा राजा जयसिंह के कहने से उसे भेजना निश्चित किया था) को लाने के लिये गया और

वहाँ के राजा के पुत्र के साथ दरबार आया[1]। मिरज़ा राजा के दक्षिण में नियुक्त होने पर यह दरबार ही में रहा।

८वें वर्ष जब शिवाजी और इसके पिता की भेंट होने का समाचार आया, तब इसे खिलअत, जड़ाऊ गहने और हथिनी मिली। जब शिवाजी अपने पुत्र शंभाजी के साथ दक्षिण से आकर दरबार में गए, तब बादशाह ने पहले दिन उनके मुख पर घमंड देखकर रामसिंह को (जो सेवा के लिये वहाँ उपस्थित था) आज्ञा दी कि 'इसे अपने पास डेरा देना और इससे होशियार रहना।' जब उन्होंने चालाकी से (जिसका हाल राजा साहू भोंसला की जीवनी में लिखा गया है) वहाँ से गुप्त रूप से निकल कर रास्ता लिया, तब इसकी असावधानी[2] के कारण इसका मन्सब छिन गया और इसे दरबार जाने की मनाही हो गई। पिता की मृत्यु पर १०वें वर्ष[3] में बादशाह ने इसका दोष

---

१. ख़फ़ी खाँ, भा० २, पृ० १२३। सुलेमान शिकोह और श्रीनगर के राजकुमार दोनों को साथ ले आया था।

२. खफ़ीखाँ, भा० २, पृ० १८६—६० और पृ० १९८—२००। रामसिंह की असावधानी बतलाना तथ्य को छिपाना मात्र है। वास्तव में 'शठं प्रति शाठ्यं' वाली नीति में शिवाजी का औरंगजेब से बढ़ जाना ही कारण था। बादशाही आज्ञा से कोतवाल का कड़ा पहरा रहता था, जो आलमगीर-नामा पृ० ९७० के अनुसार राजा जयसिंह का उत्तर आने पर उठा लिया गया था।

३. सन् १६८७ ई० में यह दक्षिण ही में मृत्युलोक को सिधारे।

क्षमा करके इसे खिलअत, मोती की लड़ियों सहित जड़ाऊ जमधर, जड़ाऊ साज़ सहित तलवार, सोने की ज़ीन सहित अरबी घोड़ा, चाँदी के साज़ और ज़रबफ़्त की झूल सहित हाथी, राजा की पदवी और चार हज़ारी ४००० सवार का मन्सब देकर सम्मानित किया।

उसी वर्ष के अंत में जब बंगाल की सीमा पर गोहाटी में आसामियों के विद्रोह और वहाँ के थानेदार फ़ीरोज़ ख़ाँ के मारे जाने का समाचार बादशाह को मिला, तब इन्हें भारी सेना के साथ उस प्रांत पर नियुक्त किया और एक हज़ारी १००० सवार का मन्सब बढ़ गया। १९वें वर्ष वहाँ से लौट कर दरबार आया और उसी वर्ष मर गया। इसका पुत्र कुँअर कृष्णसिंह[1] पिता के जीवन ही में योग्य मन्सब पाकर काबुल में नियत हो चुका था जिसके अनंतर वह घरेलू झगड़े में घायल होकर मर गया। इसका पुत्र विष्णुसिंह एक हज़ारी ४०० सवार का मन्सब पा चुका था और दादा की मृत्यु पर राजा की पदवी और अन्य कृपाओं से सम्मानित हुआ। कुछ दिन राठौरों के दमन में और बहुत दिन इस्लामाबाद की फ़ौजदारी पर इसने काम किया। इसके बाद (कि उसकी मृत्यु हो गई थी) ४४वें वर्ष में इसके पुत्र विजयसिंह को राजा जयसिंह की पदवी सहित डेढ़ हज़ारी १०००

---

१. टॉड, राजस्थान पृ० १२०७। इनका नाम टॉड साहब ने नहीं लिया है और न रामसिंह तथा विष्णुसिंह का सम्बन्ध ही बतलाया है।

सवार का मन्सब मिला[1]। ४५वें वर्ष जुम्लतुल्मुल्क असदखाँ के साथ दुर्ग खेलना लेने पर नियुक्त हुआ जिसका वृत्तांत अलग दिया गया है।

---

१. सन् १६६६ ई० में यह धिराज राजा जयसिंह के नाम से गद्दी पर बैठे, जिनकी जीवनी के लिए २४वाँ निबंध देखिए।

६८-रामसिंह

यह कर्मसी राठौर का पुत्र और राणा जगतसिंह का भांजा था। इसका पिता बादशाही सेवा में रहता था। यह शाहजहाँ बादशाह के १३वें वर्ष के अंत में दरबार आया और इसने एक हज़ारी ६०० सवार का मन्सब पाया। १४वें वर्ष १०० सवार बढ़ाए गए और १६वें वर्ष में इसका मन्सब बढ़कर डेढ़ हज़ारी ८०० सवार का हो गया। १९वें वर्ष में यह शाहज़ादा मुरादबख़्श के साथ बलख़ और बदख़्शाँ की चढ़ाई पर नियत हुआ और बलख़ पहुँचने पर जब बहादुरख़ाँ और एसालत ख़ाँ और बलख़ के शासनकर्त्ता नज़रमुहम्मद ख़ाँ का पीछा करने के लिये नियुक्त हुए, तब इसने शाहज़ादे की आज्ञा के बिना ही उनका साथ दिया। दो बार पूर्वोक्त युद्धों और अलअमानों के युद्ध में अच्छा प्रयत्न किया, जिस पर मन्सब बढ़कर ढाई हज़ारी १२०० सवार का प्राप्त कर शाहज़ादा मुहम्मद औरंगजेब के साथ कंधार की चढ़ाई पर नियत हुआ। वहाँ पहुँचने पर रुस्तमख़ाँ के साथ यह जमींदावर विजय करने गया और इसका मन्सब बढ़कर तीन हज़ारी १५०० सवार का हो गया। २५वें वर्ष में उसी चढ़ाई पर पूर्वोक्त शाहज़ादे के साथ द्वितीय बार गया। २६वें वर्ष में हाथी पाने से सम्मानित

होकर दारा शिकोह के साथ तीसरी बार उसी प्रांत में नियुक्त हुआ और वहाँ पहुँचने पर वह रुस्तम खाँ के साथ वुस्त दुर्ग लेने गया। २८वें वर्ष में खलीलुल्ला खाँ के साथ श्रीनगर के भूम्याधिकारी को (जो राजधानी शाहजहानाबाद के उत्तरी पहाड़ों में है) दंड देने पर नियत हुआ। सन् १०६८ हि० (सन् १६५६ ई०) में सामूगढ़ के युद्ध में दारा शिकोह के हरावल में नियुक्त होने पर इसने युद्ध में वीरता से स्वामिभक्ति को हाथ से नहीं जाने दिया और प्रतिद्वंद्वियों से लड़कर मारा गया।

———

६१-राजा रामसिंह हाड़ा

यह माधोसिंह हाड़ा[१] का पौत्र था। जब औरंगज़ेब के राजत्व के २५वें वर्ष में मुकुन्दसिंह हाड़ा के पुत्र जगतसिंह की मृत्यु हो गई और उसको अन्य पुत्र नहीं थे, तब बादशाह ने कोटा का राज्य मुकुन्दसिंह के भाई किशोरसिंह को (जो स्वर्गीय राजा का चाचा था) दिया। वह मुहम्मद आज़मशाह के साथ बीजापुर के घेरे पर नियत हुआ। एक दिन (जब अलीवर्दी ख़ाँ का पुत्र अमानुल्ला मारा गया तब) यह भी घायल हुआ था। ३०वें वर्ष सुलतान मुअज़्ज़म के साथ हैदराबाद गया और ३६वें वर्ष डंका प्राप्त करने के बाद मर गया[२]। ज़ुल्फ़िक़ार ख़ाँ बहादुर की प्रार्थना पर कोटा का राज्य उसके वंश की परंपरागत चाल पर उसके पुत्र रामसिंह (जो अपने राज्य में था; आरम्भ में ढाई सदी, फिर छः सदी और उस समय एक हज़ारी मन्सब पर था)

---

१. कोटा राज्य के संस्थापक माधोसिंह का ५३वें निबंध में तथा उनके पुत्र मुकुंदसिंह और पौत्र जगतसिंह का वृत्तांत ५७वें निबंध में दिया गया है।

२. सन् १६६२ ई० में अर्काट दुर्ग पर आक्रमण करते समय मारे गए। टॉड (राजस्थान भा० २, पृ० १३६६) में मृत्यु संवत् १७४२ वि० (सन् १६८५ ई०) दिया है।

को मिला[1]। पूर्वोक्त खाँ के साथ नियुक्त होकर सन्ता घोरपदे के पुत्र रानो और दूसरे मरहठों का दमन करने में अच्छा कार्य किया। ४४वें वर्ष में इसे डंका मिला। ४८वें वर्ष में यह ढाई हज़ारी मन्सब पर नियत हुआ और राव बुद्धसिंह के बदले में मोमीदाना की ज़मींदारी (जिसके लिये उसकी बड़ी इच्छा थी) की रक्षा करने की शर्त पर उसके मन्सब में एक हज़ार सवार बढ़ाए गए। औरंगज़ेब की मृत्यु पर मुहम्मद आज़मशाह का पक्ष लेने से चार हज़ारी मन्सब हो गया। युद्ध[2] में सुलतान अज़ीमुश्शान का वीरता से सामना करके मारा गया। इसका पुत्र भीमसिंह राजा हुआ[3]। युद्ध में (जो ११३१ हि०, सन् १७१९ ई० में दिलावर अली खाँ और निज़ामुल्मुल्क आसफ़जाह के बीच हुआ था) पूर्वोक्त खाँ के मारे जाने पर भागना उचित न समझ कर वीरता से लड़कर मारा गया[4]। लिखते समय इसका प्रपौत्र

---

१. किशोरसिंह के तीन पुत्र थे—विष्णुसिंह, रामसिंह और हरनाथसिंह। प्रथम को इस कारण राज्य नहीं मिला कि वह पिता के साथ दक्षिण की चढ़ाई पर नहीं गया था। ज़ुल्फ़िकार की प्रार्थना का स्याव यही प्रधान कारण रहा हो।

२. सन् १७०७ ई० का जाजऊ युद्ध।

३. इसने अपने राज्य की बड़ी उन्नति की थी और सैयद भ्राताओं तथा राजा जयसिंह से मिल कर बूँदी के राज्य का नाश करने में भी कुछ उठा नहीं रखा था।

४. सैयद भ्राताओं के बख्शी दिलावर अली ख़ाँ तथा निज़ामुल्मुल्क

गुमानसिंह कोटा का राजा था, जो दुर्जनसाल का पौत्र और सतरसाल का पुत्र था[१]।

का रतपुर से दो तीन कोस इधर ही सामना हुआ था। सन् १७२० ई० की ११ मई को यहाँ युद्ध हुआ जिसमें दिलावरअली खाँ, भीमसिंह तथा गजसिंह नरवरी आदि मारे गए। (खफीखाँ, भा० २, पृ० ८७५-८०)

१. भीमसिंह के बड़े पुत्र अर्जुन गद्दी पर बैठे, पर चार वर्ष के बाद सन् १७२४ ई० में निस्संतान मर गए। तब इनके दोनों भाई श्यामसिंह और दुर्जनसाल में राज्य के लिये झगड़ा हुआ जिसमें पहला मारा गया। जब यह भी निस्संतान मरे, तब किशोरसिंह के पुत्र विष्णुसिंह के प्रपौत्र छत्रसाल को उनकी रानी ने गोद लिया था। परन्तु सरदारों की राय थी कि छत्रसाल के पिता अजीतसिंह के रहते पुत्र को गद्दी न मिलनी चाहिए। अंत में अजीतसिंह गद्दी पर बैठे, पर दो ही वर्ष बाद चल बसे। इनके तीन पुत्र छत्रसाल, गुमानसिंह और राजसिंह थे। छत्रसाल गद्दी पर बैठे, पर निस्संतान मर गए। तब सन् १७६८ ई० में गुमानसिंह राजा हुए। (टाड, राजस्थान, भा० २, पृ० १३७६-६)

७०–राजा रायसाल दरबारी

इसका पिता राजा सूजा राय रायमल शेखावत का पुत्र था। प्रसिद्ध शेर शाह का पिता हसन खाँ सूर उस समय इसका नौकर था। कछवाहों के दो भाग[१] हैं। एक को राजावत कहते हैं जिसमें मानसिंह आदि हैं; और दूसरा शेखावत जिसमें राजा लूनकरण, राजा रायसाल और उसके सम्बन्धी हैं। कहते हैं कि इनके किसी पूर्वज को पुत्र नहीं होता था। एक फ़कीर समय पर आ पहुँचा और वृत्तान्त जानकर पुत्र होने की दुआ देकर उसे प्रसन्न किया। उस सिद्ध के दुआ देने के कुछ दिन अनन्तर एक पुत्र हुआ, जिसका शेख़ नाम रखा गया। इसके वंशवाले शेख़ावत कहलाए।

राजा रायसाल सौभाग्य[२] से अकबर का कृपा-पात्र होकर अपने बराबर वालों से विश्वास में आगे बढ़ गया। जितना ही

---

१. आमेर के राजा उदयकरण के तृतीय पुत्र बालोजी के पौत्र शेखजी शेख बुरहान की दुआ से उत्पन्न हुए थे; इसलिये उन के वंशज शेखावत कहलाए। (टाड कृत राजस्थान, भा० २, पृ० १२४२)

२. टाड लिखते हैं कि इन्होंने एक युद्ध में शत्रु के एक सरदार को बादशाही सेनापति के सामने मारा था जिससे प्रसन्न होकर इन्हें बादशाह ने मन्सब दिया था। अकबरनामा पृ० ३३३, ३८२, ४१६ में लिखा है

७१–राय रायसिंह

यह बीकानेर के राजा राय कल्यानमल[1] का पुत्र था और राठौर-वंशी था। राय मालदेव की चौथी पीढ़ी से इसका वंश आरंभ होता है। जब अकबर की गुणग्राहकता की ख्याति चारों ओर फैलने लगी और उस बादशाह का प्रताप छोटे और बड़े सबके मन में जम गया, तब पूर्वोक्त राय ने अपने पुत्र रायसिंह के साथ १५वें वर्ष अवाने में (जब बादशाह अजमेर में थे) बादशाह के दरबार में पहुँच कर अधीनता स्वीकृत कर ली[2]। अपने भाई को पुत्री का बादशाह से विवाह कर संबंध भी कर लिया।

---

१. सन् १५६१ ई० में जब बैराम ख़ाँ खानखानाँ मक्के जा रहा था और गुजरात के मार्ग में जोधपुर के राजा मालदेव का जोर था, तब यह नागोर से लौट कर बीकानेर चला आया। राय कल्याणमल तथा राय रायसिंह ने इसका अच्छा स्वागत किया था। कुछ दिन यहाँ रह कर बैराम ख़ाँ पंजाब गया जहाँ उसने अकबर के विरुद्ध विद्रोह किया था। तबक़ात, इलि० डा०; भा० ५, पृ० २६५।

२. जब अकबर नागौर में ठहरा हुआ शुक तालाब खुदवा रहा था, तब ये दोनों पिता पुत्र उसके पास गए थे। बादशाह ने वहीं कल्याणमल को पुत्री से अपना विवाह किया था। पचीस दिन नागौर में रह कर अकबर अजोधन गया। कल्याणमल बहुत मोटे थे, इसी से उन्हें बीकानेर जाने की छुट्टी मिल गई और रायसिंह साथ गए। (इलि० डा०, भा० ५, पृ: ३३५-३६)



महाराज रामसिंह

अकवर के ४०वें वर्ष में दो हजारी मन्सव तक पहुँचा था। १५वें वर्ष में (जव वादशाह ने गुजरात की चढ़ाई का विचार किया तव) रायसिंह वहुत से मनुष्यों सहित इस काम पर नियत हुआ कि मालदेव के देश जोधपुर के पास ठहरकर गुजरात का रास्ता रोके, जिसमें वलवाई उस प्रांत से वादशाही राज्य में न आने पावें। यह दूसरों के साथ उस सीमा पर दृढ़ता से जा डटा[१]। इसके अनंतर (जव इब्राहीम हुसेन मिर्ज़ा सर्नाल के युद्ध में परास्त होकर वादशाही राज्य की ओर चला और नागौर को, जो खानेकलाँ की जागीर में था और जिसकी ओर से उसका पुत्र फर्रुख खाँ उसकी अध्यक्षता कर रहा था, घेर लिया तव) राय रायसिंह ने उन सरदारों के साथ (जो उस प्रांत में थे) एकत्र हो मिर्ज़ा पर आक्रमण किया। मिर्ज़ा ने घेरे से हाथ उठा कर आगे का रास्ता लिया, पर रायसिंह ने पीछा कर उसे जा लिया। अंत में वड़ी वीरता दिखला कर इन्होंने मिर्ज़ा को परास्त कर दिया। १८वें वर्ष (जव गुजरात की चढ़ाई निश्चित हो गई तव) वादशाह ने इन्हें आगे भेजा। इन्होंने वादशाही अगली सेना के साथ सेवा में पहुँच कर मुहम्मद हुसेन मिर्ज़ा के युद्ध में वड़ी वीरता दिखलाई[२]। १९वें वर्ष (सन् १५७४ ई०) में

---

१. वीकानेर के रायसिंह जोधपुर इसलिये भेजे गए कि गुजरात का रास्ता खुला रखें और राणा कीका को उपद्रव करने से रोकें। (वदाऊनी भा० २, पृ० १४६) तवक़ात लिखता है कि रास्ता खुला रखने तथा किसी राणा को हानि पहुँचाने से रोकने को यह भेजे गए थे।

२. टाड साहव लिखते हैं कि इन्होंने अहमदावाद लेते समय मिर्ज़ा

यह शाहक़ुली ख़ाँ महरम के साथ राजा मालदेव के पुत्र चंद्रसेन को दंड देने पर नियत हुआ। उसको दंड देने और उसके राज्य पर अधिकार करने में इसने कुछ उठा नहीं रखा; पर कुछ न कर सकने पर (जब कि यह सेना दुर्ग सिवाना को, जो चंद्रसेन का वासस्थान था, घेरने का साहस नहीं कर सकी और चंद्रसेन को दंड देने के लिये, जो अभी युद्ध स्थान में फिर रहा था, दूसरी सेना की आवश्यकता हुई तब) उसी वर्ष के अंत में रायसिंह ने अकेले आकर बादशाह से सब वृत्तांत कहा। बादशाह ने चंद्रसेन पर दूसरी सेना के साथ इसे फिर भेजा। जब सिवाने का घेरा बहुत दिन बीतने पर भी सफल नहीं हुआ[1], तब २१वें वर्ष के आरंभ में (जब शहबाज़ ख़ाँ इस कार्य पर नियत हुआ तब) रायसिंह और दूसरे सरदार बादशाह के पास लौट आए। इसके अनंतर उसी वर्ष तर्सून मुहम्मद ख़ाँ के साथ जालौर और सिरोही के ज़मींदार को दंड देने पर नियुक्त हुए। जब उन्होंने प्रार्थना करके क्षमा माँग ली और दरबार जाने की तैयारी की, तब यह सय्यद हाशिम बारह: के साथ बादशाह के आदेश से नादोत में जाकर ठहर गए। उदयपुर के राणा के आने जाने का रास्ता बन्द करके उस ओर के बलवाइयों का दमन

मुहम्मद हुसेन को द्वंद्व युद्ध में मार डाला था। अन्य इतिहासों में यह भी लिखा है कि इसके पुरस्कार स्वरूप इन्हें राजा की पदवी मिली थी और इनके भाई रामसिंह को मन्सब मिला था।

१. अबुलफ़ज़ल कृत अकबरनामा, भा० ३, पृ० १४७-५०।

करने में इन्होंने वहुत प्रयत्न किया। सिरोही का राजा सुलतान देवद: (सुर्तान देवडा) अपनी जातीय घृणा के कारण दुर्भाग्य से देश लौट गया। रायसिंह ने उस पर विजय प्राप्त करने के लिये नियुक्त होने पर उसे घेरने का साहस किया और धाक जमाने के लिये अपने राज्य से वहुत सा सामान मँगवाया। (सुलतान देवद: ने इस काफ़ले पर आक्रमण कर युद्ध की तैयारी की, पर कुछ मनुष्यों के मारे जाने पर वह परास्त होकर वायुगढ़[1] चला गया। यह दुर्ग सिरोही के पास अजमेर प्रांत की सीमा पर गुजरात की ओर है। वास्तव में इसका नाम अर्वुदाचल था। हिन्दुओं के विश्वास के अनुसार अर्वुद आत्मा संवंधी शव्द है; और अचल का अर्थ पर्वत है। सांसारिक परिवर्तनों में यह नाम भी लुप्त हो गया। इसका घेरा सात कोस का है जिस पर पहिले राणा ने दुर्ग वनवा कर उसके आने की राह दुर्गम कर दी। अच्छे तालाव, मीठे पानी के कूएँ और उपजाऊ भूमि इतनी थी कि दुर्गवालों के लिये काफ़ी थी। वहाँ वहुत प्रकार के सुगंधित पुष्प और मन प्रसन्न करनेवाली हवा भी वरावर रहती थी।) रायसिंह सिरोही पर अधिकार कर वायुगढ़ गया और उसके थोड़े ही प्रयत्न से दुर्गवालों के छक्के छूट गए। सुलतान देवद: ने परास्त होकर दुर्ग की कुंजी दे दी। राय रायसिंह कुछ मनुष्यों को वहीं छोड़ कर उनको साथ लेकर दरवार आए। २६वें वर्ष (जव मिर्ज़ा हकीम के पंजाव की सीमा पर आने की वातें चल रही थीं

---

१. ब्लौकमैन ने आवूगढ़ लिखा है।

और अकबर का उस प्रांत में जाना निश्चित हुआ तब) राय रायसिंह और दूसरे सरदारों को प्रसिद्ध हाथियों के साथ आगे भेजा। यह सुलतान मुराद के साथ (जो मिरजा हकीम का दमन करने के लिये नियत हुआ था) नियुक्त हुआ। उसी वर्ष के अंत में (जब शाही सेना राजधानी को लौटी तब) यह भी दूसरे जागीरदारों के साथ उसी प्रांत में नियत हुए। ३०वें वर्ष में यह इस्माइल कुलीख़ाँ के साथ बलोचिस्तान पर नियत हुआ[१]। ३१वें वर्ष में इसकी पुत्री का सुलतान सलीम से विवाह हुआ[२]। ३५वें वर्ष में इन्होंने अपने देश बीकानेर जाने की छुट्टी ली और वहाँ से दरबार लौट कर ३६वें वर्ष के अंत में वीरों के साथ ख़ानख़ानाँ अब्दुर्रहीम के सहायतार्थ (जो ठट्टा की विजय में लगे हुए थे) नियत हुआ। ३८वें वर्ष इसका संबन्धी (जो राजा रामचंद्र बघेला[३] का पुत्र था और जिसे उक्त राजा की मृत्यु पर बादशाह ने कृपा करके अपने पैतृक राज्य बांधव जाने की आज्ञा दी थी) रास्ते में सुखासन से गिर पड़ा। यद्यपि दवा करने से उसका रक्त बन्द हो गया था, पर जब असमय में स्नान करने से रोग के बढ़ने पर उसकी मृत्यु हो गई, तब गुणग्राहक बादशाह ने उसके

---

१. इलि० डाउ०, भा० ५, पृ० ४५०।

२. इलि० डाउ० भा० ५, पृ० ४५४। इन दो संबंधों के सिवा रायसिंह अकबर के साढ़ू भी लगते थे; क्योंकि दोनों को जैसलमेर की राजकुमारियाँ ब्याही थीं।

३. ६४वाँ निबंध देखिए।

घर पर जाकर बहुत तरह की कृपाओं से उसे सम्मानित किया। इसके अनंतर नियमानुसार अलग हुआ।

इसी समय इसके एक नौकर के अत्याचार का समाचार बादशाह को मिला, जिससे उन्हें बुरा मालूम हुआ और उससे पूछ-ताछ करने के लिये उसे दरबार में बुलवाया। राय रायसिंह ने उसे छिपाकर उसके भागने का प्रबन्ध कर दिया। इस कारण कुछ दिन इसके लिये दरबार जाना बन्द रहा, पर फिर इसे कृपापात्र होने पर सोरठ मिला और दक्षिण में इसकी नियुक्ति हुई[1]। अपनी भूल से स्वदेश बीकानेर में पहुँच कर वहीं समय व्यतीत करने लगा। इसके अनंतर जब चला, तब भी रास्ते में ठहरने लगा। अकबर ने कई बार समझाया, पर कुछ लाभ नहीं हुआ। तब उस ने सिलाहुद्दीन को इसके पास भेजा कि जब यह उस कार्य्य पर नहीं जाते तो दरबार लौट आवें। निरुपाय होकर राजधानी चले आये। अपने इस कुव्यवहार का ठीक उत्तर न रखने के कारण यह दरबार न जा सके। अंत में बादशाह ने उसकी पहिली सेवाओं का विचार करके उसके दोष क्षमा कर उस पर विश्वास बढ़ाया। ४५वें वर्ष (जब बादशाही सेना बुरहानपुर में थी और शेख़ अबुलफ़ज़ल नासिक की ओर नियत हुआ था तब) यह भी शेख़ के साथ नियत हुआ। इसके पुत्र दलपत ने इसके राज्य में विद्रोह कर रखा था, इसलिये यह उस पर आक्रमण

१. ३८वें वर्ष शाहज़ादा दानियाल, ख़ानख़ानाँ आदि के साथ दक्षिण में नियुक्त हुआ था। (इलि० डा०, भा० ६, पृ० ९१)

करने भेजा गया[1] । ४६वें वर्ष यह फिर लौट कर आया और ४८वें वर्ष शाहज़ादा सुलतान सलीम के साथ राणा की चढ़ाई पर नियत हुआ । अकबर के समय यह चार हज़ारी मन्सब तक पहुँचा था ; पर जहाँगीर के प्रथम ही वर्ष में यह पाँच हज़ारी हो गया ।

जब जहाँगीर खुसरो का पीछा करने के लिये पंजाब चला, तब इसे महल के साथ आने की आज्ञा दी । यह बिना आज्ञा लिए रास्ते से अलग होकर अपने देश चला गया । २रे वर्ष बादशाह के काबुल से लौटने पर शरीफ़ख़ाँ अमीरुल्उमरा के साथ दरबार में आया । ७वें वर्ष सन् १०२१ हि० (सन् १६१२ ई०) में इसकी मृत्यु हुई[2] । इसका बड़ा पुत्र दलपति था जिसे अकबर के समय पाँच सदी मन्सब प्राप्त हो चुका था । ३६वें वर्ष ठट्टा की चढ़ाई के लिये ख़ानख़ानाँ के सहायतार्थ नियत होकर युद्ध के दिन साहस नहीं होने से अपने अधीनस्थ सेना सहित खड़ा हुआ तमाशा देखता रहा । ४५वें वर्ष (जब अकबर दक्षिण में थे और मुज़फ्फ़र हुसेन मिर्ज़ा ऊँची नीची बातें देखने पर भी फ़तहुल्ला ख्वाजा के साथ गड़बड़ मचा रहा था तब) यह मिरज़ा को

---

१. रायसिंह के मंत्री कर्मचंद मेहता तथा अन्य लोगों ने दलपति को गद्दी देने के लिये षड़यंत्र रचा था, पर वह भेद खुल गया । इसके अनंतर पिता पुत्र में अनबन रहने लगी । जब उसने राज्य के कुछ परगनों पर अधिकार कर लिया, तब ४५वें वर्ष सन् १६०० ई० में रायसिंह उसका दमन करने भेजे गए ।

दमन करने के बहाने अपने मनुष्यों के साथ स्वदेश लौट गया। ४६वें वर्ष इसका पिता इसे दंड देने पर नियत हुआ। जब इसने दरबार में आने का प्रयत्न किया, तब बादशाह ने इसका दोष क्षमा करके इसे बुलाने का आज्ञापत्र भेज दिया। यह दरबार में आया। जहाँगीर के ३रे वर्ष खानेजहाँ लोदी के द्वारा इसे क्षमा प्राप्त हुई। पिता की मृत्यु पर जब दक्षिण से आया, तब खिलअत और राय की पदवी पाकर पिता का उत्तराधिकारी हुआ।

जहाँगीर नामा में लिखा है कि राय रायसिंह को एक पुत्र सूरसिंह नामक और था[1] और यद्यपि दलपति उसका बड़ा पुत्र था, पर वह चाहता था कि सूरसिंह ही उसका उत्तराधिकारी हो, क्योंकि उसकी माता पर उसका अधिक प्रेम था[2]। (जिस समय उसके पिता की मृत्यु का समाचार मिला, उसी समय) सूरसिंह ने मूर्खता से यह प्रकट किया कि पिता ने मुझे उत्तराधिकारी बना कर टीका दिया है। बादशाह को यह पसंद नहीं आया और उसने कहा कि यदि तुझे पिता ने टीका दिया है तो हम दलपत पर कृपा करते हैं[3]। यह कह कर बादशाह ने अपने हाथ से दलपत के माथे में टीका लगा कर उसके पिता का राज्य उसे

---

१. भारत के प्राचीन राजवंश में इनके चार पुत्रों को नाम दलपतिसिंह, सूरसिंह, कृष्णसिंह और भूपतिसिंह दिए हैं।

२. पत्नी-प्रेम के सिवा दलपति का पिता के विरुद्ध कुचक्र चलाना भी एक प्रधान कारण था।

३. राजहठ का नमूना है। केवल सूरसिंह के कुछ उदंडता के साथ पिता के विचार प्रकट करने के कारण जहाँगीर रुष्ट हो गया था।

जागीर में दे दिया। ७वें वर्ष उसके मन्सब में पाँच सदी ५०० सवार बढ़ा कर मिर्ज़ा रुस्तम सफ़वी (जो ठट्टा का शासनकर्त्ता नियुक्त हुआ था) के साथ नियत किया। ८वें वर्ष में जब समाचार मिला (कि वह अपने छोटे भाई सूरसिंह से युद्ध करके परास्त हुआ है) और उस ओर का फ़ौजदार हाशिम खाँ खोस्ती उसे पकड़ कर लाया है, तब इस कारण कि उससे दूसरी बार भी बुराइयाँ हुई थीं, वह अपने दंड को पहुँचा[1]। इस कार्य्य के पुरस्कार में सूरसिंह का मन्सब पाँच सदी ५०० सवार का बढ़ाया गया। राव सूर का वृत्तांत अलग दिया हुआ है[2]।

---

१. राज्य पाने के बाद केवल एक बार दरबार आया था, इससे बादशाह इससे अप्रसन्न थे। सूरसिंह से हारने तथा कैद होकर आने पर बादशाह ने उसे दंड दिया और सूरसिंह को बीकानेर का राजा बना दिया।

२. निबंध ६१वाँ देखिए।

७२—राजा रायसिंह सिसौदिया

यह महाराणा अमरसिंह के पुत्र महाराज भीम का पुत्र था। जहाँगीर के राज्य के ९वें वर्ष में जब शाहज़ादा शाहजहाँ राणा अमरसिंह पर चढ़ाई करने के लिये नियुक्त हुआ और राणा पराजित होने पर क्षमाप्रार्थी होकर शाहज़ादे से मिला, तब भीम शाहज़ादा की सेवा में नियुक्त हुआ[1]। इसने गुजरात के ज़मींदार का दमन करने, दक्षिण के युद्धों और गोंडवाने से कर वसूल करने में प्रयत्न कर साहस और वीरता में प्रसिद्धि प्राप्त की। जब बादशाह और शाहज़ादे में वैमनस्य हो गया, तब भी इन्होंने शाहज़ादे का साथ नहीं छोड़ा और उस समय (जब

---

१. मूता नैणसी की ख्यात, भा० १, पृ० ७३ में लिखा है—'राजा भीम (टोडे का) बड़ा राजपूत हुआ, राणा के आपत्काल में ठौड़ ठौड़ शाही सेना से लड़ाइयाँ लीं, फिर शाहज़ादा खुर्रम की चाकरी में रहा, सं० १६७९ वि० में राजा की पदवी पाया और मेड़ता जागीर में मिला। बग़ावत में खुर्रम के साथ रहा। सं० १६८१ कार्तिक सुदी ... पूर्व में कुंड़स नदी पर शाहज़ादे पर्वेज और महाबत खाँ के साथ खुर्रम की लड़ाई हुई, वहाँ भीम काम आया। भीम के पुत्र—किशनसिंह, राजा रायसिंह सं० १६६५ में राजाई पाया, पातावत नारायण दास का दोहिता था।' उसी ग्रंथ के पृ० ७१–७२ में भीम ने किस प्रकार वीरता से मुग़ल सेनापति अब्दुल्ला खाँ पर धावा किया था, इसका पूरा विवरण दिया हुआ है।

शाहज़ादा बंगाल से इलाहाबाद की ओर बढ़ा[1] और इधर से जहाँगीर की आज्ञा से सुलतान पर्वेज़ महाबत ख़ाँ के साथ शाही सेना सहित पहुँच कर युद्ध को तैयार हुआ तब) वीरता से अन्य स्वामिभक्तों के साथ उसने प्राण निछावर कर दिए[2]।

शाहजहाँ की राजगद्दी के पहले वर्ष में रायसिंह दरबार में

---

१. जब शाहजहाँ बंगाल गया, तब उसने राजा भीम के अधीन कुछ सेना पटना विजय करने भेजी। उस समय तक उसकी वीरता इतनी प्रसिद्ध हो गई थी कि वहाँ के फ़ौजदार इख़्तख़ार ख़ाँ तथा शेख़ अफ़ग़ान आदि उसके पहुँचने के पहले ही डर कर पटना दुर्ग छोड़ कर भाग गए। राजा भीम ने दुर्ग पर अधिकार कर लिया और बिहार प्रांत पर शाहजहाँ का दख़ल हो गया। (इक़बालनामाए जहाँगीरी, इलि० डाउ०, जि० ६, पृ० ४१०)

२. राजा भीम बिहार प्रांत को विजय के अनंतर इलाहाबाद की ओर चले और ततमए वाक़ेआत जहाँगीरी के अनुसार उससे पाँच कोस पूर्व की ओर पहुँच कर ठहरे। सन् १६२४ ई०, सं० १६८१ वि० में इलाहाबाद की दूसरी ओर झूँसी में दोनों सेनाओं का सामना हुआ। शाहज़ादा पर्वेज के साथ महाबत ख़ाँ ख़ानख़ानाँ चालीस सहस्र सेना के साथ आ पहुँचा था और शाहजहाँ की ओर केवल दस सहस्र सेना थी। इसके पक्षवालों में लड़ने की राय कम थी, पर राजा भीम की सम्मति युद्ध ही की थी, इससे अंत में युद्ध ही निश्चित हुआ। राजा ने अपने राजपूतों के साथ बड़ी वीरता से आक्रमण किया और लड़ते समय मारा गया। (इलि० डाउ०, जि० ६, पृ० ४१३-४) झूँसी को इस ग्रन्थ में झौंसी सा लिखा है। काशी ना० प्र० सभा द्वारा प्रकाशित मूता नैणसी की ख्यात के हिन्दी अनुवाद पृ० ७१ में इस युद्ध का वर्णन है। शब्द-टिप्पणी में युद्धस्थल का नाम झाँसी लिखा है जो अशुद्ध है। झूँसी ही में युद्ध हुआ था।

पहुँचा और अल्पवयस्क होने पर भी पिता की कृतियों के कारण यह अच्छा खिलअत, जड़ाऊ सरपेंच, जड़ाऊ जमधर, दो हज़ारी हज़ार सवार का मन्सब, राजा की पदवी, घोड़ा, हाथी और बीस सहस्र रूपया पाकर सम्मानित हुआ। ५ वर्ष एक हजारी २०० सवार का मन्सब बढ़ा। छठे वर्ष शाहज़ादा मुहम्मद औरंगज़ेब बहादुर के साथ (जो जुझारसिंह का दमन करने के लिये नियुक्त की गई सेना के सहायतार्थ नियत हुआ था) इसकी नियुक्ति हुई। ९वें वर्ष इसके मन्सब में २०० सवार बढ़ाए गए। १२वें वर्ष यह शाहज़ादा दारा शिकोह के साथ कंधार गया। १४वें वर्ष इसे डंका मिला और सईद खाँ ज़फ़रजंग के साथ जम्मू के जमींदार जगतसिंह को (जो विद्रोही हो गया था) दंड देने पर नियत हुआ। १५वें वर्ष में इसका मन्सब बढ़ाकर चार हजारी दो हज़ार सवार का कर दिया गया और यह शाहज़ादा दारा शिकोह के साथ कंधार की चढ़ाई पर नियुक्त हुआ। १८वें वर्ष (सन् १६४५ ई०) में अमीरुलउमरा अलीमर्दां खाँ के साथ बलख और बदख़्शाँ की चढ़ाई पर नियत होकर शाहज़ादा मुरादबख़्श के साथ वहाँ गया।

बलख़ पर अधिकार होने के अनंतर जब पूर्वोक्त शाहज़ादा का मन वहाँ से उचाट हो गया और वह दरबार को लौटा, तब यह भी पेशावर चला आया, पर वहीं (क्योंकि इस चढ़ाई पर नियुक्त मनुष्यों को अटक पार करने से मना किया गया था) ठहर गया। इसके अनन्तर यह शाहज़ादा मुहम्मद औरंगज़ेब बहादुर

के साथ यहाँ से बलख़ और बदख़शाँ लौटा और उज़बेगों के युद्ध में वीरता दिखलाई। शाहज़ादा के उस प्रांत से लौटने पर इसने घर जाने की छुट्टी पाई। २२वें वर्ष शाहज़ादा मुहम्मद औरंगज़ेब बहादुर की अधीनता में क़ंधार की चढ़ाई पर गया जहाँ से रुस्तम खाँ के साथ क़ज़िलबाशों का दमन करने के लिये आगे बढ़ कर अच्छा कार्य दिखलाया। इससे इसका मन्सब बढ़ कर पाँच हज़ारी ढाई हज़ार सवार का हो गया। दूसरी बार पूर्वोक्त शाहज़ादे के साथ उसी चढ़ाई पर नियुक्त हुआ, पर बीमार हो जाने से पेशावर ही में यह रह गया। शाही सेना के पास पहुँचने पर दरबार गया और घर जाने की छुट्टी पाई। तीसरी बार यह शाहज़ादा दारा शिकोह के साथ कंधार की चढ़ाई पर गया और वहाँ से यह रुस्तम खाँ के साथ बुस्त दुर्ग विजय करने गया। २८वें वर्ष अल्लामी सादुल्ला ख़ाँ के साथ यह चित्तौड़ जीतने गया। ३१वें वर्ष मुअज्ज़म ख़ाँ आदि के साथ दक्षिण प्रांत में शाहज़ादा मुहम्मद औरंगज़ेब बहादुर के पास जाकर आदिलशाहियों के युद्ध में इसने वीरता दिखलाई और अपने प्रतिद्वंद्वी को मारकर यह बहुत घायल हो गया। इसके पुरस्कार में इसका मन्सब पाँच हज़ारी चार हज़ार का हो गया। अच्छा खिलअत, जड़ाऊ तलवार, सोने की जीन सहित अरबी घोड़ा, हाथी और हथिनी पाई। साथ ही एक लाख रुपया सिक्का पाकर इसे घर जाने की छुट्टी मिल गई। महाराज जसवंतसिंह और औरंगज़ेब के बीच के युद्ध में राजपूतों के साथ दाहिने भाग में था। पर जब युद्ध बिगड़ता देखा, तब हँसी होने का

विचार न कर यह अपने देश को चल दिया। दारा शिकोह के साथ युद्ध होने पर यह आलमगीर के दरबार में गया। दारा शिकोह के साथ दूसरे युद्ध के समय जब इसको जागीर क़स्व: तोर: में बचे हुए सामान और बेगमों को छोड़ने का ठीक हुआ, तब यह वहाँ का रक्षक नियुक्त हुआ। २रे वर्ष अमीरुल्उमरा शायस्ता ख़ाँ के साथ और ७वें वर्ष मिर्ज़ा राजा जयसिंह के साथ दक्षिण में नियुक्त होकर शिवा जी भोंसला के दुर्ग लेने और आदिल ख़ाँ के राज्य के कुछ भागों पर अधिकार करने में अच्छी वीरता दिखलाने के कारण इसका मन्सब पाँच हज़ारी पाँच हज़ार सवार का, जिसके पाँच सौ सवार दो और तीन घोड़ेवाले थे, हो गया। १०वें वर्ष शाहज़ादा मुअज्ज़म के साथ उसी प्रांत को जाकर, १६वें वर्ष सन् १०८३ हि० (सन १६७२ ई०) में यह वहीं मर गया। इसके पुत्र मानसिंह, महासिंह और अनूपसिंह ने दरबार आकर खिलअत पाया[१]।

---

१. मआसिरे आलमगीरी में लिखा है—'मानसिंह, जहानसिंह तथा अनूपसिंह, राजा रायसिंह के बेटे, बाप के मरने पर हज़ूर में आए। तीनों को खिलअत मिले।' एक प्रति में जहानसिंह के स्थान पर माहसिंह है, पर ठीक नाम महासिंह ही है। हिंदी अनु०, भा० २, पृ० ४४।

७३—रूपसिंह राठौर

यह राजा सूरजसिंह के छोटे और सगे भाई किशनसिंह राठौर का पौत्र था[1]। शाहजहाँ के राजत्व के १७वें वर्ष (सं० १७०० वि०, सन् १६४४ ई०) में जब इसके चाचा हरीसिंह की मृत्यु हो गई और उसे कोई पुत्र नहीं था, तब बादशाह ने उसके भतीजे रूपसिंह को ख़िलअत, मन्सब की वृद्धि और चाँदी के साज सहित घोड़ा प्रदान कर कृष्णगढ़ जागीर में दिया। १८वें वर्ष में बादशाह की बड़ी पुत्री बेगम साहिबा के अच्छे होने की खुशी में (जो दीए की लौ के आँचल में लग जाने से जल गई थी और अच्छी नहीं हुई थी) इसका मन्सब बढ़ कर एक हजारी ७०० सवार का हो गया। १९वें वर्ष में यह शाहजादा मुरादबख्श के साथ बलख और बदख्शाँ की विजय को गया। बलख पहुँचने पर जब वहाँ का शासनकर्त्ता नजर मुहम्मद खाँ बिना सामना

---

१. जोधपुर नरेश महाराज उदयसिंह मोटा राजा के पुत्र कृष्णसिंह ने कृष्णगढ़ राज्य स्थापित किया था जिनका वृत्तांत ६वें निबंध में दिया गया है। इनके पुत्र सहसमल्ल तथा जगमाल क्रमशः गद्दी पर बैठे, पर निस्संतान मरे। तब कृष्णसिंह के छोटे पुत्र हरिसिंह जी गद्दी पर बैठे; पर ये भी निस्संतान मर गए। इसके बाद हरिसिंह के बड़े भाई भारमल्ल के पुत्र रूपसिंह २६ वर्ष की अवस्था में सन् १६४३ ई० में गद्दी पर बैठे।

किए भाग गया और शाहजादे के आज्ञानुसार बहादुर खाँ और एसालत खाँ उसका पीछा करने गए, तब यह भी बिना आज्ञा के साथ चला गया। नजर मुहम्मद खाँ के युद्ध और अलअमानों को दंड देने के अनंतर (कि दूसरी बार ऐसा हुआ था) पुरस्कार में २० वें वर्ष इसका मन्सब डेढ़ हज़ारी १००० सवार का कर दिया गया। २१ वें वर्ष इसे झंडा मिला। २२ वें वर्ष ढ़ाई हज़ारी १२०० सवार का मन्सब पा कर यह शाहज़ादा मुहम्मद औरंगज़ेब बहादुर के साथ क़ंधार प्रांत को गया। वहाँ पहुँचने पर रुस्तम खाँ के साथ ज़मींदावर पहुँच कर कज़िलबाशों के युद्ध में अच्छा प्रयत्न किया। २३ वें वर्ष में इसका मन्सब बढ़ कर तीन हजारी १५०० सवार का हो गया। २५वें वर्ष में एक हजारी ५०० सवार का मन्सब और बढ़ाया गया और डंका प्रदान करके पूर्वोक्त शाहज़ादे के साथ कंधार की चढ़ाई पर नियुक्त किया। २६ वें वर्ष तीसरी बार शाहजादा दारा शिकोह के साथ उसी चढ़ाई पर नियुक्त होकर यह चार हजारी २५०० सवार के मन्सब तक पहुँच गया। २८वें वर्ष में यह अल्लामी सादुल्ला खाँ के साथ चित्तौड़ को नष्ट करने पर नियत हुआ और इसका मन्सब बढ़ कर चार हजारी ३००० सवार का हुआ। चित्तौड़ सरकार के अंतर्गत परगना मांडलगढ़, जिसकी आमदनी अस्सी लाख दाम थी, राणा के बदले इसे जागीर में मिला। सामूगढ़ के युद्ध में यह दाराशिकोह के हरावल में था। युद्ध में वीरता दिखलाते हुए शत्रु के तोपखाने, हरावल और मध्यस्थ सेना को पार

करके औरंगजेब के हाथी के सामने यथा-संभव पहुँचने का प्रयत्न किया। अंत में पैदल होकर बादशाही हाथी के नीचे इस इच्छा से पहुँचा कि अम्बारी का रस्सा काट दे। बादशाह ने उसका साहस देखकर अपने मनुष्यों को कितना मना किया (कि उसे मारें नहीं जीवित पकड़ लें) पर उन लोगों ने अवसर न देकर उसे सन् १०६८ हि० (सं० १७१५ वि०, सन १६५८ ई०) में मार डाला[१]। उसका पुत्र मानसिंह औरंगजेब के राजत्व में तीन हजारी मन्सब तक पहुँच कर ३५वें वर्ष जुल्फिक्कार खाँ के साथ दुर्ग जिंजी की विजय को गया[२]। जब बहादुर शाह बादशाह हुआ तब कृष्णगढ़ का सरदार राजसिंह या राजा बहादुर (जो सुलतान अजीमुश्शान का मामा था और काबुल में बहादुर शाह के साथ अपने राज्य की आशा में लगा था) हुआ, तब यह तीन हजारी मन्सब पर था। ग्रंथ-लेखन के समय राजा बहादुर का छोटा पुत्र बहादुरसिंह वहाँ का राजा था।

---

१. इन्होंने ववेरा स्थान पर रूपनगर बसाया था। ये श्रीकृष्ण जी के उपासक थे और इन्होंने वृन्दावन से श्री कल्याण जी की मूर्ति लाकर रूपनगर में स्थापित की थी। इनकी वीरता का वर्णन वृंद कवि ने 'रूपसिंह जी की वचनिका' नामक पुस्तक में किया है।

२. इनकी मृत्यु सन् १७०६ ई० में हुई। इनके पुत्र राजसिंह ३२ वर्ष की अवस्था में गद्दी पर बैठे। राजसिंह के पाँच पुत्र थे, जिनमें से सबसे बड़े सामंतसिंह इनकी मृत्यु पर राजा हुए। इनके पुत्र सरदारसिंह के निस्संतान मरने पर सामंतसिंह के छोटे भाई बहादुरसिंह राज्य पर अधिकृत हुए।

७४—रूपसी

यह राजा विहारीमल (भारमल) का भतीजा था[१]। ६ठे वर्ष के अंत में अकवर की सेवा में पहुँच कर उसका कृपापात्र हुआ। २० वें वर्ष (जव मिरज़ा सुलेमान ने सहायता पाने से निराश होकर कावे की ओर जाने की इच्छा की तव) यह मिरज़ा के साथ रक्षक नियत हुआ। इसका पुत्र जयमल अपने संवंधियों के पहिले वादशाह की सेवा में पहुँचा और मिरज़ा शरफुद्दीन हुसेन (जो अजमेर के पास जागीरदार था) के साथ कुछ दिन रहा। मिरज़ा ने उसे मेरठ का थानेदार वना दिया था। जव उसका कार्य विगड़ा[२] तव १७ वें वर्ष (सं० १६२९ वि०, सन् १५७२ ई०) में वादशाह के पास पहुँच कर लौटनेवाली सेना के साथ (जो ख़ानेकलाँ के सेनापतित्व में गुजरात पर नियत हुई थी) गया। गुजरात के धावे में (जो १८ वें वर्ष में हुआ था) यह भी वादशाह के साथ था। २१वें वर्ष औरों के साथ राव सुर्जन के पुत्र दूदा (जिसने अपने देश वूँदी में जाकर लूट मार आरंभ कर दी थी) को दंड देने पर नियत हुआ।

---

१. अवुलफ़जल ने इसका नाम रूपसी वैरागी लिखा है और इसे भारमल का भाई वतलाया है।

२. जव शरफुद्दीन ने विद्रोह किया, तव जयमल दरवार चला गया।

वहाँ से डाक के घोड़ों पर बंगाल भेजा गया कि वहाँ के सरदारों को समझावे और समाचार कहे। फुर्ती से यात्रा करने और सूर्य्य की गर्मी के कारण चौसा घाट पहुँच कर मर गया।

कहते हैं कि उसकी स्त्री ने (जो मोटा राजा की पुत्री थी) यह समाचार सुन कर सती की प्रथा पर (जो हिंदुस्थान में जारी थी) घृणा प्रकट की। उसके पुत्र उदयसिंह ने कुछ लोगों की सम्मति से यह चाहा कि उसकी इच्छा या अनिच्छा का विचार न करके उसे जलावें। जब बादशाह ने यह वृत्तांत सुना तब वहाँ से (कि समय नहीं था) स्वयं घोड़े पर सवार होकर उधर चले, यहाँ तक कि चौकीदार भी साथ न पहुँच सके। जब पास पहुँचे तब जगन्नाथ और रायसाल[1] उसे पकड़ कर सामने लाए। उसे (कि उसके मुख से घबराहट झलकती थी) इस कारण कारागार भेजा।

अकबरनामा का लेखक लिखता है कि जब बादशाह धावा कर अहमदाबाद पहुँचे, तब एक दिन (जब कि मुहम्मद हुसेन मिरज़ा से युद्ध हो रहा था) जयमल भारी कवच पहने हुए था जिससे उसपर अकबर ने दया करके अपने अस्त्रालय से उसे जिरह दिया और उसका कवच मालदेव के पौत्र कर्ण को (जो कुछ नहीं पहने था) दे दिया। रूपसी ने यह वृत्तांत जान कर ओछेपन से अपना कवच लाने के लिये आदमी भेजा। बादशाह ने कहा कि मैंने उसका बदला दे दिया है। रूपसी ने ओछेपन को और

१. इनके वृत्तांत के लिये २१वाँ तथा ७०वाँ निबंध देखिए।

बढ़ा कर अस्त्र (जो शरीर पर था) उतार दिया। बादशाह ने भी (कि प्रतिष्ठा करनी चाहिए) स्थान के विचार से अपना कवच भी उतार दिया कि जब मेरे सेवक बिना कवच युद्ध कर रहे हैं, तब मेरा पहनना उचित नहीं है। राजा भगवंतदास ने यह समाचार सुन कर प्रार्थना की और उसके भाँग पीने की बात कह कर उसका दोष क्षमा कराया। बादशाह ने उसकी प्रार्थना पर उसे क्षमा कर दिया।

—

७५—राजा रोज़अफ़ज़ूँ

यह बिहार प्रांत के परगनों के भूम्याधिकारी राजा संग्राम[1] का पुत्र था। अकबर के समय में जब शहबाज़ खाँ कंबू पूर्व के प्रांत में नियुक्त हुआ और बादशाही सेना दुर्ग महदा के (जो उसके अधीन था) पास से उतरी, तब एकाएक खाँ ने उस दुर्ग को घेर लिया। उसने दुर्ग की ताली सौंप कर अपना विश्वास बढ़ाया। यद्यपि वह सेवा में नहीं आया था, पर वहाँ के शासन-कर्ताओं से बराबर बर्ताव रखता था। जहाँगीर के राजत्व के प्रथम वर्ष (सन् १६०५ ई०) में पूर्वोक्त प्रांत के नाज़िम जहाँगीर क़ुली खाँ लालः बेग ने उस पर चढ़ाई की। वह युद्ध में गोली खा कर मर गया। राजा रोज़ अफ़ज़ूँ[2] बुद्धिमानी से उस बादशाह की सेवा में आकर मुसलमान हो गया। ८वें वर्ष में देश का शासन और हाथी पाने से यह सम्मानित हुआ। उस बादशाह

---

१. यह खड़गपुर का राजा था। (ब्लाकमैन कृत आईन अकबरी, पृ० ४४६) इसने बिहार के सूबेदार मुज़फ़्फ़र खाँ के एक संबंधी ख्वाजा शम्सुद्दीन की वहाँ के विद्रोहियों से रक्षा की थी।

२. यह संग्राम का पुत्र था, जिसे मुसलमान होने पर यह नाम मिला था। इसका अर्थ प्रति दिन बढ़नेवाला है। इसके हिंदू नाम का पता नहीं लगा।

के राजत्व के अंत में डेढ़ हज़ारी ८०० सवार के मन्सब तक पहुँचा था। शाहजहाँ के राजत्व के प्रथम वर्ष में महाबत खाँ खानखानाँ के साथ बलख के शासनकर्ता नजरमुहम्मद खाँ का (जिसने विद्रोह किया था) दमन करने के लिये वह काबुल प्रांत में भेजा गया और उसके अनंतर जुझारसिंह बुँदेला को दंड देने के लिये नियुक्त हुआ था। ३रे वर्ष आज़म खाँ के साथ सेना में (जो शायस्ता खाँ की अधीनता में थी) जाने पर इसके मन्सब में एक सौ सवार की उन्नति हुई। ४थे वर्ष यह नसीरी खाँ के साथ नानदेर की ओर भेजा गया। ६ठे वर्ष मुहम्मद शुजाअ के साथ दक्षिण की चढ़ाई में नियुक्त होकर इसने परेंदा दुर्ग के घेरे में अच्छा काम किया। ८वें वर्ष में इसका मन्सब बढ कर दो हज़ारी १००० सवार का हो गया। उसी वर्ष सन् १०४४ हि० में इसकी मृत्यु हुई। उसका पुत्र बेहरोज़[1] शाहजहाँ के राज्य के ३०वें वर्ष तक सात सदी ७०० सवार के मन्सब तक पहुँचा था और क़ंधार को चढ़ाई तथा दूसरे कामों पर नियुक्त हो चुका था। औरंगज़ेब के समय में भी यह शाहज़ादा मुहम्मद सुल्तान और मुअज्जम खाँ[2] के साथ सेना को दूसरी ओर से बंगाल ले जाने के लिये नियत हुआ। शुजाअ के साथ युद्धों में (जिसने औरंगजेब की सेना का सामना किया था) भी मुअज्ज़म खाँ के

१. बेहरोज़ भी फारसी शब्द है। इसका तात्पर्य है—प्रति दिन उत्तमतर होनेवाला।

२. मीर जुमला मुअज्ज़म खाँ से अभिप्राय है।

साथ अच्छा कार्य दिखलाया। ४थें वर्ष विहार प्रांत के पास पालामऊ के लेने में बहुत प्रयत्न किया था। ८वें वर्ष में इसकी मृत्यु हो गई।

७६—राय लूनकरण कछवाहा

यह शेखावत कछवाहा था। परगना साँभर में इसकी ज़मींदारी थी। यह अकबर की सेवा में पहुँच कर उसका कृपापात्र हुआ। २१वें वर्ष में कुँअर मानसिंह के साथ नियत होकर यह उसी वर्ष राजा बीरबर के साथ राजा डूँगरपुर की पुत्री को लाने के लिये (जो चाहता था कि वह बादशाही महल में ली जाय) भेजा गया। २२ वें वर्ष में उसके साथ लौटने पर इसने बादशाह को भेंट दी। २४ वें वर्ष राजा टोडरमल के साथ यह पश्चिमी प्रांत के विद्रोहियों को दंड देने पर नियत हुआ। २८वें वर्ष यह बैराम खाँ के पुत्र मिरज़ा खाँ के साथ गुजरात गया था। इसका पुत्र राय मनोहरदास बादशाह का अधिक कृपापात्र था। २२वें वर्ष में (जिस समय बादशाही सेना आमेर में थी) यह समाचार मिला कि उस प्रांत में एक पुराना नगर है, जो कई घटनाओं के कारण खँडहर हो रहा है[१]। बादशाह ने उसे बनवाने की दृढ़ इच्छा करके उसकी नींव डाली और कई सरदार उसे बनवाने पर नियत हुए। थोड़े समय में वह कार्य पूरा हो गया। इस कारण (कि उसकी ज़मींदारी लूनकरण को

१. ब्लोकमैन कृत आईन में लिखा है कि इसी मनोहरदास ने यह समाचार दिया था और उसे बसाने की अपनी इच्छा प्रकट की थी।

अधीनता में थी) उसके पुत्र के नाम पर उसका नाम मनोहर-नगर[1] रखा।

जब मुज़फ्फ़र हुसेन मिरज़ा बुरे विचार से भागा और कोई सरदार उसका पीछा करने का साहस नहीं कर सका, तब यह राय दुरगा[2] के साथ ४५वें वर्ष में उस कार्य पर नियत हुआ। यद्यपि ख्वाजा वैसी ने मिरज़ा को पकड़ रखा था, पर यह भी सुल्तानपुर के पास पहुँच गया था। अकबर की मृत्यु पर जहाँ-गीर का कृपापात्र होकर पहिले वर्ष सुल्तान पर्वेज़ के साथ राणा अमरसिंह को दंड देने गया। २रे वर्ष इसे हज़ारी ५६० सवार का मन्सब मिला। बहुत दिनों तक दक्षिण में नियुक्त रहकर ११वें वर्ष (सन् १६१६ ई०) में यह वहीं मर गया। इसके पुत्र[3] को पाँच सदी ३०० सवार का मन्सब मिला था। पूर्वोक्त राय शैर भी कहता था और उपनाम 'तौसन' रखा था[4]। यह शैर उसी का है—

यगानः बूदनो यकता शुदन ज़े चश्म आमोज़।
कि हर दो चश्म जुदा ओ जुदा नमी न गिरंद॥

---

१. मानचित्रों में आमेर के उत्तर कुछ हट कर एक मनोहरपुर मिलता है।

२. राय दुर्गा सिसोदिया, जिसकी जीवनी ३४वें निबंध में दी गई है।

३. इसका नाम पृथीचंद था जिसे राय की पदवी भी मिली थी।

४. यह फारसी का कवि था और दरबार में मिरजा मनोहर कहा जाता था। तौसन का अर्थ 'घोड़े का चपल और तेज़ बच्चा' है।

अर्थ—अकेला होना और एक हो रहना आँखों से सीखो कि दोनों आँखें अलग अलग आँसू कभी नहीं गिरातीं।

इसके दो भाई ईश्वरदास और साँवलदास से इसका वंश फैला, क्योंकि इसे स्वयं एक भी संतान नहीं थी।



७७–राजा विक्रमाजीत

इसका नाम पत्रदास[१] था और यह जाति का खत्री था। आरम्भ में यह अकबर के हाथीखाने का मुन्शी हुआ। पहिले इसे राय रायान की पदवी मिली और फिर इसने उच्च पद प्राप्त किया। १२वें वर्ष में चित्तौड़ दुर्ग के घेरे में यह हुसन खाँ चग़त्ता के साथ बादशाही मोर्चे का प्रबन्धकर्ता नियत हुआ। २४वें वर्ष में मीर अदहम के साथ बंगाल का दीवान नियुक्त हुआ। २५वें वर्ष में जब विद्रोहियों ने मुज़फ़्फ़र खाँ को मार डाला और इसे कैद कर दिया, तब यह किसी उपाय से निकल भागा और कुछ दिन तक उसी प्रान्त में काम करता रहा। ३१वें वर्ष में यह बिहार का दीवान बनाया गया। ३८वें वर्ष में यह बांधव दुर्ग (जो अपने समय का अजेय दुर्ग था और राजा रामचन्द्र बघेला और उसके पुत्र की मृत्यु पर लोगों ने उसके अल्पवयस्क पौत्र को जिसका उत्तराधिकारी बना दिया था) विजय करने के लिये नियुक्त हुआ। आठ महीने पचीस दिन के घेरे के अनन्तर भोजन न रहने से दुर्गवाले बाहर निकल आए और दुर्ग विजय हो गया। ४३वें

१. इलियट डाउसन के प्रसिद्ध इतिहास में फ़ारसी अक्षरों की कृपा से पत्रदास का हरदास हो गया है।

वर्ष में दीवाने-कुल[1] बनाया गया। ४४वें वर्ष में उस पद से हटाया जाकर यह फिर बांधव भेजा गया। ४६वें वर्ष में इसने तीन हज़ारी मन्सव पाया। ४७वें वर्ष में जव अकवर को वीरसिंह देव बुँदेला के द्वारा शेख़ अवुल फ़जल के मारे जाने का समाचार मिला, तव इसे आज्ञा हुई कि उस हत्याकारी को नष्ट करने का प्रयत्न करे; और जव तक उसका सिर न भेजे, इस काम से हाथ न उठावे[2]। राजा ने कई युद्धों में वीरता दिखला कर उसे पराजित किया और जब वह दुर्ग एरिछ में जा वैठा, तव उसे वहाँ जा घेरा। जव वह दुर्ग की दीवार तोड़ कर वाहर निकला, तव राजा ने उसका पीछा किया, पर वह जंगलों में चला गया। ४८वें वर्ष में राजा के आज्ञानुसार दरवार आकर सलाम किया। ४९वें वर्ष में पाँच हजारी मन्सव और राजा विक्रमाजीत की पदवी पाकर सम्मानित हुआ[3]। जहाँगीर के वादशाह होने पर यह (मीर-

---

१. ब्लाकमैन ने दीवानेकुल को "दीवाने काबुल" पढ़ कर अनुवाद किया है। (आईन पृ० ४७०) इसके दीवानेकुल होने का उल्लेख अकबरनामा भा० ३, पृ० ७४१, ७५८ में है।

२. यह और राय रायसिंह ससैन्य उस समय आंतरी ही में थे, जो अवुलफज़ल के मारे जाने के स्थान के पास ही है।

३. जहाँगीर लिखता है कि 'हरदास राय, जिसे पिता जी ने राय रायान की पदवी और हमने राजा विक्रमाजीत की पदवी दी थी, हमारे द्वारा पुरस्कृत होकर सम्मानित हुआ। हमने उसे मीर आतिश वना कर ५०००० तोपची और ३००० तोप-गाड़ियाँ तैयार रखने की आज्ञा दी।' ल० डा०, भा० ६, पृ० २८७।

आतिश) तोपखाने का मुख्य अध्यक्ष नियत हुआ और इसे ५०००० तोपवाले सैनिक एकत्र करने की आज्ञा मिली। १५ परगने[1] इन सब के व्यय के लिये जागीर में नियत हुए। जब मुजफ्फ़र गुजराती के पुत्रों[2] के बलवे और यतीम बहादुर के मारे जाने का समाचार गुजरात से आया, तब यह बहुत सी सेना के साथ उधर भेजा गया और इसको आज्ञा मिली कि वह कुछ को (जो अहमदाबाद में उसके पास आवें) एक सदी तक का मन्सब दे सकता है; और जो इससे अधिक की योग्यता रखता हो, उसका वृत्तान्त लिखे। इसकी मृत्यु का समय ज्ञात नहीं हुआ[3]।

---

१. जहाँगीर अपने आत्मचरित्र में इन पर्गनों के देने का उल्लेख नहीं करता।

२. तुजुके जहाँगीरी पृ० २३ में प्रथम वर्ष में केवल एक पुत्र का तथा यतीम के मारे जाने का वृत्तांत लिखा है। यतीम का पिम तथा तालीम पाठांतर मिलता है। यूज़-बाशी अर्थात् एक सदी तक के मन्सब देने का भी उल्लेख उसमें नहीं है। मीराते अहमदी पृ० १६२ में मुज़फ़्फ़र के दो पुत्रों तथा दो कन्याओं का वृत्त दिया है।

३. अकबरनामा तथा तुजुके-जहाँगीरी पृ० ५० में वर्णित रॉय मोहनदास इसका पुत्र ज्ञात होता है। जहाँगीर इसके एक पुत्र कल्याण का भी नाम लेता है, जिसे उसने कठोर दंड दिया था।

७८—राजा विक्रमाजीत रायरायान

यह सुन्दरदास नामक ब्राह्मण था[१]। युवराज शाहजहाँ के सेवकों में यह एक लेखक था और कार्यदक्ष होने के कारण मीरे-सामान बनाया गया था। चतुरता और साहस के साथ कई बड़े बड़े कार्य करके लेखनी से तलवार के काम पर प्रतिष्ठित हुआ। राणा की चढ़ाई पर इसने लड़ाकू सेना के साथ उसके ग्रामों पर धावे करके लूट-मार की और कुछ को मारा तथा कुछ को क़ैद किया। इसी के द्वारा राणा ने शाहज़ादे की अधीनता स्वीकृत कर ली। बादशाह ने इन अच्छे कार्यों के पुरस्कार में राय सुन्दर-दास का मन्सब बढ़ा दिया और उसे राय रायान की पदवी दी[२]। जब शाहज़ादा पहिली बार दक्षिण पर नियत हुआ, तब इसको अफ़जल खाँ के साथ इब्राहीम आदिलशाह को समझाने के लिये बीजापुर भेजा। उसने यह कार्य ऐसी अच्छी तरह से पूरा किया कि पन्द्रह लाख रुपये का सिक्का और सामान भेंट में लाया। दो लाख रुपए का (जो आदिलशाह ने उसे दिया था) एक लाल जिसकी तौल सत्रह मिसकाल और साढ़े पाँच सुर्ख़ थी, (जो पानी, चमक, रंग, काट छाँट और स्वच्छता में अद्वितीय

१. तुजुक में लिखा है कि यह बांधव का रहनेवाला था।

२. वाक़िआते जहाँगीरी, इलि० डा०, भा० ६, पृ० ३३९।

था) गोवा बन्दर से क्रय किया और सेवा के समय शाहजादे को भेंट दिया। शाहजादे ने अपने पिता को जो भेंट भेजी थी, उसका इसे नायक बनाया। इसके लिये राजा का मन्सब बढ़ाया गया और राजा विक्रमाजीत[1] (जो हिन्दोस्थान की श्रेष्ठ पदवियों में से है) की पदवी दी गई।

इसी वर्ष सन् १०२६ हि० (१६१७ ई०) में जब शाहजहाँ की जागीर गुजरात में नियत हुई, तब राजा उसका प्रतिनिधि होकर उस प्रांत के शासन पर नियुक्त हुआ। इसने जाम और विहारः (जो गुजरात प्रान्त के भारी जमींदार हैं) पर चढ़ाई की। पहिले के राज्य की सीमा एक ओर सोरठ तक और दूसरी ओर समुद्र तक पहुँची है और दूसरा राज्य समुद्र के किनारे पर ठट्टा की ओर है। दोनों वैभवशाली हैं और हर एक, जो उनका अध्यक्ष होता है, जाम और बिहारः कहलाता है। अब तक ये लोग किसी सुलतान के यहाँ नहीं गए थे, पर राजा के प्रयत्न से इन दोनों ने अहमदाबाद जाकर जहाँगीर को भेंट दी।

जब राजा बासू का पुत्र सूरजमल (जो काँगड़ा विजय करने के लिये भेजा गया था) विद्रोही होकर गड़बड़ मचाने लगा, तब यह राजा १३वें वर्ष के अन्त में सेना के साथ, जिसमें शाहजहाँ और बादशाह के सैनिक जैसे शहबाज़ खाँ लोदी आदि थे, उस अजेय दुर्ग को (जिस पर दिल्ली के किसी सुलतान की विजय का कमंद नहीं पहुँचा था) विजय करने के लिये भेजा गया। राजा ने पहिले

१. तुजुके जहाँगीरी, अनु० पृ० ४०२।

सूरजमल का दमन करने का विचार करके उस पर चढ़ाई की और थोड़े समय में उसे पराजित करके भगा दिया और दुर्ग मऊ और महरी (जो उसका वास-स्थान था) विजय किया। इसके पुरस्कार में इसे डंका मिला। १६वें वर्ष में सन् १०२९ हि० (१६२० ई०) के शव्वाल महीने में यह काँगड़ा दुर्ग (जिसे नगरकोट भी कहते हैं) घेरने के लिये भेजा गया। जब दुर्गवालों को इसने कड़ाई के साथ घेर लिया, तब उन लोगों ने कष्ट पाकर १ मुहर्रम १०३० हि० (सन् १६२१ ई०) को एक वर्ष दो महीने और कुछ दिनों पर अपनी रक्षा के लिये वचन लेकर दुर्ग दे दिया।

यह दुर्ग अजेयता और दृढ़ता के लिये सुप्रसिद्ध है और लाहौर के उत्तरीय पार्वत्य प्रान्त में स्थित है। पंजाब प्रान्त के ज़मींदारों का यह विश्वास है कि इस दुर्ग के बनाने का समय सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर के सिवा और कोई नहीं जानता। इस बीच यह दुर्ग न अन्य किसी जाति के अधिकार में गया और न किसी दूसरे के हाथ में गया। मुसलमान सुलतानों में सुलतान फ़ीरोज़शाह बड़ी तैयारी के साथ इसे विजय करने गया था। बहुत दिन घेरा रहने पर जब उसे विश्वास हो गया (कि इस दुर्ग का विजय करना असम्भव है[1] तब) राजा से भेंट ले कर इस कार्य से हाथ हटा लिया।

१. शम्श शीराज के इतिहास में लिखा है कि राजा ने दुर्ग दे दिया था। देखिए इलि० डा०, भा० ३, पृ० ३१७।

कहते हैं कि जब राजा सुलतान को कुछ मनुष्यों के साथ दुर्ग के भीतर आतिथ्य करने लिवा ले गया, तब सुलतान ने राजा से कहा कि इस प्रकार मुझे दुर्ग में ले आना नीति के विरुद्ध है। यदि ये लोग, जो मेरे साथ हैं, तुम पर आक्रमण करें और दुर्ग पर अधिकार कर लें तो क्या उपाय है ? राजा ने अपने मनुष्यों को कुछ संकेत किया जिस पर झुण्ड के झुण्ड शस्त्रधारी मनुष्य गुप्त स्थानों से बाहर निकल आए। यह देखकर सुलतान सशंकित हुआ। तब राजा ने कहा कि सेवा के सिवा मेरा और कुछ विचार नहीं है; पर ऐसे समय में सावधान रहना उचित है। इसके अनन्तर कोई सुलतान सेना के जोर से इस दुर्ग पर अधिकार नहीं कर सका।

अकबर ने प्रान्तों को विजय करने की उत्सुकता रखते हुए और इतने दिनों तक राज्य करने पर भी (साथ ही यह कि वह उसके राज्य की सीमा पर था) उस पर अधिकार नहीं किया। एक बार (कि वहाँ का राजा उसके क्रोध का पात्र हुआ था) वह प्रान्त राजा बीरबल को मिला था जिसे अधिकार दिलाने के लिये एक सेना हुसेन कुली खाँ खानेजहाँ पंजाब के सूबेदार के अधीन नियत हुई थी। जिस समय दुर्गवालों के लिये घेरा असह्य हो रहा था, उसी समय इब्राहीम हुसेन मिर्ज़ा का बलवा उठ खड़ा हुआ था, जिससे निरुपाय होकर हुसेन कुली खाँ ने राजा से सन्धि कर उसका पीछा किया। इसके अनन्तर वहाँ के अध्यक्ष राजा जयचन्द ने भेंट भेज कर और दरबार जाकर अधीनता स्वीकृत करली।

२६वें वर्ष सन् ९९० हि० (१५८२ ई०) के आरम्भ में (जब सिन्ध नदी के प्रान्त की ओर जा रहा था तब) अकबर रास्ते ही से नगरकोट के मन्दिर का आश्चर्यजनक दृश्य देखने (जो उस प्रान्त का प्राचीन मन्दिर है) के लिये वहाँ गया। पहिले पड़ाव पर राजा जयचंद सेवा में आया। रात्रि देसूथ ग्राम में (जो राजा बीरबर की जागीर में है) व्यतीत हुई जहाँ उसी रात्रि को वह आत्मशरीर (जिसके कितने अजीब कार्य्य बतलाए जाते हैं) उसे स्वप्न में दिखलाई पड़ा और बादशाह का बड़प्पन प्रकट करते हुए यह कार्य्य न करने के लिये उससे कहा। सुबह होते ही स्वप्न का हाल कह कर वह लौट गया। साथवालों को (जो रास्ते की कठिनाइयों और घाटियों के चढ़ाव उतार से घबरा गए थे और बादशाही इक़बाल के कारण, कि बहुत कम बोल सकते हैं, कुछ कह नहीं सकते थे) इससे बड़ी प्रसन्नता हुई[1]।

जब जहाँगीर बादशाह हुआ, तब इसे लेने के विचार से उसने पहिले शेख़ फ़रीद मुर्तज़ा ख़ाँ को (जो पंजाब का सूबेदार था) इसे घेरने के लिये भेजा। वह इस कार्य्य को पूर्ण नहीं कर सका था कि उसकी मृत्यु हो गई। इसके अनंतर राजा सूरजमल इस कार्य्य पर नियत हुआ। प्रत्येक बात के होने का समय निर्दिष्ट है और प्रत्येक कार्य्य उसी समय के अधीन है, इससे यह भी विद्रोही हो गया। इसी समय युवराज शाहज़ादा के जाने और

१. अकबरनामा भा० ३, पृ० ३४८।

राजा विक्रमाजीत के प्रयत्न से यह देर में खुलनेवाली गाँठ झट खुल गई और १६वें वर्ष में जहाँगीर दुर्ग में गए और मुसल्मानी धर्म जारी कर मसजिद की नींव डाली।

यह दुर्ग पहाड़ पर बना हुआ है, जिसमें दृढ़ता के लिये २३ बुर्ज और ७ फाटक हैं। भीतर से इसका घेरा एक कोस और १५ तनाव है। इसकी लंबाई चौड़ाई एक कोस और दो तनाब है तथा चौड़ाई २२ तनाब से अधिक और १५ से कम नहीं है[१]। इसकी ऊँचाई ११४ हाथ है। इसके भीतर दो बड़े तालाब हैं। नगर के पास महामाया का मंदिर है[२] जो दुर्गा भवानी के नाम से प्रसिद्ध है। इन्हें शक्ति का अवतार मानते हैं और दूर देशों से लोग इनके दर्शन के लिये आकर इच्छानुसार फल पाते हैं। सबसे आश्चर्यजनक यह बात है कि ये यात्री अपनी इच्छापूर्ति के लिये जीभ काट कर चढ़ाते हैं, जिसपर कुछ को कुछ ही घड़ी में और बचे हुओं को दो तीन दिन में जीभ फिर आ जाती है। यद्यपि हकीम लोग कहते हैं कि जीभ कट जाने पर पुनः बढ़ आती है, पर इतनी जल्दी बढ़ना भी आश्चर्य है। कथाओं में इन्हें महादेव जी की पत्नी लिखा है और उस मत के बुद्धिमान इन्हें उनकी शक्ति कहते हैं।

---

१. मिस्टर वेवरिज ने अर्थ किया है—'चौड़ाई २२ तनाव से अधिक है और १५ से कम है' यह अर्थ असंभव है।

२. आईने अकबरी, जैरेट, भा० २, पृ० ३१२।

ऐसा कहा जाता है[1] कि जब उन्होंने देखा कि मैंने (पति के साथ) अनुचित वर्ताव किया है, तब अपना शरीर त्याग दिया। उनका शरीर चार स्थानों में गिरा। शिर और कुछ भाग काश्मीर के उत्तरी पहाड़ों में स्थित कामराज में गिरा जो शारदा के नाम से प्रसिद्ध है। कुछ अंश दक्षिण में बीजापुर के पास गिरा, जिसे तुलजा भवानी कहते हैं। जो अंश पूर्व की ओर गया, वह कानू के पास मच्छा[2] कहलाया और जो उसी स्थान पर रह गया, वह जालंधरी कहलाया। इसी स्थान के पास कहीं कहीं ज्वाला की लपटें निकलती हैं और चरबी के समान जला करती हैं। इस स्थान को ज्वालामुखी कहते हैं, जहाँ मनुष्य दर्शन को जाते हैं और ज्वाला में भिन्न भिन्न वस्तुएँ डाल कर शकुन विचारते हैं। उस ऊँचाई पर एक बड़ा गुंबद बना है, जहाँ बड़ी भीड़ एकत्र होती है। वस्तुतः वह गंधक की खान है, पर उसे लोग दैवी शक्ति समझते हैं। मुसल्मान भी वहाँ इकट्ठे होते हैं और इस दृश्य में योग देते हैं।

कुछ ऐसा भी कहते हैं कि जब महादेव जी की स्त्री की अवस्था पूरी हो गई, तब वह प्रेम के मारे बहुत दिनों तक उनका शव लिये फिरे। जब शरीर के अवयवों का आपस का तनाव कम हुआ, तब हर एक अंग एक एक स्थान पर गिरने लगा। अवयव की श्रेष्ठता के अनुसार स्थान की प्रतिष्ठा होने लगी। इसलिये

---

१. आईने अकबरी, जैरेट, भा० २, पृ० ३१३ टि० २।

२. कामरूप नामक स्थान आसाम में है जहाँ की कामाक्षा देवी प्रसिद्ध हैं।

कि छाती (जो सब अवयवों से श्रेष्ठ है) यहाँ गिरी थी, यह स्थान और स्थानों से अधिक पवित्र माना गया। कुछ यों कहते हैं कि एक पत्थर (जिसे काफ़िर पूजते थे) मुसल्मानों ने उठा कर नदी में डाल दिया था। इसके अनंतर पुजारी लोग दूसरा पत्थर उसी के नाम पर ले आए। राजा ने सिधाई से या लोभ से (जो चढ़ावे से संचित धन का था) उसे प्रतिष्ठा के साथ उसी स्थान पर प्रतिष्ठित किया और फिर से भुलावे की दूकान खुल गई। इतिहासों में लिखा गया है कि जब सुल्तान फीरोज़ शाह वहाँ पहुँचा, तब उसने सुना कि यहाँ के ब्राह्मण उस समय से (जब सिकंदर जुलकरनैन यहाँ आया था) नौशाबः[1] की मूर्ति बनवा कर उसकी पूजा करते हैं। सुलतान ने नौशाबः की मूर्ति मदीना भेज दी जो सड़क पर डाल दी गई कि सबके पैरों तले पड़े। फरिश्ता[2] के लेखक ने लिखा है कि उस मंदिर में प्राचीन समय के ब्राह्मणों की लिखी हुई १३०० पुस्तकें थीं। सुल्तान फीरोज़ शाह ने उस जाति के विद्वानों को बुला कर कुछ का अनुवाद कराया। इन्हीं में से इज्जुद्दीन ख़ालिदख़ानी ने (जो उस समय का एक कवि था) एक पुस्तक कविता में बुद्धि और शकुन के फलादेश पर लिखी और उसका नाम दलायल-फीरोज-शाही रखा। वस्तुतः उस पुस्तक में कई प्रकार के लिखित और करणीय विज्ञानों का समावेश है।

---

१. बरदा की रानी थी, जिसने सिकंदर से भेंट की थी।

२. नवलकिशोर प्रेस की छपी प्रति भा० १, पृ० १४८।

काँगड़ा विजय के उपरांत जब १५वें वर्ष में राजा विक्रमाजीत सेना के साथ शाहजहाँ से मिले, तभी समाचार आया कि दक्षिण के अधिकारियों ने अदूरदर्शिता से जहाँगीर बादशाह के सैर के लिये काश्मीर चले जाने का (जो देश की सीमा पर और राजधानी से दूर है) समाचार सुनकर विद्रोह कर दिया है और उनमें मुख्य मलिक अंबर है, जिसने अहमद-नगर और बरार के आसपास अधिकार कर लिया है। शाही नौकर (जो मेहकर में एकत्र होकर शत्रु से लड़े थे) रसद की कमी से बालापुर चले आए; पर जब वहाँ भी नहीं ठहर सके, तब बुरहानपुर में खानखानाँ के पास आ पहुँचे। शत्रु ने बादशाही राज्य पर आक्रमण कर बुरहानपुर को घेर लिया। बखेड़ों से भरे हुए दक्षिण का प्रबंध युवराज शाहजहाँ के ही ऊपर निर्भर था, इससे उसी वर्ष सन् १०३० हि० (१६२१ ई०) में यह कई बड़े सरदारों के साथ विदा हुआ।

शाहजादा ने बुरहानपुर पहुँच कर ३०००० सवारों की पाँच सेनाएँ दाराब खाँ, अब्दुल्ला खाँ, ख्वाजः अबुलहसन, राजा विक्रमाजीत और राजा भीम के सेनापतित्व में शत्रुओं का दमन करने के लिये नियत कीं। यद्यपि प्रकट में कुल सेना की अध्यक्षता दाराब खाँ के नाम थी, पर वस्तुतः सेना का कुल कार्य्य राजा विक्रमाजीत ही के हाथ में था[1]। राजा आठ दिन में बुरहानपुर से खिरकी पहुँचा (जो निज़ामशाह और मलिक अंबर का

---

१. खफी खाँ, भा० १, पृ० ३१७

वासस्थान था) और उसको जड़ से खोद डाला। जब मलिक अंबर ने अपने नाश की तैयारी देखी तब लज्जा और पछतावा प्रकट कर क्षमाप्रार्थी हुआ। तब यह निश्चित हुआ कि चौदह करोड़ दाम के मूल्य की भूमि दक्षिण प्रांत के महालों से (जो दक्षिणियों के अधीन है) बिना साझे के, जो बादशाही प्रांत की सीमा पर हो, छोड़ दे और पचास लाख रुपया आदिलशाही और कुतुबशाही कोषों से भेंट लेकर भेज दे[1]। राजा सेना सहित तमुरनी क़सबे तक लौट कर वहीं ठहर गया। शाहजहाँ के आज्ञानुसार उसी क़सबे के पास खरकपूर्णा नाम की नदी के किनारे पर भूमि पसंद करके दुर्ग की दृढ़ता के लिये पत्थर और चूने की नींव डाली और उसका नाम ज़फ़रनगर रख कर वर्षा ऋतु वहीं व्यतीत की।

जब शाहजहाँ के कारण दक्षिण का प्रबंध ठीक हो गया, तब समय ने दूसरा खेल निकाला। उसका विवरण यों है कि जब नूरजहाँ बेगम का पूर्ण प्रभाव हो गया और राज्य तथा कोष के सब कार्य उसके हाथ में आ गए तथा जहाँगीर नाम मात्र के लिये बादशाह रह गया, तब बेगम ने दूरदर्शिता से विचारा कि इस समय (क्योंकि जहाँगीर की बीमारी दूनी हो गई थी) यदि कर्मानुसार कोई घटना हो जाय तो युवराज शाहज़ादा बादशाह होंगे; और यद्यपि वह हमसे मित्रता रखते हैं, पर वह इतना अधिकार और प्रतिष्ठा उसे कैसे दे सकेंगे। इसलिये

१. खफी खाँ, भा० १, पृ० ३२२।

अपनी पुत्री का (जो शेर अफ़गन खाँ से हुई थी) सुल्तान शहरयार (जो बादशाह का सब से छोटा पुत्र था) से विवाह करके उसका पक्ष लिया और शाहजहाँ कंधार के कार्य के लिये बुलाया गया। जब वह दक्षिण से मांडू पहुँचा, तब पिता को लिखा कि मालवा की मिट्टी और कीचड़ के कारण मेरा वर्षा भर यहाँ ठहरना उचित है और (इस कारण कि फ़ारस के शाह से सामना है) साज़ और सामान भी ठीक करना अति आवश्यक है। रणथम्भौर का दुर्ग हरम और सरदारों के परिवार के रक्षार्थ मुझे मिलना चाहिए। लाहौर प्रांत (जो कंधार के रास्ते पर है) मुझे जागीर में मिले, जिससे रसद और दूसरे सामान सहज में प्राप्त हो सकें और जब तक यह कार्य पूरा न हो, तब तक के लिये उन सरदारों की (जो इस चढ़ाई में नियत हों) नियुक्ति, हटाना, मन्सब बढ़ाना या घटाना मेरे हाथ में रहे, जिससे वे डर और आशा से ठीक काम करें।

बेगम (जिनका सब पर अधिकार था) ने इन बातों को बादशाह से कठोर शब्दों में कह कर इस प्रकार मन में बैठा दिया कि मानों शाहजादे की इच्छा कुल साम्राज्य ले लेने की है। जहाँगीर को उसने ऐसा पाठ पढ़ाया कि उसने क़ंधार की चढ़ाई शहरयार के नाम कर दी और युवराज शाहजादे की जो जागीर (उत्तरी भारत में) थी, वह ले ली। उसके साथ दक्षिण में जो सरदार थे, उन्हें बुलवा भेजा। यद्यपि जहाँगीर इन कार्यों की कठिनाई को समझता था, पर बेगम के विरुद्ध भी चलने का कोई उपाय नहीं

था; इससे जो वह कहतीं, वही होता था। फल यह हुआ कि दोनों ओर से युद्ध की तैयारी हुई। इधर जहाँगीर दिल्ली से निकला और उधर शाहजहाँ बिलूचपुर पहुँचा। दोनों के बीच में केवल दस कोस का फासला रह गया था। शाहजहाँ के साथवालों ने एक मत होकर प्रार्थना की कि अब बात बहुत बढ़ गई है, इससे जहाँगीर चुप नहीं बैठेंगे; और इस समय अपनी सेना संख्या और तैयारी में बादशाही सेना से बढ़ कर है, इससे युद्ध ही करना चाहिए। शाहज़ादे ने उत्तर दिया कि इस प्रकार का कार्य्य (जो ईश्वर और संसार दोनों के सामने दूषित समझा जाता है) मैं स्वयं नहीं कर सकता। यदि बादशाह परास्त हुए और मेरी विजय हुई तो ऐसे साम्राज्य से क्या फल? और मुझे कौन सी प्रसन्नता होगी? इसके सिवा मेरी और कोई इच्छा नहीं है कि उन भड़-कानेवालों को दंड दिया जाय।

इसके अनंतर यही निश्चित हुआ कि शाहजादा चार पाँच सहस्र सवारों के साथ रास्ते से चार कोस बाएँ हट कर कोटला (जो मेवात में है) में ठहरे। तीन सेनाएँ दाराब खाँ, राजा विक्रमाजीत और राजा भीम की अधीनता में नियत हुईं कि बादशाही कैंप के चारों ओर लूट मार कर रसद सामान न पहुँचने दें, जिससे शांति का रास्ता खुले। जब बादशाह की ओर से आसफ़ खाँ, जिसके हरावल में अब्दुल्ला खाँ था, बराबर पहुँचे तब अब्दुल्ला खाँ ने, जिसने पहिले ही वचन दिया था कि युद्ध के समय तुम्हारी ओर चला आऊँगा और इस बात को सिवा शाहज़ादे

ओर राजा के दूसरा कोई नहीं जानता था, प्रतिज्ञानुसार घोड़ा इनको ओर बढ़ाया। राजा यह देख कर दाराब खाँ के पास गया कि उसे जता दे। एकाएक सईद खाँ चग़त्ता का पुत्र नवाज़िश खाँ भी (जो शाही हरावल में नियुक्त था) यह समझ कर कि अब्दुल्ला खाँ ने युद्ध के लिये धावा किया है, सवारों सहित चढ़ दौड़ा। राजा (जो चार पाँच सवारों के साथ दाराब खाँ के पास से लौटा आ रहा था) से सामना हो गया। यह भी लड़ने को तैयार हो गया। जब तक सहायता पहुँचे, तब तक एक गोली मृत्यु की चलाई हुई उसके सिर में लगी जिससे उसने अपना प्राण प्राणदाता को सौंप दिया। दोनों ओरवाले युद्ध से रुक गए और अपने अपने स्थान पर चले गए। राजा पाँच हज़ारी मन्सब तक पहुँच चुका था और शाहजहाँ के दरबार में उससे बड़ा कोई सरदार नहीं था। इसका भाई कुँअरदास अहमदाबाद में राजा की ओर से नायब था।

७१—राजा वीरसिंह देव बुँदेला

यह राजा मधुकर का पुत्र है[1]। आरंभ ही से शाहज़ादा सुल्तान सलीम के यहाँ पहुँच कर उसी की सेवा में रहा। जब इसने शेख़ अबुलफ़ज़ल को मार डालने का साहस दिखलाया तब अकबर ने दो बार इस पर सेना भेजी[2]। ५०वें वर्ष में यह सूचना मिली कि वह थोड़े से मनुष्यों के साथ जंगलों में मारा फिरता है और बादशाही सेना भी पीछा कर रही है। जब जहाँगीर बादशाह हुआ, तब पहिले वर्ष वीरसिंह देव को तीन हज़ारी मन्सब मिला[3]। तीसरे वर्ष यह महाबत खाँ के साथ राणा पर नियुक्त हुआ और खिलअत और घोड़ा पाकर सम्मानित

---

१. राजा मधुकर साह के यह सबसे छोटे पुत्र थे। फारसी अक्षरों के कारण इनका नाम नरसिंह देव भी अंग्रेज़ी इतिहासों में मिलता है। ४९वें निबंध में मधुकर साह का अलग वृत्तांत दिया है। इनका विशेष वृत्तांत जानने को ना० प्र० पत्रिका भा० ३, अं० ४ देखिए। महाकवि केशवदास के 'वीरसिंह-चरित-काव्य' के यही नायक हैं।

२. विकायः असदबेग, इलि० डाउ०, भा० ६, पृ० १५८-६० तथा पृ० १०७। तुजुके जहाँगीरी, इलि० डा०, भा० ६, पृ० २८८-९। वीरसिंह चरित, पृ० ४०।

३. सन् १६०७ ई० में ओड़छा का राज्य रामचंद से लेकर इन्हें दे दिया गया था।

हुआ[1]। चौथे वर्ष खानेजहाँ के साथ दक्षिण भेजा गया। ७वें वर्ष में इसका मन्सब बढ़ कर चार हज़ारी २२०० सवार का हो गया। ८ वें वर्ष में सुल्तान खुर्रम के साथ नियुक्त होने पर (जो राणा अमरसिंह का दमन करने पर नियत हुआ था) दक्षिण से चला आया, पर फिर दक्षिण जाना पड़ा। १४वें वर्ष में (जब पूर्वोक्त शाहज़ादा दक्षिण गया तब) इसने दखिनियों के साथ के युद्धों में दो तीन हज़ार सवार और पाँच हज़ार पैदल के साथ बड़ी वीरता दिखलाई। उस समय (जब जहाँगीर और शाहजहाँ में मनोमालिन्य हो गया तब) यह अपनी सज्जित सेना के साथ १८ वें वर्ष में सुल्तान पर्वेज़ के साथ शाहजहाँ का पीछा करने पर नियुक्त हुआ।

जहाँगीर के राज्य के अंत में जब कार्य दूसरों के हाथ में चला गया और षडयंत्र चलने लगा, तब इसने घूस देकर और बलात् आसपास के ज़मींदारों के इलाक़ों पर अधिकार करके बहुत बड़ा प्रांत अपने अधीन कर लिया। इसने ऐसा ऐश्वर्य और प्रभाव प्राप्त कर लिया कि किसी हिंदुस्थानी राजा को उस समय नहीं प्राप्त हो सका था। २२ वें वर्ष सन् १०३६ हि० (१६२७ ई०) में इसकी मृत्यु हुई। मथुरा का मंदिर (जिसे औरंगज़ेब के समय मसजिद बना दिया गया था) वीरसिंह देव के बनवाए हुओं में से है। जहाँगीर उसके अच्छे कार्य से

---

१. तुज़ुक में लिखा है कि इसी वर्ष इन्होंने एक सफ़ेद चीता जहाँगीर को भेंट किया था।

प्रसन्न था, इससे बेपरवाही से उसके कुफ्र को मुसलमानी धर्म से बढ़ कर समझ के उस भूले हुए को मंदिर बनाने की आज्ञा देकर प्रसन्न किया[1]। उसने तेंतीस लाख रुपया लगा कर बड़ी तैयारी और दृढ़ता के साथ वह मंदिर बनवाया। मुख्य कर सजावट और पच्चीकारी में अधिक लगा था। ओड़छा में भी बड़ी बड़ी इमारतें (जो लंबाई, चौड़ाई और सजावट के लिये सबसे बढ़कर हैं) बनवाईं। उनमें एक मंदिर है जो उसके महल के पास बहुत बड़ा और ऊँचा है[2]।

---

१. यह 'अच्छा कार्य' मुख्य कर अबुलफ़ज़ल को मारना था। मथुरा के उस बड़े मन्दिर को खोद कर उस पर मसजिद बनाने का वृत्तांत मआसिरे आलमगीरी पृ० ९५-६ से लिया गया है। वीरसिंहदेव दानी भी पूरे थे। इन्होंने अपने भाई का राज्य छीन लिया था, इसलिये उसके प्रायश्चित्त स्वरूप केवल वृंदावन में, कहा जाता है कि, इक्यासी मन पक्का सोना दान किया था। इन्होंने तीर्थाटन बहुत किया, चांद्रायण व्रत रखे और सप्ताह सुने। यह बड़े न्यायी भी थे। कहते हैं कि इनके बड़े पुत्र जगतदेव ने अहेर में एक ब्रह्मचारी को शिकारी कुत्तों द्वारा मरवा डाला था। यह सुनकर महाराज ने उसे कुत्तों ही द्वारा मारे जाने का दंड दिया था।

२. चतुर्भुज जी के मंदिर से तात्पर्य है, जो कम से कम बुंदेलखंड में सबसे अच्छा है। यह ऊँची कुर्सी पर बनाया गया है और वर्गक्षेत्र के आकार का है। यह बाहर और भीतर दोनों ओर सादा है और छत बड़ी ऊँची दी गई है। इसमें दो बड़े और चार छोटे कलश हैं।

महाराज वीरसिंहदेव केवल बड़े वीर, साहसी और युद्धप्रिय ही नहीं थे किंतु बड़ी बड़ी इमारतों, मंदिरों और महलों के बनवाने में भी एक ही हो गए हैं। ओड़छा के पास वेत्रवती नदी दो धाराओं में विभक्त होकर एक

इस पर बहुत रुपया व्यय हुआ है। शेरसागर तालाब (जो घेरे में साढ़े पाँच कोस बादशाही है) और समुंदर सागर (जिसका घेरा बीस कोस है) परगना मथुरा में है। उस महाल में लगभग तीन सौ के तालाब हैं[1]। बहुत से पुत्र थे, जिनमें जुझारसिंह और पहाड़सिंह[2] भी हैं। इन दोनों का वृत्तांत अलग दिया गया है।

———

मील लंबा एक पथरीला टापू छोड़ देती है जिस पर महाराज ने दुर्ग बनवाया था। पत्थर की दृढ़ दीवार से वह टापू घेर दिया गया और नगर से उसपर जाने के लिये चौदह मेहराबों का एक पुल तैयार किया गया। इसके भीतर कई महल हैं जिनमें राजमंदिर और जहाँगीर महल सबसे अच्छे हैं।

दतिया का राजमहल भी इन्हीं का बनवाया है जिसके चारों ओर चौंतीस फुट ऊँची दृढ़ दीवार दी गई है। इसके बनने में लगभग नौ वर्ष लगे थे और पैंतीस लाख से अधिक रुपए व्यय हुए थे।

१. राजा वीरसिंह देव ने अपने राज्य में बावन तालाब बनवाए थे।

२. इनके ग्यारह पुत्र थे जिनके नाम वीरसिंहचरित्र में क्रम से जुझारसिंह, हरधोरसिंह, (हरदौल) पहाड़सिंह, दुर्जनसाल, चंद्रभानु, भगवानराय, हरीदास, कृष्णदास, माधोदास, तुलसीदास और हरीसिंह दिए हैं।

८०--राणा सगर

यह राणा साँगा के पुत्र राणा उदयसिंह का पुत्र था। जब इसके भाई राणा प्रताप ने अकबर से शत्रुता की, तब यह सेवा में आकर दो सदी मन्सब पाकर सम्मानित हुआ। जहाँगीर के प्रथम वर्ष में बारह सहस्र रुपया पुरस्कार पाकर सुलतान पर्वेज के साथ राणा की चढ़ाई पर नियुक्त हुआ[1]। उसी वर्ष के अंत में कुछ लोगों के साथ दलपत भुरटिया को दंड देने पर नियुक्त होकर विजयी हुआ। दूसरे वर्ष इसने ढ़ाई हज़ारी १००० सवार का मन्सब पाया। ११वें वर्ष में इसका मन्सब बढ़कर तीन हज़ारी २००० सवार का हो गया[2]।

---

१. यह जगमाल का सगा भाई था, जिसे सं० १६४० में दत्ताणी के युद्ध में राव सुरताण ने मारा था। राणा अमरसिंह ने राव से इस विषय में कुछ भी नहीं कहा जिससे संतप्त होकर यह जहाँगीर के पास चला आया और उसे मेवाड़ पर चढ़ाई करने के लिये उभाड़ा। जहाँगीर ने इसे राणा बना कर चित्तौड़ दे दिया। इसका जन्म सं० १६१३ वि० की भादों ब० ३ को हुआ था। (मूता नैणसी की ख्यात, भा० १, पृ० ६३)

२. टॉड साहब लिखते हैं कि जहाँगीर ने इसे भरे दरबार में मेवाड़ को अधीन न कर सकने के कारण झिड़का था, जिससे इसने कटार मार कर आत्महत्या कर ली। इसने पुष्कर तीर्थ में वाराह जी का मंदिर बनवाया था।

८१—राव सत्रुसाल[1] हाड़ा

ये राव रत्न के पौत्र[2] हैं। इनके पिता गोपीनाथ दुबले होने पर भी इतनी शक्ति रखते थे कि वृक्ष की दो शाखों के बीच (जिनमें से प्रत्येक मुटाई में शामियाने के खंभों के ऐसा होता था) बैठकर एक से पीठ लगाकर, और एक में पाँव अड़ाकर अलग कर देते थे। परन्तु इसी बल के आधिक्य से वे बीमार हुए और पिता के सामने ही उनकी मृत्यु हो गई। जब शाहजहाँ के राजत्व के ४थे वर्ष (सं० १६८७ वि०, सन १६३१ ई०) में राव रत्न की मृत्यु हुई, तब राजपूतों के प्रथानुसार (कि जब बड़ा पुत्र मर जाता है, तब मृत पिता का यौवराज्य उसके पुत्र को प्राप्त होता है) बादशाह ने उसको तीन हज़ारी २००० सवार का मन्सब और

---

१. शत्रुशाल शब्द ठीक है जो बिगड़ कर फ़ारसी में सतरसाल हो गया था। महाकवि भूषण ने तो इन्हें भी 'छत्रसाल' ही नाम से लिखा है जो छतसाल शब्द से जोड़ मिलाने के लिये आवश्यक था। कैप्टेन टॉड ने भी 'राजस्थान' में यही नाम दिया है।

२. राव रत्न के चार पुत्र थे। सबसे बड़े गोपीनाथ थे। इनके छोटे भाई माधोसिंह को कोटा राज्य मिला जिनके वृत्तांत के लिये ५३वाँ निबंध देखो। गोपीनाथ के बारह पुत्र थे जिनमें सबसे बड़े शत्रुसाल थे। इनके तीन छोटे भाइयों को जागीरें मिली थीं जो सब कोटा के ज़ालिमसिंह के षड़यंत्र से बूँदी राज्य से अलग हो गईं।

राव की पदवी देकर बूँदी, कंकर और उसके पास के परगने (जो राव रतन का देश था) उन्हें जागीर में दिए। इसके अनंतर (जब वह बालाघाट से आकर सेवा में पहुँचा तब) चालीस हाथी (जो उसके दादा के समय के बचे हुए थे) बादशाह को भेंट दिए। अठारह हाथी (जिनका मूल्य ढ़ाई लाख रुपया था) बादशाह ने लेकर बचे हुए हाथी इन्हें दिए और खिलअत, चाँदी के ज़ीन सहित घोड़ा, झंडा और डंका देकर सम्मानित किया। इसके अनंतर दक्षिण प्रांत में नियुक्त होकर खानेज़माँ के साथ ६ठे वर्ष में दुर्ग दौलताबाद के घेरे के समय मोर्चों की रक्षा, हर एक ओर आवश्यकता पड़ने पर सहायता पहुँचाना और ज़फ़र-नगर से रसद लाना आदि जो कुछ कार्य किए, सब में इनकी स्वामिभक्ति दिखलाई दी।

एक रात्रि (जब दखिनियों ने अरक्षित पाकर ख़ानेजमाँ के खेमे पर, जिनकी रक्षा पर राव नियुक्त थे, धावा किया तब) इन्होंने दृढ़ता से उठकर वीरता प्रदर्शित की। बहलोल के भतीजे के मारे जाने पर दखिनी भाग गए। ७वें वर्ष इन्होंने दुर्ग परेंदा के घेरे में अच्छा काम किया। ८वें वर्ष (जब ख़ानेजमाँ बालाघाट का सूबेदार हुआ तब) यह पूर्वोक्त खाँ के साथ नियुक्त हुए। जब ९वें वर्ष बादशाह साहू भोंसला को दंड देने के लिये और दक्षिण के सुलतानों का दमन करने के लिये खानदेश गए, तब उनके बुरहानपुर नगर में पहुँचने पर राव ख़ाँ के साथ सेवा में पहुँचे। फिर (जब तीन सेनाएँ तीन सरदारों के

आधिपत्य में नियुक्त हुईं तब) उनमें से एक सेना को (जो ख़ाने-जमाँ की अधीनता में थी) हरावली राव को मिली। सभी स्थानों और समयों पर पूर्वोक्त ख़ाँ के साथ शत्रुओं को दंड देने में इन्होंने वीरता दिखलाई। इसके कुछ वर्ष बाद दक्षिण की नियुक्ति से छुट्टी पाकर १५वें वर्ष में दक्षिण के सूबेदार शाहज़ादा मुहम्मद औरंगज़ेब के साथ सेवा में आए और उसी वर्ष सुलतान दाराशिकोह के साथ कंधार की चढ़ाई पर नियुक्त हुए। वहाँ से लौटने पर १८वें वर्ष में इन्हें ख़िलअत सहित देश जाने की छुट्टी मिली। १९वें वर्ष में शाहज़ादा मुराद बख़्श के साथ बलख़ और बदख़्शाँ की चढ़ाई पर नियुक्त हुए। जब शाहज़ादा ने अनुभव न होने के कारण उस प्रांत को छोड़ दिया, तब यह भी वहाँ के जलवायु के अनुकूल न होने या देश-प्रेम के कारण पेशावर चले आए। बादशाह ने अटक के मुतसद्दियों को आज्ञा दी कि इन्हें पार न उतरने दें। २०वें वर्ष (जब सुलतान औरंगज़ेब उस प्रांत में नियुक्त हुआ, तब) यह भी शाहज़ादे के साथ लौट गए और उजबेगों तथा अलअमानों के युद्ध में सभी समय अच्छा प्रयत्न किया। जब शाहज़ादा पिता के आज्ञानुसार उस प्रांत को नज़र मुहम्मद ख़ाँ के लिये छोड़ कर काबुल पहुँचा, तब यह आज्ञानुसार २१ वें वर्ष में दरबार पहुँच कर देश पर नियुक्त हुए। बुलाए जाने पर यह २२ वें वर्ष सेवा में पहुँचे और मन्सब के साढ़े तीन हज़ारी ३५०० सवार तक बढ़ाए जाने पर शाहज़ादा मुहम्मद औरंगजेब के साथ कंधार की चढ़ाई पर (जो क़ज़िल-

बाशों के अधिकार में चला गया था) गए। रुस्तमखाँ और कुलीज खाँ के साथ बुस्त की ओर नियुक्त होकर क़ज़िलबाशों के युद्धों में डट कर वीरता दिखलाई। २५ वें वर्ष में फिर पूर्वोक्त शाहजादे के साथ और २६ वें वर्ष में शाहज़ादा दाराशिकोह के साथ यह उसी चढ़ाई पर नियुक्त रहे। २९ वें वर्ष में दक्षिण प्रांत में (जो शाहज़ादा औरंगज़ेब के अधीन था) नियुक्त हुए और बीदर[१] दुर्ग तथा कल्यानी[२] की विजय में दोनों बार दखिनियों से युद्ध कर साहस का कार्य किया। ३१वें वर्ष (कि खिलाड़ी आकाश ने नया खेल फैलाया[३] और सुलतान दाराशिकोह ने शाहजहाँ की आज्ञा होने के कारण मूर्खता से कड़े आज्ञापत्र भेजे कि दक्षिण में नियुक्त सरदारों को दरबार बिदा कर दें) जब

---

१. यह मानजेरा नदी के किनारे बड़ा नगर तथा दुर्ग है। १७°५५' उ० ७७°२५' पू० अक्षांश पर स्थित है। यह बारीदशाही राज्य की राजधानी थी। आजकल निज़ाम हैदराबाद के राज्य के अंतर्गत है।

२. कल्याणी बीदर से अड़तीस मील पश्चिम है और नलदुर्ग से प्रायः बयालीस मील पूर्व है। यह भी हैदराबाद राज्य ही में है।

३. यह नया खेल शाहजहाँ के चारों पुत्रों में साम्राज्य के लिये लड़ना था। चारों ही अपने अपने स्थान पर युद्ध की तैयारी करने लगे। दारा ने बड़े पुत्र होने के कारण बादशाही बड़े बड़े सरदारों को आज्ञापत्र भेज कर इसलिये दरबार में बुलाया था कि उन्हें मिला कर अपना पक्ष दृढ़ करे और साथ ही अपने भाइयों का पक्ष निर्बल करता रहे। इसके इस विचार को प्रायः सभी भाइयों तथा सरदारों ने समझ लिया था और इससे जिसे जिसका पक्ष लेना होता था, वह उसी के अनुसार इस आज्ञा को मानता या न मानता था।

सुलतान औरंगज़ेब बीजापुर घेरे हुए थे और उसके विजय होने में दो एक दिन की ही कसर थी कि यह शाहज़ादे से बिना छुट्टी लिए दरबार चले गए। यह दोनों भाइयों के युद्ध[1] में (जो आगरे के पास हुआ था) सन् १०६८ हि० (सं० १७१५ वि० सन् १६५८ ई०) में दाराशिकोह के हरावल में लड़ते हुए बड़ी वीरता दिखला कर सुलतान औरंगजेब की सेना के मध्य में पहुँचे और वहीं उस सेना के वीरों के हाथ मारे गए[2]।



१. धौलपुर के पास सामूगढ़ में युद्ध हुआ था।

२. राव शत्रुशाल के चार पुत्र थे जिनके नाम भावसिंह, भीमसिंह, भगवंतसिंह तथा भारतसिंह थे। प्रथम को बूँदी की गद्दी मिली जिनका वृत्तांत ४४वें निबंध में देखिए। अंतिम सामूगढ़ युद्ध में पिता के साथ मारे गए।

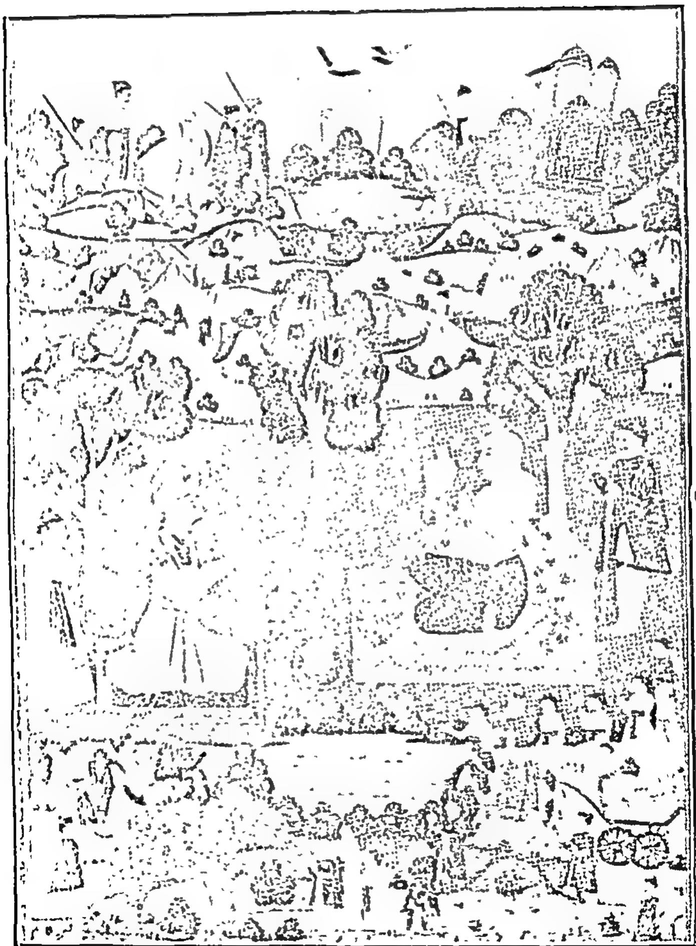
८२--सबलसिंह सिसोदिया

यह राणा अमरसिंह का पौत्र था[१]। कुछ दिन दाराशिकोह की सेवा में रहा। २३ वें वर्ष शाहज़ादे की प्रार्थना पर शाहजहाँ ने बादशाही नौकरी देकर दो हजारी १००० सवार का मन्सबदार बनाया। २५ वें वर्ष पाँच सदी बढ़ाया गया और झंडा मिला, जिसके बाद शाहज़ादा मुहम्मद औरंगजेब बहादुर के साथ (जो दूसरी बार कंधार की चढ़ाई पर नियत हुआ था) नियुक्त हुआ। २६ वें वर्ष शाहज़ादा दाराशिकोह के साथ उसी चढ़ाई पर गया। बादशाह नामा से मालूम होता है कि तीसवें वर्ष तक जीवित था। आगे का हाल नहीं मालूम हुआ। आलमगीर नामा से मालूम होता है कि आसाम की चढ़ाई में मुअज्जम खाँ खानखानाँ के साथ था[२]।

---

१. मूता नैणसी लिखता है कि राणा अमरसिंह के पंचम पुत्र 'बाघसिंह अमरसिंघोत सं० १६६५ वि० में एक बार महाराजा जसवंत-सिंह के पास आया था, गाँव २ जागीर में देते थे, परंतु वह रहा नहीं। उसका पुत्र सबलसिंह बादशाही चाकर हुआ, वह पृथ्वीराज के पुत्र बाघ का दोहिता था।'

२. औरंगज़ेब के ४ थे वर्ष सन् १६६० ई० में मीर जुमला मुअज़्ज़म ख़ाँ ने कूचविहार तथा आसाम पर चढ़ाई कर विजय प्राप्त की थी। देखिए मआसिरे आलमगीरी, हिंदी अनु० भाग १, पृ० ५५ और खफी खाँ इलि० डा०, भा० ७, पृ० १४४, २६४-७०।



महाराजा साहू जी तथा बाजीराव पेशवा

८३—राजा साहूजी भोंसला

कहते हैं कि इनकी वंश-परंपरा चित्तौड़ के राजाओं तक पहुँचती है जो सिसौदिया[1] कहलाते हैं। इनका एक पूर्वज सूरसेन चित्तौड़ से किसी कारण निकल कर दक्षिण गया[2] जहाँ कुछ दिन औरंगाबाद प्रांत के अंतर्गत परेंदा सर्कार के करकनब पर्गने के भोंसा ग्राम में रहा और अपना अल्ल भोंसला रखा[3]। पूर्वोक्त राजा के पूर्वजों में दादा जी भोंसला को (जो मौजा हकनी और बुद्धि देवलगाँव तथा पर्गना पूना के कुछ अंश में रहता था) दो पुत्र थे—मालो जी और विठो जी। ये लोग वहाँ की प्रजा से लाचार होकर दौलताबाद के पास एलोरा क़स्बे में जा रहे

---

१. मूल ग्रंथ में सिसोदिय है, पर वह अशुद्ध है।

२. ये मेवाड़ के राणा लखमणसिंह के पौत्र सज्जनसिंह से अपना वंश आरंभ होना बतलाते हैं। इनके कोई वंशज देवराज जी राणा से किसी कारण बिगड़ कर दक्षिण चले गए। शिवदिग्विजय बखर में इनका नाम काका जी दिया हुआ है। स्यात् ये तत्कालीन राणा के पितृव्य थे और इसी से इनका नाम काका जी लिखा गया है।

३. इस ग्रंथ में भोंसा ग्राम में बसने के कारण भोंसले कहलाने का उल्लेख है जो दक्षिण की प्रथा के अनुकूल है। खफ़ी ख़ाँ लिखता है कि यह अल्ल घोंसला है जिसका अर्थ स्पष्ट है; पर यह उसकी मूर्खता मात्र है। कुछ

और खेती से दिन व्यतीत करते रहे[1]। फिर दौलताबाद सर्कार के क़सबा सनदखेड़ में लक्खी जादो देशमुख के पास (जो निज़ाम-शाही राज्य में अच्छे मन्सब पर था और ऐश्वर्यशाली था) जाकर नौकर हो गए। पूर्वोक्त विठ्ठो जी को खिलोजी, पन्ना जी[2] आदि आठ पुत्र थे और मालो जी को बहुत इच्छा करने पर भी दो ही पुत्र हुए। शाह शरीफ (जो अहमदनगर में है) में उसका

लोगों का कहना है कि यह मेवाड़ के भोंसावत थे जिससे विगड़ कर यह शब्द बन गया है।

१. खेलकर्ण जी और मालकर्ण जी दो भाई थे जिन्होंने अहमद-नगर की सेना में नौकरी की थी। दूसरा नदी में डूब कर मर गया जिसका पुत्र बाबा जी था। इसी का नाम इस ग्रंथ में दादा जी दिया गया है। दोनों समानार्थी हैं। बाबा जी ने एलोरा की पटेलगी क्रय की और वहीं रहने लगे। यह ग्राम औरंगाबाद से प्रायः बीस कोस उत्तर-पश्चिम है। इनके दो पुत्र मालो जी और विठो जी हुए जिन्हें भवानी ने स्वप्न देकर गड़ा हुआ धन बतलाया था। उसी समय इनके वंश में 'शिव जी के अवतार' होने तथा राज्य स्थापित होने की शुभ सूचना दी गई थी। सन् १५७७ ई० में इन दोनों भाइयों ने अनंगपाल निंबालकर के यहाँ नौकरी कर ली। कुछ ही दिनों में कई सशस्त्र सवार एकत्र कर बीजापुर राज्य में लूट मार करने लगे। अंत में अहमदनगर के मुर्तज़ा निज़ाम शाह प्रथम ने बुला कर इन्हें लाखो जी जादो राव के अधीन नियुक्त किया। इन्हीं के ज़ोर से अनंगपाल निंबालकर की भगिनी दीपा बाई का मालो जी से विवाह हुआ जिससे सन् १५९४ ई० में शाह जी का और तीन वर्ष बाद शरफो जी का जन्म हुआ।

२. दूसरी प्रति में विना जी पाठांतर मिलता है।

बहुत विश्वास था, इसलिये एक का शाह जी और दूसरे का शरफ़ोजी नाम रखा था। लखी जादो (जिसे झजावा[1] नाम्नी पुत्री के सिवा कोई संतान नहीं थी) शाह जी पर (जो सुंदर था) पुत्रवत् कृपा कर उसे अच्छे वस्त्र और सोने का तथा जड़ाऊ आभूषण देता था।

एक दिन जादो के मुख से निकल गया कि मैं अपनी पुत्री का शाह जी से संबंध करता हूँ। शाह जी के पिता मालो जी और चाचा विठ्ठो जी ने उठ कर कहा कि संबंध ठीक हो गया, इसलिये अब कह कर फिरना न चाहिए। परंतु जादो के संबंधियों ने कह सुन कर उसका मिज़ाज बिगाड़ दिया, जिससे उसने अप्रसन्न होकर मालो जी और विठ्ठो जी को सनदखेड़ से निकाल दिया। वे दोनों अनंगपाल बिनालकर (जो भारी ज़मींदार था) की शरण जाकर उसकी सेना सहित दौलताबाद के पास पहुँचे और वहाँ के हाकिम के सामने न्याय चाहा। इस पर शाह जी और जादो की पुत्री का संबंध निश्चित हो गया और शाह जी भोंसला विश्वासी पुरुष हो गए[2]।

---

१. लाखा जी यादव की पुत्री तथा शिवा जी की माता का नाम जीजा बाई था जिसे दक्षिणी भाषा के अनुसार जीजा वा भी पुकारते थे। उसी का यह बिगड़ा हुआ रूप है।

२. देवगिरि के यादव राजवंश के होने से लाखा जी इन्हें अपने से निम्न कुल का समझ कर विवाह नहीं करना चाहते थे; पर मुर्तज़ा निज़ाम शाह ने मालो जी को पाँच हज़ारी मन्सब, राजा की पदवी तथा चाकण और शिवनेर दुर्गों के साथ पूना और सूपा जागीर में देकर उसे उसके समकक्ष कर दिया जिससे यह विवाह हो गया।

जब निज़ामुल्मुल्क ने जादो को धोखा दिया तब वह (शाह जी) उससे बिगड़ कर शाहजहाँ के राजत्व के ३रे वर्ष में दक्षिण के नाज़िम आज़म खाँ के पास पहुँचा और पाँच हज़ारी ५००० सवार का मन्सब, जड़ाऊ जमधर, डंका, झंडा, घोड़ा, हाथी और दो लाख रुपया पाकर सम्मानित हुआ। यहाँ से बुरा सोच कर वह जल्द लौट गया और निज़ामुल्मुल्क के पास पहुँचा[१]। धीरे धीरे इसने निज़ामशाही दरबार में अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त की। इस कारण जादो आदि सरदार इससे द्वेष रखने लगे और शाहजहाँ के समय बादशाही सेना को शाहजी पर चढ़ा ले जाकर उसे दुर्ग माहोली में घेर लिया। वह सिकंदर आदिल शाह से प्रार्थना करके एकाएक दुर्ग से बाहर निकला और बीजापुर का रास्ता

१. सन् १६२६ ई० में मुर्तज़ा निज़ाम शाह ने लाखा जी जादव को धोखा देकर मार डाला था जिससे यह उससे बिगड़ गए थे। मलिक अंबर की मृत्यु पर तीन वर्ष तक मुर्तज़ा नीज़ाम शाह द्वितीय का साथ दिया; पर अंत में वहाँ रहना व्यर्थ समझ कर सन् १५३० ई० में शाहजहाँ के यहाँ आकर उसका सरदार हो गया। सन् १५३१ ई० में अंबर के पुत्र फ़तह ख़ाँ ने अपने स्वामी मुरतज़ा शाह को मार डाला और उसके पुत्र हुसेन को बादशाह को सौंप दिया; तब उसे बादशाह ने वह स्थान जागीर में दिया जो पहिले वह शाह जी को दे चुका था। इससे क्रुद्ध होकर शाह जी ने नासिक, त्र्यंबक आदि कोंकण तक के प्रांतों पर अधिकार कर लिया और अंतिम निज़ाम के एक संबंधी को गद्दी पर बैठा कर विद्रोह कर दिया। (बादशाह नामा, भा० १, पृ० ४४२)

लिया[1]। उस समय (जब आदिल शाह के कार्यकर्ता मुरारी ने मलिक अंबर का पीछा करते हुए चाकण, पूना आदि क़स्बों पर अधिकार कर लिया था तब) शाह जी भोंसला (जो उसके साथ नियुक्त थे) वहाँ के जागीरदार नियत हुए। फिर शाह जी भोंसला कर्णाटक पर नियत हुए। पहले पाल कनकगिरि पर अधिकार करके वहाँ के ज़मींदार को निकाल दिया और वहीं उस मारे गए ज़मींदार की पुत्री तुका बाई से विवाह कर लिया[2]। इन्हें जीजी बाई से दो पुत्र हुए। एक शंभा था जो कनकगिरि के युद्ध में गोला लगने से मर गया[3]। दूसरे शिवा जी थे जिन्हें

---

१. सन् १६३६ ई० में इसने खानेज़माँ को माहुली दुर्ग देना चाहा था, जो थाना ज़िले में है, पर बादशाही आज्ञानुसार इसे आदिल शाह से संधि करने की सम्मति दी गई। अंत में शाह जी ने निज़ाम को खानेज़माँ को सौंप दिया और रणदूलह ख़ाँ के साथ बीजापुर चले गए। (इलि० डाउ०, जि० ७, पृ० ५९-६०) इस युद्ध का विवरण पारसनीस-किनकेड कृत मराठों का इतिहास पृ० ११८-२० में देखिए।

२. यह मोहिते वंश की थी। इसका भाई शंभा जी मोहिते था जिसे शाह जी ने सूपा का अध्यक्ष नियत किया था।

३. यह शाह जी के बड़े पुत्र थे तथा सन् १६२३ ई० में इनका जन्म हुआ था। इन्होंने बीजापुर में नौकरी कर ली। शिवा जी के उपद्रव से जब बीजापुर में शाह जी क़ैद हुए और शिवा जी ने मुग़लों से संधि की बात की, तब शंभा जी को भी शाहजहाँ ने मन्सब दिया था। सन् १६५३ ई० में मुस्तफ़ा ख़ाँ से कनकगिरि के पास युद्ध करते समय धोखे से मारे गए। संधि का प्रस्ताव हो रहा था कि अफ़ज़ल ख़ाँ के कहने से मुस्तफ़ा ने इस प्रकार गोला फेंकवाया कि इन्हीं के पास वह आ गिरा था।

छोटी अवस्था होने पर भी अपने कार्यकर्ता के साथ पूना आदि महालों की जागीर पर छोड़ दिया था। तुका बाई से केवल एक पुत्र एक्को जी था[१]।

जब शाह जी कोलार और बालापुर में ठहरे हुए थे, तब वहाँ से (कि सौभाग्य उसी के पक्ष में था) उसी समय त्रिचनापली के राजा (जो चंजावर के ज़मींदार पंची राघो से युद्ध कर पराजित हुआ था) की प्रार्थना पर सहायता के लिये वहाँ पहुँच कर विजय का झंडा खड़ा किया और दोनों राज्यों पर अधिकार करके अपने पुत्र एक्को जी को वहाँ छोड़ कर कोलार लौट गया[२]। एक्को जी के तीन पुत्र थे। पहले शाह जी और दूसरे शरफो जी निस्संतान रहे। तीसरे पुत्र तुको जी थे जिनके वंश में दोनों राज्यों का अधिकार चला आता है। इसी समय शिवा जी ने (जो सोलह वर्ष के थे) पिता के कार्यकर्त्ताओं से उन महालों का प्रबंध अपने हाथ में लेकर विद्रोह आरंभ कर दिया और थोड़े ही समय में बीजापुर के अन्य सरदारों से अपना ऐश्वर्य बढ़ा कर पंद्रह हज़ार सवार एकत्र कर लिए[३]। उस ओर (जिधर

---

१. ठीक नाम व्यंको जी है। एक प्रति में एंको जी पाठ है।

२. शाह जी की मृत्यु के समय व्यंको जी ने उसकी जागीर पर अधिकार कर लिया जिसमें बँगलोर, कोलार, असकोटा आदि अनेक स्थान थे। ये सब मैसूर प्रांत में थे। सन् १६७५ ई० में इसने तंजौर को राजधानी बनाया।

३. शिवा जी की जीवनी पर ज़रा ज़रा सी टिप्पणी देना ठीक

मुल्ला अहमद नायतः या नातियः की जागीर थी) सेना (जो जागीरदार के बुलाने पर बीजापुर चली गई थी) नहीं थी, इससे वहाँ के बहुत से स्थानों पर अधिकार कर लिया[१]। मुहम्मद आदिल खाँ की मृत्यु और अली आदिल खाँ की सुस्ती से बीजापुरियों का प्रभुत्व ढीला पड़ गया था ; इसलिये उससे झगड़ने से हाथ खींच कर चुप हो बैठे। इसके अनंतर (जब अली आदिल खाँ ने दृढ़ता दिखलाई तब) मन में कपट रख कर नम्रता और दोष क्षमा कराने के लिये प्रार्थनापत्र भेज कर आदिल खाँ के प्रसिद्ध सरदार अफ़ज़ल खाँ के आने की प्रार्थना की। जब पूर्वोक्त खाँ कोंकण पहुँचा, तब नम्रता और कपटपूर्ण बातों से खाँ को थोड़े मनुष्यों के साथ अपने वासस्थान के पास बुला कर स्वयं भयभीत होने का स्वाँग दिखा कर काँपते हुए पालकी के पास गए। छुरे से (जो अपने पास छिपा रखा था) खाँ का काम तमाम किया[२]। अपने सशस्त्र मनुष्यों को (जो पास ही छिपे

नहीं ज्ञात होता; इसलिये केवल वैसी ही टिप्पणियाँ दी जायँगी जो मूल ग्रंथ के समझने के लिये आवश्यक समझी जायँगी।

१. कोंकण के उत्तरी भाग में थाना प्रांत में कल्याण नगर में यह मौलाना अहमद रहता था जो उस प्रांत का फौजदार था। सन् १६४८ ई० में शिवा जी के एक सरदार आबा जी सोनदेव ने इसे कैद कर लिया और उस प्रांत पर शिवा जी का अधिकार हो गया। यह अहमद नवायत खेल का अरब था।

२. पक्षपात की वजह से यह वर्णन कुछ रंजित कर दिया गया है। इसके लिये प्रो० सरकार कृत शिवाजी पृ० ६२-८१ देखिए।

थे) निश्चित इशारे से बुलाया जिन्होंने पहुँच कर खाँ के बचे हुए मनुष्यों को बाँध काट कर सेना का नाश कर डाला। ऐसी घटना हो जाने के बाद सब सामान लूट कर फिर विद्रोह आरंभ कर दिया। जब बादशाही महालों को भी लूटने लगा, तब औरंगज़ेब ने अपने जुलूस के तीसरे वर्ष दक्षिण के सूबेदार अमीरुल्‌-उमरा शायस्ता खाँ को उसका दमन करने के लिये नियुक्त किया। ४थे वर्ष गुजरात के सूबेदार महाराज जसवंतसिंह को सहायता के लिये वहाँ से भेजा और शिवा जी से चाकण ले लिया।

कहते हैं कि उस समय (जब पूर्वोक्त खाँ पूना में ठहरा हुआ था तब) रात्रि-आक्रमण के लिये शिवा जी ने मनुष्य नियुक्त किए थे कि किसी बहाने भीतर घुसें। रात्रि में मकान के पीछे के छोटे द्वार को (जो मिट्टी से बंद किया हुआ था) खोल कर ये ज़ोग भीतर चले गए। छिपे हुए लोगों ने शोर मचाया। खाँ जाग कर उसी ओर गया। एक ने तलवार चलाई जिससे खाँ का अँगूठा और उसके पास की उँगली कट गई। उसका पुत्र अबुल फ़तह मारा गया। उसी समय बाहरी चौकीदार भी भीतर पहुँचे; तब ये आदमी हवा की तरह भाग गए[१]। ७वें वर्ष (जब मिरज़ा राजा जयसिंह उसका दमन करने के लिये नियुक्त हुए और उन्होंने उसके

---

१. शायस्ता खाँ की पूना में दुर्दशा होने पर औरंगजेब ने उसे बुला लिया और शाहज़ादा मुअज़्ज़म को दक्षिण का सूबेदार बना कर भेजा। इसी की सहायता के लिये महाराज जसवंतसिंह नियुक्त हुए थे। जब ये लोग भी कुछ न कर सके, तब जयपुर-नरेश महाराज जयसिंह भेजे गए।

राज्य के दुर्गों पर सेना ले जाकर दुर्ग पुरंधर को घेर लिया तब) उसने निरुपाय होकर संधि की प्रार्थना की कि मैं तेईस दुर्ग बादशाह को देता हूँ। अब चाहिए कि मेरे ऊपर कृपा करें। सवाल जवाब के बाद दुर्गों की तालियाँ भेज दीं और स्वयं निःशस्त्र आकर राजा से भेंट की। मिरज़ा राजा ने बहुत आदर किया और तलवार तथा वस्त्र दिए। बीजापुर की चढ़ाई में यह मिरजा राजा के साथ गए[१]।

जब बादशाह ने यह सुना, तब उसे दरबार आने की आज्ञा भेजी। यह अपने पुत्र शंभा जी के साथ दरबार को गए। हाज़िरी के दिन (कि यह आज्ञानुसार पाँच हज़ारी दरजे में खड़े किए गए थे) दुस्साहस से कोने में जाकर लेट गए और कहा कि पेट में पीड़ा है। आज्ञा हुई कि उसके स्थान पर (जो उसके ठहरने के लिये नियत था) ले जावें। वहाँ पहुँचने पर अपना दुःख प्रकट किया। जब बादशाह ने यह वृत्तांत सुना, तब मिर्जा राजा के पुत्र कुँअर रामसिंह को उसकी खबरदारी पर नियत किया। फिर फ़ौलाद खाँ कोतवाल के आदमियों को पहरे पर नियुक्त किया। उसने हर एक के दिल को अपने संतोष से वेफ़िक्र कर दिया। एक रात्रि अपने पुत्र के साथ कपड़े बदल कर बाहर निकले और रास्ते में घोड़ों पर (जिन्हें पहले से ठीक किया था) सवार होकर मथुरा पहुँचे। डाढ़ी मोंछ बनवा कर काशी, बंगाल

१. संधि की एक शर्त यह भी थी कि शिवा जी अपनी सेना के साथ बीजापुर की चढ़ाई में मुग़ल वाहिनी की सहायता करेंगे।

और उड़ीसा होते हुए हैदराबाद प्रांत में पहुँचे। शंभा जी को मथुरा में कवि कलश के यहाँ छोड़ गए थे और अच्छा पुरस्कार देने की उसे आशा दी थी कि जब बुलावें, तब वह वहाँ पहुँचे[1]।

जब १०वें वर्ष में सुलतान मुहम्मद मुअज्ज़म दक्षिण का सूबेदार होकर महाराज जसवंतसिंह के साथ बिदा हुआ, तब शिवा जी ने गड़बड़ मचाना आरंभ कर दिया। बहुत से बादशाही महाल लूटे गए और सूरत का बंदर भी लूटा गया। महाराज जसवंतसिंह के साथ शाहज़ादे के पहुँचने पर उसने संधि की प्रार्थना की कि 'मैं अपने पुत्र शंभा जी को भेजता हूँ जिसे मन्सब दीजिए और वह सेना सहित नियुक्त होकर काम करे।' इस बात के मान लिए जाने पर अपने पुत्र को प्रतापराव नामक सेनापति के साथ एक हज़ार सवार सहित भेजा। सेवा करने पर उसने पाँच हज़ारी ५००० सवार का मन्सब, जड़ाऊ सामान सहित हाथी और बरार में जागीर पाई। कुछ दिन बाद पुत्र को बुला लिया और सेना सहित कार्यकर्त्ता वहीं रह गया। फिर जब शंभा जी की जागीर में से कुछ महाल एक लाख रुपए के बदले में (जो शिवाजी को दरबार जाते समय दिया गया था) छिन गया, तब अपने कार्यकर्त्ता को बुला लिया और बादशाही देश में लूट मार मचाना आरंभ कर दिया। दाऊद खाँ क़ुरेशी उसका पीछा करने पर नियुक्त हुआ। युद्ध मार-भाग का होता था। इसके अनंतर

१. इसका पूरा वृत्तांत प्रायः तीस पृष्ठ में प्रो० सरकार के शिवाजी में दिया गया है। पृ० १५२-१७६ देखिए।

हैदरावाद के सुलतान से मिल कर दोनों ने साथ ही वादशाही सेना से लड़ना निश्चित किया। पहले दुर्गों के लेने का विचार करके उससे सेना और धन लेकर तंजावर[1] गए। अपने भाई वेंकोजी को भेंट करने के लिये और सहायता देने के लिये बुलाया। वह चिंचो[2] के पास आया और इनसे भेंट की। शिवाजी ने उससे पिता की संपत्ति में से अपना हिस्सा माँगा। उसने नम्रता से बातचीत की और अर्द्ध रात्रि को कुछ मनुष्यों के साथ तंजावर भाग गया। शिवा जी ने उसकी सेना को नष्ट कर दिया और चिंची आदि दुर्गों पर अधिकार करके अपने आदमियों को सौंपा। इसके वाद हैदरावाद की सेना को लौटा दिया। १७ वें वर्ष दक्षिण के सूवेदार वहादुर खाँ कोका ने संधि की वात फिर उठाई और वादशाह को लिखा। संधि के मान्य होने तक इन्होंने अपने अधिकृत दुर्गों में रसद का सामान ठीक कर लिया और वीजापुरियों से पर्नाला दुर्ग छीन लिया। उस मनुष्य का (जिससे पूर्वोक्त सूवेदार की ओर से वातचीत चल रही थी) अच्छा सत्कार कर संधि के वारे में साफ़ जवाव दे दिया। २०वें वर्ष शंभाजी पिता से विगड़ कर दिलेर खाँ के पास चला गया। २१वें वर्ष वह पिता के पास लौट गया। उसी वर्ष शिवा जी ने वादशाही राज्य में घुस कर जालना परगने को लूट लिया। कुछ दिन वीमार रह कर यह संसार से उठ गए। कहते हैं कि वहाँ के

१. तंजावर का नाम मानचित्रों में तंजोर दिया रहता है।

२. कर्णाटक का प्रसिद्ध दुर्ग जिसे जिंजी कहते हैं।

रहनेवाले शाह जानुल्ला दर्वेश ने (जो सिद्धाई में एक थे और मना करने पर भी शिवा जी और उनके सैनिकों ने जिनका तकिया अर्थात् स्थान लूट लिया था) इसी लिये उसे शाप दे दिया था[१] ।

शिवाजी न्याय करने, गुणग्राहकता और वीरता में प्रसिद्ध थे। इनकी घुड़साल में बहुत से घोड़े बँधे रहते थे और उनकी रखवाली के लिये बहुत से नौकर नियत थे। दस घोड़ों पर एक तहवीलदार, एक भिश्ती और एक मशालची खिलाने पिलाने को नियुक्त रहता था और एक हज़ार पर एक मजमूअदार रहता था। सैनिक बारगीर की चाल के होते थे। जब सेना किसी सेनापति के साथ कहीं भेजी जाती थी, तब हर एक का सामान लिख लिया जाता था। लूट के अनंतर जो कुछ ज्यादा होता, वह ले लिया जाता था। गुप्तचर भी नियत रहते थे।

शिवा जी की मृत्यु पर शंभा जी राजा हुए, पर अपने हठ से पिता के साथवालों को दुःखित कर दिया और उनसे वैमनस्य कर लिया। वह कवि कलश नामक ब्राह्मण पर अधिक विश्वास रखता और बुरे कर्मों का साथी था[२] । २४वें वर्ष (जब सुलतान

१. औरंगाबाद के ठीक पूर्व चालीस मील पर जालना स्थित है। इसे सन् १६७९ ई० में दिसंबर महीने में लूट लिया था। कहा जाता है कि यहाँ के एक फ़क़ीर सैयद जान मुहम्मद ने इन्हें बद्दुआ दी थी जिसके पाँच महीने बाद इनकी मृत्यु हुई। जो हो; २४ मार्च सन् १६८० ई० को महाराज शिवाजी स्वर्ग सिधारे।

२. पिता की मृत्यु पर शंभा जी राजा हुए, पर इसके लिये इन्हें

मुहम्मद अकबर पिता के विरुद्ध विद्रोह कर दक्षिण आया तब) शंभाजी ने उसे शरण दी थी[1] । ३०वें वर्ष खानेज़माँ शेख निज़ाम (जो परनाला के पास कोल्हापुर का फ़ौजदार था) ने उसके एक जासूस को पकड़ कर दूर से उस पर पहुँच कर धावा किया और उसको कवि कलश सहित पकड़ लिया । हमीदुद्दीन खाँ जाकर बादशाह के पास लाया । (जिस दिन वह बादशाही सेना में पहुँचा) उसी दिन आज्ञानुसार क़ैद किया गया । इस समाचार से बादशाही सेना के छोटे बड़े सभी प्रसन्न थे । इस घटना की तारीख इस मिसरे से निकलती है—बा ज़नो फ़र्ज़ंद संभा शुद असीर । (इसका अर्थ हुआ—स्त्री पुत्र सहित शंभा जी पकड़े गए[2]) ३१वें वर्ष में बादशाह के हुक्म से वह मारा गया[3] । राहिरी गढ़ (जिसे विजय करने के लिये ज़ुल्फ़िकार खाँ पहले से नियत था) उसी वर्ष विजय हुआ । शंभा जी की स्त्रियाँ और

कई युद्ध करने पड़े थे जिससे वह शिवा जी के समय के सरदारों पर शंका करके कवि कलश को अपना विश्वसनीय मित्र मानता था । यह उसे विषय-वासना में फँसाए रहने का यत्न करता रहता था ।

१. सन् १६८६ ई० में शाहज़ादा अकबर राजपूताने से भाग कर दक्षिण चला आया जहाँ से फारस चला गया ।

२. सन् १६८८ ई० में शंभा जी संगमेश्वर में कलश के बनवाए महलों में अपनी काम-वासना तृप्त कर रहे थे कि शेख निज़ाम हैदराबादी अपने पुत्र इखलास खाँ के साथ इनके यहाँ रहने का समाचार पाकर पहुँचा और उसी वर्ष २८ दिसंबर को इन्हें कैद कर लिया ।

३. ११ मार्च सन् १६८९ ई० को शंभा जी मारे गए ।

पुत्र साहू बादशाह के यहाँ लाए गए। उसे राजा की पदवी और सात हज़ारी ७००० सवार का मन्सब देकर गुलाल बाड़ी[१] में रहने की आज्ञा दी। उसने दरबार ही में शिक्षा पाई।

औरंगज़ेब की मृत्यु के अनंतर जुल्फ़िक़ार खाँ की प्रार्थना पर मुहम्मद आज़म शाह से छुट्टी लेकर यह देश गए। मरहठे इकट्ठे हो गए। पहले औरंगज़ेब की क़ब्र तक जाकर उसे देखा; पर उसी समय उसके साथवालों ने औरंगाबाद के बाहरी महालों में लूट मार मचाना आरंभ कर दिया[२]। फिर यह सितारा जाकर बैठा और बहुत दिन तक वहाँ सुख करता रहा। इसके मंत्रियों[३] ने (जिन्हें हिन्दू प्रधान कहते हैं और राजा को इन अष्टप्रधान पर विश्वास करना पड़ता है) चढ़ाई और लूट जारी रखी, यहाँ तक कि बहादुर शाह के समय में जुल्फ़िकार खाँ के कहने से औरंगाबाद, खानदेश, बरार, बीदर और बीजापुर के प्रांतों की आय में से दस रूपया सैंकड़े उन्हें दिया जाना निश्चित हुआ।

---

१. १६ अक्तूबर सन् १६८६ ई० को एतक़ाद खाँ ने रायगढ़ पर अधिकार कर लिया। शंभा जी की स्त्री येशू बाई तथा पुत्र शिवा जी भी कैद हुए। ये दोनों औरंगजेब की पुत्री ज़ीनतुन्निसा को सौंपे गए। शिवा का नाम साहू रखा गया। इसी एतक़ाद खाँ को जुल्फ़िक़ार खाँ की पदवी मिली जिस नाम से यह बाद को बहुत प्रसिद्ध हुआ।

२. सन् १७०८ ई० में औरंगजेब की मृत्यु पर बहादुर शाह ने इसे विदा कर दिया था।

३. यहाँ पेशवाओं से तात्पर्य है, जो वास्तव में साहू जी के प्रधान अमात्य और मराठा राज्य के कर्णधार थे।

पर राजा साहू और राजाराम की स्त्री तारा बाई के झगड़े के कारण कुछ न हो सका। इसके बाद हुसेन अली खाँ अमीरुल्-उमरा की सूबेदारी के समय पचीस रुपया सैंकड़ा चौथ के नाम से बढ़ाया गया और अमीरुल्-उमरा की मुहर सहित इन्हें सनद मिल गई। उस समय से इन लोगों ने लूट से हाथ उठाया। राजा साहू सन् ११६३ हि० (सं० वि० १८०४) में निस्संतान मर गया। उसके चाचा का पुत्र रामराजा दुर्ग परनाला में बच गया था।

इस ओर के पुराने सरदार धन्ना जादव और संता घोरपदे थे जो साथ ही चढ़ाई करते थे और देश को लूटते थे। दूसरे को (जिसे घमंड हो गया था) शिवाजी के पुत्र राजाराम की मृत्यु पर उसकी स्त्री की आज्ञा से (जो नियमानुसर पुत्र के अल्पवयस्क होने के कारण राज्यकार्य सँभालती थी) धन्ना जी आदि ने मार डाला[1]। उसका पुत्र रानो घोरपदे पिता के बदले कुछ दिन लूट मार करता रहा और उससे प्रसिद्ध हो गया। उसकी संतान और जातिवाले दक्षिण में हैं। उसके प्रधानों में से एक बाला जी

---

१. शिवा जी के पुत्र राजाराम की फाल्गुन ब० ६ शके १६२१ (५ मार्च सन् १७०० ई०) को मृत्यु हुई थी। इनकी स्त्री तारा बाई ने मराठों के स्वातंत्र्य-युद्ध को बराबर जारी रखा। राजाराम की मृत्यु के पहिले ही सन् १६९८ ई० में संता जी घोरपदे धन्ना जी जादव द्वारा मारे जा चुके थे जिसके अनंतर राजाराम ही ने धन्ना जी को प्रधान सेनापति नियुक्त किया था।

विश्वनाथ नामक ब्राह्मण था[1]। सन् ११३० हि० (सन् १७१८ ई०) में जब हुसेन अली खाँ ने राजा साहू से चौथ और सिरदेश-मुखी देना निश्चित करके अपनी मुहर सहित सनद दे दी तब बाला जी पंद्रह हज़ार सवार सहित पूर्वोक्त खाँ के साथ दिल्ली गए। सन् ११३९ हि० (सं० १७८४ वि० सन् १७२७ ई०) में बाला जी के पुत्र बाजीराव के (जो पिता की मृत्यु पर उसके स्थानापन्न हुए थे) एक सहकारी मल्हार राव होलकर ने मालवा जाकर वहाँ के सूबेदार गिरधर बहादुर को युद्ध में मार डाला[2]। जब मुहम्मद खाँ बंगिश वहाँ का सूबेदार हुआ, तब भी लूट मार कर उसका नाम मात्र का अधिकार उठा दिया। सन् ११४५ हि० में (जब राजा जयसिंह प्रांताध्यक्ष हुए तब) एक जाति के होने से बाजीराव के बल बढ़ाने में इन्होंने सहायता दी[3]।

---

१. बाला जी विश्वनाथ भट्ट चितपावन ब्राह्मण थे। यह धन्ना जी जादव के एक सहकारी थे जिसके पुत्र चंद्रसेन जादव से जब इनकी नहीं पटी, तब ये साहू जी के पास चले गए। यह प्रथम पेशवा नियुक्त हुए।

२. बाजीराव के भाई चिमना जी आप्पा तथा ऊदा जी पवार ने देवास के पास सारंगपुर के युद्ध में राजा गिरिधर को मार डाला। सन् १७३१ ई० में मल्हार राव होलकर ने धार के पास थाल युद्ध में राजा गिरिधर के चचेरे भाई दयाबहादुर को परास्त कर मार डाला।

३. दिल्ली के सम्राट् नाम मात्र के सम्राट् थे और दूर के प्रांताध्यक्षों की वह कुछ सहायता नहीं कर सकते थे, इससे वे सूबेदार भी अपने लाभ पर विशेष दृष्टि रखते थे। सवाई जयसिंह अपने राज्य के विस्तार में लगे थे और इससे इस प्रांत की रक्षा का कम खयाल रखते थे। अंत में सन् १७३५ ई० में इन्हीं की राय से मालवा मराठों को दे दिया गया।

सन् ११४६ हि० में वाजीराव ने दक्षिण से हिंदुस्तान पर चढ़ाई की। जब खानेदौराँ का भाई मुज़फ्फर खाँ उसे दमन करने पर नियुक्त होकर सिरोंज पहुँचा, तब यह सामना न कर दक्षिण लौट गए। सन् ११४७ हि० (सं० १७९१ वि० सन् १७३४ ई०) में जब इन्होंने फिर चढ़ाई की, तब बादशाह ने दो सेनाएँ एक एतमादुद्दौला क़मरुद्दीन खाँ के अधीन और दूसरी खानेदौराँ के सेनापतित्व में इन्हें दमन करने के लिये भेजीं। वाजीराव ने भी एक सेना बेला जी जादव के अधीन कमरुद्दीन खाँ पर और दूसरी मल्हारराव के साथ खानदौराँ पर भेजी[1]। क़मरुद्दीन खाँ ने बढ़ कर तीन चार युद्ध किए। खानदौराँ ने डर से संधि करना चाहा और दोनों पीछे हट आए। फिर राजा जयसिंह के कहने पर (जो चाहता था कि मालवा की अध्यक्षता उसके बदले में वाजीराव को दी जाय) खानदौराँ ने भी मुहम्मद शाह का विचार वैसा कर लिया, तब सन् ११४८ हि० में मालवा का प्रबंध वाजीराव को सौंप दिया गया। दूसरे वर्ष बड़ी सेना के साथ वाजीराव ने मालवा पहुँच कर वहाँ का प्रबंध ठीक कर लिया और तब भदावर के राजा पर चढ़ाई की। राजा दुर्ग में जा बैठा। उसने मौजा आवतर को (जो राजा का वासस्थान था) विजय कर लिया[2] और बेला जी जादव को

१. इन सब युद्धों का इतना संक्षिप्त उल्लेख किया गया है कि कुछ ठीक नहीं समझ पड़ेगा। इन सब का विवरण देखने के लिये मराठों का इतिहास देखना चाहिए।

२. सं० १७९३ वि० में भदावर के राजा अमृतसिंह ने वाजीराव का सामना किया। मराठों ने आतेर पर अधिकार कर लिया। अंत में बारह लाख रुपया देकर छुट्टी पाई। (तारीखे हिंदी, इलि० डा०, भा० ८, पृ० ५३)

जमुना पार भेजा कि अंतर्वेदी को लूटे। उसने बुरहानुलमुल्क का (जो आगरे के पास पहुँच गया था) सामना किया और बहुत आदमी कटा कर अंत में भागा और बाजीराव से आ मिला। बाजीराव ने क्रुद्ध होकर दिल्ली की ओर कूच किया। लूट मार होने पर ख़ानेदौराँ नगर में से निकला। बाजीराव ने युद्ध में कुछ लाभ न देख कर आगरे की ओर कूच किया। सन् ११५० हि० (सन् १७३७ ई०) में मुहम्मद शाह के बुलाने पर आसफ़जाह दक्षिण से राजधानी पहुँचा और बाजीराव के बदले में मालवा का सूबेदार नियत होकर वहाँ गया। भूपाल के पास बाजीराव से युद्ध हुआ और संधि होने पर जब सूबेदारी उसी को मिली तब वह राजधानी को लौट गया[1]। सन् ११५२ हि० में बाजीराव ने नासिरजंग से औरंगाबाद के पास युद्ध किया और उस वर्ष के अंतिम महीने की १४ ता० को संधि होने पर ख़ानदेश के पास की सरकार खरकून धानीदह पर अधिकार कर लिया। नर्मदा के किनारे पहुँचने पर सन् ११५३ हि० में उसकी मृत्यु हो गई[2]।

---

१. भूपाल के पास निजामुलमुल्क आसफजाह की सेना को बाजीराव ने घेर लिया जिससे अंत में दोनों ओर की बहुत सी सेना कट जाने पर ११ फरवरी सन् १७३८ ई० को संधि हुई जिससे मालवा प्रांत बाजीराव को मिल गया।

२. सन् १७४० ई० के आरंभ में गोदावरी के किनारे निजामुलमुल्क के पुत्र नासिरजंग से युद्ध हुआ जिसमें वह परास्त हो कर औरंगाबाद दुर्ग में जा बैठा। अंत में दुर्ग के टूटने का समय आने पर संधि कर ली। २५ अप्रैल सन् १७४० ई० को बाजीराव की मृत्यु हुई।

इसके बाद इसका पुत्र बाला जी उस स्थान पर नियत हुआ। बाजीराव के भाई जमना जी[1] का पुत्र सदाशिव राव उपनाम भाऊ कार्यकर्त्ता नियुक्त हुआ। साहू राजा तक नियम दृढ़ थे। नासिरजंग के मारे जाने और राजा साहू की मृत्यु तक (जो सन् ११६३ हि० में हुई थी) यद्यपि इनमें कई बार विद्रोह के चिह्न दिखलाई पड़े थे, पर आप हो मिट गए थे। राजा की मृत्यु पर उसके एक संबंधी को गद्दी पर बैठा कर राज्यप्रबंध अपने हाथ में लिया और पुराने मराठा सरदारों को भी मिला लिया। सन् ११६४ हि० में (जब होलकर और जयप्पा सींधिया अबुन्नासिर खाँ[2] के सहायतार्थ इलाहाबाद और अवध गए तथा अहमद खाँ बंगिश हार गया तब) खाँ ने इनाम में कोल, जलेसर और कन्नौज से कड़ा जहानाबाद तक का प्रांत इन्हें दे दिया। धीरे धीरे इलाहाबाद तक इनका अधिकार हो गया। लगभग दस वर्ष तक वहाँ मराठों का अधिकार रहा। उसी वर्ष बाला जी ने औरंगाबाद पर चढ़ाई कर निज़ामों के कोष से बहुत धन लूटा। सन् ११६५ हि० में अमीरुलूउमरा फ़ीरोजजंग की सनद के अनुसार लगभग कुल खानदेश प्रांत और औरंगाबाद प्रांत के कुछ महाल इनके अधिकार में चले आए। सन् ११७१ हि० में दक्षिण के निज़ामुद्दौला आसफ़जाह से युद्ध किया जिससे संधि होने पर

---

१. अन्य प्रति में चिमना जी लिखा है।

२. यहाँ एक प्रति में इतना और है—'जो अहमद खाँ बंगिश से युद्ध कर रहा था।'

सत्ताइस लाख रुपए आय की भूमि मराठों के अधिकार में आ गई। उसी वर्ष जयप्पा के भाई दत्ता जी सींधिया और पुत्र जनको जी ने सकरताल[1] में नजीबुद्दौला को घेर लिया। उसी वर्ष रघुनाथ राव, शमशेर बहादुर और होलकर दिल्ली के पास पहुँचे और आदीनः बेग ख़ाँ के बुलाने पर पंजाब जाकर अहमद शाह दुर्रानी के पुत्र तैमूर शाह और जहाँ ख़ाँ को लाहौर से भगा दिया। इन्होंने लाहौर में अपना प्रतिनिधि भी नियुक्त किया। सन् ११७३ हि० में शाह दुर्रानी के आने का समाचार सुन कर वह सरहिंद जाकर मर गया। दक्षिण में दुर्ग अहमदनगर मराठों के अधिकार में चला आया। बाला जी और सदाशिव राव ने अमीरुल्मुमालिक निज़ामुद्दौला आसफ़जाह से युद्ध किया। कर्म-योग से चंदावल के मुसलमान सरदार मारे गए और साठ लाख रुपए आय की भूमि तथा तीन दुर्ग—दौलताबाद, आसीर और वीजापुर—मराठों के हाथ लगे।

जब उसी वर्ष शाह दुर्रानी ने पंजाब से मराठों का अधि-कार उठा दिया और दत्ता सींधिया मारा गया तथा होलकर की सेना नष्ट कर दी गई, तब सदाशिव राव बाला जी के पुत्र विश्वास राव के सहित प्रयत्न करने के लिये हिंदुस्तान गए। पहले दिल्ली जाकर दुर्ग पर अधिकार किया और कामबख़्श के पौत्र और मुहीउल्सुन्नत के पुत्र मुहीउल्मिल्लत को (जिसे एमादुल्मुल्क ने आलमगीर द्वितीय को मार कर गद्दी पर बैठाया था) हटा

१. अन्य प्रति में शकरताल है।

कर उसके स्थान पर शाह आलम बादशाह के पुत्र जवाँ बख़्त को नियमानुसार बैठाया। सन् ११७४ हि० (सं० १८१८ वि० सन् १७६१ ई०) में शाह दुर्रानी से सामना हुआ। जब रसद न मिलने के कारण कष्ट हुआ, तब इसने निरुपाय होने से युद्ध किया जिसमें वह, विश्वास राव, अन्य सरदार और बहुत से सैनिक आदि मारे गए; और जो भागे, उन्हें देहातियों ने नहीं छोड़ा[1]। यह समाचार सुन कर बाला जी की दुःख से मृत्यु हो गई[2]। दूसरा पुत्र माधो राव उसके स्थान पर बैठा। कुछ दिन से उसके चाचा रघुनाथ राव से उससे वैमनस्य था, इसलिये उसने उसे क़ैद कर दिया। कुछ वर्ष दृढ़ता से बीतने पर रोग से उसकी मृत्यु हो गई[3]। अपने छोटे भाई नारायण राव को वह अपने स्थान पर बैठा गया था, परंतु रघुनाथ राव ने उसे अपने आदमियों से मरवा डाला[4]। उस वंश के कार्यकर्त्ता उससे प्रसन्न नहीं थे, इसलिये झगड़ा उठा और रघुनाथ राव हार कर टोपीवाले फिरं-

---

१. पानीपत का तृतीय युद्ध।

२. उसी वर्ष अर्थात् सन् १७६१ ई० में इनकी मृत्यु हो गई।

३. बाला जी के प्रथम पुत्र विश्वास राव मारे जा चुके थे, इससे द्वितीय पुत्र माधव राव बल्लाल पेशवा हुए। सन् १७७३ ई० में इनकी मृत्यु हो गई जिस पर इनका छोटा भाई नारायण राव पेशवा हुआ।

४. रघुनाथराव नारायणराव का चाचा था और पेशवा की गद्दी पर बैठना चाहता था। इस कारण माधवराव ने भी इसे क़ैद किया था और नारायणराव ने भी गद्दी पर बैठते ही उसे क़ैद कर दिया। परंतु उसी वर्ष उसे रघुनाथराव ने मरवा डाला और आप पेशवा बन बैठा।

गियों को शरण में गया। लिखते समय उनकी सहायता से कार्यकर्त्ताओं से युद्ध करने पर उनके हाथ पड़ गया और शारीरिक व्यय के लिये मालवा में जागीर पाकर उस प्रांत को गया। रास्ते में रक्षकों से युद्ध कर सूरत बंदर के फिरंगियों के पास चला गया। इस कारण टोपीवालों और मराठों में युद्ध आरंभ हो गया। नारायण राव का अल्पवयस्क पुत्र माधोराव अपने पूर्वजों के स्थान पर बैठा।

राजा साहू के अन्य सरदारों में देहारिया भी थे[1]। जब गुजरात प्रांत का सूबेदार सरबुलंद खाँ था, तब उस प्रांत पर चढ़ाई कर उसने उसके बहुत से भाग पर अधिकार कर लिया था। राजा साहू के एक दूसरे सरदार रघू जी भोंसला थे जो राजा ही के वर्ण के थे। बरार प्रांत उनके अधिकार में था और देवगढ़ और चाँदा पर भी क़ब्जा कर वह बंगाल गए। चौथ के बदले उड़ीसा प्रांत छीन लिया। उनकी मृत्यु पर उनका बड़ा पुत्र जानो जी उत्तराधिकारी हुआ। जब उसकी मृत्यु हुई, तब उसके भाइयों में झगड़ा हुआ। लिखते समय रघू जी का पुत्र मोधू अधिकारी था[2]।

---

१. देहरिया शब्द अशुद्ध है। खंडेराव का धावदे अल्ल था जिसने गुजरात पर चढ़ाई कर वहाँ लूट मार की थी। इसी के एक सहकारी पीला जी गायकवाड़ थे जिनके वंश में वर्तमान बड़ौदा नरेश हैं।

२. जानो जी ने अपने भाई मुधो जी के पुत्र रघू जी को गोद लिया। इसके बाद जब वह सन् १७७२ ई० में मर गए, तब दो वर्ष बाद मुधो जी और साब जी दोनों भाइयों में लड़ाई हुई जिसमें साब जी मारा गया। सन् १७८१ ई० में मुधो जी की मृत्यु हो गई।

अपने पूर्वजों के हाथ की चौथ के ताल्लुक़े की सनद मराठा राज्य से अपने पुत्र रघू जी के नाम करा दी। उसके अन्य सरदारों में मुरार राव घोरपदे था जो बीजापुर प्रांत के सरा आदि महालों का ताल्लुक़ेदार था। इसने सरदारों में प्रसिद्धि प्राप्त कर दुर्ग केती आदि बहुत से महालों पर अधिकार कर लिया था। यह हैदरअली खाँ द्वारा सन् ११९० हि० (सन् १७७६ ई०) में उस दुर्ग में घिर कर पकड़ा गया और क़ैद में मर गया। छोटे छोटे सरदार गणना के बाहर हैं।

८४—राजा शिवराम गौर

यह राजा गोपालदास के पुत्र बलराम का पुत्र था। इसके पिता और दादा दोनों शाहजहाँ की शाहज़ादगी में ठट्टा की चढ़ाई[१] में मारे गए थे, इससे यह बादशाह का अत्यंत कृपापात्र हुआ। सरदारी मिलने के अनन्तर योग्य मन्सब पाकर धँदेरा प्रांत (जो मालवा के अन्तर्गत सरकार सारंगपुर के परगनों में से है) इसका देश नियत हुआ[२]। १०वें वर्ष तक इसका मन्सब डेढ़ हज़ारी १००० सवार तक पहुँचा था। कुछ दिन यह आसीर दुर्ग का दुर्गाध्यक्ष रहा। १८वें वर्ष में वहाँ से हटाया जाकर १९वें वर्ष यह शाहज़ादा मुराद बख़्श के साथ बलख़ और बदख़्शाँ की चढ़ाई पर नियत हुआ। फिर दरबार पहुँच कर यह २०वें वर्ष में काबुल के क़िले का रक्षक नियत हुआ। २१वें वर्ष में वहाँ से हटाया गया, पर जब उसी वर्ष के अन्त में अब्दुल अज़ीज़ ख़ाँ और नज़र मुहम्मद ख़ाँ में झगड़ा होने का समाचार बादशाह को

---

१. इस युद्ध में राजा गोपालदास तथा उनके अन्य सत्रह पुत्र मारे गए थे। बलराम सबसे बड़ा पुत्र था। इसी का छोटा भाई विट्ठलदास था। इसका वृत्तांत ४०वें निबंध में दिया गया है।

२. इस प्रांत पर इसका किस प्रकार अधिकार हुआ, यह जानने के लिये राजा विट्ठलदास की जीवनी देखिए।

मिला और दृढ़ता के लिये बहुत से सरदार काबुल में नियुक्त हुए, तब यह भी वहीं नियत किया गया था। २२वें वर्ष मन्सब में २०० सवार बढ़ा कर शाहज़ादा मुहम्मद औरंगजेब के साथ यह दक्षिण को चढ़ाई पर नियत हुआ। २५ वें वर्ष में जब इसके चाचा राजा विट्ठलदास की मृत्यु हुई, तब इसका मन्सब बढ़कर दो हज़ारी १५०० सवार का हो गया और यह राजा की पदवी के साथ दूसरी बार पूर्वोक्त शाहज़ादे की अधीनता में उसी चढ़ाई पर गया। २६वें वर्ष शाहज़ादा दारा शिकोह के साथ भी उसी चढ़ाई पर गया और वहाँ से रुस्तम ख़ाँ फ़ीरोज़ जंग के साथ बुस्त दुर्ग के विजयार्थ भेजा गया। २८वें वर्ष में सादुल्ला ख़ाँ के साथ इसने चित्तौड़ दुर्ग को गिराने में वीरता प्रकट की। ३१वें वर्ष इसका मन्सब बढ़कर ढाई हज़ारी २५०० सवार का हो गया और इसे मांडू की दुर्गाध्यक्षता मिली। सामूगढ़ के युद्ध में (जहाँ यह दारा शिकोह के हरावल में था) सन् १०६८ हि० (सन् १६५७ ई०) में इसने वीरगति पाई।

८५–सुजानसिंह

राणा अमरसिंह के द्वितीय[1] पुत्र सूरजमल सिसोदिया का यह और बीरमदेव दोनों पुत्र थे। पहला इस सल्तनत का पुराना सेवक है। इसने शाहजहाँ के राजत्व के १० वें वर्ष में छ: सदी ३०० सवार का मन्सब पाया था और १७वें वर्ष में इसका मन्सब एक हज़ारी ४०० सवार का हो गया। १८वें वर्ष में इसके मन्सब में १०० सवार और बढ़ाए गए। १९वें वर्ष यह शाहज़ादा मुराद बख़्श के साथ बलख़ बदख़्शाँ की चढ़ाई पर नियत हुआ। २२वें वर्ष में इसे डेढ़ हज़ारी ७०० सवार का मन्सब देकर शाहज़ादा मुहम्मद औरंगज़ेब बहादुर के साथ क़ंधार में नियत किया। २५वें वर्ष में जब इसका मन्सब दो हज़ारी ८०० सवार का हो गया, तब वह पूर्वोक्त शाहज़ादे के साथ उसी दुर्ग की चढ़ाई पर नियुक्त हुआ। २६ वें वर्ष में यह तीसरी बार शाहज़ादा दारा शिकोह के साथ उसी चढ़ाई पर भेजा गया। २९ वें वर्ष जब महाराज जसवंत सिंह का विवाह इसकी भतीजी के साथ निश्चित हुआ, तब इसे मथुरा से छुट्टी मिली। ३०वें वर्ष मुअज़्ज़म ख़ाँ के साथ औरंग-

---

१. मूता नैणसी ने इन्हें तृतीय पुत्र लिखा है और यह भी लिखा है कि सुजानसिंह को फूलिया पट्टे में मिला था।

ज़ेब बहादुर के पास दक्षिण जाकर इसने अच्छा काम किया और आदिलखानियों के युद्ध में बहादुरी दिखलाई। वहाँ से दरबार आकर महाराज जसवन्तसिंह के साथ मालवा गया और सन् १०६८ हि० (सन् १६५६ ई०) में पूर्वोक्त शाहज़ादे और राजपूतों से जो युद्ध हुआ, उसी में यह मारा गया[1]। इसका पुत्र फतेहसिंह नीचे के मन्सबदारों में था।

दूसरा (बीरम देव) राणा की नौकरी छोड़ कर २१वें वर्ष दरबार में आया और उसे आठ सदी ४०० सवार का मन्सब मिला। २२वें वर्ष में मन्सब के एक हज़ारी ५०० सवार का होने पर यह शाहज़ादा औरंगज़ेब बहादुर के साथ कंधार गया। २३वें वर्ष पाँच सदी और २५वें वर्ष २०० सवार के मन्सब में बढ़ाये जाने पर दूसरी बार उसी शाहज़ादे के साथ उसी चढ़ाई पर नियुक्त हुआ। २६वें वर्ष इसका मन्सब दो हज़ारी ८०० सवार का हो गया। २७वें वर्ष २०० सवार और बढ़ाए गए। २८वें वर्ष इसका मन्सब पाँच सदी और बढ़ाया गया तथा दस हज़ार रुपए के रत्न पाकर यह सम्मानित हुआ। २९वें वर्ष इसकी पुत्री के विवाह (जो महाराज जसवन्तसिंह के साथ ठीक हुआ था) के लिये इसे मथुरा जाने की छुट्टी मिली। ३१वें वर्ष मन्सब के तीन हज़ारी १००० सवार का हो जाने पर यह शाहज़ादा मुहम्मद औरंगज़ेब बहादुर के पास दक्षिण गया। आदिलखानियों के युद्ध में जब राजा

१. औरंगजेब और जसवंतसिंह के बीच धर्मत में जो युद्ध हुआ था, उसी में यह मारा गया था।

रायसिंह सिसौदिया कष्ट में पड़ गया, तब इसने पैदल होकर युद्ध किया था। सामूगढ़ की लड़ाई में यह दाराशिकोह के हरावल में था। इसके बाद यह औरंगज़ेब की ओर हो गया। शुजाअ के युद्ध में और दारा शिकोह के साथ के दूसरे युद्ध में बादशाह के साथ था। फिर दक्षिण में नियत होकर यह १०वें वर्ष राजा रामसिंह कछवाहा के साथ आसामियों की चढ़ाई पर गया[१]। १२वें वर्ष यह सफ़शिकन खाँ के साथ (जो मथुरा का फ़ौजदार था) नियत हुआ[२] और काल आने पर मर गया।

---

१. सन् १६६७ ई० में यह चढ़ाई हुई थी। मआसिरे आलमगीरी में रामसिंह के साथ जानेवाले मन्सबदारों में इसका नाम भी दिया है।

२. 'वीरमदेव सिसोदिया को सफशिकन खाँ के साथ जाने का खिलअत मिला।' औरंगजेब नामा, हिंदी भा० २, पृ० १४।

८६—राजा सुजानसिंह बुँदेला

यह राजा पहाड़सिंह बुँदेला[1] का पुत्र था। पिता के सामने ही शाहजहाँ का कृपापात्र होकर कामों पर नियुक्त होता था। पिता की मृत्यु पर जलूस के २८वें वर्ष में इसका मन्सब बढ़ कर दो हजारी २००० सवार दो अस्पः सेहअस्पः का हो गया और राजा की पदवी मिली। २९वें वर्ष क़ासिम खाँ मीर आतिश के साथ श्रीनगर के भूम्याधिकारी को दंड देने के लिये नियुक्त होने पर डंका और निशान पाया। ३०वें वर्ष अनुल्लंघनीय आज्ञानुसार दक्षिण के नाज़िम सुलतान औरंगज़ेब के पास गया और फिर बुलाए जाने पर दरबार पहुँचकर महाराज के साथ दक्षिण से आनेवाली सेना के रास्ते की रुकावट में नियुक्त हुआ। औरंगज़ेब से युद्ध के दिन लड़ाई के समय भाग कर स्वदेश चला गया। कुछ दिन अनंतर औरंगज़ेब से दोष क्षमा करा के और योग्य मन्सब प्राप्त कर शाह शुजाअ के युद्ध में दाहिनी ओर स्थित था। परास्त होने पर जब शुजाअ बंगाल की ओर गया और शाहज़ादा मुहम्मद सुलतान पीछा करने पर नियुक्त हुआ, तब यह भी उसके सहायकों में नियुक्त होकर साथ गया और उस प्रांत में अच्छा कार्य

---

१. इनका वृत्तांत अलग ३७वें निबंध में दिया गया है।

किया। ४थे वर्ष मुअज्ज़म खाँ की अधीनस्थ सेना के साथ कूच-बिहार पर अधिकार करने और वहाँ के ज़मींदार को दंड देने पर नियत हुआ; पर उतनी सेना के साथ जब वह कार्य नहीं कर सका, तब खानखानाँ के पहुँचने पर उससे जा मिला। उस कार्य के होने पर आसाम के लोगों पर चढ़ाइयाँ करके वीरता में नाम लिखाया[1]। ७वें वर्ष यह मिर्ज़ा राजा जयसिंह के साथ दक्षिण के प्रांत में नियुक्त हुआ और पुरंधर दुर्ग के घेरे में अच्छा कार्य किया। ८वें वर्ष इसका मन्सब बढ़ कर तीन हज़ारी ३००० सवार दो अस्पः सेहअस्पः हो गया। इसके अनंतर आदिलशाहियों की सेना के साथ युद्धों में अच्छी वीरता दिखलाई और ९वें वर्ष यह दिलेर खाँ के साथ चाँदा (जो बरार के पास है) प्रांत पर अधिकार करने पर नियुक्त हुआ। ११वें वर्ष सन् १०७८ हि० (सन् १६६८ ई०) में दक्षिण में इसकी मृत्यु हुई[2]।

इसे कोई पुत्र नहीं था, इसलिये इसके छोटे भाई इंद्रमणि का

---

१. इलि० डा०, जि० ७, पृ० २६४-६।

२. इम्पी० गजे० जि० १६, पृ० २४४ में इनकी मृत्यु सन् १६७२ ई० में और सन् १८७२ ई० के जर्नल एशाटिक सोसाइटी में सन् १६७१ में होना लिखा है। छत्रप्रकाश में लिखा है कि जब औरंगजेब के आज्ञानुसार बुंदेलखंड के मंदिरों को गिराने के लिये फ़िदाई खाँ अठारह सहस्र सेना सहित आया, तब धुरमंगदसिंह ने उसे परास्त कर भगा दिया। सुजानसिंह यह सुन कर डरे कि बादशाह यह समाचार पाकर क्रुद्ध होंगे। इसी समय छत्रसाल ने दक्षिण से लौट कर स्वतंत्रता के लिये बुंदेलखंड में सेना एकत्र करना और बुंदेले सरदारों को मिलाना आरंभ किया। छत्रसाल ने

(जो अपने पिता पहाड़सिंह की मृत्यु पर शाहजहाँ के समय पाँच सदी ४०० सवार का मन्सब पाकर २९वें वर्ष क़ासिम खाँ मीर आतिश के साथ श्रीनगर के भूम्याधिकारी को दंड देने पर नियुक्त हुआ था; ३०वें वर्ष दक्षिण की चढ़ाई में सुलतान औरंगज़ेब बहादुर के पास भेजा गया था; औरंगजेब के राज्य के १म वर्ष में शुभकरण बुंदेला के साथ चंपत बुंदेला को दंड देने पर नियत हुआ और फिर दक्षिण की नियुक्ति होने पर मिर्जा राजा जयसिंह के साथ अच्छा कार्य करता था) मन्सब बढ़ाकर उसे राजा की पदवी और उसका इलाक़ा जागीर में दिया। उस समय ख़ानेजहाँ की सूबेदारी में यह कुछ दिन गुलशनाबाद[1] का थानेदार रहा। १९वें वर्ष में इसकी मृत्यु होने पर इसके पुत्र जसवंतसिंह को (जो अपने इलाके पर था) राजा की पदवी और इलाके की सरदारी मिली।

उसी वर्ष के अंत में अच्छी सेना के साथ जसवंतसिंह दक्षिण में बादशाह के पास पहुँचा। २१वें वर्ष में चंपत बुंदेला

सुजानसिंह से भेंट की और इन्होंने भी उनका इस शुभ कार्य में उत्साह बढ़ाया।

सन् १६६६ ई० में राज्य दृढ़ होने और महाराज जयसिंह की मृत्यु होने के अनंतर औरंगजेब ने मंदिरों के ढाने की आज्ञा प्रचारित की थी और महाराज छत्रसाल भी जयसिंह की मृत्यु के बाद शाही मन्सब छोड़कर स्वदेश लौटे थे, इससे सुजानसिंह का सन् १६६६ ई० तक जीवित रहना निश्चित ज्ञात होता है।

१. जूनेर के पास बगलाने में है।

के पुत्रों[1] को दंड देने के लिये (जिन्होंने बुंदेलखंड में विद्रोह मचा रखा था) यह नियत हुआ। २९वें वर्ष[2] यह खानेजहाँ बहादुर कोकल्ताश के पुत्र हिम्मत खाँ के साथ बीजापुर गया। जाते समय खिलअत और डंका पाकर यह सम्मानित हुआ। मालखेड़ दुर्ग की चढ़ाई में इसने अच्छा कार्य किया। ३०वें वर्ष में इसकी मृत्यु हो गई। यद्यपि इसके पुत्र भगवंतसिंह को राजा की पदवी और जागीर मिली थी, पर ३१वें वर्ष में उसकी भी मृत्यु हो गई जिस पर उसकी दादी रानी अमर कुँअर[3] के प्रार्थना-पत्र पर उस ताल्लुके की सरदारी प्रतापसिंह (जिसका वंश मधुकरशाह से चला था और प्रतापसिंह ओड़छा के एक छोटे

---

१. पन्ना आदि राज्यों के संस्थापक प्रसिद्ध छत्रसाल से तात्पर्य है।

२. २९वाँ वर्ष सन् १६८५ ई० होता है और मआसिरुल्उमरा भा० २, पृ० ५११ की पाद-टिप्पणी में संपादक लिखता है कि अन्य प्रति में सन् १६८० है। ख़फ़ी ख़ाँ के अनुसार हिम्मत ख़ाँ २८वें वर्ष के अंत में दक्षिण में संता घोरपदे से युद्ध करते समय गोली लगने से मारा जा चुका था। २४वें वर्ष (सन् १६८० ई०) में शाहज़ादा अकबर विद्रोह कर दक्षिण पहुँचा और उस समय खानेजहाँ बहादुर ही दक्षिण का सूबेदार था। इस समय तक औरंगजेब बराबर दक्षिण में सहायक सेना तथा अकबर को पकड़ने के लिये आज्ञाएँ भेज रहा था, इससे अधिक संभव है कि यह इसी वर्ष हिम्मत खाँ के साथ भेजा गया हो।

३. अपने अल्पवयस्क पौत्र भगवंतसिंह की यही अभिभाविका नियत हुई थीं।

परगना में दिन व्यतीत करता था) के पुत्र उदयसिंह[1] को राजा की पदवी सहित मिली। ३३वें वर्ष में यह दरबार में आया। ४७वें वर्ष इसका मन्सब बढ़ कर साढ़े तीन हज़ारी १५०० सवार का हो गया और यह खेलना (जिसे सखरलना भी कहते हैं) का दुर्गाध्यक्ष नियुक्त हुआ। औरंगजेब की मृत्यु पर जब साम्राज्य का प्रबंध ढीला पड़ गया, तब यह उस दुर्ग को मरहठों के हाथ सौंप कर स्वदेश लौट आया। इसके अनंतर इसका पुत्र पृथ्वीसिंह और पौत्र साँवलसिंह ओड़छे के इलाक़े के सरदार रहे[2]। इस ग्रंथ (मूल) के लिखने के समय पंचमसिंह उस राज्य पर अधिकृत था।

---

१. विजयसाह के पुत्र प्रतापसिंह बनगाँव में रहते थे। उदयसिंह का नाम जर्नल एशाटिक सोसाइटी में अघोतसिंह, तवारीखे बुंदेलखंड में उदित-सिंह और इम्पीरिअल गजेटिअर में उदोतसिंह लिखा है, पर शुद्ध नाम इनके आश्रित कवि बंसी ने 'तिहि कुल नृपति उदोतसिंह अब छिति पर धर्म चढ़ावै' लिखा है। कवि हरिसेवक, कोविद आदि ने भी यही नाम लिखा है।

२. सन् १७३६ ई० में उदयसिंह की मृत्यु पर पृथ्वीसिंह राजा हुए, जो सन् १७५२ ई० में मरे। इनके पुत्र गंधर्वसिंह पिता के सामने ही मर चुके थे, इससे पृथ्वीसिंह के पौत्र सावंतसिंह गद्दी पर बैठे। सन् १७६५ ई० में सावंतसिंह की मृत्यु हुई। यह निरसंतान मरे, इसलिये इनकी रानी हरिवंशकुँअरि ने हाथीसिंह को गोद लिया। पर जब दो वर्ष बाद इनसे कुछ झगड़ा हो गया, तब यह भाग गए और पजनसिंह गोद लिए गए। यही पजनसिंह इस ग्रंथ में पंचमसिंह के नाम से उल्लिखित हैं।

८७—राय सुर्जन हाडा[१]

हाड़ा चौहानों की एक शाखा विशेष है। हाड़ावती रण-थम्भौर सरकार में एक दुर्ग है, जो अजमेर प्रांत के पास है और इस जाति की राजधानी है। आरंभ में यह (राय सुर्जन) राणा के अधीन था, पर अकबर के समय दुर्ग रणथम्भौर में दृढ़ता के साथ सामना करने के लिये डट गया[२]। चित्तौड़ विजय के अन-

---

१. इस ग्रंथ में आठ निबंध हाड़ा राजाओं पर हैं जिनमें पाँच बूँदी राजवंश तथा तीन कोटा राजवंश के सम्बन्ध में हैं। कोटा राज्य-संस्थापक माधोसिंह, उनके पुत्रों मकुंदसिंह तथा किशोरसिंह और पौत्र रामसिंह की जीवनी ५३, ५७ और ६६वें निबंध में है। ८७, ४८, ६०, ८१ तथा ४४वें इन पाँच निबंधों में राव सुर्जन से ले कर राव राजा बुद्धसिंह तक सात पीढ़ियों का वृत्तांत दिया गया है। राव राजा बुद्धसिंह के बाद के भी दो एक राजाओं का उल्लेख है।

२. यह राव अर्जुन का बड़ा पुत्र था और सन् १६३३ ई० में गद्दी पर बैठा था। रंतभवर दुर्ग शेरशाही सरदारों से सावंतसिंह तथा बेदला के ठाकुर के द्वारा राव सुर्जन को मिला था। (टाड कृत राजस्थान, भा० २, पृ० १३३०-२) इसलाम खाँ सूरी के एक सरदार ने, जो इस दुर्ग का अध्यक्ष था, इसे राजा सुर्जन को दे दिया। बदायूनी भा० २, पृ० ३१ में लिखता है कि जब ग्वालियर पर बादशाह का अधिकार हो गया, तब सन् १५६६ ई० में रंतभवर के दुर्गाध्यक्ष संग्राम खाँ ने इस दुर्ग को

तर जब बादशाह इस दुर्ग को लेने की इच्छा से[१] १३वें वर्ष इधर आए, तब स्वयं पहाड़ी पर चढ़ कर दुर्ग की ऊँचाई और नीचाई का विचार करके मोर्चे लगवाए। मोर्चे लगाने के एक महीने बाद विजय हुई।

कहते हैं कि रमजान के अंतिम दिन बादशाह ने कहा था कि यदि दुर्गवाले आज अधीनता स्वीकृत न करेंगे तो कल (कि ईद है) दुर्ग गोले और गोलियों का निशाना बनेगा। इससे सुर्जन डर गया और दरबारियों से प्रार्थना कर अपने पुत्रों—दूदा और भोज—को बादशाह के पास भेजा। दरबार में आने पर दोनों को खिलअत पहनने की आज्ञा हुई। जब खिलअत पहनाने के लिये लोग इन दोनों को बादशाही कनात के बाहर लाए, तब इनके एक साथी ने (जो कुछ पागल था) विचार किया कि सुर्जन के पुत्रों को पकड़ने की आज्ञा हुई है, इसलिये उसने अपने स्थान से हटकर तलवार खींची। भगवंतदास के एक नौकर ने उसे बहुत समझाया, पर उसने उसी के ऊपर तलवार चलाई और बादशाही खेमे की ओर दौड़ा। कान्ह शेखावत के पुत्र पूरनमल को दो मनुष्यों के साथ घायल किया और शेख

सुर्जन हाड़ा के हाथ बेंच दिया। इस सरदार का नाम तारीखे अलफी में हिजाज खाँ और तबकाते अकबरी में हाजी ख़ाँ लिखा है।

१. तबक़ाते अकबरी में लिखा है कि सन् १५५६ ई० में हबीब अली ख़ाँ ने इस दुर्ग को बादशाही आज्ञा से घेरा था, पर सफल नहीं हुआ। (इलि० डा०, भा० ५, पृ० २६०)

बहाउद्दीन बदायूनी को तलवार की चोट से दो टुकड़े कर दिया। इसी समय मुज़फ़्फ़र ख़ाँ के एक नौकर ने पहुँच कर उसे मार डाला।

इस घटना से सुर्जन के पुत्र बड़े लज्जित हुए, पर इसमें उनका कुछ दोष नहीं था, इससे बादशाह ने उन्हें क्षमा कर खिलअत के अनंतर पिता के पास भेज दिया। पुत्रों के आने पर राय सुर्जन ने कहलाया कि यदि एक सरदार यहाँ आवे तो उसके साथ मैं भी सेवा में आऊँ। तब अकबर ने हुसेन कुली ख़ाँ को इस कार्य पर नियत किया। ख़ाँ के जाने पर राय सुर्जन ने अगवानी कर उसका सत्कार किया और उसके साथ आकर बहुत सी कृपाओं का पात्र हुआ[१]। इसके अनंतर आवश्यक सामान लेने के लिये तीन दिन की छुट्टी लेकर दुर्ग को लौट गया। जैसा निश्चित हुआ था, उस के अनुसार दुर्ग बादशाही नौकरों को सौंप दिया गया। इसे बादशाही कृपा से गढ़ा की जागीर मिली[२]। २०वें वर्ष गढ़ा के बदले चुनार इसकी जागीर नियत हुआ।

---

१. तारीख़े अलफी तथा तबक़ाते अकबरी में (इलि० डा०, भा० ५, पृ० १७७-९ तथा ३३२) इस विजय का वर्णन है। प्रथम में १३वाँ वर्ष (सन् १५६८ ई०) और दूसरे में १४वाँ वर्ष (सन् १५६९ ई०) दिया है। दोनों ही के अनुसार मेहतर ख़ाँ रणथम्भौर का दुर्गाध्यक्ष नियत हुआ था। बदायूनी भा० २, पृ० १०६-८ में इसका विस्तृत वर्णन है।

२. गढ़ा पर ९वें वर्ष ही में बादशाही अधिकार हो चुका था, इससे ज्ञात होता है कि रणथम्भौर लेते ही अकबर ने इन्हें गढ़ा का अध्यक्ष बना दिया होगा।

इसका बड़ा पुत्र दूदा बिना छुट्टी लिए अपने देश बूँदी को लौट गया और वहाँ अत्याचार करने लगा। यद्यपि उसे दंड देने के लिये सेना पहिले नियत हुई थी, पर २२वें वर्ष में बादशाह ने बूँदी विजय करने के विचार से जैन खाँ कोकल्ताश को राय सुर्जन के साथ नियत किया। बूँदी विजय होने पर राय सुर्जन जब लौट कर दरबार गया, तब दो हजारी मन्सब तक पहुँचा। दूदा ने इस विफलता के अनंतर फिर कुराह पकड़ी और गड़बड़ मचाने लगा। २३वें वर्ष में शहबाज खाँ कंबू के मध्यस्थ होने से इसके दोष क्षमा हुए और यह दरबार में आया। बादशाह इसे पंजाब में छोड़ कर राजधानी गए। वहाँ पास पहुँचने पर शंका के मारे फिर भाग गया और ३०वें वर्ष इसकी मृत्यु हो गई[१]।

---

१. २५वें वर्ष में मुजफ्फर खाँ की मृत्यु पर राव सुर्जन ने बिहार में भी कुछ कार्य किया था। इनकी मृत्यु के विषय में इस ग्रंथ में कुछ नहीं लिखा है, पर तबक़ाते अकबरी से ज्ञात होता है कि यह सन् १००१ हि० (सन् १५९३ ई०) के बहुत पहिले मर चुके थे। इनकी मृत्यु सं० १६४२ वि० में हुई थी।

८८—राजा सुलतान जी

यह महाराष्ट्र था और बिनालकर इसका अल्ल था। बच्चा जी माणिक[1] का, जो अनंगपाल का पौत्र था, (जिसे औरंगज़ेब के १५वें वर्ष में बहादुर खाँ कोका के कहने से बादशाही नौकरी मिल गई थी) भी यही अल्ल था। अनंगपाल दक्षिण के बड़े ज़मींदारों में से था। पूर्वोक्त राजा (सुलतान जी) आरंभ में राजा साहू की नौकरी में था और उसका प्रसिद्ध सरदार था। निज़ामुलमुल्क आसफ़जाह के समय मुबारिज़ खाँ के युद्ध के अनंतर बादशाही नौकरी मिलने पर इसने सात हज़ारी मन्सब और सरकार बीर, औरंगाबाद प्रांत के अंतर्गत फतेहाबाद सरकार के कुछ महाल और बरार प्रांत का ख़वेली पाथरी परगना जागीर में पाया। तीन

---

१. दूसरी प्रति में नजा जी नायक भी पाठ मिलता है। यह जिस अनंगपाल का पौत्र लिखा गया है, वह जगपतराव उपनाम अनंगपाल निंबालकर था जिसके वंश में फाल्टन के वर्तमान राजा हैं। यह वीरता के लिये विशेप प्रसिद्ध था और मराठी में कहावत है कि 'राव अनंगपाल बारा वजीराँचा काल' अर्थात् बारह वजीरों की मृत्यु के समान राव अनंगपाल था। यह सोलहवीं शताब्दि के उत्तरार्द्ध में वर्तमान था। इसी की बहिन दीपा बाई का मालो जी भोंसले से विवाह हुआ था जिससे सन् १५९४ ई० तथा सन् १५९७ ई० में क्रमशः शाह जी और शरफो जी का जन्म हुआ था।

हज़ार सवारों के साथ यह नौकरी बजाता था। (जिस वर्ष पूर्वोक्त सरदार—निज़ामुलमुल्क आसफ़ जाह—की मृत्यु हुई) उसी वर्ष के कुछ महीने बाद सन् ११६१ हि० (सन् १७४८ ई०) में यह भी मर गया। इसके अनंतर (जिस समय नासिरजंग शहीद फुलभरी जाने का विचार कर उसके स्थान के पास पहुँचा, उस समय) इसका पुत्र हनुमंतराव अपनी सेना सहित बाहर निकल कर मुसलमानी सेना के पास उतरा। नासिरजंग उसके सरदारों का विचार करके शोक मनाने के लिये पहले उसके स्थान पर गया और वह मन्सब, पैतृक पदवी और पिता के महाल जागीर में पाकर प्रसन्न हुआ। सलाबतजंग के समय धिराज शब्द पदवी में बढ़ाया गया। सन् ११७६ हि० में यह मर गया। इसका छोटा पुत्र (केवल यही बच गया था) इसके स्थान पर नियुक्त हुआ, परन्तु उसमें पहले लोगों की तरह कार्य करने की शक्ति नहीं थी, इसलिये महालों का प्रबन्ध और अपना सेवा कार्य नहीं कर सका। तब दो एक वर्ष बाद उसको जागीर का थोड़ा अंश छोड़ कर बाकी राज्य में मिला लिया गया। लिखते समय पूर्वोक्त लड़के को (जो अब यौवन को पहुँच चुका था और जिसका नाम धनपत राव[1] था) बरार प्रांत से कुछ महाल जागीर में दिए गए थे, परन्तु उनका प्रबन्ध भी वह ठीक तरह से नहीं करता था।

---

१. पाठांतर धनवंत या धीयतराय भी मिलता है।

८१—राजा सूरजमल

यह राजा वासू[1] का बड़ा पुत्र था। अपने विद्रोह और बुरे आचरण से पिता को अपनी ओर से दुःखित रखता था, इससे अंत में शंका के कारण (जो बुरे कर्मों का फल था) उसे कारागार भेज दिया। पिता की मृत्यु पर उसके दूसरे[2] पुत्रों में योग्यता न देख निरुपाय हो कर जहाँगीर ने उस ज़मींदारी का प्रबंध और उस राज्य की सरदारी पर इसे राजा की पदवी और दो हज़ारी मंसब सहित नियुक्त किया और वह राज्य और कोष (जिसे कई वर्षों में इसके पिता ने संचित किया था) इसे अकेले ही प्रदान कर दिया। मुर्तज़ा खाँ शेख़ फ़रीद के साथ इसकी नियुक्ति हुई (जो काँगड़ा का दुर्ग विजय करने पर नियत हुआ था)। जब शेख़ के प्रयत्न से दुर्गवालों का कार्य कठिन हो गया और इसने देखा कि विजय होने ही वाली है, तब अनैक्य और काम बिगाड़ने से कपट का परदा उठा दिया और शेख़ ही के मनुष्यों से लड़ने लगा। मुर्तज़ा खाँ ने बादशाह को लिखा कि सूरजमल की

---

१. ३९वें निबंध में राजा वासू की जीवनी दी गई है।

२. मूल ग्रंथ की दूसरी प्रतियों में यहाँ लिखा है कि 'दूसरे दो पुत्रों में'।

चाल से विद्रोह के चिह्न पाए जाते हैं। उसके मुर्तज़ा खाँ के बराबर होने से ही एक बड़ा सरदार भारी सेना के साथ उस पार्वत्य प्रदेश में विद्रोह शांति के लिये भेजा गया। उसने निरुपाय होकर शाहज़ादा शाहजहाँ का प्रार्थी हो उन्हें प्रार्थनापत्र लिखा कि मुर्तज़ा खाँ ने अपने स्वार्थ के लिये मुझ से मन-मुटाव कर लिया है और विद्रोह की शंका करके मुझे उखाड़ने के विचार में है। आशा है कि इस अभागे के जीवन और मुक्ति के कारण होकर मुझे दरबार बुला लेंगे। इसी समय ११वें वर्ष के आरंभ में मुर्तज़ा खाँ की मृत्यु हो गई और दुर्ग का विजय होना कुछ दिन के लिये रुक गया। यह शाहज़ादों के प्रार्थनानुसार दरबार पहुँच कर सम्मानित हुआ। उसी समय शाहज़ादे के साथ दक्षिण की चढ़ाई पर नियुक्त हुआ। उस चढ़ाई से लौटने पर कुछ युक्ति मिल जाने से यह काँगड़ा विजय का अगुआ हो गया। इसे उस पहाड़ी देश में फिर से भेजना युद्ध की नीति के विरुद्ध था; पर वह चढ़ाई शाहज़ादे के प्रबंध में हो रही थी और उन्होंने इसे अपनी सरकार के बख्शी शाह क़ुली खाँ महम्मद तक़ी के साथ इस चढ़ाई पर नियुक्त किया था। स्थान पर पहुँचते ही शाहक़ुली खाँ से लड़ कर शाहज़ादे को लिखा कि मेरा उसका साथ ठीक नहीं है और यह कार्य उससे नहीं पूरा हो सकता। यदि दूसरा सरदार नियुक्त करें तो सहज में विजय हो सकती है। तब शाहक़ुली खाँ को दरबार बुलाकर राजा विक्रमाजीत को (जो शाहजहाँ के अच्छे सरदारों में से था) नई सेना के साथ वहाँ भेजा।

सूरजमल ने राजा के पहुँचने तक के समय को सुअवसर समझ कर बादशाही नौकरों को इस बहाने से कि बहुत दिनों तक युद्ध करते हुए वे बिना सामान के हो गए हैं, उन्हें लौटा दिया जिसमें वे अपनी जागीरों पर चले जायँ और राजा के आने तक सामान सहित चले आवें। इस गड़बड़ के अनंतर अवसर पाकर विद्रोह का चिह्न प्रकट कर इसने लूट मार आरंभ कर दी और पहाड़ के नीचे के पर्गनों को (जो एतमादुद्दौला की जागीर में थे) लूट कर जो सिक्का और सामान पाया, वह ले लिया। सैयद सफी बारहा अन्य सहायकों के साथ (जो बिदा किये जाने पर भी अभी तक अपनी जागीरों पर नहीं लौटे थे) उसके आपसवालों से युद्ध कर कुछ मारे गए, कुछ घायल हुए और कुछ भाग गए।

जब १२वें वर्ष के अंत में राजा विक्रमाजीत[१] वहाँ पहुँचे तब इस कपटी ने चाहा कि कुछ दिन बातें बनाकर व्यतीत कर दे। राजा ने (जो इस कार्य का तत्व जानता था) इसकी बात का विश्वास न करके युद्ध की तैयारी की। सूरजमल ने भी भाग्य बिगड़ जाने के कारण बिना कुछ विचारे साहस कर युद्ध की तैयारी की। कुछ ही देर में बहुत आदमियों के मारे जाने पर वह भागा। दुर्ग मऊ और मुहरी (जिसपर उसे बहुत भरोसा

---

१. राय रायान पत्रदास विक्रमाजीत का वृत्तांत ७८वें निबंध में देखिए।

था) विजय होने के अनंतर उसके राज्य पर (जो उसे उसके पूर्वजों से मिला था) बादशाही सेना का अधिकार हो गया। वह इसी प्रकार इधर उधर भागता फिरता था और अप्रतिष्ठित हो चुका था। इसी समय में उसकी मृत्यु हो गई।

१०—राजा सूरजसिंह राठौर

यह मारवाड़ के भूम्याधिकारी राय मालदेव का पौत्र तथा उदयसिंह उपनाम मोटा राजा का पुत्र था। यह राज्य अजमेर प्रांत के अंतर्गत है जो सौ कोस लंबा और साठ कोस चौड़ा है। सरकार अजमेर, जोधपुर, सिरोही, नागौर और बीकानेर उसी में हैं। पूर्वोक्त राय भारत के बड़े राजाओं में थे और सेना तथा ऐश्वर्य्य के लिये प्रसिद्ध थे। कहते हैं कि जब मुईज़ुद्दीन साम पिथौरा के युद्ध से ख़ाली हुआ, तब उसने कन्नौज के राजा जयचंद्र से युद्ध करना निश्चय किया। राजा भाग कर गंगा में डूब मरा[1]। उसके वंशधर[2] मारे फिरते थे। उसका भतीजा सीहिया शम्साबाद में था। वह भी बहुतों के साथ मारा गया[3]। उसके तीन पुत्र सोनिक,

---

१. सन् ११९४ ई० में चंदावर युद्ध में परास्त होने पर इन्होंने गंगाप्रवेश कर आत्मबलि दे दी थी।

२ प्रति व में 'भाई' है।

३. जयचद्र की मृत्यु पर उसका पुत्र हरिश्चंद्र कुछ दिन कन्नौज में राज्य करता रहा; पर सन् १२२६ ई० में शम्शुद्दीन अल्तमश ने उस पर अधिकार कर लिया। इस हरिश्चंद्र का एक पुत्र सेतराम था जिसका पुत्र सीहा जी हुआ। यही पचिश्म की ओर मुसल्मानों से हारने पर द्वारिका-यात्रा के लिये गया। मार्ग में भीनमाल के ब्राह्मणों की सहायता करता हुआ द्वारिका जी गया और वहाँ से लौट कर पाटन में ठहरा। आईन अकबरी

अश्वत्थामा और अच्छ गुजरात को चले और सोजत के पास पाली[1] में रहे। उसी समय मीना[2] जाति ने वहाँ के निवासियों पर (जो ब्राह्मण थे) चढ़ाई की। इन लोगों ने निकल कर उन्हें वीरता के साथ परास्त किया। ब्राह्मणों ने प्रशंसा करके अच्छा आतिथ्य किया और जव सामान ठीक हो गया, तब फुर्ती करके खेड़ प्रांत कोलों से ले लिया[3]। सोनिक ने अलग होकर मीनों से ईडर छीन लिया। अच्छ ने वकुलाना जाकर कोलियों से उसका अधिकार ले लिया और उसके वंशधर वहीं वस गये[4]। अश्वत्थामा के (जो मारवाड़ में रह गया था) पुत्रों का कार्य्य धीरे धीरे बढ़ता गया। उसकी १६वीं पीढ़ी में राय मालदेव हुआ। उसकी मृत्यु पर उसका छोटा पुत्र चंद्रसेन उत्तराधिकारी हुआ[5]। अकबर

में भी सोहा को जयचंद्र का भतीजा लिखा है और टॉड साहब ने पुत्र, पौत्र सभी लिखा है। सोहा जी के मारवाड़ में जाने का समय फार्व्स कृत रासमाला में सन् १२१२ ई० दिया है, पर वह ठीक नहीं ज्ञात होता।

१. दूसरी प्रति में 'याली'। २. दूसरी प्रतियों में 'मनिया' है।

३. हाभी राजपूतों के मिल जाने से इन्होंने गोहिलों को मार कर खेड़ प्रांत पर अधिकार कर लिया था।

४. द्वारिका के पास उखामंडल के चावड़ों को परास्त कर वहाँ अधिकार कर लिया। इसका नाम ख्यातों में अज दिया है। अश्वत्थामा का आसथान और सोनिक का सोनग नाम दिया है।

५. राव मालदेव प्रसिद्ध राजा हो गए हैं। इनका विवरण देने के लिये एक निबंध ही लिखना पड़ेगा। सन् १५६२ ई० में चंद्रसेन गद्दी पर बैठे थे। इनके दो बड़े भाई रामसिंह तथा उदयसिंह वर्तमान थे, पर पिता के इच्छानुसार इन्हें ही गद्दी मिली। इन दोनों ने उससे राज्य लेना चाहा और बादशाही सेना उस पर चढ़ा लाए। जोधपुर पर बादशाही अधिकार हो गया।

के राज्य के १५वें वर्ष में (जब बादशाह ने अजमेर पहुँच कर रौज़े का दर्शन किया और वहाँ से वे नागौर के इस ओर के प्रबंध को चले तब) यह बादशाही सेवा में आया[1]। जब १९वें वर्ष इसके विद्रोह का समाचार मिला, तब कई सरदार इसका दमन करने के लिये नियत हुए और इसका भतीजा कल्ला (जो सोजत नगर में था) सरदारों के पीछा करने से निरुपाय होकर बादशाही सेना के पास पहुँचा। जब महसवारा पर धावा करके दुर्ग सोरथ[2] के घेरे की तैयारी हुई, तब दूसरी सेना इसे दंड देने के लिये नियत हुई। यह पहाड़ों की घाटियों में चला गया[3]। २१वें वर्ष में कल्ला ने फिर सेना एकत्र कर दुर्ग वंकोर[4] दृढ़ किया और शहबाज़ख़ाँ कंबू ने उसे जाकर घेर लिया। २५वें वर्ष (जब चंद्रसेन ने विद्रोह किया तब) पायंदाख़ाँ मुग़ल के हाथ (जो दूसरे जागीरदारों के साथ इसके दमन के लिये नियत हुआ था) परास्त हुआ[5]। परन्तु

---

१. सं० १६२७ वि० (सन् १५७० ई०) में अकबर अजमेर गया था।

२. प्रति ब में 'सिवानः' है।

३. सन् १५७४ ई० में प्रजा पर मुसल्मानों के अत्याचार करने से बिगड़ कर इन्होंने उन्हें दंड दिया, जो विद्रोह समझा गया। अजमेर के सूबेदार शाहकुली ने चढ़ाई की और सिवाने का युद्ध हुआ। सिवाना दुर्ग कई वर्ष तक घिरा रहा, पर मुसलमान उसे न ले सके। चंद्रसेन के भतीजे तथा रायमल के पुत्र कल्ला ने नागौर पर अधिकार कर लिया। बीकानेर के राजा कल्याणसिंह तथा उसके बाद शहबाज ख़ाँ कंबू इस पर भेजे गए। तब यह मेवाड़ की ओर चला गया।

४. दूसरी प्रतियों में 'वेकनूर' है।

५. सन् १५८० ई० में मारवाड़ के सरदारों के बुलाने पर चंद्रसेन

उदयसिंह उपनाम मोटा राजा ने सच्चे हृदय से अधीनता स्वीकृत करके अपनी पुत्री मानमती का विवाह सुलतान सलीम से कर दिया जिससे सुलतान खुर्रम पुत्र हुआ। इसके अनंतर इस पर कृपा बढ़ती गई और इसका देश जोधपुर इसे जागीर में मिल गया। २३वें वर्ष सादिक खाँ के साथ राजा मधुकर बुंदेला का दमन करने पर नियत हुआ। २८वें वर्ष बैराम खाँ के पुत्र मिर्जा खाँ के साथ गुजरात को शांत करने और मुजफ्फर खाँ गुजराती का दमन करने पर नियुक्त हुआ। ३८वें वर्ष (सन् १५९३ ई०) में सिरोही के राजा को दंड देने पर नियत हुआ। ४०वें वर्ष में मृत्यु हुई और उस समय तक यह हजारी मन्सब तक पहुँचा था। चार स्त्रियाँ साथ सती हुई[1]। इसकी मृत्यु पर इसका पुत्र सूरजसिंह योग्य मन्सब से सम्मानित हुआ।

मारवाड़ लौटे, पर इन्हें फिर परास्त होकर लौट जाना पड़ा। सन् १५८१ ई० में इनकी मृत्यु हुई। इनके अनंतर इनके छोटे पुत्र आसकरन गद्दी पर बैठे, पर उनके बड़े भाई उग्रसेन बूँदी से लौट कर इन्हें मारने में आप भी साथ हो मारे गए। तब सबसे बड़े पुत्र रायसिंह को गद्दी मिली। यह बादशाही अधीनता स्वीकृत कर चुका था। यह अकबर के आज्ञानुसार जगमाल के साथ सिरोही गया था जहाँ राव सुरतान ने अचानक आक्रमण करके दोनों को मार डाला। सन् १५८३ ई० में राव मालदेव के पुत्र उदयसिंह गद्दी पर बैठे।

१. लाहौर में सन् १६९५ ई० में इनकी मृत्यु हुई थी। इनके दो पुत्रों ने दो राज्य और स्थापित किए थे। कृष्णसिंह ने कृष्णगढ़ का राज्य तथा दलपतिसिंह के पुत्र ने रतलाम का राज्य स्थापित किया था।

जब सुलतान मुराद गुजरात का शासनकर्ता नियत हुआ, तब यह भी उसी के साथ नियुक्त हुए। वहाँ से ४२ वें वर्ष में (जब गुजरात के बहुत से जागीरदार शाहज़ादा सुलतान मुराद के साथ दक्षिण की चढ़ाई पर गए थे और मुजफ़्फ़र गुजराती के बड़े पुत्र बहादुर ने बहुत से आपसवालों को एकत्र कर क़स्बों और गाँवों पर धावा किया था तब) यह उससे युद्ध करने अहमदाबाद से चले। दोनों ओर की सेनाएँ तैयार हुईं, पर बहादुर बिना युद्ध किए साहस छोड़ कर भाग गया। जब सुलतान मुराद की मृत्यु पर सुलतान दानियाल दक्षिण के शासन पर नियत हुआ, तब यह भी साथ भेजे गए। ४५वें वर्ष (सन् १६०० ई०) में दौलतखाँ लोदी के साथ राजू दखिनी को दंड देने के लिये शाहजादे के हरावल में नियत हुए। ४७वें वर्ष में खानखानाँ अब्दुर्रहीम के साथ खुदावंद खाँ हब्शी का (जिसने पाथरी और पालम में विद्रोह मचाया था) दमन करने पर नियत हुए[1]। उस प्रांत में इन्होंने अच्छे कार्य किए थे, इससे ४८वें वर्ष में शाहज़ादा दानियाल और खानखानाँ की प्रार्थना पर इन्हें डंका मिला। जहाँगीर के ३रे वर्ष दरबार में आने पर इसका मन्सब बढ़कर चार हज़ारी २००० सवार का हो गया और दूसरे

---

१. तकमीलए अकबरनामा और प्राचीन राजवंश में अंबर मलिक का नाम दिया है, पर वह अशुद्ध है। उसकी मृत्यु इसके तीन वर्ष पहिले ही हो चुकी थी। खुदावंद खाँ को खानखानाँ के पुत्र मिर्जा एरिज ने नानदेर के पास परास्त किया था। (इलि० डा०, भा० ६, पृ० १०४-५)

मन्सबदारों के साथ दक्षिण के सूबेदार खानखानाँ को सहायता पर नियुक्त हुआ। ८वें वर्ष सुलतान खुर्रम के साथ राणा की चढ़ाई पर गया और फिर उसी शाहज़ादे के साथ दक्षिण गया। १०वें वर्ष में दरबार आकर इसने पाँच हज़ारी मन्सब पाया। इसके भाई कृष्णसिंह की घटना के अनंतर (जो उसके चरित्र में लिखी गई है) देश जाने के लिये दो महीने की छुट्टी मिली। इसके अनंतर अपने पुत्र गजसिंह के साथ दरबार में आकर दक्षिण में नियत हुआ। १४वें वर्ष सन् १०२८ हि० (सन् १६१९ ई०) में वहीं[1] इसकी मृत्यु हो गई। इसके पुत्र गजसिंह का वृत्तांत अलग दिया है[2]।

———

१. बरार प्रांत के मेहकर स्थान में मृत्यु हुई थी।

२. १२वाँ निबंध देखिए।

९१—राव सूर भुरटिया

वीकानेर के भूम्याधिकारी राय रायसिंह राठौड़ का यह पुत्र था[1]। जहाँगीर के राज्य के अंत में तीन हज़ारी २००० सवार के मन्सब तक पहुँचा था। शाहजहाँ के राज्य के प्रथम वर्ष में जब यह दरबार में आया, तब इसका मन्सब चार हजारी २५०० सवार तक बढ़ा दिया गया और इसे झंडा तथा डंका भी मिला। महाबत खाँ खानखानाँ के साथ नज़र मुहम्मद ख़ाँ का (जिसने काबुल पर चढ़ाई की थी) दमन करने के लिये यह नियत हुआ। इन लोगों के पहुँचने के पहिले ही नज़र मुहम्मद ख़ाँ वहाँ से चला गया था, इसलिये आज्ञानुसार ये लोग लौट आए। फिर अब्दुल्ला खाँ बहादुर के साथ यह जुझारसिंह को दंड देने के लिये (जो झूठी शंका के कारण दरबार से भागा था) भेजा गया। २रे वर्ष खानेजहाँ लोदी का पीछा करने पर (जो व्यर्थ शंका कर आगरे

---

१. राजा रायसिंह के सबसे बड़े पुत्र दलपतिसिंह गद्दी पर बैठे थे; पर जहाँगीर इनसे कुछ अप्रसन्न हो गया था, इससे इन पर शाही सेना भेजी गई और दरबार लाए गए। सं० १६६८ वि० में यह गद्दी पर बैठे थे और दो वर्ष बाद कैद हुए थे। इसी कैद से इन्हें छुड़ाते समय इनके सरदार आदि मारे गए और उसी में यह भी वीरगति को प्राप्त हुए। (देखिए ७१वाँ निबंध)

से भाग गया था) नियुक्त हुआ। ३रे वर्ष तीन सेनाओं में (जो निज़ामुलमुल्क के राज्य पर अधिकार करने के लिये नियत की गई थीं) शायस्ता खाँ के साथ नियुक्त होने पर इसका मन्सब ५०० सवार का और बढ़ाया गया। बीर के पास के युद्ध में (जिसमें आज़म खाँ ने खानेजहाँ पर धावा किया था) इसने अच्छा प्रयत्न किया था। ४थे वर्ष सन् १०४० हि० (सन् १६३१ ई०) में इसकी मृत्यु हो गई[1]। बादशाह ने इसके पुत्र कर्ण को दो हजारी १००० सवार का मन्सब, राव की पदवी और उसका देश बीकानेर जागीर में दिया। इसके दूसरे पुत्र शत्रुसाल को पाँच सदी २०० सवार का मन्सब दिया गया। राव कर्ण[2] का वृत्तांत अलग दिया गया है।

---

१. इनकी मृत्यु दक्षिण ही में हुई थी।

२. कर्ण का वृत्तांत ७वें निबंध में देखिए।

समाप्ति

ईश्वर को धन्यवाद है कि यह ग्रन्थ अन्ततः अच्छी तरह समाप्त हो गया। अब ग्रन्थ-पूर्ति करनेवाली लेखनी प्रार्थना करती है—

शैर—यद्यपि भला नहीं हूँ तो भी भलों के पैर की धूलि हूँ।

आश्चर्य है कि शराब का पुरवा पाने पर भी प्यासा रह जाऊँ।

आप लोगों की कृपा-दृष्टि के लिये यहाँ कुछ अपना वृत्तान्त भी लिख दिया जाता है।

इस अयोग्य का नाम अब्दुल हई है। सन् ११४२ हि० में इसका जन्म हुआ। अवस्था प्राप्त होने पर कुछ दिन पाठशाला में पढ़ता रहा और कुछ दिन अदब क़ायदा तथा अरबी सीखने और न्याय की पुस्तकों के मनन में व्यतीत किया। सन् ११६२ हि० में खान्दानी मन्सब और पदवी पाकर नासिरजंग शहीद की ओर से बरार प्रांत की दीवानी और उस उच्च पदस्थ सरदार के जागीरी महालों की मुतसद्दीगिरी (जो उस प्रांत में थी) मिली। सलाबत जंग के समय में औरंगाबाद का अध्यक्ष और देवगढ़ का दुर्गाध्यक्ष नियुक्त हुआ।

जब वह घटना पिता पर आई और बुरा चाहनेवालों से काम पड़ा (तब यद्यपि कुछ दिनों तक एकांतवास करना पड़ा और सब

ओर से निराशा हो गई पर) एकाएक नवाब निज़ामुल्मुल्कनिज़ामुद्दौला ने इस निराश्रित को सहारा दिया और इस पर बहुत कृपा की। आरंभ में पुराना मन्सब और पैतृक पदवी देकर सम्मानित किया और दक्षिण के सूबों की दीवानी (जो पैतृक थी) देकर प्रतिष्ठा बढ़ाई। मजलिस और युद्ध में साथ रखते और कार्य करने पर प्रशंसा तथा कृपा करते थे। उस अद्वितीय सरदार की इस प्रकार की निरंतर कृपाएँ सम्मान के योग्य हैं। अंत में समय के योग्य मन्सब तथा समसामुल्मुल्क की पदवी मिली। मेरा उपनाम सारिम[1] है और अपनी कृति से कुछ शैर यहाँ उद्धृत किए जाते हैं—

(१)

ज्योतिर्मय सौंदर्य को दर्शन सुलभ न होय।
मुख की प्रभा निहारिवे सूरज दरपन होय॥

देखना आसाँ नहीं है हुस्न आतिश ख़ूए का।
आफ़ताब आईना होवे जिल्वए तुझ रूए का॥

(२)

होत बुराईहू भली जो मन चाहत होय।
वड़वानल की ज्वाल कों ज्यों जल जीवन होय॥

बदी को नेक माने हैं अगर म्वाफ़िक़ मिज़ाज आवे।
समुंद्री आतिशे सोज़ाँ को पानी भी मिज़ाज आवे॥

---

१. सारिम का अर्थ तलवार है। मूल ग्रंथ में २८ पद दिए गए हैं, पर यहाँ चुनकर केवल आठ ही पद दिए जाते हैं। फारसी शैरों के हो शब्द अधिकतर उर्दू शैरों में रखे गए हैं, केवल क्रिया आदि का हिंदी अनुवाद कर दिया गया है।

(३)

गुणी पुरुष या जगत में भ्रमत न पावत चैन।
मोती गोलाकार ज्यों लुढ़कत पै ठहरै न॥

हुनरवर चर्ख़ के नीचे हैं कब आराम को पाते।
कि जाये इस्तक़ामत को दुरे ग़लताँ नहीं पाते॥

(४)

चिंता के परि फेर बँध्यो कली सम चित्त यह।
सक्यो देखि मन केर नहिं उदार आचरन जब॥

गुंचः सा फ़िक्र में छिपा है।
न सका देख दिल-कुशाई को॥

(५)

निर्बल को संसार की झंझट से दुख नाहिं।
ज्यों सुख सों तृन तैरहीं नदी-धार के माहिं॥

नातवानों को नहीं आशोबे दुनिया से है ग़म।
मौजे दरिया काह को होती है बाज़ूए शिना॥

(६)

अतर लगत तन तासु को सौरभ घटते जाय।
घटै मान सौंदर्य को, सबै मेल, न बसाय॥

बाद इस्तेमाल घटती इत्र की बू दम बदम।
क़द्रे खूबाँ कम हुई जो कुछ है सब आमेज़िश है॥

अनुक्रमणिका (क)

(व्यक्तिगत)

ख

ध

न

फ

ब

य

श

अनुक्रमणिका [ख]

(भौगोलिक)

ग

र

ह